॥ श्रीः ॥

भिषग्वरशार्ङ्गधरविरचिता

शार्ङ्गधरसंहिता.

(चिकित्साग्रन्थ.)

मथुरानगरनिवासी पाठकज्ञातीय श्रीकन्हैयालाल
माथुरपुत्र आयुर्वेदोद्धारसंपादक पंडित दत्तराम
चतुर्वेदीरचित माथुरीभाषाटीकाविभूषित
और संशोधित ।

शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ सुश्रुते.

जिसको
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने
अपने 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापेखानेमें
छापकर प्रसिद्ध किया.

द्वितीयावृत्तिः ।

संवत् १९५६, शके १८२१.

कल्याण-मुंबई.

स्त्रीपुरुषसंजीवन भाषाटीका.

श्रुतिस्मृतिमें कहा है कि, पितृऋण ऋषिऋण और देवऋण इन तीनोंसे मनुष्य बंधगया है इनको विना तोडे मनुष्य परलोकमें नहीं जासक्ता. तीन ऋणोंमेंसे पितृऋणसे मुक्त होनेका उपाय तौ श्राद्धतर्पणादि पूर्वक सुपुत्र उत्पन्न करनाही है अर्थात् सुपुत्र होनेका शास्त्रोक्त आचार स्वीकर्तव्य है उस आचार काही प्रतिपादक यह पुस्तक निकाला है जिसमें पहिले ऋतुप्राप्तिका मासादि क्रमसे शुभाशुभ फल कहा है. यदि अशुभफलकारी मासादिक हों तौ उसके निरसनार्थ शांति आदि करना उचित है. अनंतर ऋतु आदिकालमें स्त्रीका आचार अनंतर पुरुषका आचार तदनंतर शुक्र तथा रजकी शुद्धि और वृद्धि उपाय गर्भ रहनेपर पोषणादि विचार आदि सुपुत्रोत्पत्ति हितकारी सब विचार इसमें संगृहीत हैं. की० ८ आना।

रसप्रदीप भाषाटीका.

पाठकगण ! आजकल बहुत लोग नीरोग रहकर बहुत वर्षतक जीना चाहते हैं, परंतु नीरोग रहना विना औषधि नहीं हो सक्ता. मनुष्य नीरोग हुआ तो बहुत वर्षतक जीवे इसमें क्या आश्चर्य है? देखो इस रसप्रदीपग्रंथमें अनेक ग्रंथोंसे चुन २ कर ऐसे २ उत्तम रस और भस्म लिखे गये हैं कि जिससे साधारण लोगोंको घर बैठे २ रसायन बनानेकी किसी तरहकी त्रुटी नहीं पडेगी इसमें धातूपधातु किस तरह शोधना मारना और उसका उपयोग किस रोगपर किस अनुपानसे करना और पथ्यापथ्य यह सब इस ग्रंथमें वर्णन किया है. यह ग्रंथ है तो छोटासा परंतु इसमें बडे २ उपयोगी रस और भस्म हैं. की० ५ आना.

अर्चावतारस्थलवैभवदर्पण भा० टी०

यह वैष्णवसंप्रदायका एक उत्तम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें कर्णाटक, महाराष्ट्र, गुथरात, काठियावाड, पंजाब, मारवाड, बंगाल, हिन्दुस्थान, उडिया, तैलंग, द्रविड, कच्छभुज, भोजपुर, मगध इत्यादि देशान्तर्गत अनेकों दिव्य तीर्थोंकी यात्राका वर्णन है । वैष्णवोंके तौ परम प्रयोजनकी वस्तु है। भाषा बहुतही शुद्ध और सरल है मू० १॥ रु०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना, कल्याण-मुंबई.

प्रस्तावना ।

शार्ङ्गधरके जीवनचरित्रको त्यागके हम इस ग्रंथके विषयमें कुछ लिखते हैं। सबको विदित है कि यह शार्ङ्गधर ग्रंथ ऋषिप्रोक्त नहीं है तथापि ऋषिप्रोक्त ग्रंथोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है। इसी कारण एतद्देशीय वैद्योंने इसकी लघुत्रयीमें गणना की और इसको संहिता संज्ञा दी। क्यों न हो जब स्वयं ग्रंथकार प्रथमही प्रतिज्ञा करते हैं।

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।

अर्थात् जो प्रसिद्ध योग मुनीश्वरोंके कहे, और वैद्योंके वारंवार अनुभव किये हुए हैं उनका संग्रह सत्पुरुषोंके प्रसन्न करनेको शार्ङ्गधरनाम मैं करता हूं।

इस लिखनेसे यह प्रयोजन है कि यह शार्ङ्गधर ग्रंथ ग्रंथकारका स्वकपोलकल्पित नहीं है, किंतु ऋषि मुनियोंके सर्वत्र प्रसिद्ध और प्राचीन आचार्योंके परिचित प्रयोग जो अत्यंत दुष्प्राप्य थे उनका संग्रहरूप यह ग्रंथ अस्मदादिक मूढबुद्धिवालोंके निमित्त निर्माण किया। इस कारण इस ग्रंथको ऋषिप्रोक्तही समझना।

अब आप इसको ध्यान देकर देखिये कि किस प्रणालीसे ग्रंथकारने इसे निर्माण किया है। देखिये प्रथम मंगलाचरणमें विलक्षणता कि अभीष्ट श्रीशिवको प्रणामकर उनकी उपमा वैद्यके प्रयोजनीय और औषधपर घटित की फिर मुनिप्रोक्त और चिकित्सकोंके अनुभविक प्रयोग संग्रह कथनद्वारा ग्रंथकी उत्तमता दिखाय, रोगोंके निदान पंचकका दिग्दर्शनमात्र वर्णनकर, कर्षणबृंहणात्मक द्विविध चिकित्सा कही।

परंतु वो चिकित्सा औषधके विना नहीं हो सके इसवास्ते औषधोंको अचिंत्यशक्तिसे वर्णनसे संपूर्ण प्राणीमात्रको औषधमें पूर्ण विश्वास कराय दी। फिर औषध रोगोंकी करी जाती है इसवास्ते चतुर्विध रोगोंके भेद दिखलाय, उनको शांतिकारी प्रयोगाचरण करे यह कहा। कदाचित् फिरभी रोगियोंको अश्रद्धा न हो इसवास्ते इस ग्रंथके प्रयोगोंको सप्रमाणता दिखाई।

---

१ बृहत्संहितामें लिखा है।

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम् ।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमंत्रके का विशेषोक्तिः ॥ १ ॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि यह ग्रंथ प्राचीन मुनियोंका बनाया है इससे उत्तम है और यह मनुष्यरचित है इससे श्रेष्ठ नहीं परंतु यह महान् भूल है। सिवाय वेदके अन्यग्रंथमें एकसा अर्थ होनेसे इसका विचार नहीं है। इसीप्रकार वाग्भट ग्रंथके अंतमेंभी लिखा है उसको बुद्धिमान् देख लेवेंगे।

फिर देखिये कि बुद्धिवान् वह कहता है जो पूर्वही विचारके कार्य आरंभ करता है। यह नहीं कि विचारा तो कुछ और कुछका कुछ लिख मारा। इसवास्ते इस आचार्यने प्रथमही अपने कथनीय विचारको अनुक्रमणिकाद्वारा लिख दिया है। फिर कोई पामरजन न्यूनाधिक करके इस ग्रंथको न बिगाडे। इससे—

द्वात्रिंशत्संविताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता।
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणनापि च॥ १॥

यह लिखकर मानो इस ग्रंथपर अपनी मुद्रा कर दी और २६०० छबीस सौ श्लोककी संख्या लिखनेका तात्पर्य यह है कि मैंने इस शार्ङ्गधर संहितामें बत्तीस अध्याय और छबीस सौ श्लोक कहे हैं। इससे न्यूनाधिकको बुद्धिमान् पुरुष प्रक्षिप्त जाने अर्थात् वे मेरे बनाये नहीं हैं पीछेसे मिलाये गये हैं।

फिर पूर्वोक्त अनुक्रमणिकाके अनुसार तोल, युक्तायुक्तविचार, औषधकी योजना आदि लिख औषध लानेकी विधि और औषधकी परीक्षा आदि लिखी है। फिर औ- षध ग्रहणका काल, रस, वीर्य, विपाकादिका वर्णन, ऋतुवर्णन और उनमें दोषोंका संचय, कोप और शमन आदिका वर्णन करके फिर नाडीपरीक्षा, दीपन पाचनादि कहके आगे शारीरभाग संक्षेपसे दिखाय फिर मुख्य २ रोगोंकी गणना लिखी है।

फिर दूसरे खंडमें पंचविध कषाय, तेल, चूर्ण, गुटिका, संधान तथा पारद आदि रसोपरसोंकी शुद्धि, तथा जारण मारण लिख साधारण रस लिखे हैं। फिर उत्तरखंडमें स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्तिकर्म, नस्य, धूमपान, गंडूष, कवल, प्रतिसार लेपादि और रुधिरमोक्षविधि कहके अंतमें नेत्रकर्मविधि लिखी है।

इस प्रकार ग्रंथका क्रम दूसरे किसी ग्रंथमें नहीं है। इत्यादि गुणगुंफित ग्रंथको देखा तो इस ग्रंथकी सर्वत्र दुर्दशा देखी। ग्रंथकर्त्ताके रचित करनेपरभी पामर जनोंने ऐसा बिगाडा कि कुछ लिखा नहीं जाय। कहीं अधिक पाठ बढाय दिया कहीं असलमेंभी न्यून कर दिया। फिर और देखिये कि इन ग्रंथशत्रु और हमारे देशके अवनतिकर्त्ता मूर्ख छापनेवालोंने सर्वनाश कर दिया कि यदि ग्रंथ शुद्धभी होय तथापि छापकर सर्वथा अशुद्ध करके भोले भोले ग्राहकोंको ठगना। इसका मुख्य कारण यही है कि वो मुसलमान, कायस्थ, बनिये, दूसर, खत्री, कहार, कलवार, और इतर शूद्रादिक हैं जो संस्कृत लेशमात्रभी नहीं जानते। ऐसे छापनेवाले हि- न्दीके लखनऊ, देहली, आगरा, मथुरा आदि शहरोंमें बेशुमार हैं। परंतु पूना, मुंबई, काशी, कलकत्ते आदिमें ग्रंथ तथा स्वदेश भाषाके ग्रंथ अति परिश्रमके साथ बहुतसी प्रतियोंको एकत्र कर शुद्ध करके छापते हैं। उनको देशहितैषी अवश्य जानना। इत्यादि छापेके दोषसे इस शार्ङ्गधरको अशुद्ध देखके हमने इसको शुद्ध

प्रस्तावना।

शार्ङ्गधरके जीवनचरित्रको त्यागके हम इस ग्रंथके विषयमें कुछ लिखते हैं। सबको विदित है कि यह शार्ङ्गधर ग्रंथ ऋषिप्रोक्त नहीं है तथापि ऋषिप्रोक्त ग्रंथोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है। इसी कारण एतद्देशीय वैद्योंने इसकी लघुत्रयीमें गणना की और इसको संहिता संज्ञा दी। क्यों न हो जब स्वयं ग्रंथकार प्रथमही प्रतिज्ञा करते हैं।

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः।

अर्थात् जो प्रसिद्ध योग मुनीश्वरोंके कहे, और वैद्योंके वारंवार अनुभव किये हुए हैं उनका संग्रह सत्पुरुषोंके प्रसन्न करनेको शार्ङ्गधरनाम मैं करता हूं।

इस लिखनेसे यह प्रयोजन है कि यह शार्ङ्गधर ग्रंथ ग्रंथकारका स्वकपोलकल्पित नहीं है, किंतु ऋषि मुनियोंके सर्वत्र प्रसिद्ध और प्राचीन आचार्योंके परिचित प्रयोग जो अत्यंत दुष्प्राप्य थे उनका संग्रहरूप यह ग्रंथ अस्मदादिक मूढबुद्धिवालोंके निमित्त निर्माण किया। इस कारण इस ग्रंथको ऋषिप्रोक्तही समझना।

अब आप इसको ध्यान देकर देखिये कि किस प्रणालीसे ग्रंथकारने इसे निर्माण किया है। देखिये प्रथम मंगलाचरणमें विलक्षणता कि अभीष्ट श्रीशिवको प्रणामकर उनकी उपमा वैद्यके प्रयोजनीय और औषधपर घटित की फिर मुनिप्रोक्त और चिकित्सकोंके अनुभविक प्रयोग संग्रह कथनद्वारा ग्रंथकी उत्तमता दिखाय, रोगोंके निदान पंचकका दिग्दर्शनमात्र वर्णनकर, कर्षणबृंहणात्मक द्विविध चिकित्सा कही।

परंतु वो चिकित्सा औषधके विना नहीं हो सके इसवास्ते औषधोंकी अचिंत्यशक्तिसे वर्णनसे संपूर्ण प्राणीमात्रको औषधमें पूर्ण विश्वास कराय दी। फिर औषध रोगोंकी करी जाती है इसवास्ते चतुर्विध रोगोंके भेद दिखलाय, उनकी शांतिकारी प्रयोगाचरण करे यह कहा। कदाचित् फिरभी रोगियोंको अश्रद्धा न हो इसवास्ते इस ग्रंथके प्रयोगोंको सप्रमाणता दिखाई।

---

१ बृहत्संहितामें लिखा है।

मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम्।
तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमंत्रके का विशेषोक्तिः॥ १॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि यह ग्रंथ प्राचीन मुनियोंका बनाया है इससे उत्तम है और यह मनुष्यरचित है इससे श्रेष्ठ नहीं परंतु यह महान् भूल है। सिवाय वेदके अन्यग्रंथमें एकसा अर्थ होनेसे इसका विचार नहीं है। इसीप्रकार वाग्भट ग्रंथके अंतमेंभी लिखा है उसको बुद्धिमान् देख लेंगे।

फिर देखिये कि बुद्धिवान् वह कहता है जो पूर्वही विचारके कार्य आरंभ करता है। यह नहीं कि विचारा तो कुछ और कुछका कुछ लिख मारा। इसवास्ते इस आचार्यने प्रथमही अपने कथनीय विचारको अनुक्रमणिकाद्वारा लिख दिया है फिर कोई पामरजन न्यूनाधिक करके इस ग्रंथको न बिगाडे। इससे–

द्वात्रिंशत्संवितार्ध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता।
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणनापि च॥ १॥

यह लिखकर मानो इस ग्रंथपर अपनी मुद्रा कर दी और २६०० छबीस सौ श्लोककी संख्या लिखनेका तात्पर्य यह है कि मैंने इस शार्ङ्गधर संहितामें बत्तीस अध्याय और छबीस सौ श्लोक कहे हैं। इससे न्यूनाधिकको बुद्धिमान् पुरुष प्रक्षिप्त जाने अर्थात् वे मेरे बनाये नहीं हैं पीछेसे मिलाये गये हैं।

फिर पूर्वोक्त अनुक्रमणिकाके अनुसार तोल, युक्तायुक्तविचार, औषधकी योजना आदि लिख औषध लानेकी विधि और औषधकी परीक्षा आदि लिखी है। फिर औषध ग्रहणका काल, रस, वीर्य, विपाकादिका वर्णन, ऋतुवर्णन और उनमें दोषोंका संचय, कोप और शमन आदिका वर्णन करके फिर नाडीपरीक्षा, दीपन पाचनादि कहके आगे शारीरभाग संक्षेपसे दिखाय फिर मुख्य २ रोगोंकी गणना लिखी है।

फिर दूसरे खंडमें पंचविध कषाय, तेल, चूर्ण, गुटिका, संधान तथा पारद आदि रसोपरसोंकी शुद्धि, तथा जारण मारण लिख साधारण रस लिखे हैं। फिर उत्तरखंडमें स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्तिकर्म, नस्य, धूमपान, गंडूष, कवल, प्रतिसार लेपादि और रुधिरमोक्षविधि कहके अंतमें नेत्रकर्मविधि लिखी है।

इस प्रकार ग्रंथका क्रम दूसरे किसी ग्रंथमें नहीं है। इत्यादि गुणगुंफित ग्रंथको देखा तो इस ग्रंथकी सर्वत्र दुर्दशा देखी। ग्रंथकर्त्ताके रचित करनेपरभी पामर जनोंने ऐसा बिगाडा कि कुछ लिखा नहीं जाय। कहीं अधिक पाठ बढाय दिया कहीं असलमेंभी न्यून कर दिया। फिर और देखिये कि इन ग्रंथशत्रु और हमारे देशके अवनतिकर्त्ता मूर्ख छापनेवालोंने सर्वनाश कर दिया कि यदि ग्रंथ शुद्धभी होय तथापि छापकर सर्वथा अशुद्ध करके भोले भोले ग्राहकोंको ठगना। इसका मुख्य कारण यही है कि वो मुसलमान, कायस्थ, बनिये, दूसर, खत्री, कहार, कलवार, और इतर शूद्रादिक हैं जो संस्कृत लेशमात्रभी नहीं जानते। ऐसे छापनेवाले हिन्दीके लखनऊ, देहली, आगरा, मथुरा आदि शहरोंमें बेशुमार हैं। परंतु पूना, मुंबई, काशी, कलकत्ते आदिमें ग्रंथ तथा स्वदेश भाषाके ग्रंथ अति परिश्रमके साथ बहुतसी प्रतियोंको एकत्र कर शुद्ध करके छापते हैं। उनको देशहितैषी अवश्य जानान। इत्यादि छापेके दोषसे इस शार्ङ्गधरको अशुद्ध देखके हमने इसको शुद्ध

करना विचारा तो कई प्रति एकत्र करीं उनसे तथा इस ग्रंथकी दो संस्कृतटीका मिलीं एकका नाम गूढार्थदीपिका और दूसरीका नाम आढमल्ली। इनमें आढमल्ली टीका सर्वोत्तम और बहुधा दुष्प्राप्य है। इन सबसे प्रथम ग्रंथको यथायोग्य शोधन करके उक्त टीकाओंकी सहायतासे इस शार्ङ्गधरकी माथुरी भाषाटीका निर्माण करी। यद्यपि यह टीका सर्वोत्तम नहीं है परंतु अन्य २ जो हिन्दी टीका छपी हैं उनसे सर्वप्रकार उत्कृष्ट है। हमारे कहनेसेही क्या है विद्वान् जन आपही कह देवेंगे। जब यह ग्रंथ सटीक बनके तयार हो गया, इतनेहीमें श्रीयुत गोब्राह्मण-प्रतिपालक वैश्यवंशकुलकैरवेन्दु श्रीलक्ष्मीवेंकटेशचरणकमलचंचरीक श्रीसेठजी श्रीकृष्णदासात्मज गङ्गाविष्णुजीका पत्र आया कि आप इस शार्ङ्गधरकी भाषाटीका जल्दी बनायके भेजो। यह पत्र देखतेही चित्तको अत्यंत हर्ष हुआ और यह पुस्तक उनको अर्पण की गई। तो उन्होंनेभी हमारा दानमानसे पूर्ण सत्कार किया और इस ग्रंथको निज श्रीलक्ष्मीवेंकटेश यंत्रालयमें छापकर प्रकाशित किया। मित्र हो! यह वही पुस्तक आपके करकमलमें है, जो कुछ भली और बुरी है आप देख लीजियें। इसमें जो कुछ शुद्धाशुद्ध रह गया है उसको आप मत्सरता त्यागके शोधन कर देना, क्योंकि भूलना मनुष्यका धर्म है।

परंतु नीच और पामरोंमें " सुंदरमणिमयभवने पश्यति छिद्रं पिपीलिका सततम्। " यह वाक्य चरितार्थ होवेगा परंतु उनसे हमारी क्षति किसी प्रकार नहीं हो सकती अलमतिविस्तरेण।

आपका कृपाभाजन–

मथुरानिवासी पण्डित दत्तरामचौबे.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापाखाना,

कल्याण–मुंबई.

ओ३म् ।

अथ

शार्ङ्गधरसंहिताग्रंथकी विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.

पंचमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

इति प्रथमखंडः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

पंचमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

तैलसाधनप्रकार ।

विषय.	पृष्ठांक.
द्वादशोऽध्यायः ।	

मध्यमखंडः समाप्तः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

विषय.	पृष्ठांक.

विषय.	पृष्ठांक.

इति उत्तरखण्डः समाप्तः ।

इति शार्ङ्गधरसंहिताकी विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषानुवादसहिता

शार्ङ्गधरसंहिता ।

इस पृथुतर और दुराधिगमनीय आयुर्वेद शास्त्रतत्वके जाननेमें वैद्योंको अधिक परिश्रम होता है और उसके मध्यमें अनेक विघ्न आते हैं इसीसे सर्व ग्रंथकार ग्रंथके आदि मध्य और अंतमें मंगलाचरण करते हैं ऐसा शिष्टाचार है, तथा शास्त्रकीभी आज्ञा है, एतएव यह शार्ङ्गधर ग्रंथकर्त्ताभी निजेष्ट देव श्रीशिवपार्वतीको प्रणामपूर्वक आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हैं–

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे भवानी ॥
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥१॥

आर्या–मथुरानगरनिवासी कृष्णतनय दत्तराम माथुरने ।
शार्ङ्गधरकी टीका भाषा कीनी सुआढमल्लीसों ॥

---

१ यदंगतेजःप्रसरे–इस पदके कहनेसे यह दिखाया कि श्रीशिवका विभूतिविभूषित अंग होनेपरभी अतिशुभ्रताके कारण पर्वतकी उपमा देना युक्तही है और उस सुंदर स्वरूपमें खचित श्रीभगवतीजीको औषधीस्वरूप करके कहा यह शार्ङ्गधर आचार्यके बुद्धिकी चातुर्यता सराहने योग्य है । प्रायः वैद्योंको पर्वत और औषधीसेही कार्य रहता है अत एव इस शार्ङ्गधरसंहितामें शिवपार्वतीको पर्वत और औषधीरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया । कोई कहते हैं कि इस अर्द्धांगी स्वरूपके वर्णनमें वात, पित्त और कफ तीनोंका आधिपत्य वर्णन करा है । जैसे पित्त उष्ण होता है उसी प्रकार श्रीशिवका तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ, और श्रीपार्वतीजीकी चंद्रिका शीतल सो श्लेष्माधिप हुई, तथा सर्पभूषणसे वाताधिपत्व सूचना करी, जैसे ये तीनों गुण सदैव शिवमें स्थित रहते हैं उसी प्रकार इस शार्ङ्गधर ग्रंथमें वातपित्तकफकी साम्यता जाननी । और जैसे हिमालयमें औषधी प्रकाशित है उसी प्रकार इस ग्रंथमेंभी औषधियोंका वर्णन है । यद्यपि यह ग्रंथकीभी उपमा कही परंतु मुख्य उपमा पर्वत और शिवकीही यथार्थ है । इस ग्रंथमें त्रिविधै मंगलाचरणोंमें आशीर्वादात्मक मंगलाचरण कहा है । इसका यह प्रयोजन है कि दुष्ट उक्तिके प्रभावसे जो दुःखस्वरूप रोग प्रकट उनका नाश हो और रोगनिवृत्ति करके सुखरूप श्रीकी प्राप्ति हो ।

२ 'निर्मलचंद्रिकायते' इति पाठांतरम् ।

---

१ आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् । इति त्रिविधं काव्यलक्षणं भवति ।

अर्थ–हिमालय पर्वतमें अत्यंत देदीप्यमान (संजीवन्यादि) महौषधी जैसे निर्मल चन्द्रमाकी चांदनीमें शोभाको प्राप्त होती है उसी प्रकार जिनके तेजसमूहमें अर्थात् अर्धांगमें श्रीपार्वती महाराणी विराजमान (शोभित) है ऐसे श्रीशिव तुमको कल्याण अथवा लक्ष्मी देवे ॥

अब कहते हैं कि यह ग्रंथ संपूर्ण प्राणिजनोंके उपकारार्थ होय इस प्रकार विचारकर इस ग्रंथका संबंध कहना चाहिये क्योंकि संबंधके कहनेसे श्रोता और वक्ताकी सिद्धि[१] है अत एव सर्व शास्त्रोंमें प्रथम संबंध कहते हैं उसी कारण शार्ङ्गधर आचार्यभी प्रथम संबंधको कहते हैं–

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोनुभूताः ॥
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरंजनाय ॥ २ ॥

अर्थ–चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके कहे हुए और प्राचीन सद्वैद्योंने वारंवार नामरूपयोजनादिक करके अनुभव (निश्चित) किये ऐसे जे विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनोंके मनोरंजनार्थ शार्ङ्गधर नामक मैं करता हूं। तात्पर्य यह है कि चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके प्रयोग जहांतहांसे लेकर प्रकारांतरसे उनको शुद्धकरके मैं लिखता हूं; इस कहनेसे ग्रंथकी उत्तमता दिखाई। और त्रिकालदर्शीको मुनि कहते हैं उनके कहे प्रयोग मेरे इस ग्रंथमें हैं इस वाक्यके कहनेसे ग्रंथकी प्रामाणिकता दिखाई। एवं वैद्योंके अनुभव करे प्रयोग इसमें कहे हैं, इससे इस ग्रंथकी अन्य सर्व ग्रंथोंसे उत्कृष्टता दिखाई है अर्थात् सर्व आयुर्वेदके ग्रंथोंमें यह सर्वोत्तम है ॥

अब प्रथम रोगकी परीक्षा करे फिर औषधकी[२] इत्यादि मतको विचार शार्ङ्गधरभी कहते हैं–

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ॥
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥३॥

अर्थ–प्रथम वैद्य हेतु[३] आदिरूप[४] आकृति[५] सात्म्य[६] जाति[७] इन भेदोंसे रोगीके संपूर्ण

---

१ सिद्धिः श्रोतृप्रवक्तॄणां संबंधकथनाद्यतः। तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥
२ रोगमादौ परीक्षेत ततोनंतरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥
३ जिससे रोग होय उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहते हैं। जैसे मृत्तिकाभक्षणसे पीलिया होता है। ४ रोग होनेके प्रथम जंभाई आना, अंगोंका टूटना, अरुचि इत्यादिक लक्षण होते हैं उसका नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप ऐसे कहते हैं। ५ रोगोंके तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश इत्यादि लक्षण प्रगट होते हैं उस अवस्थाका नाम आकृति उसीको रूप कहते हैं। ६ औषध विहार इनका रोगीके प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोग हो उसका नाम सात्म्य और उसीको उपशय कहते हैं। ७ जिन कारणोंसे

रोगोंको जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकारके प्रयोगोंसे कर्षण और बृंहणरूप द्विविध चिकित्सा यथाक्रम करे। अन्यथा दोष लगता है। जैसे वाग्भट लिखते हैं कि जो विना दोनोंके जाने वैद्य चिकित्साकर्मको करता है वह उस कर्मकी सिद्धिको तथा सुख और सद्गतिको नहीं प्राप्त होता ॥

अथवा हेतु है आदिमें जिनके ऐसे जे रूपादिक तिन्होंसे प्रथम रोगपरीक्षा करके फिर चिकित्सा करे । जैसे वाग्भटमें लिखा है कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप रूप उपशय तथा संप्राप्ति इनसे रोगियोंके रोगकी परीक्षा करे । तहां हेत्वादिक पांच तो कहे । अब रूपादित्रयको कहते हैं । तहां रूपके कहनेसे देहकी स्थूलता और कृशता तथा बल वर्ण और विकारादिकी परीक्षा देखनेसे करे । तथा " आसमंतात् क्लृप्तिः करणम् " जिससे सर्वत्र कर्म करा जाय ऐसी त्वगिंद्रियसे शीत उष्ण मृदु कठोर आदिकी परीक्षा करे । और सात्म्यके कहनेसे हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हित है इस वाक्यसे प्रश्न करनेको कहा अथवा सात्म्यकरके कोई अभिलाषका ग्रहण करते हैं । अर्थात् जिस रोगीको जिस खाने पीने आदि आहार विहारकी इच्छा होय उस इच्छाद्वाराही वैद्य रोगीके देहस्थित दोषोंके क्षीण वृद्धिका ज्ञान करे ।

इस प्रकार दर्शनादि त्रयपरीक्षा कही और जातिके कहनेसे शेष इन्द्रियोंकी परीक्षा जाननी क्योंकि सुश्रुतमें रोगकी परीक्षा छेः प्रकारकी कही है । जैसे पांच श्रोत्रादि इंद्रियोंसे और छटी प्रश्नसे । तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कह आये अब शेष श्रोत्रादिकोंकी परीक्षा कहते हैं । तहां कर्णेन्द्रियकरके प्रनष्टशल्यस्थानीय रुधिर निकलनेके शब्दकी परीक्षा करे । जिह्वेन्द्रियकरके प्रमेहादि रोगोंमें रसकी परीक्षा करे । और घ्राणेन्द्रियकरके अरिष्ट लिंगादि व्रणोंके गंधकी परीक्षा करे इस प्रकार

वाताद्यन्यतम दोष दूषित हो ऊर्ध्वाधरतिर्यक् यथेष्ट विचरनेसे जो रोगोत्पत्ति होय उस कारण तथा उस दुष्ट दोष तथा उस विचरनेके वास्तविक होनेसे जो आनुपूर्विकज्ञान उसको जाति अथवा संप्राप्ति कहते हैं । १ शरीरमें बढे हुए वातादि दोषोंको औषधिकरके घटानेको कर्षणचिकित्सा कहते हैं । २ अतिक्षीण दोषोंकोही पुष्ट करनेको बृंहण चिकित्सा कहते हैं । ३ यस्तु दोषमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक् । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ ४ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम् । रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः ॥ ५ पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति । तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु प्रनष्टशल्यविज्ञानीयादिषु वक्ष्यंते । सफेनं रक्तमीरयन्नानिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः । रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः । घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिंगादिषु व्रणानां च गंधविशेषाः ।

हेत्वादिकोंकी व्याख्या करी । तहां प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विध परीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है समीक्ष्य इस पदके धरनेसे अज्ञानकी निवृत्ति कही अर्थात् बहुतसे रोग यथार्थ देखे नहीं गये, तथा ठीक ठीक कहनेमें नहीं आये और ठीक ठीक विचारमें नहीं आये, अथवा जो ठीक पूछनेमें नहीं आये, ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं । अत एव वारंवार परीक्षाद्वारा रोग निश्चय करना चाहिये । रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया ये चिकित्साके पर्यायवाचक शब्द हैं । जैसे लिखा है उत्तम भिषगादि चतुष्टयोंका विकृतधातुके समान करनेके अर्थ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हैं । इस कर्षणबृंहण चिकित्साकरके दोषोंको घटावे और बढावे । जैसे लिखा है कि दोषोंकी विषमताको रोग कहते हैं, और दोषोंकी समानताको आरोग्य कहते हैं । ' सुयोगैः ' इस पदसे यह सूचना करी कि सुंदर द्रव्योंके प्रयोगोंसे अर्थात् शीघ्र आरोग्यकर्त्ता औषधोंकरके वैद्य रोगीकी चिकित्सा करे ।

औषधियोंके प्रभाव ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥ ४ ॥

अर्थ–जैसे देवताओंके अपरिमित भेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रकट हैं उसी प्रकार दिव्यौषधियोंके अनेक भेद और अपरिमित शक्ति प्रकट होती है । इस प्रकार जान गंभीर बुद्धिवाले वैद्य अपने चित्तसे संदेहको दूरकर आदरपूर्वक औषधोंको विविधप्रभाववती माने । इस कहनेका यह तात्पर्य है कि मणि मंत्र और औषधियोंके प्रभाव अचिंत्य हैं । जो बाहरके और आत्माके भावोंको हिताहितकर्त्ता है उसका नाम धीर है । धीरशब्दका ग्रहण इस जगह निश्चयार्थ ज्ञानके वास्ते है ॥

अब प्रयोजन कहते हैं क्योंकि सर्व शास्त्रोंका और कर्मका जबतक प्रयोजन नहीं हो तबतक कोई ग्रहण नहीं करे अतएव उस प्रयोजनको कहते हैं–

स्वाभाविकागंतुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः ॥
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥ ५ ॥

---

१ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुःपरिमृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् ॥
२ चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थं चिकित्सेत्यभिधीयते ॥
३ रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । ४ सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते ॥

अर्थ–स्वाभाविक आगंतुक कायिक और आंतरिक ऐसे चार प्रकारके कर्मज और दोषज रोग उत्पन्न होते हैं। उनके शांतिके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप ऐसे जे उत्तम योग उनकी योजना करनी चाहिये॥

'योगवरान्' इस पदके धरनेसे यह दिखाया कि समस्त आर्षग्रंथोंके उत्तम २ प्रयोग शार्ङ्गधरने संग्रह करके इस अपने ग्रंथमें रक्खे हैं। अब कहते हैं कि रोग तीन प्रकारके हैं। जैसे ग्रंथांतरमें लिखा है कि एक तो कर्मके कोपसे, दूसरे दोषोंके कोपसे, तीसरे कर्म और दोषोंके कोपसे कायिक और मानसिकरोग प्राणियोंके देहमें होते हैं। अब इन तीनोंके पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहां परद्रव्य (धरोहर आदि) और ऋण इनके न देनेसे, गुरुस्त्रीके गमनसे, ब्राह्मण आदिके मारनेसे जो रोग प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं। ये औषधिकरके वैद्यसे अच्छे नहीं होते किंतु दान, दया आदिकरके ब्राह्मण, गौकी सेवा करनेसे, गुरुकी आज्ञा पालन करनेसे तथा इनके साथ नम्रता रखनेसे जप और तप इत्यादि करनेसे पूर्वजन्मके संचित कर्मसे उत्पन्न व्याधिका शमन होता है। अब दोषजव्याधिके लक्षण कहते हैं कि वातादि दोष अपने कारणसे कुपित हो आपसमें मिलकर इतस्ततः चलायमान हो जो विकारोंको प्रगट करते हैं उनको दोषजरोग कहते हैं। ये औषध करनेसे दूर होते हैं। अब कर्मदोषोद्भव विकारोंको कहते हैं कि दानादिक कर्म और औषधि इन दोनोंके करनेसे जो रोग कथंचित् कर्म और दोषोंके क्षीण होनेसे कुछ २ शांति हो उनको कर्मदोषज विकार कहते हैं।

अब प्रत्यक्षादि अविरुद्धप्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रंथका माहात्म्य कहते हैं–

---

१ स्वभावकरके होनेवाले जे क्षुधा तृषा जरा निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते हैं। २ जो अभिघात निमित्तकरके रोग होते हैं। जैसे सर्पका काटना, शस्त्र आदिका लगना उनको आगंतुक कहते हैं। ३ शरीरमें वातादि दोष वैषम्यताकरके उत्पन्न हुए ज्वर रक्त पित्त कासादिक रोग उनको कायिक कहते हैं। ४ मनोविकारकरके उत्पन्न हुए जे मद मूर्च्छा संन्यास ग्रह भूतोन्मादादिक रोग उनको आंतरिक कहते हैं। ५ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपेन भवंति चान्ये। तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः॥ ६ दुष्टामयाः स्युपरद्रव्यऋणापहारगुर्वंगनागमनाविप्रवधादिभिर्वा। दुःकर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयांति सिद्धिम्॥ ७ दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागोसंसेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः। इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयांति॥ ८ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैः स्वेषु मुहुश्चलाद्भिः। भवंति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्याः॥ ९ दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षयेद्यत्। सिद्ध्यंति ये यत्नवतां कथंचित् ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः॥

प्रयोगानागमात्सिद्धान् प्रत्यक्षादनुमानतः ॥
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥ ६ ॥

अर्थ–जिसमें अतिविस्तार नहीं ऐसे आयुर्वेद शास्त्रोंके कहे जे सिद्ध प्रयोग उनको सर्व्व लोकोंके हितार्थ प्रत्यक्ष तथा अनुमानकरके कहता हूं ॥

आगमादिकोंके लक्षण जैज्जटादि आचार्योंने कहे हैं उनको सबके जाननेके अर्थ मैं इस जगह लिखता हूं। तहां आगम कहिये वेद अथवा आप्तपुरुषोंका वाक्य है। जैसे लिखा है कि जो सिद्ध[1] प्रमाणोंकरके सिद्ध हो और इस लोक तथा परलोकमें हितकारी हो वह आप्तोंका आगमशास्त्र है और जो सत्य अर्थके जाननेवाले हैं उनको आप्त कहते हैं। अब आगमसिद्ध जो सुननेमें आता है उसको कहते हैं। जैसे लिखा है कि इस[2] प्रयोगके प्रभावमें हजार वर्ष जीवे और वृद्धा स्त्रीभी इसके सेवन करनेसे सोलह वर्षकी अवस्थावालीसी होय। यह आगमसिद्धि कही। अब कहते हैं कि जो कुछ अर्थका साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे लिखा है कि[3] मनइन्द्रियगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोंको यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम कहते हैं। जैसे वमन, विरेचनादि योग प्रत्यक्ष फल दिखानेवाले हैं। तथा जिस वस्तुका अव्यभिचारी लक्षणोंकरके पीछेसे ज्ञान होय उसको अनुमान कहते हैं। जैसे पांडुरोग मिट्टी खानेसे होता है और वमन मक्खीके खानेसे होती है ऐसा अनुमान करा जाता है। उसी प्रकार त्वचाके फटने और राध रुधिर निकलनेसे व्रण पक गया ऐसा अनुमान करा जाता है।

अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रंथ तुम किस हेतुसे करते हो तहां कहते हैं कि सर्वलोकहितार्थाय अर्थात् सर्वलोकके हितके अर्थ करता हूं। तहां लोक दो प्रकारका है एक स्थावर (वृक्षादि) और दूसरा जंगम (पशु पक्षी मनुष्यादि) इन दोनों प्रकारके लोकमें यहांपर इस मनुष्यदेहका लोक शब्दकरके ग्रहण है।

कदाचित् कोई कहे कि आप जो शार्ङ्गधर ग्रंथमें लिखते हो यह अन्य प्राचीन ग्रंथद्वाराही ज्ञान हो सक्ता है फिर इस पिष्टपेषण ग्रंथसे क्या फलसिद्धि होयगी? तहां कहते हैं कि 'अनतिविस्तरात्' अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रंथको मैं कहता हूं अन्य आर्ष ग्रंथ बहुप्रपंचयुक्त हैं पूर्वपक्ष समाधानादिकरके चित्तको उद्वेग करते हैं

---

१ सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च। आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ताः सत्यार्थवेदिनः॥
२ जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः। वृद्धा च शतवर्षीया भवेत् षोडशवार्षिकी ॥
३ मनोक्षगतमभ्रांतं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते। इन्द्रियाणामसंज्ञाने वस्तुतत्वे भ्रमः स्मृतः ॥

इस कारण मैंने यह उक्तदोषरहित संक्षेपसे कहा है अतएव यह ग्रंथ आर्ष ग्रंथोंसे उत्तम है।

अथ अनुक्रमणिका।

प्रथमं परिभाषा स्यात् भैषज्याख्यानकं तथा ॥
नाडीपरिक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥
ततः कालादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ॥
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥ ८ ॥

अर्थ–अब तीनों खंडोंकी अनुक्रमणिका कहते हैं। तहां परिभाषासे आदि ले रोगगणनापर्यंत सात अध्यायोंकरके यह पूर्वखंड आचार्यने कहा है। जैसे प्रथमाध्यायमें परिभाषा (तोल आदि) कथन, दूसरे अध्यायमें औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथाके कहनेसे द्रव्य रस गुण वीर्य विपाकादिकोंका कथन है, तीसरे अध्यायमें नाडीपरीक्षाविधि और आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिकोंका कथन है, चतुर्थ अध्यायमें दीपनपाचनादि लक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तंभनादि कथन है, पंचमाध्यायमें कालादिकोंका कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकोंका कथन है, छटे अध्यायमें आहारादिकोंकी गति और गर्भोत्पत्ति कुमारपोषणोक्ति प्रकृतिलक्षण कथन है, सप्तमाध्यायमें रोगों (ज्वरादिकों) की गणना कथन इस प्रकार सात अध्यायोंकरके प्रथम खंड कहा है ॥

मध्यमखंडकी अनुक्रमणिका।

स्वरसः क्वाथफांटौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ॥
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः संधानमेव च ॥
धातुशुद्धिरसाश्चैव खंडोऽयं मध्यमः स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ– १ अध्यायमें स्वरस और पुटपाक विधि कही है, २ अध्यायमें काढे और प्रमथ्यादि तथा उष्णोदक क्षीरपाक अन्नक्रिया इनकी विधि कही है, ३ अध्यायमें फांट और मंथ इनकी विधिकथन, ४ अध्यायमें हिमविधिका कथन, ५ अध्यायमें कल्ककथन, ६ अध्यायमें चूर्णोंका कथन, ७ अध्यायमें गुटिकाओंका कथन, ८ अध्यायमें अवलेहोंका कथन, ९ अध्यायमें घृत और तेलका कथन, १० अध्यायमें मद्यभेदकथन, ११ अध्यायमें स्वर्णादिक धातु और उपधातु इनका शोधन मारण कथन, १२ अध्यायमें रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्ध रस इनका कथन कहा है। इस प्रकार बारह अध्यायोंकरके मध्यमखंड कहा है ॥

उत्तरखंडकी अनुक्रमणिका ।

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ॥ ततस्तु स्नेहबस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥ ततश्चाप्युत्तरो बस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः ॥ धूमपानविधिश्चैव गंडूषादिविधिस्तथा ॥ ११ ॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ॥ नेत्रकर्मप्रकारश्च खंडः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥

अर्थ– १ अध्यायमें स्नेहपान[1]विधि, २ अध्यायमें स्वेद[2]विधि, ३ अध्यायमें वमनविधि, ४ अध्यायमें विरेचनविधि, ५ अध्यायमें स्नेह[3]बस्तिकथन, ६ अध्यायमें निरूहण[4]विधि, ७ अध्यायमें उत्तरबस्ति[5]कथन, ८ अध्यायमें नस्य[6]विधि, ९ अध्यायमें धूमपान[7]विधि तथा व्रणधूपन और गृहधूपन जानना, १० अध्यायमें गंडूष[8]ादि विधि और कवल प्रतिसारण कथन, ११ अध्यायमें लेपा[9]दिकोंकी और मस्तकमें तैल डालना तथा कर्णपूरणकी विधि जाननी, १२ अध्यायमें रुधिर निकालनेकी विधि, १३ अध्यायमें नेत्रकर्म प्रकार । इस प्रकार तेरह अध्यायोंकरके उत्तरखंड कहा है ॥

अब संहिताकी निरुक्तिपूर्वक ग्रंथकी श्लोकसंख्या कहते हैं ।

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ॥
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥

अर्थ–शार्ङ्गधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें छव्वीस सौ (२६००) श्लोकोंकी संख्या कही है । पदके समूहसे वाक्य, वाक्योंके समूहोंसे प्रकरण और प्रकरणके समूहोंसे अध्याय होता है ॥

औषधोंके मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ॥
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

---

१ घृत और तैल पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं । २ देहमेंसे पसीने निकालनेकी विधिको स्वेदविधि कहते हैं । ३ गुदादिकोंमें तेलकी पिचकारी मारनेके प्रयोगको स्नेहबस्ति कहते हैं । ४ काढे तथा दूध इत्यादिकरके पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणबस्ति कहते हैं । ५ उत्तरबस्तिभी पिचकारी लगानेके प्रयोगको कहते हैं । ६ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्यविधि कहते हैं । ७ चिलम हुक्का अथवा बीडीमें औषध धरके जो धूंआ पीते हैं उसको धूमपान कहते हैं । ८ काढे अथवा रसादिकोंके कुरले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं । ९ नेत्रोंमें अंजनादिक लगानेको तथा लेपादिक करनेके प्रयोगको लेपविधि कहते हैं ।

अर्थ–मान (परिमाण) के विना औषधोंकी युक्ति (कर्त्तव्यविधि) कहीं नहीं होती अत एव औषध बनानेके लिये मान (तोलने आदि)विधि इस संहितामें मागध परिभाषाकरके कहता हूं यह तोलनेका प्रमाण है और भक्षणकी मात्राका प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोगमें कहेंगे ॥

त्रसरेणुका परिमाण ।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तः त्रिंशता परमाणुभिः ॥
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–तीस परमाणुका १ त्रसरेणु होता है और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्याय-वाचक शब्द है । परमाणु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं वह स्वभावसे अथवा अणुभाव करके जाने जाते हैं नेत्रोंकरके नहीं प्रतीत होते ॥

परमाणुके लक्षण ।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जाली (झरोखे) में सूर्यकी किरण पडनेसे उन किरणोंमें जो धूलके बहुत बारीक कण उडते दीखते हैं उस एक एक कण (रज) का जो तीसवां भाग है उसको परमाणु कहते हैं । इसके आगे कोई वंशीके लक्षण कहता हूं। "जालांतरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते " अर्थात् जाली (झरोखों) में जो सूर्यकी किरणोंमें रज उडती दीखती हैं उसको वंशी कहते हैं ॥

मरीचि आदिका परिमाण।

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

अर्थ–६ वंशीकी १ मरीचि (जो रेतली जमीनमें धूलके बारीक कण सूर्यकी किरणोंसे चमकते हैं) होती है । छः मरीचियोंकी १ राई, ३ राईका १ सपेद सरसों होती है, ८ सपेद सरसोंका १ यव होता है और ४ यव (जों) की १गुंजा (रत्ती, घूंघची) होती है ॥

मासेका परिमाण ।

षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥

---

१ गुंजा मासे तोले पैसेरा अधसेरा इत्यादिक जानना ।

अर्थ–६ रत्तीका मासा होता है उसको हेम और धान्यकभी कहते हैं। कोई सात रत्तीका कोई पांच रत्तीका और कोई दश रत्तीका मासा होता है ऐसा कहते हैं॥

शाण और कोलका परिमाण।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते॥ १८॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते॥
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते॥ १९॥

अर्थ–४ मासेका शाण होता है उसको धरण, टंकभी कहते हैं। जहां जहां मासा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा जानना। २ शाणका कोल होता है उसको क्षुद्रभ, वटक और द्रंक्षणभी कहते हैं। कोल नाम बेरका है, उसके बराबर होनेसे इस तोलकी कोलसंज्ञा रक्खी है॥

कर्षका परिमाण।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका॥
अक्षः पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम्॥ २०॥
बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता॥
करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम्॥
उदुंबरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते॥ २१॥

अर्थ–दो कोलका कर्ष होता है, उसको पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबरभी कहते हैं। अर्थात् ये १३ नामभी उसी कर्षके हैं। तहां अक्ष नाम बहेडेका है। उसके बराबर होनेसे इस कर्षको अक्षभी कहते हैं, तेंदूके फलसमान होनेसे तिंदुक संज्ञा है, हथेलीभरकी पाणितल संज्ञा है, तीन उंगलीकरके ग्राह्य अत एव इसकी बिडालपद संज्ञा है, सोलह मासेका होता है इस कारण इसकी षोडशिका संज्ञा है और गूलरके समान होनेसे इस कर्षकी उदुंबर संज्ञा आचार्योंने दीनी है इसी प्रकार जितनी संज्ञा इस परिभाषामें हैं वे सब सार्थक हैं। व्यवहारमें १ कर्षका १ तोला होता है॥

अर्द्ध पल और पलका परिमाण।

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा॥ शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका॥प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते २२

अर्थ-दो कर्षका एक अर्द्धपल उसीको शुक्ति (शीप) और अष्टमिका कहते हैं, २ शुक्तिका पल होता है उसको मुष्टि, आम्र (आम्रफल), चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व (बेलका फल) येभी पलके पर्यायवाचक नाम हैं ॥

प्रसृतिसे आदि ले मानिका पर्यंतकी संज्ञा ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥ प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥२३॥ अष्टमानं च संज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ २४ ॥

अर्थ-दो पलकी प्रसृति होती है । फैली हुई उंगलियोंवाली हथेलीको प्रसृति और प्रसृतभी कहते हैं । दो प्रसृतिकी १ अंजली (पस्सा) होता है, उसीको कुडव (पावसेर) अर्द्धशरावक और अष्टमानभी कहते हैं, दो कुडवकी १ मानिका होती है उसको शराव, अष्टपलभी कहते हैं । एक शरावके १२८ टंक होते हैं ॥

प्रस्थका और आढकका परिमाण ।

**शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ॥
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २५ ॥**

अर्थ-दो शरावका १ प्रस्थ (सेर) होता है, चार प्रस्थका १ आढक होता है उसको भाजन, कंसपात्रभी कहते हैं । यह ६४ पलका होता है ॥

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण ।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ॥उन्मानश्च घटो राशि-र्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥ २६ ॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च चतुःषष्टि-शरावकाः॥शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता॥ २७॥

अर्थ-चार आढकका १ द्रोण होता है, उसको कलश, नल्वण, उन्मान, घट (घडा) और राशिभी कहते हैं । दो द्रोणका शूर्प (सूप) होता है उसको कुंभभी कहते हैं। उस शूर्पके ६४ शराव होते हैं । एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होती है उसको वाह और गोणीभी कहते हैं ॥

खारीका परिमाण ।

**द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ २८ ॥**

अर्थ-चार द्रोणीकी १ खारी होती है । उसके ४०९६ पल होते हैं ॥

भार और तुलाका परिमाण।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः॥
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ २९॥

अर्थ-२००० पलका १ भार होता है और १०० पलकी १ तुला होती है। यह केवल मगध देशमेंही नहीं किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना॥

अब सर्व मान ज्ञापनार्थ एक श्लोककरके मान कहते हैं।

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम्॥
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा॥ ३०॥

अर्थ-मासेसे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी। जैसे ४ मासेका १ शाण, ४ शाणका एक कर्ष, ४ कर्षका एक बिल्व, चार बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका १ आढक, चार आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक खारी इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी॥

अब गीली सूखी और दूध आदि पतली वस्तुकी तोल।

गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः[2]॥
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम्॥ ३१॥
प्रस्थादिमानमारभ्य[3] द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः॥
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम्॥ ३२॥

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडवपर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत इनकी तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुप्पट लेवे। तथा तुलासे लेकर द्रोणपर्यंत इनकी तोल दुप्पट लेवे ऐसा कहीं नहीं कहा अत एव इनका मान सूखी औषधीके समान लेवे। इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं। तत्कालकी लाई हुई औषधको गीली कहते हैं। धूपमें सुखाय लीनी अथवा बहुत दिनकी धरी हुई औषधको शुष्क[4] कहते हैं॥

---

१ तुलापलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका॥
२ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्। शुष्कद्रव्यार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम्॥
३ प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादिर्द्विगुणं त्विदम्। कुडवोपि क्वचित् दृष्टं यथा दंतीघृते मतः॥
४ शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा। शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत्॥

कुडवपात्र बनानेकी रीति।

मृदस्तु वेणुलोहादेर्भांडं यच्चतुरंगुलम् ॥
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानकुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–चार अंगुल लंबा, चार अंगुल चौडा तथा चार अंगुल गहरा ऐसे माटीके अथवा वांसके अथवा लोह, सोना, चांदी, तांबा, जस्त, रांग, कांसा, शीशा और लोहके आदिशब्दसे चामके अथवा सींग और दांतके पात्र बनावे उसकी कुडवसंज्ञा है। इसके द्वारा दूध, जल, तेल, घृत, नापा जाता है ॥

प्रयोगके प्रथम औषधोंके नाम विशिष्ट प्रयोगोंका धरना।

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ॥
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥ ३४ ॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध है उसी औषधके नामकरके उस प्रयोगको जानना, उदाहरण–जैसे क्षुद्रादि, रास्नादि, गुडूच्यादि क्काथ, इनमें प्रथम कटेरी रास्ना और गिलोय है इसी कारण क्षुद्रादिकाढा, रास्नादिकाढा और गुडूच्यादिकाढा कहाया इसी प्रकार चंदनादि तैल कूष्मांडपाक हिंग्वष्टकचूर्ण आदिमेंभी जानना चाहिये इति मागध परिभाषा ॥

अथ कलिंगपरिभाषा।

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ॥
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ–अब मात्राकी स्थिति नहीं है यह कहते हैं जैसे कि औषधोंके सेवनका प्रमाण निश्चय करके करनेमें नहीं आता इसी कारण काल, जठराग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश इनका वैद्य विचार करके अपने बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे। तहां कालकरके शीत, गरमी, वर्षा जानना। जठराग्निकरके रोगीकी मंद, तीक्ष्ण, विषम, सम चतुर्विध अग्नि जानना। अवस्था तीन हैं आदि, मध्य और अंत्य। बल तीन प्रकारका है हीन, मध्यम और उत्तम। प्रकृति तीन प्रकारकी है हीन, मध्य और उत्तम अथवा देश, जाति, शरीर आदिके भेदसे प्रकृतिके बहुत भेद हैं। दोष तीन प्रकारका है वात्त पित्त कफात्मक। देशभी दो प्रकारका है एक भूमि-देश और एक देहदेश तहां भूदेश तीन प्रकारका है जैसे जांगल, अनूप और साधा-रण, उसी प्रकार देहभी जांगलादि भेदोंकरके तीनही प्रकारका है ॥

भक्षणार्थ प्रथम कही हुई कलिंगपरिभाषाकोभी दिखाते हैं

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्वा नराः कलौ ॥
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ ३६ ॥

अर्थ-कलियुगके मनुष्य मंदाग्नि, छोटी देहवाले और तुच्छबलके होते हैं अतएव इनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधका प्रमाण कहते हैं ॥

कलिंगपरिभाषाकी तोल ।

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः ॥ यवद्वयेन गुंजा स्या-त्रिगुंजो वल्ल उच्यते ॥३७॥ माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैः शाणः स निष्कष्टंक एव च ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ ३८ ॥ चतुः-कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुःपलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ ३९ ॥

अर्थ-बारह सपेद सरसोंका १ यव (जौं), दो यवकी १ गुंजा (रत्ती), ३ रत्तीका एक वल्ल (कहीं दो रत्तीकाभी वल्ल होता है), आठ रत्तीका १ मासा (कहीं कहीं सात रत्तीका मासा होता है यह तंत्रान्तरका मत है इसको विषकल्पमें लेना चाहिये क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध है), चार मासेका १ शाण होता है, उसको निष्क और टंकभी कहते हैं, ६ मासेका एक गद्याणक, दश मासेका १ कर्ष होता है, चार कर्षका एक पल, उस पलके दश शाण होते हैं, चार पलका १ कुडव होता है और प्रस्थादिकोंकी तोल मागधपरिभाषाके समानही जाननी परंतु यह तोल इसी अनुक्रमसे लेना मागधपरिभाषाकी कर्ष और पलकरके नहीं लेनी चाहिये । यद्यपि देशांतरोंमें अनेक मान हैं तथापि मागध और कलिंगमान ये दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं ॥

कालिंगं मागधं चेति द्विविधं मानमुच्यते ॥
कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो जनाः ॥ ४० ॥

अर्थ-मान दो प्रकारका है एक कालिंग अर्थात् उडिया देशमें प्रसिद्ध होनेसे और दूसरा मागध मगधदेशमें प्रसिद्ध होनेसे तहां कालिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठ है ऐसे मानके ज्ञाता वैद्य कहते हैं । मागधमान चरकका और कालिंगमान सुश्रुतका है ॥

औषधोंका युक्तायुक्तविचार ।

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥
विना विडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४१ ॥

अर्थ–दशधा द्रव्यकल्पनादि संपूर्ण विषयमें नवीन औषधकी योजना करनी चाहिये परंतु वायविडंग, पीपर, गुड, धनिया, घृत और सहत ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं अत एव ये पुराने लेने चाहिये। इनमें घृत विना पका पुराना लेवे परंतु जो पकाय लीना है वह पुराना गुणहीन हो जाता है अतएव त्याज्य है। विडंगादिकोंका पुरातनत्व १ वर्षके बाद होता है॥

जो औषधि सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं।

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ॥ अश्वगंधासहचरो शतपुष्पा प्रसारणी॥ प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत्॥४२॥

अर्थ–गिलोय, कूडा (कुरैया), अडूसा, पेठा, सतावर, असगंध, पीयावांसा, सौंफ और प्रसारणी ये नौ औषधि सर्वकालमें गीली लेनी चाहिये परंतु गीली जानके द्विगुणित न लेनी॥

साधारण औषधकी योजना।

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु॥
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः॥ ४३॥

अर्थ–पूर्वोक्तश्लोककी नौ औषधोंके विना इतर औषध संपूर्ण कार्यमें सूखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली होय तो दूनी लेना यह निश्चय सर्वत्र जानना॥

अनुक्तकालादिकोंकी योजना।

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत्॥
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृण्मयम्॥ ४४॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें काल नहीं कहा वहांपर प्रातःकाल लेना, जहां औषधका अंग नहीं कहा हो वहां औषधकी जड लेनी, जिस प्रयोगमें औषधके भाग न कहे हों उस जगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहा हो तहां मिट्टीका पात्र लेना चाहिये, चकारसे जहां द्रव्य नहीं हो तहां जल लेना चाहिये॥

योगमें पुनरुक्त द्रव्यका मान कहते हैं।

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत्पुनरुच्यते॥
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः॥ ४५॥

---

१ सर्वं च क्षीरविषवर्जुक्तं भवति भेषजम्। तेषामलाभे गृह्णीयादनतिक्रांतवत्सरम्॥
२ घृतमब्दात्परं पक्कं हीनवीर्यं प्रजायते। तैलक्कमपक्कं वा चिरस्थायि गुणाधिकम्॥
३ द्रव्येऽप्यनुक्ते जलमात्रदेयं भागेप्यनुक्ते समताभिधेया। अंगेप्यनुक्ते विहितं तु मूलं कालेप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम्॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें एक औषधका नाम पर्यायकरके दो वार कहा हो उसे आयुर्वेदरहस्यज्ञाता वैद्य दूंनी लेवे ॥

चूर्णादिकोंमें कौनसा चंदन लेवे ।

चूर्णस्वेदासवालेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ॥
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–चूर्ण (लवंगादि), घृत, तेल (लाक्षादि), आसव (कुमार्यासवादि), लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इसमें प्रायः सपेद चंदन लेना और काढे तथा लेप आदिमें प्रायः लाल चंदन लेना चाहिये, प्रायशब्दसे यह दिखाया कि कहीं (एलादि चूर्णमेंभी) लाल चंदन लेवे, क्योंकि व्याधिविहित है और काढे आदिमें सपेद चंदन लेवे ॥

अब सिद्ध करी हुई औषधोंके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व कहते हैं ।

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ॥
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ ४८ ॥
ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ४९ ॥

अर्थ–वनसे लाई हुई औषध एक वर्षके पश्चात् तेज ओर गुणरहित हो जाती है, तालीसादि चूर्ण दो महीनोंके पश्चात् हीनवीर्य हो जाते हैं अर्थात् कुछ २ गुणोंमें न्यून हो जाते हैं सर्वथा वीर्यरहित नहीं होते क्योंकि लवणभास्करादि चूर्णोंका प्रमाण अधिक कहा है वह अधिक कालतक सेवनके लियेही कहा है अन्यथा यह व्यर्थ हो जायगा और विजयादि गुटिका तथा खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखनेसेभी अपने गुणको नहीं त्यागते परंतु कुछ २ गुणरहित हो जाते हैं । और घृत तेल आदि १६ महीनोंके उपरांत गुणहीन होते हैं । कोई ' चतुर्मासाधिकास्तथा ' ऐसा पाठ कहकर अर्थ कहते हैं कि वर्षाकालके चार महीने व्यतीत होनेपर घृततैलादि हीनवीर्य होते हैं, लघुपाक हुई यव गेंहू चना आदि औषधी १ वर्षके अनंतर निर्वीर्य

---

१ घृते तैले च योगे तु यद्द्रव्यं पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत् ॥
२ प्रायःशब्दो विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते ।
३ घृतमब्दात्परं किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥
एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः ॥
४ हीनत्वं स्यात् घृतं पक्वं तैलं वा वत्सरात्परम् ।

होती है, बहुत कालके रहनेसे गुड अधिक गुणवान् होता है, एवं आसव (कुमार्यासवादि), सुवर्ण आदि धातुकी भस्म और चंद्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने होंय उतनेही अधिक गुणवाले होते हैं ॥

रोगोंको उक्तानुक्त द्रव्यकथन ।

व्याधेरनुक्तं यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत् ॥
अनुक्तमपि युक्तं यद्युज्यते तत्र तद्बुधः ॥ ५० ॥

अर्थ-व्याधिमें चूर्ण कषायादिकोंकी योजना करनेमें जो औषधि दी जावे उस चूर्ण कषाय आदिमें यदि एक दो ऐसी औषधि जो व्याधिके विरुद्ध होंय तो गणोक्तभी हो तथापि उस विरुद्ध औषधको वैद्य निकाल डाले और यादि कोई ऐसी औषधी हो कि जो उस व्याधिको हितकारी है परंतु चूर्ण काढे आदिमें नहीं कही होय तो उसको वैद्य अपनी बुद्धिसे मिलाय देवे ॥

द्रव्यहरणार्थ कालादिकथन ।

आग्नेय्या विंध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ॥ ५१ ॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ॥
अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेषूपवनेषु च ॥ ५२ ॥

अर्थ-विंध्याचल (आदिशब्दसे मलयाचल, सह्याद्रि, पारियात्र) आदिकोंमें उत्पन्न होनेवाली औषधि अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् उष्णवीर्य होती हैं, और हिमालय पर्वत आदिकी औषधी शीतवीर्य होती हैं, ये केवल पर्वतोंहीमें नहीं होतीं किंतु वन और उपवन (बगीचा) आदिमेंभी होती हैं, अत एव जैसी २ पृथ्वीमें जैसी २ ऋतु (शरदी, गरमी, चातुर्मास्य) होती है उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होती है ॥

औषध लानेकी विधि ।

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ॥
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥
साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-औषधि लानेके निमित्त प्रातःकाल उठ स्वस्थ चित्त करके, पवित्र होवे और उत्तम दिन (अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्नमें) सूर्यके संमुख मुख करके तथा सूर्यको प्रणाम कर और हृदयमें श्रीशिव (परमात्मा) का ध्यान कर मौनमें स्थित हो जांगल और अनूपरहित ऐसी साधारण पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली और उत्तर दिशामें स्थित जो औषधि है उनको ग्रहण करे, कोई कहता है कि 'उत्तराश्रितं'

---

१ सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ।

अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषधको उखाडे, इस जगह 'गृह्णीयात्' यह पद दो वार आनेसे निश्चयार्थ ज्ञापक जानना ॥

अब दुष्टस्थानमें प्रगट हुए औषधका त्याग कहते हैं ।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा ॥
जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधका ॥ ५४ ॥

अर्थ-सर्प आदिकी बमईकी, दुष्ट पृथ्वीकी, जलप्राय स्थानकी, श्मशानकी, उखर (बंजड) पृथ्वीकी, मार्ग (रास्ते) में उत्पन्न होनेवाली, एवं जो कीडोंकी खाई हुई, अग्निसे जरी हुई, सरदीकी मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नहीं होती, अतएव ऐसे स्थानकी और बिगडी औषधि नहीं लानी चाहिये । इस जगह हमारा कथन इतनाही है कि ये संपूर्ण औषध लानेकी आज्ञा वैद्यको है यदि स्वयं वैद्य जायगा तभी वल्मी-कादि स्थानकी और जंतु अग्नि पाले आदिसे दूषित औषधोंकी परीक्षा करेगा नीच जंगली मनुष्य यह बात काहेको देखेगा उसको तो कहींसे मिले ग्राहकको देकर अपने पैसे लेनेसे काम है, दूसरे शुभाशुभ दिन वह क्यों देखने लगेगा अतएव आज-कल औषधी अपना गुण नहीं दिखाती दूसरे यहांके वैद्य हकीम और डाक्टरोंसे कोई औषधीकी परीक्षाके विषयमें कुछ प्रश्न किया जावे तो वह केवल बछियाके बाबाही निकलेंगे। कारण इसकाभी वही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी, न अपने आंखों-से कभी औषधी देखी जो कुछ बाजारमें जंगली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका नाम बता जाते हैं वही उनके वास्ते ठीक है, फिर औषध विपरीत गुण करे तो कौन आश्चर्य है अतएव हमारे भारतनिवासी वैद्योंको इस परीक्षामें कटिबद्ध होना चाहिये कि जिससे यह विद्या सर्वथा अस्त न हो ॥

औषधिग्रहणकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥
विरेकवमनार्थं च वसंतान्ते समाहरेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-शरद ऋतु (आश्विन कार्तिकके महीने) में संपूर्ण औषधी रससे परिपूर्ण होती है अतएव सर्वकार्य्य करनेके अर्थ इन दोनों महीनोंमें औषध लेकर धर रक्खे, तथा विरेक (जुल्लाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ इन दो महीनों) में औषध लेनी चाहिये । यद्यपि अखिल कार्यके कहनेसे विरेक और वमनका बोध हो गया तथापि विशेषता सूचनार्थ पृथक् २ कहा है ॥

द्रव्योंके ग्राह्य अंग कहते हैं ।

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ॥

---

१ ग्रीष्मे मंजरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्माणि । वसंते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः॥

गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ५६ ॥

अर्थ–जिन वृक्षोंकी बडी जड हो जैसे वड, नीम, आम आदि उनकी छाल लेनी चाहिये और जिन वनस्पतियोंकी छोटी जड हो जैसे कटेरी, धमासा, गोखरू आदि उनके सर्व अंग अर्थात् जड, पत्ता, फल और शाखा सब लेनी चाहिये। कोई कहता है कि बडे वृक्षोंकी जडकी छाल लेवे और छोटे वनस्पतिकी जड मात्र लेनी चाहिये॥

अब औषधोंका प्रसिद्ध अंगहरण कहते हैं।

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्रिफलादितः ॥ ५७ ॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥ ५८ ॥

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–वड आदिशब्दसे पाखर, आम, जामुन, अंबाडे आदिकी छाल लेनी, विजयसार आदिशब्दसे खैर, महुआ, बबूर आदिका सार लेना, तालीस आदिशब्दसे पत्रज, घीगुवार, पान, पत्तोंका शाक इनके पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदिशब्दकरके सुपारी, कंकोल, मैनफल, आदिके फल लेने चाहिये। धाय आदिशब्दकरके सेवती, कमोदनी, कमल आदिके पुष्प लेने चाहिये और थूहर आदिशब्दकरके आक, दुद्धी, मंदार आदिका दूध लेना चाहिये, एवं चकारसे नहीं कहे गये गोंद आदि जानना॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनी-माथुरीभाषाटीकायां प्रथमखंडे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोध्यायः।

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

अर्थ–प्रथमाध्यायमें कह आये हैं कि 'भैषज्याख्यानकं तथा' अर्थात् इस शार्ङ्गधरके दूसरे अध्यायमें भैषज्य (औषध) भक्षणका काल कहेंगे अत एव उसको कहते हैं। वैद्य बहुधा प्रातःकालमें रोगीको औषध भक्षण करावे और कषाय(स्वरस कल्क काढा फांट और हिम) ये विशेषकरके प्रातःकालमेंही देवे 'बुधः' इस

पदके धरनेसे यह सूचना करी कि औषधके कालको विचारके वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकालकाही नियम नहीं है अब अन्य कालोंको वक्ष्यमाण प्रकारकरके कहते हैं ॥

औषध भक्षणके पांच काल ।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

अर्थ–मनुष्योंके औषधभक्षण विषयमें पांच काल हैं उनको कहते हैं । किंचित् सूर्योदय होनेपर औषध लेना यह प्रथम काल तथा दिनमें भोजनके समय औषधी लेना दूसरा काल तथा सायंकालमें भोजनके समय औषध लेना तृतीय काल और वारंवार औषधी लेना चतुर्थ काल एवं रात्रिमें औषध लेना वह पंचम काल इस प्रकार पांच काल जानना ॥

तहां प्रातःकाल कषायके सेवनमें कहा है, दूसरा काल जो भोजनके समयका है वह पांच प्रकारका है, जैसे भोजनके प्रथम लवण और अदरखका सेवन, भोजनमें मिलायके हिंग्वाष्टकादि चूर्ण, भोजनके मध्यमें जैसे पानी आदि पीना, भोजनांतमें जैसे लौंग और हरीतक्यादिका सेवन और एक भोजनके आदि अंतमें जैसे अम्लपित्त रोगमें धात्रीअवलेह भोजनके आदि अंतमें दिया जाता है ।

तीसरा काल सायंकाल भोजनका समय है । वहभी तीन प्रकारका है, जैसे कि ग्रास ग्रासके पिछाडी और भोजनके अंतमें, बाकीके काल प्रसिद्ध हैं ।

प्रथम काल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभाते नान्नमाहरेत् ॥
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ ३ ॥

अर्थ–पित्त और कफके कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफको वमन उसी प्रकार लेखन (दोषोंको पतला करने) के अर्थ प्रातःकालमें औषध देवे, तथा रोगीको प्रातःकाल भोजन देवे । यदि दोष उत्कट होय तो अन्य समयभी भोजन देना हितकारी लिखा है इस प्रकार औषधग्रहणमें मनुष्योंको प्रथम काल जानना ॥

द्वितीय काल ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्देग्नाव-

ग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपककंपेषु पूर्वमंते च भोजनात् ॥६॥ एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ ७ ॥

अर्थ—अपान कहिये गुदासंबंधी वायु उसके कुपित होनेपर भोजनके किंचित् पूर्व औषध भक्षण करे । अरुचि होनेपर अनेक प्रकारके अन्न तथा नानाप्रकारकी रुचिकारी वस्तुमें औषध मिलायके भोजन करे । तथा नाभिसंबंधी समानवायुके कोप एवं अग्निमांद्य होनेपर अग्निदीपनकर्त्ता औषध भोजनके मध्यमें सेवन करे । सर्व देहव्यापी व्यान वायुके कुपित होनेमें भोजनके अंतमें औषध भक्षण करे । तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनके कुपित होनेपर भोजनके प्रथम और अंतमें औषध भक्षण करे इस प्रकार दूसरा काल कहा है ॥

तृतीय काल ।

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणि ॥ ग्रासे ग्रासांतरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने ॥८॥ प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ॥ औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ९ ॥

अर्थ—कंठसंबंधी उदानवायुके कुपित होनेसे (स्वरभंगादि कंठका बैठ जाना, वा गूंगा हो जाना अथवा अन्य कंठके रोग) होनेसे सायंकालके भोजनसे ग्रास (गस्सा)-के साथ अथवा दो दो ग्रासोंके बीचमें औषध भक्षण करावे । तथा हृदयस्थित प्राणवायुके कुपित होनेमें बहुधा सायंकालके भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे इस प्रकार तीसरा काल जानना ॥

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शार्ङ्गधरने पवनके पांच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्तके जो पांच २ भेद हैं वो क्यों नहीं कहे ? तहां कहते हैं कि सब दोष, धातु मलादिकोंमें वायुको प्रधानता है और वायुही अन्य कफादिकोंके प्रकोपका कारण है अतएव इसके प्रकोपकरके पित्तकफका प्रकोप होता है ऐसा जानना । जैसे कहा है कि '[1] एक दोष कुपित हो संपूर्ण दोषोंको कुपित करता है ' तथा सुश्रुतमें लिखा है कि '[2] अचिंत्यवीर्यवान् ' दोषोंका नियंता, सर्व रोगसमूहोंका राजा ऐसा यह वायु स्वयंभु और भगवान् ऐसे कहा है, अत एव इसको प्रधानत्व होनेसे इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकोंके नहीं ।

---

१ एक एवस्तु कुपितो दोषोऽन्यान् संप्रकोपयेत् । २ स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः । अचिंत्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥

चतुर्थ काल ।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १० ॥

अर्थ-तृषा वमन हिचकी श्वास तथा विषदोष ये रोग होनेसे वारंवार अन्नसहित औषध भक्षण करानी चाहिये । इस श्लोकमें जो चकार है इससे यह सूचना करी कि तृषादि रोगोंमें अन्नरहितभी औषध देवे । इस प्रकार चतुर्थकाल कहा ॥

पंचम काल ।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥ पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि ॥ इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि॥११॥

अर्थ-जत्रु (हसली) के ऊपर भागके (कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग तथा नासिकारोग इत्यादि) रोगोंके विषयमें तथा बढे हुए वातादि दोषोंके घटानेके विषयमें और अतिक्षीण दोषोंके बढानेके विषयमें रात्रिके समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षण करावे, (तहां कोई रात्रिके कहनेसे सब रात्रिभर औषध देवे ऐसा कहते हैं परंतु व्यवहारमें तो रात्रिके प्रथम प्रहरमें औषध देना ठीक है) इस प्रकार पंचमकाल जानना ॥

अब द्रव्यमें रसादिकोंकी विशेष अवस्था कहते हैं ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
संवेदनक्रमादेताः पंचावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

अर्थ-द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच अवस्था हैं । इनका ज्ञान क्रमकरके जानना । तहां मधुरादि भेदसे रस छः प्रकारका है । गुरु मंदादिके भेदसे गुण २० प्रकारका है । शीतउष्णके भेदसे वीर्य दो प्रकारका है । कोई शीत, उष्ण, रूक्ष विशदादि भेदकरके अष्टविध वीर्यको मानते हैं । विपाक ३ प्रकारका है । कोई लघुगुरुके भेदसे विपाक दोही प्रकारका मानते हैं और द्रव्योंकी शक्ति अचिंत्य है, अतएव द्रव्य प्रधान है । जैसे किसीने कहा है कि '[१]विना वीर्यके पाक नहीं और रसके विना वीर्य नहीं, द्रव्यके विना रस नहीं अतएव द्रव्यको प्रधानत्व है' द्रव्यके कहनेसे सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंद आदि जानना । जैसे लिखा है '[२]जडें, छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पल्लव, दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म, तेल,

१ पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठमतः स्मृतम् ॥ २ मूलत्वक्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धदुग्धफलपुष्पभस्मतैलकंटकपत्रशुंगकंदप्ररोहउद्भिदादि तथा जंगमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधीयंते ।

कांटे, पत्र, शुंग (कोमल पत्तेकी कली), कंद, प्ररोह और उद्भिज आदि, तथा जंगम पार्थिव सब द्रव्यशब्दकरके ग्रहण किये जाते हैं ॥

रसका स्वरूप ।

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ॥
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १३ ॥

अर्थ—मधुर[३], अम्ल[४], क्षार[५], चरपरा[६], कडुआ[७] और कषैला[८] ये छः प्रकारके रस नाना द्रव्यके आश्रयकरके रहते हैं ऐसे जानना ॥

रसोंका उत्पत्तिक्रम ।

धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः ॥
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ॥ १४ ॥

अर्थ—पृथ्वी और जलसे मधुर (मिट्ठा) रस उत्पन्न हुआ है । पृथ्वी और अग्निसे अम्ल (खट्टा) रस, जल और अग्निसे क्षार (नोन) रस, आकाश और वायुसे तीक्ष्ण (चरपरा) रस, वायु और अग्निसे तिक्त (कडुआ) रस, एवं पृथ्वी और वायुसे कषाय (कसैला) रस उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार दो दो भूतोंकरके एक एक रस उत्पन्न होता है इस प्रकार छः रसोंकी उत्पत्ति जाननी ॥

गुणोंके स्वरूप ।

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ॥ १५ ॥
धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥ एष्वेवान्तर्भव-न्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १६ ॥

अर्थ—पृथ्वीका भारी गुण, जलका स्निग्ध (चिकना) गुण, अग्निका तीक्ष्ण गुण, वायुका रूक्ष गुण और आकाशका हलका गुण इस प्रकार ये पांच गुण क्रमकरके पांच महाभूतोंके जानने । तथा इन्ही गुणोंमें दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमानसे जानना । ' गुणाः ' इस बहुवचनसे व्यवायी, विकाशी आदि अन्य बाईस गुण जानना । कोई सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनही गुण कहते हैं, इसका विस्तार सुश्रुत ग्रंथसे देखे ॥

वीर्यका स्वरूप ।

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ॥ तत्सर्वमग्निषो-

---

१ पृथ्वीके पदार्थ सुवर्णादि । २ मनुष्य पशु आदि । ३ मीठा । ४ खट्टा । ५ खारी । ६ तीक्ष्ण मरिच आदि । ७ कडुआ गिलोय आदि । ८ कषैला हरड बहेडा आदि ।

मीयं दृश्यते भुवनत्रये ॥ अत्रैवांतर्भविष्यंति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ॥ १७ ॥

अर्थ–वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहता है, वह दो प्रकारका है एक शीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकीमें ये वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते हैं तथा इन शीतोष्णवीर्यके अंतर्गत अन्य वीर्य (स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि) रहते हैं ॥

विपाकका स्वरूप ।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोम्लं पच्यते रसः ॥ कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥ मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ॥ कटुकाज्जायते वायुः कर्मणीति विपाकतः ॥ १८ ॥

अर्थ–मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होता है । खट्टे रसका खट्टा पाक होता है । कषेले, चरपरे और कडुए रसोंका पाक बहुधा तीक्ष्ण होता है अतएव उन तीन पाकोंकरके जो तीन कर्म होते हैं, उनको कहते हैं । मधुर पाककरके कफ होता है, अम्ल पाककरके पित्त होता है और तीक्ष्ण पाककरके वायु होता है, इस प्रकार तीन प्रकारके पाककरके तीन दोष उत्पन्न होते हैं ॥

प्रभावके स्वरूप ।

प्रभावस्तु यथा धात्री लघुश्चापि रसादिभिः ॥ समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरं हंति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ १९ ॥

अर्थ–आंवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुणकरके समान होने तथा हलके होनेपरभी अपने प्रभावकरके वातादि तीनों दोषोंका नाश करते हैं । " लकुचस्य रसादिभिः " ऐसाभी पाठ है । इसका यह अर्थ है कि आमले क्षुद्रफनसके रसादिक करके समानभी होनेपर अपने प्रभाव (उत्कृष्टशक्ति) करके त्रिदोषको शमन करते हैं । इस शक्तिको प्रभाव कहते हैं । कहीं एकही द्रव्य ऐसा है कि अपने प्रभावसे शीघ्रही रोगको दूर करता है । जैसे, सहदेईकी जडको मस्तकमें बांधनेसे ज्वर दूर होता है इस प्रकार प्रभावका गुण जानना ॥

रसादिकोंकी उत्कृष्टता ।

क्वचिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वंति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ–कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कहीं विपाक,कहीं शक्ति ये द्रव्यके आश्रय करके रहनेसे अपने २ कर्म करते हैं उन कर्मोंको उदाहरणकरके दिखाते हैं । प्रथम रसके उदाहरण जैसे गिलोयका रस कटु और उष्ण होनेपरभी पित्तको शमन करता है कारण उष्ण और कटुरस होनेसे । गुणका उदाहरण जैसे तीक्ष्ण गुणवालीभी मूली कफकी वृद्धि करती है,कारण इसका यह है कि यह स्निग्ध गुणवाली है। वीर्यका उदाहरण जैसे बडा पंचमूल कषैला और कडुआ होनेपरभी वादीको शमन करता है कारण कि यह उष्णवीर्य है । विपाकका उदाहरण जैसे सोंठ तीक्ष्ण होनेपरभी वायुको शमन करती है, कारण यह है कि इसका मधुर पाक है । शक्तिका उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य, विपाककरके नहीं होते वह कर्म शक्ति कहिये प्रभावकरके होते हैं । जैसे खैर कुष्ठका नाश करता है; कारण इसका यह है कि इसकी विलक्षण शक्ति है । इसी कारण औषधोंका प्रभाव अचिंत्य[१] है । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्यमें क्या भेद है, क्योंकि जो गुण हरडमें है वही आमलेमें है। तहां कहते हैं कि आमला शीतल वीर्य है और हरड उष्णवीर्य है अतएव वीर्यका भेद होनेसे दोनों पृथक् २ कहे हैं ॥

वातादि दोषोंका संचय प्रकोप और उपशम ।

चयकोपसमा यस्मिन् दोषाणां संभवंति हि ॥
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २१ ॥

अर्थ–जिन छः ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप और उपशमका संभव होता है वे ऋतु सूर्यके बारह राशियोंमें संक्रमण करनेसे होती है ॥

ऋतुओंके नाम ।

ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः॥ सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलावृश्चिकयोः शरत्॥ धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः२२

अर्थ–मेष संक्रांतिसे लेकर वृषसंक्रांतिकी समाप्तिपर्यंत ग्रीष्मऋतु होती है । इसी प्रकार मिथुनसंक्रांतिसे लेकर कर्कसंक्रांतिपर्यंत प्रावृट् ऋतु, सिंह और कन्याकी संक्रांतिको वर्षाऋतु, तुला और वृश्चिकसंक्रांतिको शरदऋतु, धनसंक्रांति और मकरसंक्रांतिकी हेमंतऋतु एवं कुंभकी संक्रांतिसे लेकर मीनकी संक्रांतिकी समाप्तिपर्यंत वसंत ऋतु कहलाती है । इस प्रकार दो राशियोंकरके दो दो महीनेकी एक

---

१ अमीमांस्यान्यचिंत्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः । आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ इति सुश्रुते ।

ऋतु होती है, ऐसे छः ऋतु जानना। ये दोषोंके संचय होनेमें ग्राह्य हैं, अयनविषयमें ग्राह्य नहीं हैं जैसे सुश्रुतमें लिखा है॥

ऋतुभेदकरके वातादिदोषोंका संचय कोप और शमन।

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति॥ वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति॥ प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः॥ शरत्काले वसंते च पित्तं प्रावृट्ऋतौ कफः॥ २३॥

अर्थ-ग्रीष्मऋतुमें वायुका संचय होकर प्रावृट्कालमें प्रकोप होता है। वर्षाऋतुमें पित्तका संचय होकर शरदऋतुमें प्रकोप होता है। एवं हेमंतऋतुमें कफका संचय होकर वसंतऋतुमें कफ कुपित होता है। वायु शरदकालमें अपने आपही स्वयं शांत हो जाता है और पित्त वसंतऋतुमें स्वयं शांत हो जाता है तथा कफ प्रावृट्कालमें अपने आप शांत हो जाता है॥

दोषसंचय-प्रकोप-शमनचक्रम्.

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्मऋतु वैशाख–ज्येष्ठ मेष–वृष	वर्षाऋतु भाद्रपद–आश्विन सिंह–कन्या	हेमंतऋतु पौष–माघ धन–मकर
कोप	प्रावृट्ऋतु मिथुन–कर्क आषाढ–श्रावण	शरदऋतु तुला–वृश्चिक कार्तिक–मार्गशिर	वसंतऋतु कुंभ–मीन फाल्गुन–चैत्र
शमन	शरदऋतु तुला–वृश्चिक कार्तिक–मार्गशिर	वसंतऋतु कुंभ–मीन फाल्गुन–चैत्र	प्रावृट्ऋतु मिथुन–कर्क आषाढ–श्रावण

वैद्यकशास्त्रमें तीन दोषोंमें वायुको प्रधानता है अतएव ग्रीष्मऋतुसे आरंभ कर अंतमें वसंतऋतु कही है। गोदावरीके दक्षिणभागमें चार महिने निरंतर वर्षा होती है इसीसे चातुर्मास्यमें प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई। हेमंत और शिशिर इन दोनों ऋतुके गुणदोष समान हैं अतएव शिशिरऋतुका परित्याग करके इस जगह हेमंत मात्र धरा है। यह कल्पना त्रिदोषोंके संचयप्रकोपका अनुभव करके की है, देव पितृ कार्यमें यह ऋतुकल्पना ग्रहण नहीं करना उसमें चैत्र वैशाख वसंत ऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्रमें कही है वही संकल्पकालमें कहनी चाहिये।

१ इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसंतग्रीष्मप्रावृषः षडृतवो भवंति दोषोपचयप्रकोपशमननिमित्तम्।

यहांपर वातादिकोंके संचय और कोपका कारण सुश्रुतसे लिखते हैं कि इस (ग्रीष्म) ऋतुमें औषधि (गहूं चना आदि) साररहित, रूक्ष और अत्यंत हलकी होती है। तथा इसी प्रकारके रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं। ऐसे अन्नजल (आब-हवा) के सेवन करनेसे सूर्यके तेजकरके शोषित है देह जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंके रूक्ष, लघु और विशदगुणवान् होनेके कारण वायुका संचय होता है। वही वातका संचय प्रावृट्ऋतुमें अत्यंत जलमें भीगी पृथ्वीमें भीगी हुई देहवाले प्राणियोंके शीत वात वर्षाकरके प्रेरित वातजन्य व्याधियोंको उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुण वायुका ग्रीष्मऋतुमें क्योंकर संचय होता है? तहां कहते हैं कि संपूर्ण वातके गुणोंमें रौक्ष गुणको प्रधानता है अतएव औष-धियोंके अतिरूखे होनेसे रूक्ष वायुका ग्रीष्मऋतुमेंभी संचय होता है।

जिनको कफ-पित्तके संचय-प्रकोपका कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्नाकरके चर्याचंद्रोदयमें देख लेवें, इस जगह ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखा।

किसी २ पुस्तकमें यह श्लोक अधिक है।

(कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च ॥
यमदंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारः स जीवति) ॥ २४ ॥

अर्थ–कार्त्तिकके अंतके आठ दिन और मार्गशिरके आदिके आठ दिन, यमदंष्ट्र संज्ञक हैं इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है यह श्लोक प्रक्षिप्त है॥

कोई प्रश्न करे कि जिस ऋतुमें दोषोंका संचय होता है उसी ऋतुमें कोप क्यों नहीं होता? तहां कहते हैं कि जैसे वायुका ग्रीष्मऋतुमें संचय होता है परंतु इसमें ऋतु उष्ण होनेके कारण वातका कोप नहीं होता। कोई दिन रात्रिमेंही छः ऋतुके धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिनके पूर्वभागमें वसंतके, मध्याह्नमें ग्रीष्मके, अप-राह्नमें प्रावृट्के, प्रदोषमें वर्षाके, अर्धरात्रिमें शरदके और दो घडीके तडके हेमंत ऋतुके लक्षण होते हैं।

अब दोषोंका अकालमेंभी चयादि निमित्तकारण कहते हैं।

चयकोपशमान् दोषा विहाराहारसेवनैः ॥
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ २५ ॥

अर्थ–वातादि दोषोंके जो गुण हैं उन गुणोंके समान है गुण जिन्होंके ऐसे आहार और विहार इनके सेवनकरके वातादि दोषोंका संचय प्रकोप औ

१ लघु रूक्ष शीतादि पदार्थ वातगुणोंके समान, विदाही तीक्ष्ण अम्ल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणोंके समान तथा मधुर स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणोंके समान हैं।

उपशमं होता है। और वातादि दोषोंके गुणोंके विपरीत गुणकर्त्ता ऐसे विहार और गुरुस्निग्धादि पदार्थ इनके सेवनकरके अकालमें वातादि दोषोंका नाश होता है॥

वायुका प्रकोप तथा शमन।

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा॥ प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिंतारात्रिजागरैः॥ अभिघातादपांगाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसंक्षयात्॥ वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति॥ २६॥

अर्थ–लघु आहार, तथा रूक्ष आहार, एवं मितं आहार, इनके सेवन करके तथा अतिशीतकाल, अतिशीत पदार्थोंके सेवन, अत्यंत परिश्रम करना, प्रदोषकाल, काम, धन, पुत्रादिक वियोगजनित दुःख, भय और चिंता, रात्रिमें जागरण, शस्त्र लकडी आदिकी चोंट लगना, जलमें अत्यंत बैठा रहना, तथा आहारका पाक होना एवं धातुके क्षीण होना, इत्यादि कारणोंसे वायुका कोप होता है और इतने कहे हुए कारणोंके प्रत्यनीक (विरुद्ध कहिये उष्ण तथा स्निग्धादि) पदार्थोंके सेवन करनेसे वायु शांत होता है॥

पित्तकोप और शमन।

विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात्॥
मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके॥
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति॥ २७॥

अर्थ–दाहकारी तीक्ष्णं खट्टे उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यंत अग्निके तापनेसे, दो प्रहरके समय भूख और प्यासके रोकनेसे, अर्द्धरात्रिके समय अन्नके परि-

---

१ तात्पर्य यह है कि वातादिकोंके संचयकालमें समानगुणक विहारादिक पदार्थोंके सेवन करनेसे उन वातादिकोंका संचय होता है। एवं प्रकोपकालमें ऐसे पदार्थोंका सेवन करनेसे प्रकोप होता है और उपशमकालमें सेवन करनेसे उन दोषोंका शमन होता है। २ गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादिक पदार्थ वातगुणके विपरीत हैं कटु उष्ण रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफगुणके विरुद्ध हैं और अविदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणके विपरीत जानना। ३ जो पदार्थ खानेसे जल्दी पच जावे उनको लघु जानने। उदाहरण मूंग मोठ आदि। ४ चना आदि पदार्थ रूखे जानने। ५ जितना अपना आहार है उससे कम खानेको मिताहार कहते हैं। ६ स्त्रीविषयमें इच्छा होनेको काम कहते हैं। ७ धातुक्षयाच्छुते रक्ते मंदः संजायतेनलः। पवनश्च परं कोपं याति तस्मात्प्रयत्नतः॥ इत्यादि। ८ जिनके खानेसे दाह होय उनको विदाही कहते हैं जैसे बांस और करीलकी कोपल। ९ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जानने।

पाक होते समय, इत्यादि कारणोंकरके पित्तका प्रकोप होता है इन उक्त कारणोंके विरोधी मधुर शीतल आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्तका शमन होता है ॥

कफका कोप और शमन।

मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया ॥
मंदेग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथाश्रमात् ॥
श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २८ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–मधुर[1], स्निग्ध[2], शीतल[3] तथा आदिशब्दसे भारी[4] श्लक्ष्णादि[5] पदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें निद्रा लेनेसे, मंदाग्निमें अधिक भोजन करनेसे, प्रातःकालमें भोजन करके देहको परिश्रम न देनेसे अर्थात् बैठे रहनेसे इत्यादि कारणोंसे कफका प्रकोप होता है, तथा इन कारणोंके विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थोंके सेवन करनेसे कफका शमन होता है ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां
भैषज्याख्यानं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

प्रथम लिख आए हैं कि ' नाडीपरीक्षादिविधि ' अतएव भैषज्याख्यानके अनंतर नाडीपरीक्षा लिखते हैं।

नाडीपरीक्षा।

करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १ ॥

अर्थ–जीवकी साक्षिणी[6] ऐसी धमनी नाडी हाथके अंगूठेकी जडमें है, उसकी चेष्टाकरके शरीरके सुखदुःखको पंडित[7] जाने[1] ॥

---

१ गुड, खांड, मिश्री आदि मधुर पदार्थ जानने। २ घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थ जानने। ३ केलेकी फली, बरफ आदि शीतल पदार्थ जानने। ४ भैंसका दूध आदि भारी पदार्थ जानने। ५ उडद आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने। ६ प्राणवायुकी साक्षीभूत। ७ नाडीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नहीं करनी इसको जाननेवाला। ८ प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च। मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव जीवनाडी ॥

---

१ सद्यःस्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः। क्षुत्तृषार्त्तस्य सुप्तस्य सम्यक् नाडी न बुद्ध्यते ॥

दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टाको कहते हैं ।

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् ॥ कुलिङ्गकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः ॥ हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥२॥

अर्थ—वादीके कोपसे नाडी जोंख और सर्पकी चालके समान गमन करती है, पित्तके कोपसे नाडी कुलिंग (घरका चिडा) कौआ और मेंडक इनकी गतिके समान चलती है; एवं कफके कोपसे नाडी हंस और कबूतरकी चालके सदृश चलती है ॥

सन्निपात और द्विदोषकी नाडी ।

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः॥ कदाचिन्मंदगमना कदाचिद्वेगवाहिनी द्विदोषकोपतो ज्ञेया हंति च स्थानविच्युता ॥ ३ ॥

अर्थ—सन्निपातमें नाडी लवों तीतर और बटेरकीसी चाल चलती है। दो दोषोंके कोपसे नाडी धीरे २ चलकर तत्काल जल्दी २ चलने लगती है। वर्तिक पक्षीको कोई गरुडभी कहते हैं ॥

असाध्यनाडीके लक्षण ।

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥
अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जो नाडी अपने स्थानको त्याग दे अर्थात् उस स्थानसे आगे पीछे चलने लगे, और जो ठहर ठहरके चले इन दोनों प्रकारकी नाडी रोगियोंके प्राणोंका नाश करती है। जो नाडी अत्यंत क्षीण हो गई हो और अत्यंत शीतल हो गई हो वह निश्चय प्राणोंको हरण करती है। चकारसे जो नाडी कुटिल और ऊंची नीची चले उसेभी रोगीका प्राण हरण करनेवाली जानो ॥

ज्वरादिकी नाडीके लक्षण ।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥५॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ ६ ॥

---

१ जोख और सर्प इनका टेढा तिरछा गमन है। २ कुलिंग कौवा और मेंडक इनका उछल २ कर चलन होता है। कोई कुलिंगके जगह 'कलापि' ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मतसे कलापी कहिये मोर इनकीसी चालके समान नाडी चलती है। ३ हंस (बतक) और कबूतर इनकी धीरी २ चाल है। ४ लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले हैं। ५ नाडी मध्यवहांगुष्ठमूलं यात्यर्थमुच्छलेत् । शनैरूर्ध्वोधगमनी कुटिला हंति मानवम् ॥

अर्थ—सामान्यज्वरके कोपमें नाडी गरम और जल्दी जल्दी चलती है, स्त्र्यादिकोंमें इच्छा होनेपर उनके न मिलनेसे तथा क्रोधसे नाडी बहुत जल्दी चलती है, एवं चिंता (सोच, विचार) और भय (दुश्मन आदिका भय) नाडी क्षीण होती है कोई "चिंताभयश्रमात्" ऐसा पाठ कहते हैं तहां श्रम कहिये ग्लानिसे नाडी क्षीण होती है। मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्योंकी नाडी अत्यंत मंद होती है तथा रुधिरके कोपसे अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है। कोई कोष्णाकी जगह सोष्णा ऐसा पाठ कहते हैं। और आमयुक्त नाडी अत्यंतभारी होती है, जठराग्निके दुर्बल होनेसे जो विना पचा हुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है अथवा आमकरके इस जगह आमाजीर्ण जानना ॥

उत्तमप्रकृतिके लक्षण।

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती भवेत् ॥ ७ ॥
सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥
चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाडी हलकी और वेगवान् होती है, स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्यकी नाडी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चंचल होती है और भोजन कर चुका हो उसकी नाडी स्थिर होती है ॥ इति नाडीपरिक्षा।

अब प्रथम लिख आए हैं कि आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिक जानने अतएव दूतके लक्षणोंको कहते हैं।

दूतपरीक्षा।

दूताः स्वजातयोव्यंगाः पटवो निर्मलांबराः ॥ सुखिनोश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥ ९ ॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः ॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥ १० ॥

---

१ जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः ॥ इति। २ आमं विदग्धं विष्टब्धकं चेति। कोई 'सामा गरीयसी' इस पदका अर्थ यह करते हैं कि आमके साथ जो रहे उसे साम कहते वे दोष हैं दूष्य दूषितादिक जानने जैसे लिखा है। 'आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः। सामा इत्युपदिश्यंते ये च रोगास्तदुद्भवाः॥' इति। तहां सामदोषसे सामदूष्यसे और सामदूष्यतासे रसादि धातु दूष्य हैं। मल मूत्र आदि दूषित हैं।

अर्थ–वैद्यके बुलानेके अथवा प्रश्न करनेके विषयमें दूत कैसा होय सो कहते हैं। जो बुलानेको जाय वो उस रोगीके जातिका हो, हाथ पैर आदिसे हीन न हो, सर्व कर्ममें कुशल हो, सफेद वस्त्रोंको धारण करता हो और सुखी तथा घोडे और बैलपर बैठा हुआ हो, सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुलका और उत्तम चेष्टाओं करनेवाला दूत होना चाहिये। इस श्लोकमें जो चकार है इससे उत्तम दर्शन और उत्तम वेष हो तथा संजीव कहिये नासिकाकी पवन जिधरको वह रही हो उधरको बैठनेवाला, अथवा बृहस्पतिकी पूर्व और उत्तर दिशामें आनेवाला, इस प्रकारका दूत वैद्यके घर रोगीके लिये उत्तम तिथि नक्षत्रमें आया हुआ रोगीका कल्याणकारी जानना। कोई 'स्वजातयः' इस जगह 'सजातयः' ऐसा पाठ कहते हैं ॥

दूतके शकुन ।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस समय दूत वैद्यके बुलानेको जाय उस समय रस्तेमें भेरी मृदंगादिक सौम्य शकुन होंय तो रोगीको शुभदायक नहीं होते। अंगार तेल कुलथी इत्यादिक

---

१ पाखंडाश्रमवर्णानां सपक्षाः कर्मसिद्धये । त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ २ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपनाः । फलं पक्कमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् ॥ वैद्यं य उपसर्पीति दूतास्ते चापि गर्हिताः । ३ छिंदंतस्तृणकाष्ठानि स्पृशंतो नासिकास्तनम् । वस्त्रांतानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः ॥ स्रोतोवरोधहृद्गंडमूर्द्धोरःकुक्षिपाशयः । कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्च ये ॥ विलिखंतो महीं किंचित्काष्ठलोष्टविभेदिनः । ४ नपुंसकः स्त्रीबहवो नैककार्य असूयकाः । पाशदंडायुधधराः प्राप्ता वा स्युः परंपराः ॥ आर्द्रजीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः । न्यूनाधिकांगा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः ॥ वैद्यं य उपसर्पीति दूतास्ते चापि गर्हिताः । ५ यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंयुतेति । ६ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमैकपदे स्थिताः । वैद्यं य उपसर्पीति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ ७ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने । मध्याह्ने चार्द्धरात्रे वा संध्ययोः कृत्तिकासु च ॥ आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च । चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां संधिदिनेषु च ॥ दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् । ज्वलयंतं पचंत वा क्रूरकर्माणि चोद्यते ॥ नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वाशुचि । प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नं विक्लवमेव च ॥ वैद्यं य उपसर्पीति दूतास्ते चापि गर्हिताः । इति । ८ सौम्यशकुन–भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, वेदध्वनी, मंगलगीत, पुत्रान्वित स्त्री, बछरासहित गौ, धुले हुए वस्त्र ये सन्मुख आवें तो अनुत्तम जानना ।

प्रदीप्त[1] (अशुभ) शकुन हो तो शुभदायक हैं अर्थात् अशुभ शकुन शुभ हैं और शुभ शकुन अशुभ होते हैं जैसे[2] ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है ॥

वैद्यके शकुन ।

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ॥
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १२ ॥

अर्थ–रोगीकी औषध करनेको जानेवाले वैद्यको मार्गमें साम्य[3] शकुन शुभदायक हैं और दीप्त[4] शकुन अच्छे नहीं ॥

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ॥
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेंद्रियः ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस रोगीकी मूलप्रकृति[5] पलटी न हो तथा देहका

---

१ प्रदीप्तशकुन–कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अंगार, तेल, काली सरसों, मुरदा, ढाककी राख इत्यादि जानने । २ सद्यो रण कर्मणि वा प्रवेशे शुभग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते शस्तः प्रयाणाद्विपरीतभावः ॥ ३ भृंगारांजनवर्द्धमांननकुलाविद्धैकयश्वाभिषो शंखक्षीरनृयाणपूर्णकलशं छत्राणि सिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनपंकजदधिक्षौद्राज्यगोरोचनाकन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनाविप्राश्वरत्नानि च ॥ ४ गमनं दक्षिणे वामान्न शस्तं श्वशृगालयोः । वामं नकुलचाषाणां नोभयं शशसर्पयोः ॥ भासकौशिकगृध्राणां न प्रशस्तं किलोभयम् । दर्शनं च रुतं चापि न सम्यक् कृकलासयोः ॥ कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रं नेष्टं तथांगारतैलकर्दमपूरितम् ॥ प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपैः। शवकाष्ठं पलाशानां शुष्काणां पथि संगमाः ॥ नेष्यंति पतितास्थीनां दीनांधरिपवस्तथा । ५ प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक् २ दोषोंसे, दो दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे । जैसे सुश्रुतमें लिखा है ‘ शुक्रशोणितसंयोगाद्यो भवेद्दोष उत्कटः । प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥ ” वही प्रकृति अन्य उपाधियोंसेभी होती है । जैसे चरकमें लिखा है कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता, देशानुपातिनी, कालानुपातिनी, वयोनुपातिनी और प्रत्यात्मनियता प्रकृति । तहां जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् पृथक् होती है, जैसे सुनार, लुहार, दरजी, नाऊ, कुम्हार आदिमें बोलना चाल चलन आदि । कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे ब्राह्मणोंके कुलमें तपःप्रियता, क्षत्रीकुलमें शूरवीरता आदि धर्म होते हैं । देशानुपातिनी प्रकृति जैसे कर्नाटक, पंजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक, वाचिक, मानसिक धर्म पृथक् २ हैं । कालानुपातिनी प्रकृति जैसे समय २ में देहादिकोंमें दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोंका संचय कोप प्रशमादि पृथक् २ होते हैं । वयोनुपातिनी प्रकृति जैसे बाल्यावस्था यौवन अवस्था और वृद्धावस्थादिक धर्म पृथक् २ होते हैं । और सातवीं प्रत्यात्मनियता प्रकृति है जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती हैं वे सब प्रकृतियां कायिक, वाचिक और मानसिक स्वभावविशेष करके पृथक् २ हैं । कोई

वर्ण[1] पलटा न हो और सतोगुणी, वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् औषधि देवे ॥

तहां दुष्टस्वप्न ।

स्वप्नेषु नग्नान्मुंडांश्च रक्तकृष्णांबरावृतान् ॥ व्यंगांश्च विकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥ १४ ॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान् ॥ महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसो यस्तु पश्यति ॥ स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पंचताम् ॥ १५ ॥

अर्थ–स्वप्नमें नंगे, संन्यासी अथवा गुसांई इत्यादि मुंडे हुए, लाल काले वस्त्रोंको पहिने हुए, नाक कान कटे हुए, पांगुरे, कुबडे, खंजे, काले, हाथोंमें फांस, तलवार, भाला, बरछी इत्यादिक धारण करे हुए, बांधते मारते हुए, दक्षिणदिशामें स्थित, भैसा, ऊंट, गधा इनपर चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे और रोगी मनुष्य देखे तो मरणको प्राप्त हो ॥

अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेग्नौ वा विलीयते ॥ १६ ॥
श्वापदैर्हन्यते योपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥
यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत् ॥ १७ ॥
तैलं सुरां पिबेद्वापि लोहं[3] वा लभते तिलान् ॥
पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशे[4]त्कूपरसातलम् ॥

आचार्य पांचतत्वकरके पांचभौतिकी प्रकृति कहते हैं जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्वोंकरके जाननी । कोई २ सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते हैं । इस प्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं ।

१ यहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छायाभी कहते हैं । परंतु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानते हैं । जैसे–" वर्णप्रभामिश्रिता या छाया सा परिकीर्तिता । वर्णमाक्रामति छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥ आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूराच्च लक्ष्यते । " इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेदही नहीं है किंतु संख्यामेंभी भेद है । जैसे–गौर, कृष्ण, श्याम और गौरश्याम ऐसे वर्ण चार प्रकारका है । प्रभाके सात भेद हैं रक्त, पीत, असित, श्याम, हरित, पांडुर और सित । छायाके पांच भेद हैं स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त । दुःखसहनशीलताको सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है ' सत्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना । राजसः स्तंभमानोन्यैः सहते नैव तामसः ॥ ' तहां प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्त्वके तीन भेद हैं । इन सबके लक्षण यहांपर ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे सो ग्रंथान्तरसे जान लेना । २ आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः स्त्वववानपीति । ३ लौहम् इति पाठांतरम् । ४ जननीं प्रविशेन्नरः इति पाठांतरम् ।

स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पंचताम् ॥ १८ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरता हुआ देखे तथा जलमें डूब जावे, अग्निमें गिर जावे, कुत्तेने काटा हो अथवा अपने कुटुंबके नाश करके पीडित हो, मछली आदि जिसको निगल जावे (आदिशब्दसे मगर, सूंस, फौट आदि निगल जावे), स्वप्नमें नेत्र जाते रहें, जलता दीपक बुझ जावे, तेल सुराको पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि) वा ग्रहणसे कपास खल लवण आदिको प्राप्त हो और तिल मिले, एवं पकान्न (पुडी कचौडी लड्डू) प्राप्त हो अथवा पकान्नका भोजन करे, तथा माताके घरमें, माताके उदरमें, अथवा माताकी गोदमें माताके साथ शयन करे, जो कुएमें अथवा पातालमें प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगी हो और रोगी मनुष्य मरे ॥

दुःस्वप्नका परिहार।

दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित् ॥ १९ ॥ स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानथ ॥ पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत् ॥ कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥२०॥

अर्थ—पूर्वोक्त कहे हुए (नग्न मुंडितादिक) खोटे स्वप्नोंको देखकर किसासे न कहे। प्रातःकाल उठ स्नान कर काले तिल और सुवर्णका दान करे ओर दुष्ट स्वप्ननाशक विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि देवस्तोत्रोंका पाठ करे। इस प्रकार दिनमें कृत्य कर रात्रिमें देवमंदिरमें रहकर जागरण करे। इस प्रकार तीन दिन करनेसे यह मनुष्य दुष्टस्वप्न (खोटे सपने) के दोषसे छूट जाता है ॥

अथ शुभस्वप्न।

स्वप्नेषु यः सुरान्भूपाञ्जीवतः सुहृदो द्विजान् ॥
गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें इन्द्रादिक देवता, राजामहाराजा, जीवते हुए मित्रकुटुंबके लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि, मथुरा प्रयागादि तीर्थ इत्यादिकोंको देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु आचार्य आदिकोंको देख तो सुखको प्राप्त होता है ॥

तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि ॥
आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान्सुखी भवेत् ॥ २२ ॥

---

१ धान्यादिकोंको पीस सिद्ध की हुई जो सुरा कहिये मद्य उसको स्वप्नमें पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकारकी दारू पीवे तो शुभ है। जैसे लिखा है— " रुधिरं पिबति स्वप्ने मद्यं वापि कथंचन। ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु धनं लभेत् ॥ "

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें कीचके पानियोंको आदिशब्दसे नदी नद समुद्रका तरे अर्थात् पार होय, तथा शत्रुओंको जीतके आवे और सफेद घर, नेल, पर्वत और हाथी, घोडा इनपर आपको चढा हुआ देखे तो उसको सुखकी प्राप्ति हो ॥

शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसं मत्स्यान् फलानि च ॥
प्राप्तातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

अर्थ-जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा मांस, मछली और आम्र आदि फलोंको स्वप्नमें देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धनकी प्राप्ति हो ॥

अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिम् ॥
आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः ॥ २४ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमें अगम्या स्त्री (रजस्वला, बहिन, बेटी, गुरुस्त्री आदि) से गमन करे, अथवा अगम्यस्थानमें जाय, तथा विष्ठासे अपनी देह लिपी हुई देखे, तथा आपको अथवा अन्यको रुदन करता अथवा मरा हुआ देखे,तथा कच्चे मांसको भक्षण करता देखे तो रोगयुक्त निरोगी हो और आरोग्य मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे॥

जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत् ॥
रोगी स भूयादारोग्यः स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

इति शार्ङ्गधरे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको स्वप्नमें जोख, भँवरी, सर्प और मक्खी काटे, वाशब्दसे बर्र, ततैया, मच्छर आदि डसे तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे ॥

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारसंपादकमाथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरभाषाटीकायां नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

प्रथम यह लिख आये हैं कि "अतो दीपनपाचनं" अतएव दीपनपाचनाध्यायको कहते हैं।

दीपनपाचनऔषध ।

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः ॥ पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नागकेसरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥१॥

अर्थ—जो औषध आमको न पचावे और अग्निको प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना जैसे सौंफ । और जो औषध आमको पचावे और अग्निको प्रदीप्त न करे उसको पाचन संज्ञक कहते हैं जैसे नागकेशर । और जो अग्निको प्रदीप्त करे और आमकोभी पचावे उस औषधको दीपनपाचन कहते हैं जैसे चित्रक ॥

संशमनऔषध ।

न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तथोद्धतान् ॥
शमीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथामृता ॥ २ ॥

अर्थ—जो औषध वातादिदोष समान हो उनको बिगाडे नहीं और न शोधन करे, तथा बिगडे हुए दोषोंमें मिलकर समान दशामें प्राप्त करे, तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणीने खाया पिया है उसको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन कर देवे, उसको शमन संज्ञक कहते हैं । इस जगह दोषशब्द दोषोंमें और उन दोषोंके कार्यमेंभी कार्यकारणके उपचारसे लेना चाहिये । उदाहरण जैसे गिलोय ॥

अनुलोमनऔषध ।

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बंधमधो नयेत् ॥
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥

अर्थ—जो औषध मल कहिये वातादि दोषोंके पाक अर्थात् कोपको शांति करके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धोंको पृथक् २ कर नीचेको गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकोंका बंध अर्थात् बद्धकोष्ठको स्वच्छ करके मलादिकोंको अधोभागमें प्राप्त कर गुदाद्वारा निकाले उस औषधको अनुलोमन जानना । उदाहरण जैसे हरड ॥

स्रंसनऔषध ।

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥

---

१ द्रव्यगुणावल्यां—'शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः ।' कदाचित् कोई प्रश्न करे कि जब सौंफ दीपनी है फिर आमको क्यों नहीं पचाती और विना आमके पचे अग्नि कदाचित् दीप्त नहीं होती । तहां कहते हैं कि द्रव्योंके प्रभाव अचिंत्य हैं यह सुश्रुतमें लिखा है । ये हेतु इससे विचारनेमें नहीं आते । जैसे "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथंचन । सहस्राणां च हेतूनां नांबष्ठादिर्विरेचयेत् ॥" इत्यादि । २ जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपनः ॥ ३ नागकेशरकं रूक्षमुष्णं लघ्वामपाचनमिति । ४ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत्पाचनो लघुः । ५ न शोधयति यद्दोषान्समानोदीरयत्यपि । समीकरोति क्रुद्धांश्च तत्संशमनमुच्यते ॥ इति पाठांतरम् । ६ रसायनी संशमनी दोषाणां ज्वरनाशिनी । गुडूची कटुका लघ्वी तिक्ताग्निदीपनीति च ॥

नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥ ४ ॥

अर्थ–पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिक दोष उनके कोष्ठाश्रित होनेसे जो औषध उनको विनाही पाक करे नीचेके भागमें लाकर गुदाके द्वारा निकाले उसको स्रंसन संज्ञक औषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे अमलतासका गूदा ॥

भेदन औषध।

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिंडितं मलैः ॥
भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा ॥ ५ ॥

अर्थ–जो औषध वातादि दोषोंकरके बंधे हुए अथवा विना बंधे हुए गांठके गमान मलमूत्रादिकोंको तोड फोडकर नीचेके भागमें लायके गुदाके द्वारा निकाले उसको भेदन संज्ञक कहते हैं ॥

रेचनऔषध।

विपक्कं यदपक्कं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

अर्थ–जो औषध पेटके अन्नादिकोंका उत्तम पाक होनेपर अथवा कुछ कच्चे रहनेपर उन अन्नादिकोंको तथा वातादिमलोंको पतला करके अधोभागमें लाय गुदाद्वारा दस्त करावे उसको रेचन संज्ञक कहते हैं, जैसे निसोथ। रेचकमात्र द्रव्योंमें पृथ्वीतत्व और जलतत्वके गुरुत्वादि गुण अधिक होनेसे नीचेको जाती हैं अतएव दस्त कराते हैं। गुरुत्व शब्दकरके इस जगह प्रभावविशेष जानना अन्यथा मत्स्य मसूर पिष्टान्नादिकोंको विरेचकत्व आवेगा ॥

वमनऔषध।

अपक्कपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत् ॥
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ ७ ॥

अर्थ–जो औषध पक्कदशाको नहीं प्राप्त हुए ऐसे पित्त और कफको बलात्कार करके मुखके द्वारा निकाले (रद्द करावे) उसे वमन संज्ञक जानना। उदाहरण जैसे मैनफल। संपूर्ण वमनकारी द्रव्योंमें पवन और अग्निके गुण लघुत्वादि अधिक

---

१ आदिशब्दकरके मलमूत्रादिक जानने। २ पाचकस्थानके आश्रय करके कोई कोष्ठशब्दकरके हृदयादिकोंकाभी ग्रहण करते हैं जैसे "स्थानान्यामाग्निपक्कानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुंडुफुप्फुसानां च कोष्ठमित्यभिधीयते ॥" ३ शुष्क और गांठदार। ४ मलशब्दसे इस जगह दोषोंका ग्रहण है। आदिशब्दसे रूक्ष दूषितादिकोंकाभी ग्रहण है। ५ आदिशब्दकरके दूष्य और दूषितादिकोंका ग्रहण है। ६ मदनस्य फलं बलादिति पाठांतरम्।

होनेके कारण ऊपरको जाते हैं अतएव रद्द होती है । इस जगहभी लघुत्वादि करके प्रभावविशेष जानना । अन्यथा तीतर, खीलआदिको वमनत्व आवेगा । कोई प्रश्न करे कि कफको वमन और पित्तको विरेचनद्वारा निकाले ऐसा शास्त्रमें लिखा है, फिर इस जगह पित्तको वमनद्वारा निकालना कैसे कहा ? तहां कहते हैं कि अपक्क पित्तको वमनद्वाराही निकालना चाहिये, जैसे लिखा है कि कटु तिक्त और अम्लोंको वमन करके निकाले देखो दग्ध पित्त अम्लताको प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्तकी चिकित्सामें प्रथम वमन कराना लिखा है ॥

संशोधनऔषधि ।

स्थानाद्वहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ॥
देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ ८ ॥

अर्थ–जो औषध स्वस्थानमें संचित मलों (वातादिकों) को ऊपरके भागमें लायकर मुख[1] नासिका द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस संचयको अधो अधो भागमें लायकर गुदा, लिंग, भगद्वारा बाहर निकाले उसको संशोधन[2] जानना । उदाहरण जैसे देवदालीका फल, जिसको वंदाल और घघरवेलभी कहते हैं । देहके कहनेसे फस्त खोलनाभी शोधनमें लिया है ॥

छेदनऔषधि ।

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ॥
छेदनं तद्यवक्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥ ९ ॥

अर्थ–जो औषध परस्पर एकसे एक मिले हुए[3] कफादि दोषोंको अपनी शक्तिकरके फोडकर पृथक् २ कर देवे उसको छेदन औषध कहते हैं । उदाहरण जैसे जवाखार, काली मिरच और शिलाजीत । 'मरिचानि' इस बहुवचनसे लाल मिरचभी छेदनकर्त्ता जाननी । प्रश्न–वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोकमें कफादि क्रम क्यों

---

१ मुखसे रद्दके द्वारा और नाकमें नास देनेसे वमन और नासके साथ वे दोष निकलते हैं । २ शोधन बाह्य और अभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है । तहां बहिराश्रय जैसे शास्त्र क्षार आग्न प्रलेपादि । और अभ्यंतराश्रय चार प्रकारका है जैसे वमन विरेचन आस्थापन और शोणितावसेचन । कोई शोणितावसेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं परंतु उसे वमनके अंतर्गत जानना क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है । ३ कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है और कोई ' श्लिष्ट ' का अर्थ अत्यंत कुपित ऐसा करता है । और आदिशब्दकरके वात पित्त रुधिर और कृमि इनकाभी दोष शब्दकरके ग्रहण है । जैसे सुश्रुतमें लिखा है " न तद्देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् । शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते॥" और कृमिको दोषत्व गुग्गुलकल्पमें लिखा है यथा " पंचादिदोषान्समये " इत्यादि यहां पंचदोषकरके वात, पित्त, कफ, रुधिर और कृमियोंका ग्रहण है ।

कहा ? उत्तर–देहको ऊर्ध्वमूलत्व अधःशाखात्व है इस कारण कफक्रम रक्खा है ॥

लेखनऔषधि ।

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ॥
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ १० ॥

अर्थ–जो औषधी रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखायके देहसे बाहर निकाल देवे उसको लेखन औषधि कहते हैं । उदाहरण जैसे सहत, गरमजल, वच, और जो । 'मलान् वा' इसमें वा जो पडा है उसे मनके दोष पृथक् करनेको जानना । क्यों कि मनके दोषोंकी चिकित्सा दूसरी है । प्रश्न–मनके दोष कौनसे हैं ? उत्तर–"रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ" इत्यादि । अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मनको बिगाडनेवाले दोष हैं ॥

ग्राहीऔषधि ।

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥
ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ११ ॥

अर्थ–जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकोंका पाचन करे तथा उष्ण वीर्य होनेसे जलस्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको 'ग्राही' कहते हैं उदाहरण जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल ॥

स्तंभनऔषधि ।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् ॥
वातकृत्स्तंभनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुंटुकौ ॥ १२ ॥

अर्थ–जो औषधी रूक्ष गुणकरके, शीतवीर्यकरके, कषैले रसकरके युक्त होनेसे एवं पाककरके हलकी होवे; ऐसे प्रकारकी जो औषध वे वादीको उत्पन्न करे हैं । अतएव उस औषधको स्तंभन जाननी । उदाहरण जैसे कुडा और स्योनाक (टेंटू)॥

रसायनऔषध ।

रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ॥
यथामृता रुदंती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ १३ ॥

---

१ नीरं कोष्णं वचा यवाः इति पाठान्तरम्, अयं पाठः कपोलकल्पनया केनापि लिखितः ।
२ प्रश्न–वच संग्राही नहीं हो सक्ती क्योंकि अनिलगुण भूयिष्ठ है और अनिल है सो शोषण करता है । उत्तर–संग्राही औषध पक्व और आमग्रहण करनेसे दो प्रकारकी है । तहां जो संग्रहणीमें आमको पचायके अग्नि प्रज्वालित कर उसी ग्रहणीमें स्थित द्रवताको सुखायके स्तंभन करे उसे उष्णग्राहक जाननी । और जो औषध अतिसारादिकोंमें पक्वमलादिकोंको स्तंभन कर उसका संग्रह करे उसे शीतग्राहक जाननी । ये दो अनिलगुणभूयिष्ठ हैं परंतु फिरभी संग्राहित्वमें दोषता नहीं आती । ३ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ।

अर्थ–जो औषध देहकी वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगोंका नाश करे उसको रसायन जानना। उदाहरण जैसे गिलोय, रुदंती (शाकका भेद, पश्चिममें बहुत विख्यात है) गूगल और हरड। प्रश्न–व्याधिके कहनेसेही वृद्धावस्थाका ग्रहण हो गया फिर पृथक् क्यों कही ? उत्तर–जराशब्दकरके इस जगह स्वाभाविकी वृद्धावस्थाका ग्रहण है क्योंकि सत्तरवर्षके उपरांत स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है। जो रसादिधातुओंका अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको 'रसायन' कहते हैं॥

वाजीकरणऔषध।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत्॥
यथा नागबलाद्यास्तु बीजं च कपिकच्छुजम्॥ १४॥

अर्थ–जो औषध धातुको बढायकर स्त्रियोंमें हर्षयुक्त शक्तिको करे अर्थात् मैथुनशक्तिको बढावे उसको वाजीकरण जानना। उदाहरण जैसे नागबला (खरेटी)। आदिशब्दसे जायफल, अफीम, भांग, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादिक और कौंचके बीज। वाजीकरण दो प्रकारका है एक वीर्यस्तंभकर्त्ता दूसरा वीर्यवृद्धिकारी॥

धातुवृद्धिकारी औषध।

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते॥
यथाश्वगंधा मुशली शर्करा च शतावरी॥ १५॥

अर्थ–जिस औषधसे धातुकी वृद्धि हो उस औषधको शुक्रल जाननी। उदाहरण जैसे असगंध, मुसरी, मिश्री, शतावर इत्यादि॥

धातुको चैतन्यकर्त्ता तथा वृद्धिकारी औषध।

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च॥
प्रवर्त्तकानि कथ्यंते जनकानि च रेतसः॥ १६॥

अर्थ–शुक्रधातुको चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उडद, भिलायेके फलकी गिरी और आमले इत्यादिक जानना॥

वाजीकरण औषधविशेष।

प्रवर्त्तनं स्त्रीशुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम्॥
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी[१] च हरितकी॥ १७॥

अर्थ–स्त्रीवीर्यकी प्रगट करनेवाली है और बडी कटेरीका फल शुक्रका रेचनकर्त्ता है। एवं जायफल वीर्यका स्तंभक है और हरड शुक्रको सुखानेवाली है। कोई प्रथम पदका यह अर्थ करते हैं कि कटेरीका फल स्त्रीके वीर्यको प्रवर्त्तन और रेचन कर्त्ता है॥

---

१ कालिङ्गं क्षयकारि च इति पाठान्तरम्।

सूक्ष्मऔषध।

देहस्य सूक्ष्मछिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥
तद्यथा सैंधवं क्षौद्रं निंबस्तैलं रुबूद्भवम् ॥ १८ ॥

अर्थ-जो औषध देहके सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे सैंधानिमक, सहत, नीम और अंडीका तेल अथवा नीमका तेल और अंडीका तेल ॥

व्यवायिऔषध।

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ॥
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

अर्थ-जो औषध अपक्क हो सकल देहमें व्याप्त हो फिर मद्य विषके समान पाकको प्राप्त होय, उस औषधको 'व्यवायी' जानना। उदाहरण जैसे भांग और अफीम ॥

विकाशी औषध।

संधिबंधांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत् ॥
विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ-जो औषध सर्व अंगोंकी संधियोंके बंधनोंको शिथिल कर रसादि धातुसे उत्पन्न हुआ जो ओज[2] अर्थात् सर्व धातुओंका तेज उसको शिथिल करे और धातुओंकोभी शिथिल करे उस औषधको विकाशी जानना। उदाहरण जैसे सुपारी और कोदों धान्य। चकारसे अपकही उक्त कर्मोंको करे ऐसा जानना ॥

मदकारी औषध।

बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जो पदार्थ बुद्धिका लोप करे उसको मदकारी कहते हैं यह तमोगुणप्रधान है। उदाहरण जैसे सुरादिक, मद्य, दारू। बुद्धिशब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्तिकादिवाचक है। प्रसंगवश इनके लक्षणोंको कहते हैं। ग्रंथधारणाशक्तिको मेधा

---

१ ततो भावाय कल्पते इति पाठान्तरम्, पुनर्भावं स विंदति इति वा पाठान्तरम्।

२ रसादीनां शुक्रान्तानां यत्परं तेजस्तत् बल्योजस्तदेव बलमुच्यते यतः "देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनामिति" तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता है कि संधिप्रभृतियोंका शिथिल होनेसे श्रम उत्पन्न होता है और उस कामसे ओज क्षीण होता है। जैसे लिखा है-"अभिघातात्क्षयात्कोपाद्ध्यानाच्छोकाच्छमात्क्षुधः। ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणमिश्रितम् ॥"

कहते हैं । संतुष्टताको धृति कहते हैं कोई नियमात्मिका बुद्धिको धृति कहते हैं। बीती हुई वार्ताके याद रहनेको स्मरण कहते हैं कोई अर्थधारणशक्तिको स्मरण कहते हैं । बिना जानी वस्तुके ज्ञानको मति कहते हैं कोई २ त्रिकाल ज्ञानको मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकव्यको प्रतिपत्ति कहते हैं । ' सुरादिकं ' इस पदमें आदिशब्दकरके संपूर्ण मदकारी वस्तु जाननी । प्रश्न–मद्य तो बुद्धि, स्मृति, वाणी और चेष्टाकर्त्ता लिखा है यथा "बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ " फिर इस जगह मदकारी द्रव्यको बुद्धिलोपकर्ता कैसे लिखा है? उत्तर–मदकी चार पानावस्था हैं; तहां प्रथममदपान बुद्ध्यादिकोंको करता है, शेष बुद्ध्यादिकके लोपकर्त्ता हैं अतएव शार्ङ्गधरने लिखा है ॥

प्राणहारक औषध ।

व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ॥
आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

अर्थ–पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय औषधि, इन छःके गुणकरके युक्त जो द्रव्य हो उसे प्राणहर जानना । उदाहरण जैसे सिंगिया आदि विष; इसको योगवाहीभी कहते हैं । कोई आचार्य लोकमें " योगवाह्यमृतं विषं " ऐसाभी पाठ कहते हैं उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाही कहिये किसी संस्कारविशेषकरके जिस २ अनुपानके साथ देवे उसी अनुपानके गुणोंको बढायके अमृतके तुल्य गुण करे ॥

प्रमाथी औषध ।

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ॥
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥

अर्थ–जो द्रव्य अपनी शक्तिसे कान, मुख, नासिका आदि छिद्रोंसे तथा अन्य छिद्रोंसे कफादि दोषसंचयको और व्याधिसंचयको निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं । उदाहरण जैसे वच, काली मिरच तथा लाल मिरच ॥

अभिष्यन्दिलक्षण ।

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुध्वा रसवहाः शिराः ॥
धत्ते यद्गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

इति शार्ङ्गधरे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ–जो द्रव्य अपने पिच्छल गुणकरके भारीपनेसे रसवाहिनी २४ शिराओंको रोककर शरीरको भारी करे उस पदार्थको अभिष्यन्दि कहिये स्रोतःस्रावी जानना । उदाहरण जैसे दही ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां दीपनपाचनादिविधिश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ।

प्रथम यह लिख आये हैं कि " ततः कलादिकाख्यानं " अतएव कलादिकोंको कहते हैं ।

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः॥ सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥१॥ त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां संधयस्तथा ॥ दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥ २ ॥ सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पंचशतं बुधैः ॥ स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कंडाराश्चैव षोडश ॥ ॥ ४ ॥ नृदेहे दश रंध्राणि नारिदेहे त्रयोदश ॥ एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीरमें रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कला हैं । कोष्ठमें सात आशय कहिये स्थान हैं । रस रुधिर मांस मेदा अस्थि (हड्डी) मज्जा और शुक्र ये सप्त धातु हैं, तथा उन धातुओंके सात मल हैं । धातुओंके समीप रहनेवाले ऐसी सात उपधातु हैं । शरीरमें सात त्वचा हैं । वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । शरीरमें डोरीके समान और बेलके समान ९०० बंधन हैं, उनको स्नायु कहते हैं। दो सौ दश संधियें हैं। श्लोकमें जो चकार है इससे संधि दो सौ दशसे अधिक जाननी । शरीरके आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं । दोष और धातु तथा जलके वहानेवाली ७०० शिरा हैं । चकारसे कुछ अधिकभी हैं ऐसा जानना । रस वहानेवाली २४ धमनी नाडी हैं,और पुरुषके देहमें मांसपेशी अर्थात् मांसके लंबे २ तुकडे पांचसौ हैं।

---

१ धात्वाशयांतरेस्तस्य यत्क्लेदः स्वधितिष्ठति। देहोष्मणा विपक्वो यः सा कलेत्यभिधीयते॥ २ आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच " स्थानानामग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुंडुकः फुप्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते॥" ३ बडी बडी जड और बारीक २अग्रभाग ऐसी शिरा जितने देहमें रोम हैं इतनी हैं जैसे लिखा है"तावन्त्यो नाड्यो देहे यावन्त्यो रोमकूटयः । स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् ॥ ४ धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ हैं अतएव इनके नामभी पृथक् २ हैं वास्तविक ये सब एकही हैं । ५ वो मांसके टुकडे किसी आचार्योंके मतसे चौकोन हैं । जैसे लिखा है " चतुरस्रा भवेत्पेशी " ।

तथा स्त्रियोंके २० अधिक हैं। कंडारा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं। पुरुषोंके देहमें दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं अर्थात् तेरह छिद्र हैं। इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कहीं अब इन्हींको विस्तारकरके कहते हैं॥

कलानकी व्यवस्था।

मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीहोश्चतुर्थिका॥
पंचमी च तथांत्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता॥
रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः॥ ६॥

अर्थ–पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं। दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते हैं। यकृत् और प्लीहाकी चौथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमें रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं। अंत्र कहिये आंतडेनको धारण करनेवाली पांचवी कलाको[3] पुरीषधरा ऐसे कहते हैं। अग्निको धारण करनेवाली छटी कला[4] उसको पित्तधरा कहतेहैं और सातवी कला शुक्रको[5] धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी॥

श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः॥ ७॥ ऊर्ध्वं-मग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः॥ तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः॥ ८॥ मलाशयस्त्वधस्तस्य बस्तिर्मूत्राशयः स्मृतः॥ जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी॥ ९॥

---

१ वीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं दोनों स्तनोंमें पांच २ हैं और योनिमें चार गर्भमार्गमें तीन तथा गर्भस्थानमें तीन इस प्रकार वीस जाननी। २ उन सोलहोंके स्थान बताते हैं कि दोनों पैरोंमें चार, दोनों हाथोंमें चार, नाडमें चार और पीठमें चार इस प्रकार सोलह जाननी। ३ पांचवी कला आंतडोंके आधारसे उदरस्थ मलके विभाग करती है अतएव उसको पुरीषधरा कहते हैं। ४ छठी कला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रच्युत हुए अन्नको पक्काशयमें ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको पित्त-धरा कहते हैं जैसे लिखा है–" अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम्। तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा इति॥" ५ यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसं यथा। शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः॥ द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रश्रोत्रपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते॥ कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा। स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रवर्त्तते॥

पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ॥
धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ॥ १० ॥

अर्थ-वक्षस्थलमें कफका आशय कहिये कफका स्थान है, कफस्थानके किंचित् अधोभागमें आमका स्थान है, नाभिके ऊपर बांई तरफ अग्निका स्थान है, उसीको ग्रहणीस्थान कहते हैं। उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल है उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्थात् प्यास इसी जगहसे उत्पन्न होती है। कोई आचार्य "तस्योपरि जलं ज्ञेयं" ऐसा पाठ लिखकर अर्थ करते हैं कि उस तिलके ऊपर जल है। जैसे लिखा है "अग्रेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि। अग्रेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः ॥ वायुना धममानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम्। तदन्नमुष्णतोयेन समंतात्पच्यते पुनरिति ॥" अर्थात् अग्निके ऊपर जल है, उसके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन स्थित होकर स्वयं अग्निको धमाता है। वह वायुसे धमाई हुई अग्नि ऊपरके जलको अत्यंत गरम करती है तब वह उष्णजल ऊपरके अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है। अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पवनाशयके नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है; इसीको पक्काशय कहते हैं यह वामभागमें है। इसीके एकदेशमें विभाजित मलधारक उंदुक कहलाता है लोकमें इसको 'पोट्टलक' कहते हैं अतएव उंदुक से पक्काशय पृथक् है परंतु चरकमें पुरीष अंत्रशब्दकरके उंदुक कहा। उसके पासही कुछ नीचे दहनी तरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको बस्ती कहते हैं जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है उसको प्लीहा कहते हैं प्लीहा यह हृदयके वामभागमें है। ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तन्याशय अर्थात् स्तनसंबंधी दूध रहनेके स्थान। तहां गर्भाशय, पित्त और पक्काशयके मध्यमें है ऐसा जानना ॥

रसादि सात धातुओंका विवरण।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥
जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥

अर्थ-रस, रुधिर, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके

---

१ नाभिस्तनांतरं जंतोरामाशय उदाहृतः। जिस स्थानमें आम अर्थात् कच्चा अन्नरस रहता है उस स्थानको आमाशय कहते हैं। २ अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणी मता। नाभेरुपरि स ह्यग्निबलोपचयवाहि च ॥

तेजसे पाचित होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं। जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होती है॥

अब कहते हैं कि धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेषकरके तीन प्रकारका है। उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्ठा मूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूलभाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होता है। रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्तही है और सूक्ष्मभाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्क होकर मांससे कान नाकका मल प्रगट होता है सो जानना। स्थूलभाग मांस और सूक्ष्मभाग मेद, उसका अपनी अग्निसे परिपक्क होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्मभाग हड्डी होती है। वह हड्डीभी परिपक्क होकर केश रोमादि मलको प्रगट करती है। इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्मभाग मज्जा कहाती है। उस मज्जाके परिपक्क होनेसे स्थूलभाग मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मैल आता है वह मज्जा धातुका मल है। वह शुक्रभी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रगट नहीं करता जैसे हजारबार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं त्यागता इस शुक्रका स्थूलभाग शुक्र है और सूक्ष्म भाग ओज जानना।

धातुओंके मल।

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रंजकम्॥ कर्णविड्रसनादंतकक्षामेढ्रादिजं मलम्॥१२॥ नखा नेत्रमलं वक्रे स्निग्धत्वपिटिकास्तथा॥ जायंते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात्॥ १३॥

अर्थ–सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं। जैसे जीभका जल[1], नेत्रोंका जल, और कपोलका जल, इनको रसधातुका मल जानना। रंजकपित्त अर्थात् रसको रंगनेवाला पित्त रुधिरका मल है। कानका मल मांसका मल है। जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मल है सो मेद धातुका मल है। आदिशब्दसे पसीनाभी मेदधातुका मल है। परंतु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं है, क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है। नख नाखून) हड्डीका मल है। 'नखाः' यह बहुवचन है इससे केश बाल लोम रोआं इत्यादिकभी हड्डीका मल है। नेत्रोंका मल, मुखकी चिकनाई यह मज्जाधातुका मल है। और मुहमें मुंहासोंका होना यह शुक्र धातुका मल है। तथाके ग्रहणसे डाढी मूछ येभी शुक्रधातुके मल हैं॥

---

१ जीभ आदिका जो जल है सो कफसंबंधी है अतएव कफही रस धातुका मल है।

कोई आचार्य छः धातूनके छःही मल मानते हैं। नेत्रमल मुखकी चिकनाई और मुहांसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं।

अब मनुष्यकी धातुओंको कहते हैं।

स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ॥ शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥ स्वेदो दंतास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ॥ इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ–स्तनसंबंधी दूध रसधातुकी उपधातु है अर्थात् रसधातुसे प्रगट होता है और रज अर्थात् स्त्रियोंके मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिरधातुका उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रियोंके कालविशेषमें प्रगट होती हैं और नष्ट होती हैं। इसी प्रकार स्त्रियोंके रोमराजी आदिभी कालकरके प्रगट होती हैं और कोई आचार्य रस धातुसेही आर्तवकी उत्पत्ति कहते हैं। शुद्ध मांससे उत्पन्न हुए स्नेह (चिकनाई) को वसा कहते हैं, यह मांसधातुका उपधातु है। स्वेद कहिये पसीना, यह मेदधातुका उपधातु है। दांत अस्थि अर्थात् हड्डी धातुका उपधातु है। केश मज्जाधातुका उपधातु है। ओजं शुक्रधातुका उपधातु है। इस प्रकार सातौं धातुसे उत्पन्न सात उपधातु जानने। कोई आचार्य इन उपधातुओंको मलकेही अंतर्गत मानते हैं ॥

सप्तत्वचा।

ज्ञेयावभासिनी पूर्वसिध्मस्थानं च सा मता ॥ द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥ १६॥ श्वेता तृतीया संख्याता स्थानं चर्मदलस्य च ॥ ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका॥ १७॥ पंचमी वेदिनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवस्ततः ॥ १८ ॥ स्थूला त्वक् सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा ॥ इति सप्त त्वचः प्रोक्ताः स्थूला व्रीहिद्विमात्रया ॥ १९ ॥

---

१ किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोसृजः । पित्तं मांसस्य तु मलं खेषु स्वेदस्तु मेदसः ॥ नखमस्थ्नस्तु लोमाद्या मज्जः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचः । प्रसादकिट्टं धातूनां पाकादेव विवर्द्धते ॥ शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभाव इति स्मृतः । २ ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् । सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् ॥ ३ रसात्स्तन्यं ततो रक्तमसृजः स्नायुकंडराः । मांसाद्वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः ॥ अस्थ्नो दंतास्तथा मज्जः केशा ओजश्च सप्तमात् । धातुभ्यश्चोपजायंते तस्मात्ते उपधातवः ॥

अर्थ–पहली त्वचाका नाम अवभासिनी[1] है सो सिध्मरोगकी[2] जन्मभूमि है इस श्लोकमें चकार जो है इससे पद्मकंटकादिक रोगोंकीभी जन्मभूमि जाननी। यह जौके अठारहवें भाग प्रमाण मोटी है। दूसरी त्वचाका नाम लोहिता है यह तिलकालककी[3] जन्मभूमि है तथान्यच्छ व्यंगादिकोंकीभी जाननी और जौके सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है। तीसरी त्वचाका नाम श्वेता है यह चर्मदल कुष्ठकी जन्मभूमि है[4] और जौके १२ वे भाग प्रमाण मोटी है। चौथी त्वचाका नाम ताम्रा है यह किलासकुष्ठ-के होनेकी जगह है. और जौके आठवें भाग प्रमाण मोटी है। पांचवीं त्वचाका नाम वेदनी है। यह संपूर्ण कुष्ठोंकी जन्मभूमि है। 'तत्' इस पदके कहनेसे विसर्पादि रोगोंकीभी जन्मभूमि जानना। यह मुटाईमें जौके पांचवें भागके समान मोटी है। छठी त्वचाका नाम रोहिणी है। यह ग्रंथि (गांठ) गंडमाला तथा गंडमालाका भेद अपची इनकी जगह है। ग्रंथि आदि कफ भेद प्रधान है अतएव इनके साधर्म्यसे श्लीपद अर्बुदका जन्मस्थानभी यही छठी त्वचा है यह जौके प्रमाण मोटी है। सातवीं त्वचाका नाम स्थूला है यह विद्रधिरोग तथा आदिशब्दसे अर्श (बवासीर) और भगंदरादिरोगोंके होनेकी जगह है। इस प्रकार सात त्वचा कही है। ये सातों त्वचा दो जौकी बराबर मोटी हैं यह प्रमाण पुष्टस्थानोंमें जानना, ललाट और छोटी उंगली आदिमें नहीं क्योंकि लिखा है कि स्फिक् (कूला) और उदर आदिमें व्रीहीमुख श-स्त्रसे अंगूठेके बीच इतना मोटा चीरा देवे॥

वातादि दोषत्रय।

वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा॥
तत्रापि पंचधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात्॥ २०॥

अर्थ–शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओंको दूषित करते हैं अतएव उनको दोष कहते हैं, और शरीरके धारण करनेसे उनकी धातु संज्ञा है वे रसादि धातुओंको मलीन करते हैं अतएव उनकी मल संज्ञा कही है वे दोष शरीरधारकत्व करके एक २ पांच पांच प्रकारके हैं। उदाहरण जैसे सुश्रुतमें लिखा है कि प्रस्पंदन, उद्वहन, पूरण, विवेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्र-कारका होकर शरीरको धारण करता है। इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक

---

१ अवभासिनीकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि "अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निनेति सर्वान् वर्णानिति तथा पंचविधां छायां प्रकाशयतीति" अर्थात् जो भ्राजकाग्निकरके संपूर्ण वर्णोंको करे तथा पंच प्रकारकी छायाको प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं। २ सिध्मरोग कुष्ठका भेद है। उसको विभूत वा बनफ कहते हैं। ३ तिलकालक जिसको तिल कहते हैं इसे क्षुद्र रोगोंमें लिखा है। ४ चकारसे मस्से अजगल्ली आदिकीभी जन्मभूमि तीसरी त्वचाही है।

पित्तके पांच विभागोंमें बांटकर अग्निकर्मसे देहका पालन करता है । तथा वृद्धि, संधि, श्लेष्मण, स्नेहन, रोपण, प्रपूरणात्मक कफके पांच विभागोंसे विभक्त होकर जलकर्म करके देहका पालन पोषण करता है ॥

वायुका प्राधान्यतापूर्वक स्वरूप तथा विवरण ।

पवनस्तेषु बलवान्विभागकरणान्मतः ॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥ २१ ॥ मलाशये चरन्कोष्ठवह्निस्थाने तथा हृदि ॥ कंठे सर्वांगदेशेषु वायुः पंचप्रकारतः ॥ २२ ॥ अपानः स्यात्समानश्च प्राणोदानौ तथैव च ॥ व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमें वायु बलवान् है । इसको मलादिकोंके पृथक् २ विभाग करनेसे, तथा पित्त और कफ इनको जहां इच्छा होय तहां ले जानेकी सामर्थ्य है, अतएव उस (वायु) को प्रधानता है। इस वायुमें रजोगुण अधिक है, शीतल स्वभाव होनेसे तथा देहके छिद्रोंमें प्रवेश करनेसे बहुत बारीक है शीतल और रूखी है, तथा हलकी चंचल अर्थात् एकस्थानपर स्थिर नहीं रहती यह पांच स्थानोंमें गमन करती है अतएव पांच प्रकारकी जाननी । उन पांच स्थान और पांच नामोंको अनुक्रमसे कहते हैं । मलाशय अर्थात् पक्काशयमें जो वायु रहता है उसको अपान वायु कहते हैं । कोष्ठमें अग्निका स्थान है उसमें जो वायु रहे उसको समान कहते हैं। हृदयमें रहनेवाले वायुको प्राण वायु कहते हैं। कंठमें रहनेवाले वायुको उदान वायु कहते हैं । और संपूर्ण देहमें रहनेवाले पवनको व्यान वायु कहते हैं । इस प्रकार वायुके पांच स्थान तथा पांच नाम जानने ॥

पित्तका विवरण ।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्वगुणोत्तरम् ॥ कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥२४॥ अग्न्याशये भवेत्पित्तमग्निरूर्ध्वं तिलोन्मितम् ॥ त्वचि कांतिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यंगादिपाचकम् ॥२५॥

---

१ कोई प्रश्न करे कि देहके कहनेसेही सर्व अंगोंका बोध हो गया फिर सर्वांगका पृथक् ग्रहण क्यों किया ? तहां कहते हैं कि अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकोंके निरासार्थ अर्थात् प्रत्यंगोंमें वातका कोई विशेष स्थान नहीं । अतएव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देहका ग्रहण किया है । कोई २ पवनके अन्य नामभी कहते हैं जैसे " नागः कूर्मोथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः । " इति । २ पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयंते तत्र वर्षंति मेघवत् ॥

दृश्यं यकृति यत्पित्तं तादृशं शोणितं नयेत् ॥ यत्पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् ॥२६॥यत्पित्तं हृदये तिष्ठन् मेधाप्रज्ञाकरं च तत् ॥ पाचकं भ्राजकं चैव रंजकालोचके तथा ॥ साधकं चेति पंचैव पित्तनामान्यनुक्रमात् ॥ २७ ॥

अर्थ—अब पित्तका वर्णन करते हैं । पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्तका नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंगका होता है । इस पित्तमें सतोगुण अधिक है तथा निर्दूषित पित्तका स्वाद चरपरा और कडुआ होता है, तथा उष्णादि पदार्थोंके संयोगकरके विदग्ध[1] (विकृति) होनेसे खट्टा हो जाता है । यह पित्त पांच स्थानोंमें रहता है । उन पांच स्थान और उसके नामोंको क्रमकरके कहता हूं कोठेमें अग्निका स्थान है । उस स्थानमें जो पित्त है वह अग्निस्वरूप होकर[2] तिलके बराबर है । वह पित्त उस पित्तके स्थानमें चार[3] प्रकारके अन्नको पचाता है अतएव उसको पाचक पित्त कहते हैं । त्वचा[4]ोंमें जो पित्त रहता है वह शरीरमें कांति उत्पन्न करता है चंदनादिकोंके लेप, तैलादिकोंके अभ्यंग आदिशब्दकरके स्नानादिक इनको पचाता है अतः उसको भ्राजक पित्त कहते हैं । वह पित्त बांई तरफ प्लीहाके स्थानमें रहकर, जैसे रससे रुधिरको प्रगट करता है उसी प्रकार दहनी तरफ यकृतके स्थानमें रहकरभी रससे रुधिरको प्रगट करता है वह दृश्य कहिये दृष्टिगोचर है और उसको रंजक पित्त कहते हैं । कोई कहता है कि यकृति कहिये कालखंड (कलेजे)-में जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकारका प्लीहामें रुधिरको उत्पन्न करता है । दोनों नेत्रोंमें जो पित्त रहता है वो सफेद, नीले, पीत आदि रूपका दर्शन करता है उसको आलोचक पित्त कहते हैं । जो पित्त हृदयमें है, वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धिको उत्पन्न करता है । अतः उसको साधक पित्त कहते हैं । इस प्रकार पित्तके पांच स्थान और पांच नाम क्रमकरके जानने ॥

कफका विवरण ।

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ २८ ॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् ॥ कफश्चामाशये

---

१ विदग्धाजीर्णसंसृष्टं पुनरम्लरसं भवेत् । २ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः । ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्रं प्रमाणतः ॥ कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रं हि तिष्ठति । ३ भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य । ४ त्वचात्रावभासिनी नामधेया बाह्यत्वगित्यभिप्रायः ।

मूर्ध्नि कंठे हृदि च संधिषु॥२९॥ तिष्ठन्करोति देहेषु स्थैर्यं सर्वांगपाटवम् ॥ क्लेदनः स्नेहगश्चैव रसनश्चावलंबनः ॥ ३० ॥

अर्थ-कफ चिकना, भारी, सपेद, पिच्छिल (मलाईके सदृश) और शीतल है। तथा कफमें तमोगुण अधिक है और मीठा है। तथा विकृत (दूषित) कफका स्वाद नमकीन होता है। वही कफ पांच स्थानोंमें रहकर देहकी स्थिरता और पुष्टताको करता है। अब उन पांच स्थान तथा उन पांचोंके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं। आमके स्थानमें जो कफ रहता है उसको क्लेदन कफ कहते हैं वह आमाशयमें चार प्रकारके आहारका आधार है। तथा मधुर, पिच्छल और प्रक्लेदित्व होनेपरभी अपनी शक्तिकरके संपूर्ण कफके स्थानोंपर उसके कर्मकरके उपकार करता है। मस्तकमें रहनेवाले कफको स्नेहन कफ कहते हैं। वह तर्पणादिद्वारा इन्द्रियोंको अपने अपने कार्यमें सामर्थ्ययुक्त करता है। और कंठमें स्थित कफको रसन कफ कहते हैं। यह जिह्वाकी जडमें स्थित और कटुतिक्तादि रसोंके ज्ञानका कारण है। हृदयमें रहनेवालेको अवलंबन कफ कहते हैं। यह अवलंबनादि कर्मद्वारा हृदयका पोषण करता है। संधियोंमें रहनेवाले कफको संश्लेषण कहते हैं। यह संधीनको यथास्थित करता है। इस प्रकार कफके पांच स्थान और पांच नाम क्रमपूर्वक जानने ॥

स्नायुके कार्य ।

स्नायवो बंधनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्नायु[1] अर्थात् मांसरज्जु ये मांस, हड्डी और मेद इनके बंधन हैं इनको हिन्दीमें पट्ठे कहते हैं। इन्हीके द्वारा हड्डी, मांस और मेद खींची हुई हैं ॥

संधिके लक्षण ।

संधयश्चांगसंधानाद्देहे प्रोक्ताः कफान्विताः ॥

अर्थ-शरीरमें हाथ पैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुए हैं उस स्थानको अ-

---

१ मृद्यपानः सन्नंगुलिग्राहि अर्थात् चेपदार। २ स्नायु नौ सौ प्रतान (फैलनेवाली) वृत्त (गोल) और भीतरसे पोली हैं। इनमेंसे हाथ पैर आदि शाखाओंमें कमलनाल तंतुके समान फैलनेवाली और गोल महान् छः सौ स्नायु हैं। और कोठेमें दो सौ तीस स्नायु मोरी और छिद्रवाली हैं। तथा ग्रीवा (नाड) में ७० स्नायु हैं, वेभी मोरी और पोली हैं। इस प्रकार सब मिलकर ९०० हुई। ये देहके बंधनरूप हैं जैसे लिखा है " नौर्यथा फलकस्तीर्णा बंधनैर्बहुभिर्युता। भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥ एवमेव शरीरेस्मिन् यावंतः संधयः स्मृताः। स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ " इति।

र्थात् जोडके स्थानको संधि कहते हैं। उन संधियोंमें कफके सदृश पदार्थ भरा हुआ है॥

अस्थिके कार्य।

आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा जगुः॥ ३२॥

अर्थ—देहमें अस्थि (हड्डी) सार (बलरूप) और आधार है वह कपाल, रुचक, वलय, तरुण, नलक ऐसी पांच प्रकारकी है॥

मर्मके कार्य।

मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः॥

अर्थ—देहमें मर्म प्रायःकरके आत्माके आधारभूत हैं। ऐसा मुनीश्वरोंने कहा है॥

शिरोंके कार्य।

संधिबंधनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः॥ ३३॥

अर्थ—शिरा (नस) संधिके बंधन करनेवाली और वातादि दोष तथा रसादि धातु इनके वहानेवाली है॥

धमनीके कार्य।

धमन्यो रसवाहिन्यो धमंति पवनं तनौ॥

---

१ संधि दो प्रकारकी है एक चल दूसरी अचल तहां ठोडी, कमर और हाथ पैरोंमेंकी तथा नाडकी संधि चलायमान है, बाकीकी सब संधियां अचल हैं सब संधियां २१० हैं इनमें जो कफके सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिकके संयोगसे निर्विघ्नतासे फिरते हैं उसी प्रकार संधि इस पदार्थके योगसे चलनवलन विषयमें समर्थ होती है। २ मांसनेत्रनिबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा । अस्थीन्यालंबनं कृत्वा न शीर्यंते पतंति च॥ ३ अभ्यंतरगतैः सारैर्नूनं तिष्ठंति भूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियंते देहिनां ध्रुवम्॥ तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्। अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम्॥ ४ वे मर्म पांच प्रकारके हैं। जैसे मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८ और संधिमर्म २०, इस प्रकार सब मर्म १०७ जानने। ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्ता, कालांतरमें प्राणहरणकर्ता, वैशल्यघ्न, वैकल्यकारी और पीडाकारी हैं ' सोममारुततेजांसि रजःसत्वतमांसि च। मर्माणि प्रायशः पुंसां भूतात्मा योवतिष्ठते॥ मर्मस्वभिहतो जीवो न जीवंति शरीरिणः। ५ शिरा स्थूल सूक्ष्म भेदकरके दो प्रकारकी हैं, उनका नाभिस्थान मूल है। उसी नाभिस्थानसे ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई हैं। मूलशिरा ४० हैं उनमें दश वातवाहिनी हैं, दश पित्तवाहिनी हैं, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी हैं। इस प्रकार सब चालीस जाननी। उनमें वातवाहिनी जो दश शिरा हैं उनमेंसे १७५ दूसरी शिरा निकली हैं इसी प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येकमेंसे एक सौ, पचहत्तर २ निकली हैं। इस प्रकार सब मिलानेसे ७०० शिरा होती हैं।

अर्थ–देहमें जो रसवाहिनी नाडी है वह पवनको धमन करती है अर्थात् धमाती है अतएव उसको धमनी[१] कहते हैं ॥

पेशीके कार्य ।

मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टंभाय देहिनाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मांसपेशी अर्थात् मांसके टुकडे मनुष्योंके बलके अर्थ और अवष्टंभ कहिये देहके सीधे खडा रहनेके अर्थ जाननी ॥

कंडराके कार्य ।

प्रसारणाकुंचनयोरंगानां कंडरा मताः ॥

अर्थ–कंडरा[३] कहिये बडी स्नायु वो हाथ पैर आदि अंगोंके प्रसारण (फैलाने) और आकुंचन (समेटने) के विषयमें समर्थ जाननी ॥

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण ।

नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते॥३५॥ मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते ॥ दशमं मस्तके चोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥ ३६ ॥ स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः॥ सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम् ॥ ३७ ॥

---

१ धमनी नाडियां चौवीस हैं । येभी नाभिस्थानसे प्रकट होकर दश नीचे गई हैं कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव आदि और अन्न जल रस इनको वहती हैं । और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी हैं । ये शब्द, रूप, रस, गंध, श्वासोच्छ्वास, जंभाई, क्षुधा, हँसना, बोलना, रुदन करना इत्यादिकोंको वहाकर देहको धारण करती हैं । तिरछी जानेवाली ४ धमनी हैं । इन चारमेंसे असंख्यात धमनी उत्पन्न हुई हैं। इनसे यह देह जालके सदृश परिव्याप्त है । इनके मुख रोमकूपों (रोओं) से बंधे हुए हैं और ये रसको सर्वत्र पहुँचाती हैं, पसीनेको वहाती हैं, तथा उबटना, स्नान और लेपादिक इनके वीर्यको भीतर ले जाती हैं । इस प्रकारसे २४ धमनी हैं ।२ शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयस्तु शरीरिणाम् । पेशीभिः संभृतान्यत्र बलवंति भवंत्यतः॥तासां तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा ' बहलः पेलवः स्थूला सुपृथुवृत्तन्ह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशाभावाः । ' आसां लक्षणं तु अस्मदीयरचितबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेप्यवलोकनीयं अत्र ग्रंथविस्तरभयान्न लिखितम् । ३ कंडरा जो १६ हैं उनके प्ररोहके अर्थ जाननी जैसे हाथ पैरकी कंडराओंके नख (नाखून) अग्रप्ररोह है इसी प्रकार औरभी जानो। सोलह संख्याका जो ग्रहण है सो इस जगह शस्त्रकर्मके निषेधार्थ है । यथा " जालानि कंडराश्चांगे पृथक् षोडश निर्दिशेत् । षट् कूर्चाः सप्त जीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः ॥ शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः । "

अर्थ—नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र हैं; लिंग, गुदा और मुख इनमें एक एक छिद्र है। मस्तकमें एक छिद्र है कि जिसको ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इस प्रकार पुरुषोंके नौ छिद्र खुले हुए हैं और मस्तकमें जो ब्रह्मरंध्र है वह ढका हुआ है ऐसे दश छिद्र हैं। तथा स्तनसंबंधी दो छिद्र और एक गर्भमार्गमें ऐसे तीन छिद्र, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके अधिक हैं। तथा इस प्राणीकी त्वचामें अनेक छिद्र हैं परंतु अत्यंत बारीक होनेसे नहीं दीखते। चकारसे प्राण, जल, रस, रुधिर, मांस मेद, मूत्र, मल, शुक्र और आर्त्तवके वहनेवाले अन्य छिद्र औरभी हैं ऐसा किसी आचार्यका मत है॥

अब शरीरकथनके प्रसंगसे अन्यफुप्फुसादिकोंका स्वरूप दिखाते हैं।

तद्वामे फुप्फुसं प्लीहा दक्षिणांगे यकृन्मतम्॥ उदानवायोराधारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः॥ ३८॥ रक्तवाहिशिरामूलं प्लीहा ख्याता महर्षिभिः॥ यकृद्रंजकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम्॥ ३९॥

अर्थ—हृदयके वामभागमें प्लीहा[1] और फुप्फुस[2] तथा दक्षिण भागमें यकृत् है उसको कालखंड (कलेजा) कहते हैं। अब इनके कार्य कहते हैं। फुप्फुस (फैंफडा) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायुका आधार है और प्लीहा है सो रुधिर वहनेवाली शिराओंका मूल है, एवं यकृत है सो रंजक पित्त और रुधिरका स्थान है॥

तिलके लक्षण।

जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम्॥

अर्थ—रुधिरके कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिणभागमें यकृतके समीप तिल नामका एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं। वह तिल जल वहनेवाली नाडियोंका मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यासको आच्छादन करता है॥

बुक्कके लक्षण।

बुक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः॥ ४०॥

अर्थ—बुक्क कहिये कलेजा और अग्रमांस इनसे वर्धित हुआ कुक्षिगोलक[3] जठर (पेट) में रहनेवाले मेदको पुष्ट करता है अर्थात् बढाता है जठरशब्दका ग्रहण अन्यस्थानाश्रित मेदके निषेधार्थ है जैसे लिखा है "स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रिता। अथेतरेषु सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते॥" इति॥

---

१ प्लीहा रक्तसे उत्पन्न है और उसको भाषामें फीहा कहते हैं। २ फुप्फुस अर्थात् फैंफडा यह रुधिरके झागसे प्रगट होकर हृदयनाडिकासे लगा हुआ है इसीसे श्वासका कार्य होता है कि जिसके द्वारा सर्व देहकी चेष्टा होती है। ३ वो कुक्षिगोलक रक्त और मेदके सारांशसे उत्पन्न होता है।

वृषणके लक्षण ।

वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ॥

अर्थ–वृषँण कहिये आंड ये वीर्यवाही नाडियोंके आधार हैं अतएव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषबलको देते हैं । 'बीजवाहि' ऐसाभी पाठान्तर है ॥

लिंगके लक्षण ।

गर्भाधानकरं लिंगमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥ ४१ ॥

अर्थ–लिंगँ कहिये शिश्नेन्द्रिय जो वीर्यद्वारा गर्भको प्रगट करती है और वीर्य तथा मूत्र निकलनेका मार्ग है। जैसे लिखा है "द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतपथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते॥ " इति । "बीजमूत्रयोः" ऐसाभी पाठांतर है ॥

हृदयके लक्षण ।

हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम् ॥

अर्थ–कमलकी कलीके समान किंचित् विकसित और अधोमुख ऐसा हृदँय है यह चैतन्यताका स्थान होकर ओज कहिये संपूर्ण धातुओंके तेजोंका सार है । यद्यपि सामान्यता करके सर्वदेहही चेतनाका स्थान है जैसे चरकमें लिखा है" चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रांतमलद्रव्यगुणैर्विना ॥ " इति । परंतु विशेषताकरके हृदयही चेतनाका मुख्य स्थान है । और जैसे दूधमें सारवस्तु घृत है इसी प्रकार सब धातुओंका तेज स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेजरूप है जैसे लिखा है "रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते। " कोई आचार्य ओजशब्दकरके जीव और रुधिरको ग्रहण करते हैं, कोई निर्विकार कफकोही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रंथमें ओजशब्दकरके रसका ग्रहण करते हैं ॥

शरीरपोषणार्थ व्यापार ।

शिरा धमन्यो नाभिस्थाः सर्वा व्याप्य स्थितास्तनुम् ॥
पुष्णंति चानिशं वायोः संयोगात्सर्वधातुभिः ॥ ४२ ॥

अर्थ–नाभिस्थानमें रहनेवाली शिरा और धमनी संपूर्ण शरीरमें व्याप्त हो रात्रि दिवस वायुके संयोगकरके रसादि सर्व धातुओंको सर्व शरीरमें ले जाकर शरीरका पोषण करती हैं और चकारसे पालन करती हैं । ये तरुण पुरुषोंके शरीरका पोषण (पुष्ट) करती हैं और वृद्ध मनुष्यके देहका पालन करती हैं । जैसे लिखा है " स

---

१ वृषण मांस, कफ और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते हैं । २ लिंगके साथ वर्त्तमान हृदयके बंधन करनेवाले ऐसे चार कंडरा (बडे २ स्नायु) हैं उनके अग्रभागसे यह लिंग प्रगट होता है । ३ हृदय रुधिरके सारसे निर्मित है ।

एवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति। " कोई कहे कि कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं कि पवनके संयोगसे अर्थात् प्राकृत पवनकी सहायतासे पोषण करती हैं जैसे लिखा है " क्रियाणामप्रतीपातसंमोहं बुद्धिकर्मणाम्। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन् ॥ " कौनसी वस्तुओंसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं कि संपूर्ण रसादि धातुओंकरके पोषण करती हैं। इस वाक्यसे सबका सामान्यकर्म कहा। जैसे लिखा है कि " याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव कुल्याभिरुपपद्यते अनुगृह्यते चाकुंचनप्रसारणादिभिर्विशेषैरिति।" कदाचित् कोई प्रश्न करे कि वे शिरा और धमनी नाडी नाभिमें स्थित हो सर्व देहको कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं " व्याप्नुवंत्यभितो देहं नाभिस्थप्रसृताः शिराः। प्रतानाः पद्मिनीकंदबिसादीनां यथा जलम् ॥"

प्राणवायुका व्यापार।

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलांतरम् ॥ ४३ ॥ कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥ पीत्वा चांबरपीयूषं पुनरायाति वेगतः॥ प्रीणयन्देहमखिलं जीवं च जठरानलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–नाभिमें स्थित[1] प्राणपवन (प्राणाश्रित वायु) हृदयका स्पर्शकर बाह्य आकाशसे अमृत[2] (हवा) पीनेके वास्ते कंठसे बाहर जाता है वहां अमृतको पीकर फिर उसी वेगसे नासिकाद्वारा अपने स्थानमें आयकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्निको प्रदीप्त करता है ॥

वह प्राणवायु सकलशरीरमें व्यापक होनेसे नाभिमें आवृत जो शिरा हैं उनमेंभी

१ प्राण अग्नि और सोमादिक ये नाभिमें रहते हैं। अतएव यहां " नाभिस्थः प्राणपवनः " ऐसा कहा। २ ऊपर लिखे श्लोकसे प्रत्यक्ष मालुम होता है कि इस प्राणीके देहसे पवन विष्णुपदामृत पीनेको निकलता है और फिर देहके भीतर जाता है। परंतु मुख्य इसका तात्पर्य यह है कि भीतरकी पवन देहमें किंचिन्मात्रभी रहनेसे विषैले अर्थात् विषरूप हो जाती है अतएव वह विषमिश्रित पवन बाहर निकलती है और विष्णुपद नाम आकाशका है उसमें प्राप्त हो स्वच्छ पवनसे मिश्रित होकर अपने विषैले गुणको त्यागती है,और आकाशकी नवीन पवनको श्वासद्वारा भीतर ले जाकर रुधिरकी शुद्धी करनेमे देहको और जीवको पालन करती है। इसीलिये एक छोटेसे मकानमें बहुतसे मनुष्योंके बैठनेसे उस मकानकी पवन विषैल हो जाती है।परंतु जिस मकानमें चारों तरफसे पवन आनेजानेका संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नहीं ठहर सक्ती। और इसीसे बडे २ मेलोंमें इंग्रेज जो बहुत दिनतक मेलेको ठहरने नहीं देते उसकाभी मुख्य यही कारण है। इससे जो जो सफाई करनेके बंदोबस्त करते हैं उन सबका कारण हमारे शास्त्रमें लिखा है परंतु अब मूर्खानंद वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इन सब बातोंको इंग्रेजोंकी निर्मित बतलाते हैं। ठीक है कुएकी मेंडकी कुएकोही समुद्र मानती है।

स्थित है। अतएव लिखा है " नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्यपाश्रिताः। शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैरिति॥" औरभी ग्रंथान्तरमें लिखा है कि "ब्रह्मग्रंथौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम्। लूतेव तंतुजालस्थस्तत्र जीवो भ्रमत्ययम्॥ सुषुम्नया ब्रह्मरंध्रमारोहत्यवरोहति। जीवप्राणसमारूढो रज्वा कोल्हाटिको यथा॥" इस प्रमाण पवनका कारणभी ग्रंथान्तरोंमें इस प्रकार लिखा है। " तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः। चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे॥ शब्दोच्चारणनिश्वासे श्वासकासादिकारणम्।" इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन हृदयकमलके अभ्यंतरको स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमलको प्रफुल्लित कर कंठको उल्लंघन कर मस्तकमें विष्णुपदामृत (ब्रह्मरंध्राश्रित अमृत) पीनेको प्राप्त होता है, " चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरंध्रे सुधाधरम्। तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम्॥" भरतोऽपि " ब्रह्मरंध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा। तुष्टो गीतादिकार्याणि स प्रकर्षाणि साधयेत्॥" उस जगह उस ब्रह्मरंध्रस्थित अमृतको पीकर जिस वेगसे ऊपर गई उसी वेगसे फिर तत्क्षण लौटकर अपने स्थानपर आकर प्राप्त होती है वह अपनी जगहपर आकर सकल देह (चोटीसे लेकर चरणपर्यंत) को तथा जीव और जठरानल (पाचकाग्नि) को पुष्ट करती है।

यद्यपि देहग्रहणहीसे जीवानलादिकका ग्रहण हो गया तोभी फिर कहना है सो विशेषताद्योतक है। अर्थात् सामान्यताकरके देहके अंग प्रत्यंग विभाग जानना और जीव तथा अग्नि ये विशेषता करके जानने क्योंकि "शरीराद्भिन्नो जीव इति श्रुतेः" अर्थात् जीवको शरीरसे भिन्न होनेके कारण पृथक् कहा इसवास्ते दोष नहीं है। " आयुर्वर्णो बलस्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः। ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणा स्वक्ता देहेऽग्निहेतुकाः॥ शांतेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरं जीवत्यनामयम्। रोगी स्याद्विरते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते॥"

आयुके और मरणके लक्षण।

शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते॥
कालेन तद्वियोगाद्धि पंचत्वं कथ्यते बुधैः॥ ४९॥

अर्थ—एवं पूर्वोक्त श्लोकके अभिप्रायसे शरीर और प्राण इनके संयोगको आयु[1] कहते हैं और काल[2]करके शरीर और प्राण इन दोनोंके वियोग होनेको पंचत्व (मरण) कहते हैं॥

---

१ भूतात्माके शरीरनिधानपर्यंत धर्म, अधर्म नैमित्तिक सांसारिक सुखदुःखको उपभोग साधनको आयु कहते हैं। २ कालभी स्वयंभू, अनादि, मध्य, निधनका कारण है। प्राणियोंके संहार करनेवाले काल कहलाता अथवा प्राणियोंको सुखदुःखादिमें नियोजन करता है इसवास्ते उसे काल कहते हैं अथवा मृत्युके समीप प्राप्त करता इसवास्ते उसको काल कहा है।

वैद्यको क्या कर्तव्य है ।

न जंतुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ॥
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किंतु रोगान्निवारयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ–पृथ्वीमें कोई प्राणी अमर (मृत्युरहित) नहीं है अत एव मृत्युके निवारण करनेमें कोई समर्थ नहीं है परंतु वैद्य रोगोंका निवारण करे । प्रसंगवश वैद्यके लक्षण " व्याधेस्तत्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ " अर्थात् व्याधिका निदानादिद्वारा यथार्थ ज्ञानकरके रोगजन्य पीडाका शमन करना यही वैद्यका वैद्यत्व है किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है ॥

अब साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतर कहते हैं ।

याप्यत्वं याति साध्यश्च याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ॥
जीवितं हंत्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ॥ ४७ ॥

अर्थ–साध्य व्याधिकी चिकित्सा न करनेसे याप्य[१] होती है । याप्यकी चिकित्सा न करनेसे व्याधि असाध्य हो जाती है और असाध्य होनेसे व्याधि प्राणहरण करती है अत एव व्याधिके उत्पन्न होतेही चिकित्सा करनी चाहिये । जैसे लिखा है " जातमात्रचिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः। वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोपि विकरोत्यसौ॥" याप्य यह असाध्यका भेद है । जैसे लिखा है कि " असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ।" तथाच " यापनीयं तु जानीयात् क्रियां धारयते तु यः । क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति ॥ " उसी प्रकार साध्यभी दो प्रकारका है। एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य एकदोषसे उत्पन्न, उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षणयुक्त व्याधि सुखसाध्य कही गई है और शस्त्रादि साधनद्वारा चिकित्सायोग्य व्याधिको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं ॥

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥
अतो रुग्भ्यः तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ॥ ४८ ॥

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अतएव शुभाशुभकर्मके फलको जाननेवाले[२] मनुष्य रोगोंसे शरीरकी रक्षा करे ॥

---

१ चकारसे यह दिखाया कि व्याधि प्रथमही याप्यत्वको नहीं प्राप्त होती किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्वको प्राप्त होती है । २ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । अतो दानादिकं कुर्य्यात्संप्रतीक्ष्य विचक्षणः॥ इति ।

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं।

धातवस्तन्मला दोषा नाशयंत्यसमास्तनुम् ॥
समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ॥ ४९ ॥

अर्थ–रसादि सात धातु और धातुओंके मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक होनेसे शरीरका नाश करते हैं और सम (स्वंप्रमाण स्थित) होनेसे सुख, बल और शरीरकी वृद्धिको देते हैं ॥ इति शारीरे कालादिकथनम्।

प्रथम यह कह आये हैं कि आदिशब्दसे सृष्टिक्रम कहेंगे सोई वर्णन करते हैं।

जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानंदैकरूपिणः ॥
पुंसोस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः ॥ ५० ॥

अर्थ–महदादि रूप जे जग (पृथिव्यादिभूत) उनका आदिकारण होकर इच्छारहित तथा चिदानंद ज्ञानमय ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं । उस पुरुषकी नित्य और सूर्यकी छायाके प्रमाण प्रकृति है उसको अव्यक्तभी कहते हैं ॥

प्रकृति कैसे विश्व निर्माण करती है तथा पुरुषको कर्तृत्व कैसे है यह कहते हैं।

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ॥
अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति ॥ ५१ ॥

अर्थ–वह मूल प्रकृति चेतनरहित (जड) होकर परमात्माके चैतन्य संबंधकरके अनित्य ऐसे संपूर्ण महदादिरूप विश्वको करता है । इस विषयमें दृष्टांत जैसे ऐन्द्रजालिक (बाजीगर) मंत्रप्रभावसे झूटे नाटकोंको दिखाता है इस श्लोकका संबंध पूर्वश्लोकके साथ है ॥

---

१ अब ग्रंन्थांतरसे दोषादिकोंका परिणाम लिखते हैं ' यः प्रसादपरोन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः । सरसोंजलयस्तस्य नवदेहेषु देहिनः ॥ रक्तस्यांजलयस्त्वष्टौ शर्कृतः सप्त सर्वशः । पित्तस्यांजलयः पंच षट् कफस्य प्रचक्षते ॥ मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चांजलित्रयम् । द्वावंजली मेदसस्तु मज्जा एकांजलिर्मता ॥ शुक्रस्यैकांजलिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा । चत्वारोंजलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः ॥ द्वावंजली प्रसूतायाः स्तन्यस्यापि हि योषितः । प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम् ॥ हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः । योजयंति विकारैस्तु दोषा वृद्धक्षयप्रदाः इति ॥ " अत एवाह वाग्भटः " रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता । " ग्रंथान्तरेऽपि " विकृताविकृता देहं घ्नंति ते वर्द्धयंति च। " तथाच चरकेऽपि " विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ " इति।
२ अस्ति ब्रह्मचिदानंदं स्वयंज्योतिर्निरंजनम् । ईश्वरो लिंगमित्युक्तमद्वितियमजं विभुम् ॥ निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनीश्वरम् । सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः ॥ अनाद्यविद्यापरिताःयथाग्नौ विस्फुलिंगकाः ।

अब एकसे कार्यकी उत्पत्तिक्रम कहते हैं ।

प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ॥ ५२ ॥
इच्छामयीं महद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत् ॥
त्रिविधः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५३ ॥

अर्थ–विश्वकी जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी (सत्वरजतमोगुण स्वभावोंसे अनेक प्रकारकी (और महद्रूप) महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणिके समान) बुद्धिको उत्पन्न करती भई उस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न हुआ वह राजसी तामसी और सतोगुण भेदसे तीन प्रकारका है। तहां वैकारिक सतोगुणी, तैजस रजोगुणी और भूतादि तामसी जानना ॥

त्रिविध अहंकारके कार्य ।

तस्मात्सत्वरजोयुक्तादिंद्रियाणि दशाभवन् ॥ मनश्च जातं ता-न्याहुः श्रोत्रत्वङ्नयनं तथा ॥५४॥ जिह्वाघ्राणत्वचोहस्त-पादोपस्थगुदानि च ॥ पंचबुद्धींद्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥ कर्मेंद्रियाणि पंचैव कथ्यंते सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ५५ ॥

अर्थ–राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्रकरके अनुविद्ध(मिश्रित) जो सात्विक अहंकार है उससे श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग और भग), गुदा और मन ये ग्यारह इन्द्रियें उत्पन्न हुईं उनमें कान त्वचा आदि ज्ञानेंद्री हैं क्योंकि इनको बुद्धिका आश्रय है, अवशिष्ट (बाकी) रही जो पांच वह कर्मेन्द्री हैं क्योंकि इनको कर्मका आश्रय है । तथा उभयात्मक बुद्ध्यात्मक और कर्मात्मक मन है अथवा राजस अहंकारसे इन्द्री, सात्विकसे इन्द्रियोंके देवता और मन ऐसे पृथक्त्वकरके उत्पत्तिक्रम जानना । कोई तस्मात् इस जगह 'तमःसत्वरजोयुक्तात्' ऐसा पाठ कहते हैं और व्याख्या करते हैं 'तमःसत्वरजोयुक्त' से इंद्री हुई।तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्रमें इन्द्रियोंको अहंकार-जन्य कही हैं और वैद्यकमें भौतिकी कही है इतना फरक है ॥

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति ।

तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहंकारादथाभवत् ॥ ५६ ॥ तन्मात्रपंचकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः ॥ शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ रसतन्मात्रकं गंधतन्मात्रं चेति तद्विदुः ॥ ५७ ॥

अर्थ–राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्वमात्रकरके अनुविद्ध (युक्त)

ऐसा जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी उसी आश्रयपर मुख्यत्वकरके रहनेवाले ऐसे गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गंधतन्मात्र; इस प्रकार जानने । इन तन्मात्राओंको योगिपुरुषही जान सकते हैं ॥

तन्मात्रापंचकोंका विशेष ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगंधावनुक्रमात् ॥
तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ॥ ५८ ॥

अर्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये क्रमकरके तन्मात्रपंचकोंके विशेष जानने । इनका सुख दुःख और मोह इन्हींसे अनुभव होता है अतएव स्थूलभावको प्राप्त हुए जानने तथा तन्मात्रपंचकोंका अनुभव सूक्ष्म है इसीसे नहीं होता ॥

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति ।

तन्मात्रपंचकात्तस्मात्संजातं भूतपंचकम् ॥
व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-शब्दादि पंचतन्मात्राओंसे भूतोंके पंचक उत्पन्न हुए उनके नाम आकाश[1] पवन[2] अग्नि[3] जल[4] और पृथ्वी[5] इस प्रकार जानने ॥

इन्द्रियोंके विषय ।

बुद्धींद्रियाणां पंचैव शब्दाद्या विषया मताः ॥ ६० ॥
कर्मेंद्रियाणां विषया भाषादानविहारतः ॥
आनंदोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६१ ॥

अर्थ-श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं; इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच विषय क्रमपूर्वक जानने । उदाहरण जैसे कर्ण इन्द्रीका शब्द, त्वगिन्द्रीका स्पर्श, चक्षु इन्द्रीका रूप, जिव्हाइन्द्रीका रस और घ्राण (नासिका) इन्द्रीका गंध विषय जानना । वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेन्द्री हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनंद, उत्सर्ग ये पांच विषय क्रमकरके जानने । उदाहरण जैसे वाणीइन्द्रीका विषय भाषण, हस्तइन्द्रीका ग्रहण, पैरोंका विहार, उपस्थका आनंद, और गुदाका उत्सर्ग ये विषय जानने ॥

---

१ आकाशका शब्दमात्र गुण जानना । २ वायुका मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्दगुण जानना । ३ तेजका मुख्य गुण रूप और आनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानने । ४ उदकका मुख्य गुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानने । ५ पृथ्वीका मुख्य गुण गंध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानने ।

मूलप्रकृतिके पर्यायनाम।

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा॥
एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता॥ ६१॥

अर्थ—प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्य और अविकृति ये प्रकृतिके पर्याय शब्द जानने। वह प्रकृति शिव कहिये ईश्वरके आश्रय करके ऐसे रहती है जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यके आश्रय रहता है। वह सत्व, रज, तमरूपा है जैसे सुश्रुतमें लिखा है "सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवे हेतुमव्यक्तं नामेति।"

अब चौवीस तत्वराशिको पृथक् निकालके कहते हैं।

महानहंकृतिः पंच तन्मात्राणि पृथक् पृथक्॥
प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः॥ ६२॥

अर्थ—महत्तत्व अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इन्द्रियादिकोंके कारण हैं अर्थात् प्रकृतिरूप और प्रकृतिके कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं॥

षोडश विकार।

दशेंद्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पंच च॥
विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः॥ ६३॥

अर्थ—दश इन्द्री, उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलह विकार हैं। ये संपूर्ण जगत्में व्याप्त होकर स्थित हैं॥

चौवीस तत्वराशि।

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे॥ जीवात्मा नियतो नित्यं वसति स्वांतदूतवान्॥ ६४॥ स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः॥ व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबंधनैः॥ ६५॥

अर्थ—अव्यक्त १ महान् २ अहंकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रसतन्मात्रा ७ गंधतन्मात्रा ८ श्रोत्र (कान) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु (नेत्र) ११ घ्राण (नासिका) १२ रसना (जीभ) १३ वाक् (वाणी) १४ हाथ १५ पैर १६ उपस्थ (लिंग और योनि) १७ पायु (गुदा) १८ मन १९ पृथ्वी २० आप २१ तेज २२ वायु २३ और आकाश २४ इस प्रकार चौव्वीस तत्व हुए। इनकरके सिद्ध (निर्मित) शरीररूप घरमें पच्चीसवां पुरुष सर्वकाल रहता है, उसको जीवात्मा कहते हैं। मन है सो उसका दूत है। वह जीवात्मा महदादिकृत

सूक्ष्मलिंगशरीरमें रहता है अतएव उसको देही अथवा कर्मपुरुषभी कहते हैं। अतएव पापपुण्य सुखदुःख इन करके वह युक्त है तथा मनके साथ वर्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्मबंधन तिसकरके बद्ध है ॥

आदिशब्दसे इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मन, संकल्प, विचार, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय, विषय, उपलब्धी इत्यादिक गुणभी उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनसेभी बद्ध है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि विकाररहित जीवात्मा विकारवस्तुओं करके कैसे बद्ध होता है ? तहां कहते हैं कि जीवात्मा निर्विकारभी है परंतु विकारवान् वस्तुके संयोगसे विकारवान् हो जाता है। इसमें दृष्टांत देते हैं कि जैसे सायंकालमें आकाश सूर्यकिरणके संयोगसे लाल हो जाता है उसी प्रकार जीव विकारवान् हो जाता है वास्तवमें आकाशके समान निर्विकार है। कोई आचार्य कहते हैं कि ये संपूर्ण विकार उस लिंगदेहमें प्रतिबिंबके सदृश रहते हैं जैसे तलाव पुष्करणी आदिके जलमें जलके कांपनेसे समीप स्थित वृक्षादि कंपित दृष्टि पडते हैं।

जीवके बंधन ।

कामक्रोधौ लोभमोहावहंकारश्च पंचमः ॥
दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बंधाय देहिनः ॥ १ ॥

अर्थ-काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्री और बुद्धि ये उस जीवके बंधन हैं। इनके लक्षण क्रमसे हम अन्य ग्रंथांतरोंसे कहते हैं ॥

काम ।

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ॥
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते ॥ २ ॥

अर्थ-पुरुषोंके स्त्रियोंमें और स्त्रियोंके पुरुषोंमें परस्पर प्रीति करनेको काम कहते हैं परंतु यह प्रीति उपभोगनिमित्त जाननी ॥

क्रोध ।

य ऊष्मा हृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ॥
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ-एकवारही उस प्राणीके हृदयसे गरमी प्रगट होकर परको हिंसात्मक होती है इससे चित्तको एक प्रकारका क्लेश होता है उस क्लेशको क्रोध कहते हैं ॥

लोभ ।

परार्थे परभागांश्च परसामर्थ्यमेव च ॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः ॥ ४ ॥

अर्थ—परधन, परभाग और पराई सामर्थ्यको देखकर और सुनकर इस प्राणीके चित्तमें जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको लोभ कहते हैं ॥

मोह ।

अश्रेयः श्रेयसो मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत् ॥
मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनोंमें बुद्धिके भ्रमणको संशय कहते हैं । और अहितमें हित देखना उसको मिथ्याज्ञान कहते हैं ॥

अहंकार ।

अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते ॥
कार्यकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अहं (मैं करता हूं) इस अभिमानके साथ क्रियाओंमें प्रवृत्त होता है उसको अहंकार कहते हैं ॥

अब बंधन अबंधन व्याधि और आरोग्यके लक्षण ।

आप्नोति बंधमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते ॥
तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत्सुखावहम् ॥ ६६ ॥

इति शार्ङ्गधरे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ— यह पुरुष अज्ञानकरके क्लेशादिक बंधनको प्राप्त होता है और आत्मज्ञान (धर्माधर्मके विचार) से उस बंधनसे छूटता है । शरीर और शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहते हैं, तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते हैं । दुःख है सो इस प्राणीके स्वभावके प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम् ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामकृतभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

प्रथम लिख आये हैं कि " आहारादिगतिस्तत्र " अतएव उसी आहारगतिअध्यायको कहते हैं ।

आहारकी गति और अवस्था ।

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः ॥ माधुर्यं फेन-

भावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥ १ ॥ अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ॥ ततः समानमरुता ग्रहणीमभिधीयते ॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ॥ २ ॥

अर्थ–पांचभौतिक अन्नादिकोंका आहार प्राणवायुकरके प्रेरित हुआ प्रथम आमाशयमें प्राप्त होता है । फिर वही छः रसयुक्तभी आहार मधुरभाव और फेन (झाग) रूपको प्राप्त होता है । फिर वही आहार उसी आमाशयमें पाचकपित्तके तेजसे विदग्ध (कर्पट) होकर अम्ल खट्टे भावको प्राप्त होता है । पश्चात् उस आमाशयसे समानवायुकरके ग्रहणी (अग्निस्थान) में प्राप्त होता है उस ग्रहणीस्थानमें कोष्ठाग्निकरके उस आहारका पाक होता है । वह पाक कटु (चरपरा) होता है आहारकी प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी अवस्था कटु जाननी ॥

उक्त आहारकी दो अवस्था ।

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥

अर्थ–उस आहारका उत्तम पाक होनेसे रस होता है और कच्चा परिपाक होनेसे उसीकी आम होती है ॥

रस और आमके कार्य ।

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ॥ पुष्णाति धातूनखिलान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥४॥ मंदवह्निविदग्धश्च कटुश्चाम्लो भवेद्रसः ॥ विषभावं व्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ ५ ॥

अर्थ–वही पूर्वोक्त रस अग्निके बलकरके मधुरभाव और स्निग्धताको प्राप्त होकर संपूर्ण रक्तादि धातुओंको पोषण करता है अतएव उत्तम प्रकारसे परिपक्व हुआ रस अमृतके तुल्य है और वही रस मंदाग्निकरके विदग्ध हुआ विषभावको प्राप्त

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे प्रगट होता है अतएव आहारकी पांचभौतिक संज्ञा है । जैसे लिखा है "चतुर्द्धा षड्रसोपेतोऽनेकविध्यनुपक्रमः । द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः पांचभौतिकः ॥ " २ हृदि प्राणोनिलो मतः । ३ नाभिस्तनांतरे जंतोराहुरामाशयं बुधाः इति । ४ आमाशय कफका स्थान है और कफका मिष्ट रस है अतएव इस स्थानमें छः प्रकारकाभी रस मिष्ट हो जाता है। अतएव ग्रंथांतरमें लिखा है कि "भुक्त्वादौ कफस्य वृद्धिः" इसी मिष्ट अवस्थाके आहारकी आमाजीर्ण संज्ञा है जैसे लिखा ह "माधुर्यमन्नं सृजतामपूर्वं" । ५ पाचक पित्त एक पीले रंगका द्रव पदार्थ है । जब वह पूर्वोक्त मधुर आहारमें मिलता है तब उसको खट्टा कर देता ह । ६ जैसे अमृत–जीवव मधुरादि गुणयुक्त होता है उसी प्रकार उत्तम रस जीवन, धारण, तर्पणादि गुणयुक्त होता है। क्योंकि सौम्य गुणवाला है । जैसे सुश्रुतमं लिखा है "स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्यावगम्यते ।"

होता है, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राण नाशकारी होता है । कदाचित् अल्प होनेसे मारणात्मक नहीं होता तो दोषोंके दूषित[1] होनेसे अनेक रुधिरविकार, ज्वर, भगंदर, कुष्ठादि रोगोंको करता है ॥

आहारके सारको कहकर निःसारको कहते हैं ।

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ॥
शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥
तत्किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत्पक्वाशये च तत् ॥ ६ ॥

अर्थ–उस आहारके रसको सार कहते हैं और आहारका निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं । तहाँ वह द्रव मूत्रवाहिनी शिराद्वारा बस्तिमें जाकर मूत्र हो जाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वो पक्वाशयके एकदेशमें जायकर मल (विष्ठा) हो जाता है ॥

मलका अधोगमन ।

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥
प्रवाहिनी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम् ॥ ७ ॥

अर्थ–गुदास्थित मल अपानवायुकरके अधःप्रेरित वलि[2]त्रितयात्मक गुदाके द्वारा बाहर गिरता है उन वलियोंके नाम कहते हैं । प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त्त (शंखके आटेके समान) तीन वली हैं ॥

सारभूत रसकाभी कार्यत्वकरके स्थानांतरप्राप्ति कहते हैं ।

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥
रंजितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वो रस समानवायुकरके ऊपरके प्रेरित अग्निस्थानसे हृदयमें[3] आकर

---

१ दोषोंके दूषित होनेसे रोगोंको करता है किंतु स्नेहदग्धके सदृश आप नहीं करता अर्थात् घृत तैलसे जला हुआ मनुष्य घृतसे जला, तैलसे जला कहाता है । परंतु वास्तवमें अग्निहीसे जला हुआ होता है । जैसे लिखा है " रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवति ये । तज्जा इत्युपचारेण तान्याहुर्घृतदग्धवत् ॥" २ गुदाके अवयवभूत भीतर तीन २ वली एकसे एक ऊपर हैं इनका आकार शंखकी नाभिके समान है । ३ रस सकल शरीर-गमन-शीलत्व होनेसे ग्रहणीस्थानसे हृदयमें प्राप्त होता है । जैसे लिखा है ' सर्वदेहानुसारत्वेऽपि तस्य हृदयस्थानं स हृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवेश्योर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यगास्ताः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य रसस्योऽनुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या ' ।

रंजकपित्तकरके रांगयुक्त तथा पाचकपित्तमें पाचित हो रुधिररूपको प्राप्त होता है ॥

रक्तको प्राधान्य ।

रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ॥ ९ ॥

अर्थ–सर्व शरीरस्थ (पांचभौतिक) रुधिर देहमूलत्व होनेसे जीवका उत्तम आधार है । उसके गुण स्निग्ध, गुरु, चंचल और स्वादु हैं वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे पित्तके समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है ॥

रसादि धातुओंके उत्पत्तिका क्रम ।

पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ॥
शुक्रत्वं यांति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ॥ १० ॥

अर्थ–रसादिक सात धातु पित्ततापकरके परिपक्व हो क्रमकरके एक महीना शुक्र धातुको उत्पन्न करती है उसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ॥

गर्भोत्पत्तिक्रम ।

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ ११ ॥

---

१ प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल हो जाता है जैसे लिखा है " रसः किलैकाहेनैव संपद्यते द्वितीये कपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति, दिवसे तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवेत्, पंचमेहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेहानि संप्राप्ते शक्रगोपकाभः एवं सप्ताहाद्रसो रक्तं भवतीति " । २ विस्रता द्रवता रागः स्पंदनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यंते शोणिते यतः ॥ इति । ३ देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्रक्षेद्धि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते ॥ ४ रसके ग्रहणसे यह दिखाया कि रसही शुक्रत्वको प्राप्त होता है। इसीवास्ते ' शुक्रत्वं याति ' ऐसा एकवचन कहा । आदिशब्दके ग्रहणसे वही रस रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थिभावको प्राप्त होता है । कोई आचार्य कार्यकारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येक धातु एक महीनेमें शुक्र होती है ऐसा कहते हैं । और स्त्रियोंके रज होता है जैसे " रसादेव रजः स्त्रीणां मासि मासि त्र्यहं भवेत् । तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ॥ " उक्तश्लोकमें तथा इस पदके ग्रहणसे यह दिखाया कि स्त्रियोंकेभी शुक्र होता है, क्योंकि द्रावणादि प्रयोगमें प्रत्यक्ष देखा जाता है । अन्यथा उनको मैथुनानंद कैसे प्राप्त होता है, तथा लिखाभी है " सौम्यत्वगाश्रयं स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्गतम् । स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद्गर्भाय चार्त्तवम् ॥ " अब कहते हैं एक मासमें रसका शुक्र होता है उसका हिसाब इस प्रकार है कि आहारका रस एकही दिनमें होता है और रक्तादि धातु पांच २ दिनमें होती हैं । विशेष देखना हो तो हमारे बनाये बृहन्निघंटुरत्नाकरमें देख लेवे ।

अर्थ–मनके संकल्पकरके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध[1] शोणित (आर्त्तव) और शुद्धधातु[2] इनके मिलापकरके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भधारण होता है जब वह गर्भ प्रगट होता है तब उसको बालक[3] कहते हैं ॥

पुत्र कन्या होनेमें कारण ।

आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ॥
नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ॥ १२ ॥

अर्थ–गर्भाधानकालमें ऋतुसंबंधी रक्तकी आधिक्यतासे कन्या होती है और शुक्रधातुके आधिक्य होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक संतान होती है । इसका कारण कर्मके अनुसारिणी परमेश्वरकी[4] इच्छा है ॥

बालककी मात्राका प्रमाण ।

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेही-कृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः ॥ वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः ॥१४॥ माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः ॥ ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः ॥ १५ ॥ ततो बालकवन्मात्रा ह्रसनीया शनैः शनैः ॥ मात्रेऽयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

अर्थ–बालकको[5] प्रथम[6] महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत[7] इनमेंसे जो उपयुक्त

---

१ शुद्धआर्त्तवके लक्षण–" शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्त्तवं प्रशंसंति यच्चापो न विरंजयेत् ॥ त्र्यहं गत्वा प्रवृत्तिं च कुरुते शोणितः स्त्रियः। व्युपद्रवा स्त्रंसते या गर्भस्तस्य ध्रुवं भवेत् ॥ " २ शुद्धशुक्रके लक्षण–" स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च । शुक्रमिच्छंति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ॥ मातादिदूषितं पूतिकुणपग्रंथिरूपिणम् । क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गंधशुक्रं तु निष्फलम् ॥ ३ बालशब्द कन्या पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है। ४ " यथेच्छा " इस पदके कहनेसेही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिकभी बालक होते हैं । जैसे लिखा है " बीजेन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ । यमावित्यभिधीयंते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ " ५ बालक तीन प्रकारके होते हैं एक तो दूध पीनेवाला, दूसरा दूधअन्नका आहारकर्त्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्त्ता जानना । इनको क्रमसे दूध सहत और खांडके साथ औषध देनी चाहिये । ६ प्रथम ग्रहण इस जगह बालकके जन्मदिनसे कहा है । ७ घृत गौका लेवे ।

होय उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषध डाल अवलेह भूत (चाटनेके योग्य) करके देवे । दूसरे महीनेमें दो रत्ती; तीसरे महीनेमें तीन रत्ती, इस प्रकार एक एक रत्तीके हिसाबसे औषधकी वृद्धि एक वर्ष करानी चाहिये तो मासेके प्रमाण होय दूसरे वर्षमें दो मासे तीसरेमें तीन मासे इस प्रमाण मासे २ औषधकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यंत करनी चाहिये । सोलह वर्षके उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्थापर्यंत औषधभक्षणमें सोलह मासेकाही प्रमाण जानना । फिर सत्तरवर्षके उपरान्त उस मात्राको जैसे बालकको बढाई थी उसी प्रमाणक्रमसे मात्राको घटाता चला आवे इसका यह कारण है कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकित्सा है तथा कल्करूप चूर्णरूप और काढा इनकी मात्रा बालकसे चौगुनी देनी चाहिये ॥

अंजनादि करनेका काल ।

अंजनं च तथा लेपः स्नानमभ्यंगकर्म च ॥
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—बालकोंके नेत्रोंमें काजल आदिका लगाना, उवटना करना, स्नान (न्हवाना) करना, तैलादिककी मालिश करना, उलटी कराना और प्रतिमर्श (निरूहणबस्ति अर्थात् गुदामें पिचकारी देना) इत्यादि कर्म बालकके जन्मसेही हितकारी हैं ॥

वमनविरेचनादि कर्म ।

कवलः पंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च ॥
विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम् ॥ १८ ॥

अर्थ—पांच वर्षके उपरांत कवल[1] (गंडूषभेद जो औषधादिकरके कुरले करना) करे पांचवर्षके भीतर न करे । आठ वर्षके उपरांत नस्य (नास) लेवे, सोलह वर्षके पश्चात् विरेचन[3] (जुलाब) देवे, वीस[4] वर्षके पश्चात् मैथुन करना चाहिये ॥

---

१ औषध इस जगह सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये जैसे लिखा है "सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्ष्याख्यः शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम् ॥ अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकं वचा । हेमचूर्णानि कैडर्यः श्वेतदूर्वाघृतं मधु ॥ चत्वारोभिहिता प्राश्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि । कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिविवर्द्धनाः ॥ इति । कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालकको कहते हैं जैसे " विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्द्धितम् ॥ कोलास्थिमात्रं क्षीरादेर्दद्याद्भैषज्यकोविदः। क्षीरान्नादः कोलमात्र अन्नादेर्दुंबरोपमम् ॥"इति। २ मासा इस जगह मागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्तीका लेना चाहिये। ३इस जगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जित है परंतु मृदु जुलाबका निषेध नहीं है।जैसे लिखा है, " अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्याल्लघुक्रियाम् ॥ " ४ वीस वर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है स्त्रियोंके प्रति नहीं है क्योंकि स्त्रियोंको १६ वर्षकी अवस्थामें समानवीर्यत्व कहा है। यथा " पंचविंशतिमे वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ "

बाल्यादि दश पदार्थोंका ह्रास ।

बाल्यं वृद्धिर्वपुर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ॥
बुद्धिः कर्मेंद्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–जन्म होनेके दश वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होती है। वीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होता है। तीस वर्षके पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता इस श्लोकमें "छविर्मेधा" ऐसा पाठभी है उस पक्षमें तीस वर्षपर्यंत कांति रहती है फिर नहीं रहती। चालीस वर्षके उपरांत ग्रंथ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहती। पचास वर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है। साठ वर्षके उपरांत दृष्टिकी तेजी नष्ट होती है अर्थात् दृष्टि मंद पड जाती है। सत्तर वर्षके उपरांत वीर्य नहीं रहता। अस्सी वर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट हो जाता है। नव्वेवर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती। सौ वर्षके पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेन्द्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहते हैं। एक सौ दशवर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होता है और एक सौ वीस[1] वर्षके पश्चात् जीव नष्ट होता है अर्थात् मरता है। इस प्रकार दश दश वर्षके अनंतर एक एकका ह्रास (हानी) होती है ॥

वातप्रकृतिमनुष्यके लक्षण ।

अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ॥
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥

अर्थ–छोटे २ बाल, कृश और रूखा (तेजरहित) शरीर, वाचाल (बकवादी), चंचल चित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमन करे, इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होते हैं ॥

पित्तप्रकृतिमनुष्यके लक्षण ।

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान्स्वेदी च रोषणः ॥
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥

अर्थ–विनासमय बालें[2] सपेद होजावें, बुद्धिवान् हो, अत्यंत पसीने आते हों, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्त प्रकृति जाननी॥

कफप्रकृतिवालेके लक्षण ।

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगः स्निग्धकेशो महाबलः ॥
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥

---

१ यह १२०वर्षोंकी मनुष्योंकी परमायु जानना। यथा "समाः षष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पंच च निशा हयानां द्वात्रिंशत् खरकरभयोः पंच च कृतिः । विरूपातश्चायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनः स्मृतं छागादीनां दशकसहितं षट् च परमम् ॥" २ "क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तं च केशान् पचाति पलितं तेन जायते ॥"

अर्थ–गंभीर (संपूर्ण कार्यमें क्षमाशीलबुद्धि जिसकी) हो, पुष्टशरीर, चिकने बाल और जिसकी देहमें बहुत बल हो तथा सपनेमें जलाशयों (तालाव सरोवर आदि)-को देखे उस मनुष्यकी कफकी प्रकृति जाननी ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण।

ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्बणा नराः ॥

अर्थ–दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोष प्रकृतिवान् जानना और तीन दोषोंके लक्षणोंसे मनुष्य त्रिदोषजन्य प्रकृतिवाला जानना चाहिये ॥

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति ।

तमःकफाभ्यां निद्रा स्यान्मूर्च्छा पित्ततमोभवा ॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्रा श्लेष्मतमोनिलैः ॥ २३ ॥

अर्थ–तमोगुण और कफके संसर्गसे निद्रा आती है, पित्त और तमोगुणकरके मूर्च्छा[1] आती है रजोगुण पित्त और वायु इन करके भ्रम[2] होता है । कफ, तम और वायु इनकरके घटपटादि पदार्थोंका ज्ञान होकर शरीर गुरु (भारी) होय जंभाई और क्लम कहिये परिश्रमविना श्रम ये लक्षण होते हैं इस स्थितिको तंद्रा[3] कहते हैं ॥

ग्लानिके लक्षण ।

ग्लानिरोजक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण धातुओंके सारभूत ओजके क्षयकरके दुःखसे अजीर्णसे और श्रमसे ग्लानि होती है । ग्लानिशब्द क्लमका दूसरा पर्यायवाचक नाम है अर्थात् हर्ष-क्षय जानना ॥

आलस्यके लक्षण ।

यः सामर्थ्येप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ॥ २४ ॥

अर्थ–देहमें सामर्थ्य होनेपरभी काम करनेमें उत्साहरहित हो उसको आलस्य कहते हैं ॥

---

१ रूपादिके अविज्ञानको मूर्च्छा कहते हैं अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी । यद्यपि वातादिक तीन्हों दोषोंसे और रुधिरसे मूर्च्छा होती है तथापि पित्त प्रधान होनेसे ग्रहण किया है । जैसे लिखा है " वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ " २ " येनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥" ३ " इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवं जृंभणं क्लमः । निद्रार्त्तस्यैव यस्यैते तस्य तंद्रां विनिर्दिशेत् ॥ दुःख तीन प्रकारका है अध्यात्मिक, अधिदैव, अधिभूत । ४ शरीरके परिश्रम करनेको (दण्ड कसरतको) परिश्रम कहते हैं " शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते । " ५ ग्लानिके लक्षण तंत्रांतरमें इस प्रकार लिखे हैं 'येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः । न चान्नमभिकांक्षेत ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥' ६ आलस्यके लक्षण–सुखस्पर्शिप्रसंगित्वं दुःखद्वेषमलोलता । शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्माण्यालस्यमुच्यते ॥

जंभाईके लक्षण।

चैतन्यशिथिलत्वाद्यः पीत्वैकश्वासमुद्धरेत् ॥
विदीर्णवदनः श्वासं जृंभा सा कथ्यते बुधैः ॥ २५ ॥

अर्थ—चेतनके शिथिल होनेसे मनुष्य एक श्वासको पी कुछ देर मुखमें रखकर फिर उसको मुख फाडकर बाहर निकाले उसको जंभाई कहते हैं॥

छींकके लक्षण।

उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात् ॥
शब्दः संजायते तेन क्षुतं तत्कथ्यते बुधैः ॥ २६ ॥

अर्थ—उदान (कंठस्थित) वायु और प्राण (हृदयस्थ) वायु इनका ऊपर मस्तकमें संयोग हो उससे (मस्तकसे) कफ गिरे इन दोनोंके संयोग होनेसे जो शब्द होय उसको क्षुत (छींक) कहते हैं॥

डकारके लक्षण।

उदानकोपादाहारस्वस्थितत्वाच्च यद्भवेत् ॥
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ २७ ॥

इति शार्ङ्गधरे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ—उदान (कंठस्थित) वायुके कुपित होनेसे तथा अन्नादिकोंके आहारको अपने स्थानमें जायकर सुस्थिर रहनेसे जो वायुका ऊर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार (डकार) कहते हैं॥

इति श्रीकृष्णलालात्मजदत्तराममाथुरनिर्मितभाषाटीकायां
आहारादिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः।

प्रथमाध्यायमें यह कह आये हैं कि " रोगाणां गणना चेति" अतएव उसी रोगोंकी गणनाको दिखाते हैं।

रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिर्या प्रकीर्त्तिता ॥
मयात्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ॥ १ ॥

---

१ जृंभाके लक्षणान्तर—पीत्वैकमनिलश्वासमुद्गमेद्विवृताननः। यन्मुंचति च नेत्रांभः स जृंभ इति कीर्तितः ॥ २ नस्त इति पाठांतरम्। अन्यत्राप्युक्तं " प्राणोदानौ यदा स्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रपाथे स्थितौ। नस्तः प्रवर्त्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत् ॥ "

अर्थ–ज्वरादिरोगोंकी गणना (संख्या) प्रथम जो मुनीश्वरोंने कही है उसी संख्याको हम इस ग्रंथमें कहते हैं, क्योंकि उन रोगोंके अनेक भेद मुनीश्वरोंने कहे हैं। तात्पर्य यह है कि इस ग्रंथमें रोगोंकी गणनामात्र कही है अन्य नहीं। संख्याभी इस ग्रंथमें प्रयोजनके वास्ते कही है क्योंकि निदानादि पंचक रोगज्ञानके उपाय हैं। तिन्होंमें संप्राप्ति जो कही है उसीका दूसरा नाम संख्या है। जैसे लिखा है " संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः। सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यंतेऽष्टौ ज्वरा इति"॥

ज्वररोगसंख्या।

पंचविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते॥ २ ॥ पृथग्दोषैस्तथा द्वंद्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः॥ एकश्च संनिपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ ३ ॥ प्रायशः सन्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः॥ तथागंतुज्वरोप्येकस्त्रयोदशविधो मतः॥ ४ ॥ अभिचारग्रहावेशशापैरागंतुकस्त्रिधा॥ श्रमाद्दाहात्क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातकज्वरः ॥ ५ ॥ कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौषधगंधतः॥ अभिषंगज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः॥ ६ ॥

अर्थ–ज्वर पच्चीस प्रकारका कहा है उसके भेद कहते हैं। १ वातज्वर[1] २ पित्तज्वर[2] ३ कफज्वर[3] ४ वातपित्तज्वर[4] ५ वातकफज्वर[5] ६ पित्त-

१ शरीरमें कंप, ज्वरका विषमवेग (कभी अधिक कभी थोडा), कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींक न आवे, देहका रूखापन, मस्तक और अंगोंमें पीडा, मुखका विरस होना, मलका न उतरना, शूल, अफरा और जंभाई ये वातज्वरके लक्षण हैं। २ ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कंठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना, पसीने आवे, अनर्थ बकना, मुखमें कडुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, मल, मूत्र, नेत्र त्वचाका पीला होना और भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरके हैं। ३ गीले वस्त्रसे अंगोंको ढकनेके समान देहका होना, ज्वरका मंदवेग, आलस्य, मुख मीठा, मल मूत्र सफेद हों, देहका जकड जाना, अन्नमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, सूखी उलटियोंका आना, रोमांचोंका होना, अतिनिद्रा, नाडियोंका रुकना, थोडा दस्त हो, सरेकमा, मुखमें नोनकासा सवाद, देह थोडा गरम, रद्दका होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुखसे कफका स्राव, खांसी, नेत्रोंका सपेदरंग, तथा देहमें पीडा, शीतका लगना, गरमी प्यारी लगे और मंदाग्नि हो ये कफज्वरके लक्षण हैं। ४ प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठमुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, जोडोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं। ५ देहमें आर्द्रता, संधियोंमें पीडा, निद्रा आना, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे पानीका गिरना, खांसी, पसीने, दाह और ज्वरका मध्यम वेग हो ये वातकफज्वरके लक्षण हैं।

कफज्वर[1] ७ वातादि तीनों दोषोंके मिलनेसे एक संनिपातज्वर[2] तथा संनिपातज्वरके भेद अनेक हैं तिनमें प्रायःकरके पांच विषमज्वर हैं। जैसे संतत[3], सतत[4], अन्येद्यु[5], तृतीयक[6], चतुर्थक[7]। एक प्रकारका आगंतुकज्वर उसके तेरह भेद हैं उनको कहता हूं अभिचारज्वर[8] ग्रहावेशज्वर[9] और शापज्वर[10] ये तीन प्रकारके ज्वर आगंतुक ज्वर हैं। श्रमसे उत्पन्न हुआ ज्वर, अग्न्यादि दाहकरके उत्पन्न हुआ, घावसे उत्पन्न, शस्त्रादिके प्रहारसे उत्पन्न, ये चार ज्वर 'अभिघात' संज्ञक जानने। तथा मनमें इच्छित स्त्रीके प्राप्त न होनेसे जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं। और भीति (डरने) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं। शोक (शोच) से होय सो शोकज्वर, क्रोधसे होय सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये बच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिक विष इनके सेवनसे जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं। तीव्र औषधिके गंधसे जो ज्वर होता है उसको गंधज्वर कहते हैं, ये छः प्रकारके ज्वर 'अभिषंग' संज्ञक हैं। इस प्रकार तेरह प्रकारके आगंतुकज्वर और पहले बारह ज्वर सब मिलानेसे पच्चीस प्रकारके ज्वर होते हैं॥

---

१ कफसे लिहसा मुख तथा मुखमें कटुआट, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास, वारंवार दाह और शीत लगे, तथा पसीने, कफ पित्तका गिरना ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं। २ एकाएक क्षणमें दाह लगे, क्षणमें शीत लगे, हड्डी जोड और मस्तकमें दर्द, आंसू भरे, काले और लाल तथा फटे हुएसे नेत्र हों, कानोंमें शब्द और दर्द,कंठमें कांटे पड जावें, तंद्रा, बेहोसी, अनर्थभाषण, खांसी, प्यास, अरुचि, भ्रम, जलीके माफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिरमिला थूके, सिरको इधर उधर पटके, अत्यंत प्यासका लगना, निद्रा जाती रहे, छातीमें पीडा, पसीने आवे, कभी २ बहुत देरमें मलमूत्र थोडे २ उतरें, कंठमें घरघरं कफका बोलना, देहमें काले लाल चकत्तोंका होना, बहुत धीरे बोलना, कान, नाक, मुख इत्यादि छिद्रोंका पकना, पेट भारी हो, वात, पित्त और कफका देरमें पाक, शीत लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, रात्रिमें जागना, अथवा बिलकूल निद्राका नाश होना, कभी गावे, कभी रोवे, कभी नाचे, कभी हँसे और देहकी चेष्टा जाती रहे ये सब लक्षण सन्निपातज्वरके हैं। बाकी और जो तेरह संनिपात हैं उनके लक्षण माधवनिदानमें देखो। ३ सात दिन वा दश दिन, वा बारह दिन जो देहमें एकसा ज्वर रहे उसको संततज्वर कहते हैं। ४ दिनरात्रिमें दोवार आवे उसको सततज्वर कहते हैं। ५ दिनरात्रिमें एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं। ६ जो एक दिन बीचमें देकर आवे उस ज्वरको तृतीय (तिजारी) कहते हैं। ७ दो दिन बीचमें देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वरको चातुर्थिक (चौथिया) जानना। ८ श्येनादिक (शत्रुमारणार्थ शिकराआदिके) होम करनेसे जो ज्वर उत्पन्न हो अथवा विपरीत मंत्रकरके सरसोंका हवन करनेसे जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको अभिचारिक ज्वर जानना। ९ ब्रह्मराक्षसादिके संबंधसे जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं। १० ब्राह्मण, गुरु, सिद्ध और वृद्ध इनके शापसे जो ज्वर होता है उसको शापज्वर जानना।

अतिसार रोग ।

पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥
अतिसारः सप्तधा स्यात्-

अर्थ-अतिसाररोग सात प्रकारका है जैसे-१वात १ २ पित्त २ ३ कफ ३ ४ सन्निपात ४ ५ शोक ५ ६ आम ६ और ७ भय ७ से उत्पन्न होनेवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने ॥

संग्रहणी रोग ।

ग्रहणी पंचधा मता ॥ पृथग्दोषैः सन्निपातात्तथा चामेन पंचमी ॥ ८ ॥

अर्थ-संग्रहणीरोग पांच प्रकारका है। जैसे १ वातसंग्रहणी ८, २ पित्तसंग्रहणी ९, ३ कफ-

---

१ कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा थोडा थोडा और वारंवार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले, तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना । २ पित्तसे पीला, काला, धूंसरे रंगका मल उतरे, तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा पक जाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं । ३ कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे, तथा रोमांच खडे हौंय ये लक्षण कफातिसारके जानने । ४ शूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो वह त्रिदोषजनित अतिसार कष्टसाध्य जानना । ५ जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश हो जावे वह उसी २ वस्तुका शोच करे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे (धातुक्षय होय) उस प्राणीके बाष्प नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो और ऊष्मा कहिये शोकजन्य देहका तेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मंदकर रुधिरको कुपित करे, तब यह रुधिर चिरमिठीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गंधयुक्त अथवा गंधरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं। इसी प्रकार भयातिसारभी जान लेना । ६ अन्नके न पचनेसे दोष (वात पित्त कफ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमें प्राप्त हो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका होय । तथा शूलयुक्त दस्त उतरे उसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं । ७ भयसे होनेवाले अतिसारमें जिस दोषका कोप हो उसी दोषके समान लक्षण होते हैं। ८ वातग्रहणीवालेका अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता (यह वायुके त्वचाके चिकनेपनको सोखनेसे होता है), कंठमुखका सूखना, भूक, प्यास न लगे, मन्द दीखे, कानोंमें शब्द हो, पसवाडे, जांघ, पेडू और कंधेमें पीडा होवे, विषूचिका हो अर्थात् दोनों द्वारोंसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे , हृदय दूखे, देह दुबला हो जाय, जीभका स्वाद जाता रहे, गुदामें कतरनेकीसी पीडा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शंका, वातके योगसे खांसी, श्वाससे पीडित, बहुत देरमें बडे कष्टसे कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झागमिला वारंवार दस्त आवे । ९ जिस पुरुषके

संग्रहणी ४ त्रिदोषजसंग्रहणी और पांचवी आमजन्य संग्रहणी। इस प्रकार संग्रहणीके पांच भेद जानने॥

प्रवाहिका रोग।

प्रवाहिका चतुर्धा स्यात्पृथग्दोषैस्तथास्रतः॥

अर्थ-प्रवाहिका रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातकी प्रवाहिका, २ पित्तकी प्रवाहिका, ३ कफकी प्रवाहिका, ४ रुधिरकी प्रवाहिका। इस प्रकार प्रवाहिकाके चार भेद जानने॥

अजीर्णरोग।

अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम्॥ ९॥
पित्ताद्विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते॥ विषाजीर्णं रसादेकम्-

अर्थ-अजीर्ण रोग तीन प्रकारका है तहां वायुसे विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण, कफसे आमाजीर्ण होता है। अन्नके रससे जो अजीर्ण होवे उसको विषाजीर्ण कहते हैं॥

कटु[१] अजीर्ण, मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश करीलकी कोपल आदि), खट्टी, खारी (ओंगा आदिका खार), नोन, गरम पदार्थसेवन इन कारणोंसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझाय दे और कच्चाही नीले पीले रंगके पतले मलको निकाले, तथा धूमयुक्त डकार आवे, हृदय और कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं।

१ भारी, अत्यंत चिकने, शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अतिभोजनसे तथा भोजनकरके सोनेसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करे तब इसके खाया हुआ अन्न कष्टसे पचे, हृदयमें पीडा होय, वमन, अरुचि, मुख कफसे लिपासा, तथा मुखका मीठा रहना, खांसी कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरे सदृश होय, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम कफमिला और भारी ऐसा मल निकले, बल विना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे ये कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं। २ वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कहे हैं वे सब जिसमें मिलते हों उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये। ३ आमवातसे जो आमसंग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठ दिनमें कभी चौदह दिनमें अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहते हैं। ४ वातकी प्रवाहिकामें शूल होता है, वातकी प्रवाहिका रूखे पदार्थसे होती है। ५ पित्तकी प्रवाहिका तीक्ष्णपदार्थसे होती है उसमें दाह होता है। ६ कफकी प्रवाहिका चिकने पदार्थसे होती है। उसमें कफ बहुत होता है। ७ रुधिरकी प्रवाहिका रसयुक्त होती है वह खट्टे पदार्थसे होती है। ८ शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा, मल और अधोवायुका रुक जाना, देहका जकड जाना, मोह और देहमें पीडा होना ये विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण हैं। ९ विदग्ध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं और पित्तके अनेक रोग प्रगट होते हैं तथा धूँएके साथ खट्टी डकार आवे, पसीना आवे और दाह होय।

अलसकविषूच्यादि रोग।

दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥ १० ॥
विषूची त्रिविधा प्रोक्ता दोषैः सा स्यात्पृथक्पृथक् ॥
दण्डकालसकश्चैक एकैव स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥

अर्थ-वात पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे पृथक् २ लक्षणकरके अलस रोग तीन प्रकारका है यह अजीर्णसे उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विषूचिका (हैजा) वातादि भेदोंसे पृथक् २ लक्षणोंकरके तीन प्रकारका है। उसको 'मोडीनिवाही' कहते हैं। दंडकालसक और विलंबिका ये दो रोग उसी मोडीके भेद हैं ॥

मूलव्याधि (बवासीर)।

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्त्रतः ॥
संनिपाताच्च संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥
सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ॥ १२ ॥

अर्थ-अर्श (बवासीर) रोग ६ प्रकारका है। जैसे १ वातार्श २ पित्तार्श

---

१ कूख और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमें और कंठादिस्थानोंमें फिरे, मल मूत्र और गुदाकी पवन रुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें होय उसको अलसक रोग कहते हैं। २ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोंमें पीडा, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमें पीडा और मस्तकमें पीडा ये लक्षण हो उसको विषूचिका कहते हैं इसीको महामारी अथवा हैजा कहते हैं। ३ दंडके समान मनुष्योंको नवाय देवे उसको दंडकालसक कहते हैं। वह दंडकालसक विलंबिकाके बहोत कुपित होनेसे होता है। वह वातादि तीन दोषोंकरके व्याप्त रहता है। उसके होनेसे प्राणका नाश शीघ्रही होता है। ४ जिस मनुष्यके भोजन किया हुआ अन्न कफवातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नहीं आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय, उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसा विलंबिकारोग कहते हैं। ५ वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे (स्रावरहित), चिमचिम पीडायुक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों, बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश हों, कोई कदंबके फलसमान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेडू इनमें अधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालुम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय, उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान, थोडा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकना इन लक्षणसंयुक्त हौले २ दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली, (उदररोग), अष्ठीला (वातकी गांठ) रोगोंके ये उपद्रव जिस बवासीरमें होते हैं उसको वातार्श कहते हैं। ६ मस्सोंका मुख नीला, लाल,

३ कफार्श ४ संनिपातार्श ५ रक्तार्श ६ संसर्गार्श। इस प्रकार छः प्रकारकी बवासीर है, इसको कोई कोई देशवाले मूळव्याधिभी कहते हैं। इस छः प्रकारकी अर्शके भेद दो हैं एक सहज कहिये देहके साथ उत्पन्न हो वह दूसरी उत्तर प्रगटे अर्थात् जन्म होनेके उपरांत मिथ्या आहार विहारादिकरके वातादि कुपित हो उत्पन्न करे। ये एवं आर्द्र और शुष्क इन भेदोंसे दो प्रकारकी है। आर्द्र कहिये गीली और शुष्क कहिये सूखी। लौकिकमें इनको खूनी और वादी ऐसा कहा है॥

चर्मकीलरोग।

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि॥ १३॥

पीला, और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सोंमेंसे महीन धारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी बास आवे, महीन और कोमल शीतल हों और उनका आकार तोताकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम आमसंयुक्त होय जवके समान बीचमें मोठे हो और जिसके त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरतालके समान और हलदीके समान हों ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं।

१ कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं। जैसे कि गुदाके मस्से, महामूल (दूर धातुके प्रति जाननेवाले) कठिन मंद पीडाके करनेवाले, सपेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय गायके मनके सदृश होय, पेडूमें अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खांसी, ओंकी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मंद होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफमिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसेभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना हो ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं। २ जो पूर्व वातादिक तीनों दोषोंकी बवासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलते हों उसको संनिपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं। ३ गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके रंगके समान होवे, अथवा वटके अंकुरसे हो और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलते हों, मूंगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबें तब मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेंडकके समान पीला रंग हो जाय, रुधिरके निकलनेसे (जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टीवस्तु, तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे) पीडित होय, हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय, संपूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं, यह लक्षण 'खूनी' बवासीरके जानने चाहिये। ४ कुलपंपराकरके देहके साथ उत्पन्न होय उसको संसर्गार्श जानना।

अर्थ-चर्मकील रोगभी तीन प्रकारका है, जैसे १ वातज चर्मकील २ पित्तज चर्मकील और ३ कफज चर्मकील इस प्रकार चर्मकीलके तीन भेद कहे हैं ॥

कृमिरोग ।

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते ॥ बाह्यस्तथाभ्यन्तरे च तेषु यूका बहिश्चराः ॥१४॥ लिख्याश्चान्येन्तचराः कफात्ते हृदयादकाः ॥ अन्त्रदा उदरावेष्टाश्चुरवश्च महागुह्राः ॥१५॥ सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातराः ॥ सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ॥ १६ ॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः ॥ लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः कधेरुकः ॥ तथान्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः ॥ १७ ॥

अर्थ-इक्कीस भेदकरके कृमिरोग बाहर और भीतरके भेदसे दो प्रकारका है तिनमें यूका (जूआ) लीखें जमजूआं यह तीन प्रकारकी कृमि देहके बाहर रहती हैं और अठारह प्रकारकी कृमि देहके भीतर रहती है । उनको लौकिकमें जंतु कहते हैं । उनके भेद मैं कहता हूं १ हृदयादक २ अंत्राद ३ उदरावेष्ट ४ चुरव (चिनूना जो बालकोंके होते हैं)५ महागुह ६ सुगंध ७ दर्भकुसुम ये सात प्रकारके कृमि कफसे उत्पन्न होते हैं। १ मातर २ सौरस ३ लोमविध्वंस ४ रोमद्वीप५ उदुंबर ६ केशाद ये छः प्रकारकी कृमि रुधिरसे उत्पन्न होती है। १ मकेरुक २ लेलिह ३ मलून ४ सौसुराद ५ कधेरुक ये पांच

---

१ वातसे सुईके चुभाने जैसी पीडा होय ऐसी पीडा होय । २ पित्तसे कठोरता होय । ३ कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान देहके वर्णके समान वर्ण होवे। ४ देहमें केश और मलीनवस्त्रके आश्रयसे जो कृमि रहती है उसको यूका (जूं) कहते हैं । ये यूका तिलके सदृश होकर काली और सफेद होती हैं । इनके बहुत पांव होते हैं । वे जूं होती हैं । ५ बहुतही बारीक होती हैं वे लीख कहाती हैं। ६ जमजूंआं एक जूंआकाही भेद है । इसकेभी बहुत पैर होते हैं । ७ देहमें अठारह प्रकारके कृमि हैं। उनका कोप होनेसे ये सामान्य लक्षण होते हैं। ज्वर, शरीरमें निस्तेजपन, शूल, हृदयमें पीडा, वमन, भ्रम, अन्नका द्वेष और अतिसार इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने । ८ कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ जाती है तब चारों तरफ डोलती है । कोई चामके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती है । कितनीही छोटी बडी चौडी होती है और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका तामेके समान होता है । उन्हींके सात नाम हैं। इन कृमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न हो, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश हो, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं । ९ रुधिरकी वहनेवाली नाडीमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, तामेके रंगके होते हैं। कोई बहुतबारीक होते हैं व देखनेसेभी नहीं दीखते ये कुष्ठको पैदा करते हैं ।

प्रकारकी कृमि मलसे उत्पन्न होती है। इस प्रकार अठारह प्रकारकी भीतरकी कृमि और तीन प्रकारके पूर्वोक्त बाहरके कृमि ये सब मिलकर २१ प्रकारके कृमि होते हैं उसी प्रकार कफरक्तसे जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक (नहरुआ अथवा नारू) कहते हैं॥

पांडुरोग।

पांडुरोगाश्च पंच स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥ त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च—

अर्थ—पांडुरोग पांच प्रकारका है। जैसे १ वातपांडु २ पित्तपांडु ३ कफपांडु ४सन्निपातपांडु ५ मृत्तिकाभक्षणसे जो होता है वह मृत्तिकाभक्षणपांडु इस प्रकार पांडुरोगके पांच प्रकार हैं॥

१पक्काशयमें विष्ठासे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसते हैं जब यह बढ जाती है तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है। ये कृमि बडे, छोटे, गोल, मोटे, रंगमें काले, पीले, सफेद, नीले होते हैं। जब ये मार्गको छोड अन्य मार्गमें जाते हैं तब इतने रोग प्रगट करते हैं। दस्तका पतला होना,शूल,अफरा, देहमें कृशता तथा कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना। २ वातादि दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पांडुरवर्ण (पीली) करते हैं उसको पांडुरोग (पीलिया) कहते हैं। ३ वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापन और कालापन होता है तथा कंप, सुई छेदनेकासा चमका, अफरा, भ्रम, भेद और शूलादिक होते हैं। ४ पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होते हैं। मल, मूत्र और नेत्र पीले हों; दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडित हो; मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यंत पीली होती है। ५ मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलसक, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना। ६ ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त त्रिदोषजन्य पांडुरोग होता है, इस पांडुरोगसे रोगीकी इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहती है। ७ मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पड जाय उसके वातादिक दोष कुपित होते हैं। कषैली माटीसे वात, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीसे कफ कुपित होता है। फिर वही मिट्टी पेटमें जायकर रसादिक धातुओंको रूखा करती है जब रौक्ष्यगुण प्रगट हो जाय तब जो अन्न खाय सो रूखा हो जाता है फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रसवहनेवाली नसोंमें प्राप्तकर उनके मार्गको रोक देती है। रसके बहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुक जाता है तब इंद्रियोंका बल अर्थात् अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है शरीरकी कांति, तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार (हृदयमें रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट होता है उसमें बल, वर्ण और अग्निका नाश होता है; नेत्र, कपोल, भ्रुकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठेमें कृमि पड जांय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पड जाते हैं तब ये (पूर्वोक्त) लक्षण होते हैं।

कामला, कुंभकामला व हलीमक रोग ।

तथैका कामला स्मृता ॥ स्यात्कुंभकामला चैका
तथैव च हलीमकम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कामला[1] रोग एक प्रकारका है यह रोग पांडुरोगकी अपेक्षा करनेसे होता है। तथा यह स्वतंत्र है और उस कामलाके दो भेद हैं एक कुंभकामला और दूसरा हलीमक[2]॥

रक्तपित्तरोग ।

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ॥
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम् ॥ १९ ॥

अर्थ—रक्तपित्त[3] तीन प्रकारका है । एक ऊर्ध्वगामी दूसरा अधोगामी और तीसरा वह जो ऊपर और नीचे दोनों मार्गसे जावे । इनमें जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्गसे गिरता है वो कफसंबंध करके होता है और अधोमार्ग कहिये गुदादिद्वारा गिरे वो वातके संबंधसे होता है और दोनों मार्ग अर्थात् गुदा और मुखसे गिरनेवाला रक्तपित्त कफ और वादीके संबंधसे गिरता है । रक्तपित्तके ये तीन भेद जानने ॥

कासरोग ।

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः ॥
उरःक्षताच्चतुर्थः स्यात्क्षयाद्धातोश्च पञ्चमः ॥ २० ॥

---

१ वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुंभकामलावाला रोगी मर जाता है । २ पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला हो जाय और बल व उत्साह इनका नाश; तंद्रा, मंदाग्नि, महीनज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगटे हलीमक रोगके हैं । ३ धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अति मैथुन करनेसे, मिरच आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोनको आदि ले लवणके पदार्थ, खट्टी,कडुवी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको बिगाडता है तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो निकले ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकाले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यंत कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसे निकलता है, उसको रक्तपित्त कहते हैं ।

अर्थ—कास (खांसी) का रोग पांच प्रकारका है। १ वातकास २ पित्तकास ३ कफकास ४ छातीमें कुठार आदिके प्रहारके समान पीडा होकर होता है वो उरःक्षतकास और धातुक्षयकास ऐसे कास (खांसी) का रोग पांच प्रकारका है ॥

क्षयरोग।

क्षयाः पञ्चैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ॥
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात् ॥ २१॥

---

१ नाक, मुखमें धूर वा धूंवा जानेसे, दंड, कसरत, रूक्षान्न इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मल मूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिक्का अर्थात् आती हुई छींकको रोकनेसे, प्राणवायु अत्यंत दुष्ट होकर और दुष्ट उदान वायुसे मिलकर कफपित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले। उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोक कास (खांसी) कहते हैं। २ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम क्षीण पड जांय, वारंवार खांसीका उठना, स्वरभेद और सूखी खांसी उठे यह वातकी खांसीके लक्षण हैं। ३ पित्तकी खांसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुआ रहें, प्यास लगे, पीले रंगकी और कडवी पित्तके प्रभावसे वमन होय, रोगीका पीलावर्ण हो जाय और सब देहमें दाह होय। ४ कफकी खांसीसे मुख कफसे लिपटा रहे, मथवाय रहे और सब देह कफसे परिपूर्ण रहे। अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहे, कंठमें खुजली और रोगी वारंवार खांसे। कफकी गांठ थूकनेसे सुख मालूम होवे। ५ बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुस्ती) करनेसे, हाथी, घोडा दौडनेसे रोकनेसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खांसीको प्रगट करता है सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यंत दूखे, हृदय फूटेसदृश मालूम होय और तीखी सूईकेसे चमका चले, उसको हृदयका स्पर्श नहीं सुहावे, दोनों पसवाडोंमें शूल तथा दाह होय, गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घूं-घूं शब्द करे; ये लक्षण उरःक्षतकासके हैं। ६ कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अतिमैथुनसे मल मूत्र आदिका वेग धारनेसे, अति दया करनेसे, अति शोक करनेसे अग्नि मंद होय अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो अग्निको नष्ट करे, तब तीनों दोष कोपको प्राप्त हो क्षयजन्य देहकी नाशक खांसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करे; शूल, ज्वर, दाह और मोह ये हों तब यह प्राणका नाश कर, सूखी खांसी, रुधिर, मांस और शरीरको सुखावे, रुधिर और राध थूके ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अतिकठिन ऐसी इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं।

अर्थ–क्षयरोग पांच प्रकारका है। जैसे १ वातक्षय २ पित्तक्षय ३ कफक्षय ४ संनिपातक्षय और ५ उरःक्षतके होनेसे इस प्राणीके होता है। इस भांति क्षयरोगको पांच प्रकारका जानना। इसको खई राजयक्ष्मा और राजरोगभी कहते हैं॥

शोषरोग।

शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात्॥
अध्वश्रमाच्च व्यायामाद्वार्धकादपि जायते॥ २२॥

अर्थ–क्षयरोगका भेद शोषरोग है। उसके कारण अत्यंत स्त्रीप्रसंग करना, अति

---

१ क्षयरोगका पूर्वरूप–श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुएका सूखना, वमन, मंदाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं। उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते हैं और मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेकी इच्छा होती है। वह सपनेमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ (मोर), गीध, बंदर, करकैटा इनपर अपनेके बैठा देखे, और जलहीन नदीको देखे तथा पवन, धूर और धूंआ इनसे पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयीरोग होनेके दीखते हैं, कंधा और पसवाडेमें पीडा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये तीन लक्षण क्षयके अवश्य होते हैं। २ वादीके प्रभावसे स्वरभेद, कंधा और पसवाडे इनसे संकोच और पिडा होती है। ३ पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना। ४ कफके कोपसे मस्तकका भारीपन, अन्नमें द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं। ५ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षणोंकरके युक्त जो होता है उसको संनिपातक्षय कहते हैं। ६ बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे, बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊंचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊंठ इत्यादि दौडते हुओंको थामनेसे, भारी शत्रुको मारनेसे, शिला लकडी पत्थर निर्घात (अस्त्रविशेष) इनके फैंकनेसे, जोरसे वेदादिक शास्त्र पढनेसे, अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि महानदीको तरनेसे, अथवा घोडेके साथ दौडनेसे, अकस्मात् कला खानेसे, जल्दी जल्दी बहुत नाचनेसे, इसी प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूर कर्म करनेसे, उर (छाती) फट जाती है। ऐसे पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधी उत्पन्न होती है और रूखा थोडा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसे, अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोडा और अनुमानका भोजन करनेवाले पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो, अथवा हृदयके दो टूककर डाले ऐसा मालूम होय, और हृदय तथा पसवाडोंमें अत्यंत पीडा होय, अंग सब सूखने और थरथर कांपने लगे, शक्ति, मांस, वर्ण, रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा होय, मनमें संताप हो, दीन हो जाय, अग्नि मंद होनेसे दस्त होने लगे, और वारंवार खांसते २ दुष्ट काला अत्यंत दुर्गंधयुक्त पीला गांठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण हो जाय ऐसा नहीं किंतु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातुओंके तेज) का क्षय होनेसे मनुष्य क्षीण होता है ये उरःक्षतरोगके लक्षण हैं। ७ रसादि सात धातुके शोषण (सूखने) से शरीर क्षीण होता है इस रोगको शोष कहते हैं।

शोक करना, घाव, अत्यंत रस्ता चलना, बहुत दंड कसरत करना और वृद्धावस्था आना है । इन छः कारणोंसे शोषरोग (जिसमें देह सूख जाता है वह रोग) होता है ॥

श्वासरोग ।

श्वासाश्च पंच विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा ॥
ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पञ्चमः ॥ २३ ॥

अर्थ—श्वासरोग पांच प्रकारका है । १ क्षुद्रश्वास २ तमकश्वास ३ ऊर्ध्वश्वास ४ महाश्वास और ५ छिन्नश्वास । इस प्रकार श्वासरोग पांच प्रकारका है ॥

---

१ रूखा पदार्थ खाने और श्रम करनेसे प्रगट हुआ जो श्वास सो पवनको ऊपर ले जाता है । यह क्षुद्रश्वास अत्यंत दुःखदायक नहीं है और अंगोंको कुछ विकार नहीं करता जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहीं है यह भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको बंद नहीं करता, न इन्द्रियोंको पीडा करता और न कोई रोग प्रगट करता यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा गया है । २ जिस कालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रय कर कफसंयुक्त होता है तब कफसे रुककर अति वेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करता है और मस्तकमें पीनस रोग करता है वह अत्यंत तीव्रवेगसे हृदयको पीडित करनेवाले श्वासको उत्पन्न करता है उस श्वासके वेगसे रोगी मूर्छित होता है, त्रासको प्राप्त होता है, चेष्टारहित हो जाता है और खांसिके उठनेसे बडे मोहको वारंवार प्राप्त होता है, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घडीपर्यंत सुख पावे, कंठमें खुजली चले, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे, सोवे तो वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठेही चैन पडे और गरमीके पदार्थसे सुख होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे, अत्यंत पीडा होय, मुख सूखे; वारंवार श्वास और वारंवारं हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पूरवकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढता है । यह तमकश्वास याप्य है यदि नया प्रकट भया होय तौ साध्य होय है । ३ बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वास लेय, नीचे आवे नहीं, कफसे मुख भर जावे और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बंद हो जांय, कुपित वायुसे पीडित होय, ऊपरको नेत्रकर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्छा और पीडासे अत्यंत पीडित होय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं । ४ जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त होय, ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको ऊंचे स्वरसे निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे, नेत्र चंचल होंय और जिसका श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फट जांय, मल मूत्र बंद हो जाय, बोला जाय नहीं अथवा बोले तो मंद बोले, मन खिन्न होय और जिसका श्वास दूरसे सुनाई देय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय । ५ जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्याग करे, अथवा क्लेशको प्राप्त हो; श्वासको नहीं छोडे और मर्म कहिये हृदय, बस्ति (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीडा होय, पेटका फूलना, पसीना

हिक्कारोग।

कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा ॥
गम्भीरा यमला चैव महती पञ्चमीति च ॥ २४ ॥

अर्थ–हिक्का (हिचकी) रोग पांच प्रकारका है । उसमें १ क्षुद्रा हिचकी २ अन्नजा हिचकी ३ गंभीरा हिचकी ४ यमला हिचकी और पांचवी महती हिचकी इस प्रकार हिचकी पांच प्रकारकी है ॥

जठराग्निके विकार ।

चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः ॥
तीक्ष्णः पित्तात्कफान्मंदो भस्मको वातपित्तकः ॥ २५ ॥

अर्थ–जठर अर्थात् उदरकी अग्निके चार प्रकारके विकार हैं । जैसे वादीसे विषमाग्नि होती है, पित्तसे तीक्ष्ण अग्नि होती है, कफसे मंदाग्नि होती है और वातपित्तसे भस्म अग्नि होती है ॥

अरोचक रोग ।

पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ संनिपातान्मनस्तापात्–

और मूर्च्छा इनसे पीडित होय, बस्ती (मूत्रस्थान) में जलन होय, नेत्र चलायमान होंय, अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे होंय, श्वास लेते लेते थक जाय, तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय, उद्विग्नचित्त हो जाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिल हो जांय, इस छिन्नश्वासकरके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करता है ।

१ जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मंद मंद चले उसको क्षुद्रा नाम हिचकी कहते हैं । २ अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्वगामी होयकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करती है । ३ जो हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गंभीर शब्द करे और जिसमें प्यास, ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसको गंभीरा हिचकी कहते हैं । ४ ठहर ठहरके दो दो हिचकी चलैं, शिरकंधाको कंपावे उसको यमला हिचकी जाननी । ५ जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करती हुई और सर्व गात्रको कंपाती हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय, उसको महती हिक्का कहते हैं । ६ कभी कभी अन्नका पचन होता है और कभी कभी नहीं होता, उसको विषमाग्नि जानना, यह वातकी प्रकृतिसे होता है । ७ भोजनके ऊपर भोजन करनेसेभी सुखकरके अन्नपाक हो जाता है सो तीक्ष्ण अग्नि जानना; यह पित्तकी प्रकृतिसे होता है । ८ थोडा भोजन करनेसेभी अन्नका पाक नहीं होता उसको मंदाग्नि जानना; यह कफकी प्रकृतिसे होता है । ९ भूख अत्यंत प्रबल लगती है इस कारण वारंवार भोजन करता है तौभी वह अन्न पचन हो जाता है परंतु उस अन्नके रससे शरीरमें पुष्टता नहीं आती और शरीर कृश होता है; उसको भस्मकाग्नि जानना । अन्यग्रंथोंमें भस्मक अग्निका तीक्ष्णाग्निमेंही अंतर्भाव माना है ।

अर्थ–अरोचक रोग पांच प्रकारका है। १ वातारोचक २ पित्तारोचक ३ कफारोचक ४ संनिपातारोचक और ५ मनको दुःख होनेसे जो संताप होता है उससे (इस प्रकार उत्पन्न होनेवाला) पांच प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग जानना॥

छर्दिरोग।

छर्दयः सप्तधा मताः॥ २६॥ त्रिभिर्दोषैः पृथक्तिस्रः कृमिभिः संनिपाततः॥ घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते॥ २७॥

अर्थ–छर्दि कहिये वमनरोग सात प्रकारका है। जैसे १ वांतकी छर्दि २ पित्तकी छर्दि ३ कफकी छर्दि ४ कृमियोंके विकारकी छर्दि ५ संनिपातकी छर्दि ६ अमेध्य और दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके दुर्गंधसे तथा मनको तिरस्कार होनेसे होती है सातवी छर्दि स्त्रियोंके गर्भ रहनेके पश्चात् होती है। इस प्रकारसे सात प्रकारकी छर्दि जानना॥

---

१ वातकी अरुचिसे दांत खट्टे होंय और मुख कसैला होता है। २ पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गंधयुक्त मुख हो जाता है। ३ कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल होता है और मुख बंधासरीखा अर्थात् खाय नहीं और आंत कफसे लिप्त हो जाय। ४ संनिपातकी अरुचिसे अन्नमें अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हों। ५ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु), अपवित्र वास इनके प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहे अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कसैला, खट्टा आदि नहीं होय। ६ हृदय और पसवाडोंमें पीडा और मुखशोष होवे, मस्तक और नाभिमें शूल होय, खांसी, स्वरभेद और सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय, तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कषेली होय, वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं। ७ मूर्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें संताप अर्थात् ये तपायमान रहें, अंधेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, हरा, गरम, कडुआ, धुआके रंगका और दाहयुक्त पित्तको वमन करे, यह पित्तकी छर्दिके लक्षण हैं। ८ तंद्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष (अन्नमें अरुचि), निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसे पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा सफेद कफको वमन करे और जब रद्द करे तब पीडा थोडी होय, रोमांच होय, ये कफकी छर्दीके लक्षण हैं। ९ कृमिकी छर्दीमें शूल, खाली रद्द ये विशेष होते हैं बहुधा कृमि और हृदयरोगके लक्षण सदृश इसके लक्षण जानने। १० शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन सो संनिपातसे होती है। रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट, (जिसको देशवारी मनुष्य जाडी कहते हैं), गरम, लाल ऐसी होती है। ११ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थोंके दुर्गंधसे मनको तिरस्कार आके जो वमन होता है, उसमें जिस दोषका कोप हो उस दोषकी रद्द जाननी। स्त्रियोंके गर्भ रहने पश्चात् जो वमन होता है, उसकेभी ऐसेही लक्षण जानने।

स्वरभेदरोग ।

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ॥
मेदसा संनिपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

अर्थ-स्वरभेद (गलेका बैठ जाना) रोगके छः प्रकार हैं । जैसे १ वातका स्वरभेद २ पित्तका स्वरभेद ३ कफका स्वरभेद ४ मेदके बढनेका स्वरभेद ५ सन्निपातका स्वरभेद और छठा क्षयरोगका स्वरभेद ऐसे स्वरभेदरोग छः प्रकारका जानना ॥

तृष्णारोग ।

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका ॥ २९ ॥

अर्थ-तृष्णारोग छः प्रकारका है । जैसे १ वाततृष्णा २ पित्ततृष्णा ३ कफतृष्णा

---

१ बहुत जोरसे बोलेनेसे, विषके खानेसे, ऊंचे स्वरसे पाठ करनेसे (अर्थात् वेदादिपाठ करनेसे), कंठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो वात, पित्त, कफ सो कंठमें वहनेवाली चार नसें हैं उनमें प्राप्त हो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त कर स्वरका नाश करें उसको स्वरभेद रोग कहते हैं । २ वायुसे स्वरभेद होय तो रोगीके नेत्र, मुख और विष्ठा ये काले होंय वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले अथवा गधेके स्वरप्रमाण कर्कश बोले । ३ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय गलेमें दाह होता है । ४ कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुका रहे, मंदमंद तथा थोडा बोले और दिनमें बहुत बोले। ५ मेदके संबन्धसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त होय, अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुक जानेसे प्यास बहुत लगे, भीतर और मंद बोले। ६ संनिपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, स्वरभेद असाध्य है ऐसे ऋषि कहते हैं। ७ क्षईके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुंआसा निकले और वाणीक्षय हो जाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत हो जाय, अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होता है और ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तो साध्य है। ८ वातकी तृषा (प्यास) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानेमें नोचनेके समान पीडा होय और जल वहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुक जाय, मुखका स्वाद जाता रहे, और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे। ९ पित्तकी तृषामें मूर्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष, शीतपदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुआट और संताप ये लक्षण होते हैं । १० अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके वहनेवाली नाडियोंको सुखाय कफकी तृषाको प्रकट करती है । केवल कफसे तृषाका प्रकट होना असंभव है । केवल कफ बडे भएका द्रवीभूतधर्म होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है । और वातपित्तकी तृषा करनेवाले होनेसे होता है सो ग्रंथांतरमें लिख.भी है; इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है । हारीतनेभी सपित्तकफकी तृषा मानी है, केवल कफकी नहीं मानी । इस तृषामें निद्रा, भारीपन, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यंत सूख जाता है ।

४ त्रिदोषतृष्णा ५ आगंतुक जो शस्त्रादिकोंकरके क्षत होनेसे होती है सो उपसर्गज तृष्णा और जो धातुक्षयसे होती है सो ६ धातुक्षयजन्य तृष्णा ऐसे छः प्रकारका तृष्णा (प्यास) रोग है। मनुष्योंको जो वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होती है और पानी पीनेसेभी प्यास जाती नहीं फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते हैं॥

मूर्छारोग।

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक्॥
चतुर्थी संनिपातेन-

अर्थ-मूर्छा चार प्रकारकी है। १ वातकी मूर्छा २ पित्तकी मूर्छा ३ कफकी मूर्छा और चौथी संनिपातकी मूर्छा है। इस प्रकार चार प्रकारकी मूर्छा जानना॥

तहां पित्ततमोगुणसे मोह उत्पन्न होता है। संज्ञा और चेष्टाके वहनेवाले छिद्रवातके विकारसे आच्छादित होनेमें अकस्मात् शरीरमें तमोगुण बढकर सुखदुःखका ज्ञान जाता रहे और मनुष्य लकडीके समान पृथ्वीपर गिर जावे उसको मूर्च्छा कहते हैं।

---

१ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके तृष्णाके समान जिस तृष्णामें लक्षण होय उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं। २ हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लानि होय, मुख दीन हो जाय, हृदय, गला और तालू सूख जाय, ये तृष्णाके उपद्रव हैं कि जो मनुष्यको सुखाय डालते हैं व्याधिके कारण शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य हों जाय है वे उपद्रव ये हैं। ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास, अतीसारादिक। ये रोग जिसके होय उसके तृष्णा कष्टसाध्य जाननी। ३ रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होते हैं सोही सब क्षयजतृष्णामें होते हैं। तिससे पीडित पुरुष रात्रिदिन वारंवार पानी पीवे परंतु संतोष नहीं होता। ४ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रंगके आकाशको देखे पीछे मूर्छाको प्राप्त होय और जल्दी बेहोश हो जाय, देहमें कंप, अंगोंका टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश हो जाय, शरीरका रंग काला लाल पड जाय उसको वातकी मूर्च्छा जानना। ५ जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्छा आवे और सावधान होते समय पसीना आवे, प्यास होय, संतापहोय, नेत्र लाल पीले होंय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय, ये लक्षण पित्तकी मूर्छाके हैं। ६ कफकी मूर्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बादल इनसे व्याप्त देखकर मूर्छागत होय, देरमें सावधान होय, देहपर भारी बोझसा भार मालूम होय, अथवा गीला चमडा धारण किया हुआ मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होयगी ऐसा मालूम होय। ७ संनिपातकी मूर्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इस रोगको दूसरा अपस्मार (मृगी) जानना चाहिये। परंतु अपस्मारोंमें दांतका चबाना, मुखसे झाग गिरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका हो जाना इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है।

भ्रम, निद्रा, तंद्रा, संन्यास रोग ।

तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ॥

निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृतः ॥ ३० ॥

अर्थ–भ्रम १ निद्रा २ तंद्रा ३ संन्यास[१] ४ ग्लानि ५ ये पांच रोग एक एक प्रकारके हैं । इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं । रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होता है । तमोगुण और कफ इन दोनोंसे उत्पन्न हो इंद्रिय और मन इनको मोहित कर बाह्य घटपटादिक पदार्थोंका ज्ञान न रहे उस अवस्थाको निद्रा कहते हैं । और इंद्रियोंको मोहित कर कुछ सोवे और कुछ जागता रहनेपर नेत्र खुले मुंद रहे उसको तन्द्रा कहते हैं । देह मन इनका व्यापार बंद होकर मरेके समान लकडीसा गिर पडे उसको वाणी संन्यास कहते हैं । यह एक घोर निद्राकी अवस्था है । ग्लानिके लक्षण इसी खंडके छठे अध्यायके अंतमें कह आये हैं सो जानना ॥

मदरोग ।

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥

त्रिदोषैरसृजो मद्याद्विषादपि च सप्तमः ॥ ३१ ॥

अर्थ–मदरोग सात प्रकारका है। जैसे १ वातमद २ पित्तमद ३ कफमद ४ त्रिदोष मद ५ रुधिर कुपित होनेसे जो होय और ६ प्रमाणसे अधिक मद्य पीनेसे होय सो तथा ७ बच्छनाग आदि विषभक्षण करनेसे होय सो इस प्रकार सात प्रकारके मदरोग जानना । सुपारी, कोदों धान्य, धतूरा इत्यादिके भक्षण करनेसे जैसा मतवाला आदमी हो जाता है उसी प्रकारका वातादि दोष दुष्ट होकर मनको विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं इसमें जिस दोषका अधिक कोप होता है उसी दोषके लक्षण होते हैं । इस रोगवालेको मतवाला कहते हैं ॥

मदात्ययरोग ।

मदात्ययश्चतुर्धा स्याद्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ३२ ॥

त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा ॥ पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः ॥ ३३ ॥ पानात्ययस्तथा चैकः–

अर्थ–मद्यका प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दांतन आदि शरीरकी शुद्धिके कर्मसे निवटकर ८ तोले मद्य पीवे । दुपहरको चिकने पदार्थ, घीमिला गेहूका चून

---

१ संन्यास रोगका उपाय जलदी होवे तो मनुष्य बचता है, नहीं तौ मरता है। उसका उपाय यही है कि हाथ पैरोंकी उंगलियोंको सुईसे छेदन करे अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले ।

(मैदा आदि) तथा मांस इत्यादिकोंके साथ पीवे। तथा रात्रिके आरंभमें चौगुनी पीवे परंतु जितना अपनी देहको सहन होवे इतना पीवे बढती न पीवे इस प्रकार सेवन करनेसे वो मद्य रसायनरूप होकर आयुष्यकी तथा शरीरकी वृद्धि करता है तथा बल देता है और अमृतके समान हितकारक होता है। इसमें अंतर पडनेसे अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करनेसे बुद्धिभ्रंश होवे तथा वह मद्य विषके समान होकर दाहादिक उपद्रव करके चिन्ह करता है। प्राण व्याकुल होते हैं, तथा कहीं कहीं प्राणहानिभी होती है। उसको मदात्ययरोग कहते हैं वह मदात्यय वात[1] पित्त[2] कफ[3] त्रिदोष[4] इन भेदोंसे चार प्रकारका है। परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्ययरोगके भेद जानने। यदि मद्य पीने आदिके गुणागुण अधिक जानने हों तो चरक सुश्रुत आदि बृहद्ग्रंथोंको देखो॥

दाहरोग।

दाहाः सप्त मतास्तथा॥ ३४॥ रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णा-
याः पित्ततस्तथा॥ धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि॥३५॥

अर्थ–देहमें जो जलन होती है उसको दाह रोग कहते हैं यह सात प्रकारका है। १ रक्तपित्तके[5] कुपित होनेसे होय सो २ रुधिरके[6] कोपसे होय सो ३ तृषाके[7] रोकनेसे

---

१ हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होंय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना। २ प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय), देहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना। ३ वमन (रद्द), अन्नमें अरुचि, खाली रद्द (ओकारी), तन्द्रा, देह गीली और भारी और शीत लगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना। ४ जिसमें त्रिदोष मदात्ययके लक्षण मिलते हों उसको संनिपातप्रधान मदात्यय जानना। ५ जिसमें कुछ लक्षण रक्तके मिलते हों और कुछ पित्तके हों उसको रक्तपित्तज दाह कहते हैं। ६ सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यंत दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपता है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंग सदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होंय, तथा मुखसे और देहसे तप्त लोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगमें मानो किसीने अग्नि लगा दीनी है ऐसी वेदना होय उसे रुधिरकोपसे उपजी दाह कहते हैं। ७ प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे, तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे। इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होंठ यह अत्यंत सूखें और जीभको बाहर काढ दे और कांपे।

४ पित्तके कोपसे ५ रसादिक धातुओंके क्षय करके ६ मर्म स्थलमें चोट लगनेसे जो होय और जो ७ बडे भारी घोर शस्त्रादिका प्रहार होकर कोठेमें रुधिर जमनेके कारणसे होवे। इस प्रकार दाह रोग सात प्रकारका जानना॥

उन्मादरोग।

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते॥
संनिपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः॥ ३६॥

अर्थ–उन्माद रोग छः प्रकारका है। जैसे १वातोन्माद २पित्तोन्माद ३कफोन्माद

---

१ पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं। उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशयका दुष्ट होना होता है और पित्तके दाहमें नहीं होता है और सब लक्षण एकही हैं। २ धातुक्षयसे जो दाह होय उसे रोगी मूर्छा प्यास इनसे युक्त और स्वरभंग तथा चेष्टाहीन होता है इस दाहमें पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होता है। ३ मर्मस्थान (हृदय, शिर, बस्ति) में चोट लगनेसे जो दाह हो सो असाध्य है। ४ शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भर जावे तब अत्यंत दुःसह दाह प्रकट होता है एवं क्षतजदाहसे कोष्ठ शब्दसे यहांपर हृदय आमाशय आदि स्थान जानना। उसे आहार थोडा रह जावे और अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाहकरके अभ्यंतर दाह होय तथा प्यास, मूर्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय। ५ रूखा, थोडा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यंत बढी जो वायु सो चिंता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यंत दुष्टकर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करती है। हँसनेके कारण विना हँसे, मंद मुसकान करे, नाचे, विना प्रसंगके गीत गावे और बोले, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल हो जाय और आहारका परिपाक भयेपर ज्यादा जोर होय, ये वातज उन्मादके लक्षण हैं। ६ अधकच्ची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम वस्तुका भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्ररोग होकर अजितेंद्रि पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अतिउग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटके, नग्न हो जाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोध करे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं। ७ मंद भूखमें पेटभर भोजनकर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यंत बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करता है उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मंद होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यंत आवे, वमन होय, मुखसे लार वहे, भोजन करनेके पीछे इस रोगका जोर हो, नख-त्वचा, मूत्र, नेत्रादिक सफेद होंय ये लक्षण कफके उन्मादके हैं।

४ सन्निपातोन्माद ५ विषसेवनका उन्माद ६ धनबंधुनाशजन्य मनको दुःख होनेसे होता है सो शोकज उन्माद वातादिक दोषोंके बढनेसे अपना २ नित्यका मार्ग छोडकर अन्य मनोवाहिनी नाडियोंमें जायके चित्तको विभ्रम करे हैं इसीसे इस रोगको उन्माद कहते हैं ॥

भूतोन्मादरोग ।

भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि ॥ गन्धर्वात्किनराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः ॥३७॥ प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः ॥ जलादिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ॥ राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि ॥ ३८ ॥

अर्थ—भूतोन्माद वीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं। जैसे १ देवग्रह कहिये गणमातृकादिक २ दानव (पापबुद्धि असुर) ३ गंधर्व (देवतोंके आगे गान करनेवाले) ४ किंनर (उन्हीं गंधर्वोंका भेद है) ५ यक्ष ६ पितर (अग्निष्वात्तादिक)

---

१ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषोंके कारण करके होता है वह संनिपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण कि यह असाध्य है। २ विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल हों, बल, इंद्रिय और शरीरकी कांति नष्ट हो जाय, अतिदीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आ जाय और संज्ञा जाती रहे। ३ चोरोंने, राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय, अथवा धन बंधुके नाश होनेसे, इस पुरुषका अंतःकरण अत्यंत दुखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होंय। पुरुष गुप्तवातकोभी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे, तथा मूर्ख हो जाय। ये लक्षण शोकज उन्मादके हैं। ४ देवग्रह जो गणमातृकादिक पीडित मनुष्य सदा संतोषयुक्त रहे, पवित्र रहे, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला, 'तेरा कल्याण हो' ऐसा वर देवे और ब्राह्मणसे प्रीति राखे। ५ पसीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्धमार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसेभी जिसके संतोष न होय और दुष्टबुद्धि ऐसे मनुष्यको दैत्यग्रहपीडित जानना। ६ गंधर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्न चित्त, पुलिन और बाग बगीचामें रहनेवाला, अनिंदित आचारका करनेवाला, गान, सुगंध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगे ऐसा होता है, वही पुरुष नाचे, हँसे, सुंदर बोले, थोडा बोले। ७ किन्नर ग्रहसे पीडित मनुष्यके लक्षण गंधर्वग्रहके सदृशही होते हैं। ८ यक्षपीडित मनुष्यके नेत्र लाल होते हैं और वह सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला, गंभिर, बुद्धिमान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देऊं ऐसे बोलनेवाला होता है। ९ कुशोंके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंड देय, चित्तमें भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य

७ गुरु ८ प्रेत ९ गुह्यक १० वृद्ध ११ सिद्ध १२ भूत १३ पिशाच १४ जलादिदेवता १५ नाग १६ ब्रह्मराक्षस १७ राक्षस १८ कूष्मांडराक्षस १९ कृत्या २० वेताल इस प्रकार बीस भेद देवतादि ग्रहोंके कहे हैं । तिनमें ग्रहका शरीरमें संचार होकर उस ग्रहकीसी चेष्टाके समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं ॥

अपस्माररोग ।

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ॥
श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अपस्मार रोग चार प्रकारका है । जैसे १ वातापस्मार २ पित्तापस्मार

करके तर्पणभी करे, मांस खानेकी इच्छा होय तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले (इस कहनेका प्रयोजन यह है कि, जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है ऐसेही सर्वत्र जानना यह डल्हनका मत है) और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे । ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं ।

१ गुरु कहिये ब्राह्मणादिक माता पिता आदि बडोंके अपराध करनेसे जो शाप होता है तिससे मनुष्योंको उन्माद उत्पन्न होता है उसके लक्षण प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके लक्षणोंके सदृशही होते हैं। २ पिशाचजुष्टके लक्षण ये हैं कि जो अपने हाथ ऊपरको करे, नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देर पर्यंत बकनेवाला, जिसके देहमें अपवित्र दुर्गंध आवे तथा अति चंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदनकर्ता डोलनेवाला, ऐसा मनुष्य होता है । ३ जलादि देवता कहिये जलदेवता अप्सरा आदिक और स्थलदेवताभी इनके लक्षण अनुमान करके समझ लेना । ४ जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे अर्थात् छातीके बल चले तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रांत (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहे, सहत, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहे उसे सर्पग्रहग्रस्त जानना । ५ देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छंद, निघण्ट, निरुक्त) का पढा भया, शीघ्र पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं । ६ राक्षसोंसे पीडित जो उन्मादरोगी वह मांस, रुधिर और नाना प्रकारके मद्य इनमें प्रीति रखनेवाला और निर्लज्ज होता है अर्थात् नंगा रहनेसेभी लाज नहीं धरता, निर्दय होता है, शूरता दिखाता है, क्रोधी, बलिष्ठ, रात्रिमें भटकनेवाला और अच्छे कर्मोंसे द्वेष करनेवाला होता है इसीके सदृश कूष्मांड राक्षस कृत्या और वेताल इनकरके पीडित मनुष्योंके लक्षण अनुमानसे जान लेना । ७ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित जो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदयमें स्थित जो मनको वहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्मार रोगको प्रकट करते हैं । ८ वातके अपस्मारमें रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गेरे और श्वास भरे तथा कर्कश अरुणवर्ण मनुष्योंको देखे अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है ऐसा देखे । ९ पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, नेत्र और मुख ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी

३ कफापस्मार ४ सन्निपातापस्मार और इस प्रकारसे अपस्मार (मृगी) रोगको चार प्रकारका जानना ॥

आमवातरोग ।

चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥४०॥चतुर्थः संनिपाताच्च—

अर्थ—आमवात रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातामवात २ पित्तामवात ३ कफामवात ४ संनिपातामवात । इन भेदोंसे आमवात रोग चार प्रकारका है ॥

शूलरोग ।

शूलान्यष्टौ बुधा जगुः॥पृथग्दोषैस्त्रिधा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि॥ आमेन सप्तमं प्रोक्तं संनिपातेन चाष्टमम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—वैद्य लोग ऐसा कहते हैं कि, शूलरोग आठ प्रकारका है। १ वातशूल

सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगतको देखे और मेरे पास पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है ऐसा देखे ।

१ कफकी मृगीवालेके झाग, अंग मुख और नेत्र सफेद होंय, देह शीतल होय, देह तथा देहके रोमांच खडे रहे, भारी होय और सब पदार्थ सपेद दीखें और सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा देखे यह अपस्मार (मिरगी) रोग देरमें छोडे अर्थात् वात पित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है। २ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वहभी असाध्य है, तथा पुराना पड गया हो वहभी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है। ३ अंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय, इस रोगको आमवात कहते हैं। ४ वातके आमवातमें शूल होता है। ५ पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लालरंग होता है। ६ कफसंबंधी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपन तथा खुजली चलती है। ७ त्रिदोषसे प्रकट आमवातमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं; यह कष्टसाध्य है। ८ दंड, कसरत, बहुत चलना, अति मैथुन, अत्यंत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मूंग, अरहर, कोदों, अत्यंत रूखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), लकडी आदिके लगनेसे, कषैला, कडवा, भीजा अन्न जिसमें अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि, सूखा मांस, सूखा शाक (कचरियाआदि) इनके सेवनसे, मल मूत्र शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवासके करनेसे, अत्यंत हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो बढकर हृदय, पसवाडा, पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थानमें शूलको करे और भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल अत्यंत कोप करे और वारंवार कोप होय, मलमूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं। तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है।

२पित्तशूल ३कफशूल ४वातपित्तशूल ५पित्तकफशूल ६कफवातशूल ७आमशूल ८संनिपात शूल इस प्रकार आठ प्रकारका शूल रोग है इन आठोंमें बहुधा वायु मुख्य शूलकर्त्ता है॥

परिणामशूलरोग।

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥ ४२ ॥ मलैर्यैः शूलसंख्यास्या स्यात्तैरेव परिणामजे ॥ अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४३ ॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः–

अर्थ–भोजन पचनेपर जो शूल होय उनको परिणाम शूल कहते हैं। वह वातादि दोषोंकरके आठ प्रकारका है। उन्हीं दोषोंकरके यह परिणामशूल आठ प्रकारका है। अन्नद्रव शूल और जरत्पित्तशूल ये दो शूल एक एक प्रकारके जानने॥

---

१ यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीक्ष्ण और गरम, विदाहकारक बांस और करील आदि, तेल, सिंबी, खल, कुलथीका यूष, कडुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष), सुराविकार (कांजी इत्यादिक), क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अति मैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा, पसीना, मूर्छा, भ्रम, शोष इनको करे। दुपहरके समय, मध्यरात्रिमें, अन्नके विदाहकालमें, शरदकालमें शूल अधिक होय। शीतकालमें शीतलपदार्थसे और अत्यंत मधुर (मीठा) शीतल अन्नसे यह शूल शांत होय। २ जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस, दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पीसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी, कचोडी आदि और कफकारकपदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे, उससे सूखी रद्द, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ये लक्षण हों। भोजन करतेसमय पीडा होय। सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें और वसंत कालमें शूल बहुत होय। ३ दाह ज्वर करनेवाला ऐसा भयंकर शूल होय सो वातपित्तका जानना। ४ कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें पित्तकफका शूल होता है। ५ बस्ति (मूत्रस्थान), हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय उसे कफवातका शूल जानना। ६ पेटमें गुडगुडाहट होय, उबकियोंका आना, रद्द, देह भारी, मंदता, अफरा, मुखसे कफका स्राव, इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं। ७ जिसमें तीन (वात, पित्त, कफ) के लक्षण मिलते हों उसको संनिपातका शूल कहते हैं। मांस, बल और अग्नि जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना। ८ अन्न पच गया होय अथवा पच रहा होय अथवा अजीर्ण हो, अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रकट होय, वो पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं। यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एक प्रकारका है, परंतु असाध्य नहीं है। क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है। ९ अम्लपित्तसे जो शूल होता है उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं।

उदावर्तरोग।

उदावर्तास्त्रयोदश ॥ एकः क्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद्द्वितीयकः ॥ ४४ ॥ निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात् ॥ छर्दिरोधात्पंचमः स्यात्षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४५ ॥ जृम्भारोधात्सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः ॥ नवमः स्यादश्रुरोधाद्दशमः शुक्रवारणात् ॥ ४६ ॥ मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात् ॥ उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४७ ॥

अर्थ—उदावर्त रोग १३ प्रकारका है। जैसे १ क्षुधा २ तृषा ३ निद्रा ४ श्वास ५ वमन ६ छींक ७ जँभाई ८ डकार ९ नेत्रसंबंधी जल १० शुक्रधातु ११ मूत्र १२ मल और १३ वायु इन तेरह प्रकारके वेगोंको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त उत्पन्न होता

---

१ क्षुधा (भूक) रोकनेसे तंद्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मंद होना ये रोग प्रकट होंय। २ प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मंद सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होंय। ३ आती हुई निद्राको रोकनेसे जंभाई, अंगोंका टूटना, नेत्र और मस्तकका अत्यंत जडता होना और तंद्रा होय। ४ जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग मोह और वायुगोला इतने रोग होंय। ५ जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अंगोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ते हो जांय, अरुचि, मुखपर झांईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खाली रद्द, विसर्प ये रोग होंय। ६ आती हुई छींकके रोकनेसे मन्या (नाडके पिछाडीकी नस) का स्तंभ कहिये जकड जाना, शिरमें शूलका चलना, अधोमुख, टेढा होय जाय, अर्धांगवात और इंद्री दुर्बल हो जाय इतने रोग होते हैं। ७ आती हुई जंभाईको रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका स्तम्भ और वातजन्य विकार मस्तकमें होय उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं। ८ आती हुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं, कंठ और मुख भारीसा मालूम होय, अत्यंत नोचनेकीसी पीडा होय, अव्यक्त भाषण (जो समझनेमें न आवे) होय। ९ आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने रोग प्रकट होंय। मस्तक भारी रहे, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों। १० मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारसे शुक्रके वेगको रोके, उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी होय, शुक्रका स्राव होय ऐसे अनेक प्रकारके रोग होंय। ११ मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्नइंद्रीमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय। १२ मलका वेग रोकनेसे गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवे, अथवा मल मुखके द्वारा निकले। १३ अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द हो जांय, पेट फूल जाय, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय तथा अन्य वातकृत (तोद शूलादिक) पीडा होय।

है इनमें मूत्र, मल और वायु इन तीनोंके रोकनेसे जो उदावर्त्त हो वह घोर उपद्रव करता है ॥

आनाहरोग ।

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्वाशयोद्भवः ॥
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—आनाहरोग दो प्रकारका है । एक पक्वाशयमें होनेसे पेटको फुलाता है दूसरा आमाशयमें होता है जिसको प्रत्यानाह कहते हैं । इस प्रकार दो प्रकारका आनाह रोग अर्थात् अफरा रोग जानना ॥

उरोग्रह और हृदय ।

उरोग्रहस्तथा चैको हृद्रोगाः पंच कीर्तिताः ॥ वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः संनिपाततः ॥ ४९ ॥ पंचमः कृमिसंजातः—

अर्थ—छातीमें खींचनेके समान पीडा होवे उसे उरोग्रह कहते हैं उसे एक प्रकारका जानना । तथा हृदयरोग पांच प्रकारका है । जैसे १ वातहृद्रोग २ पित्तहृद्रोग ३ कफहृद्रोग ४ संनिपातज हृद्रोग तथा ५ कृमिरोगजन्य हृद्रोग इस प्रकार हृद्रोग पांच प्रकारका है ॥

---

१ आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित होकर विगुणवायुसे वारंवार विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी तरह प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं । २ पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे आध्मान, वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होते हैं । ३ आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड जाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र, इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई रद्द और श्वास ये लक्षण होते हैं । ४ उरोग्रह यह हृद्रोगका एक भेद है । उसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मांस, प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होतेही समय वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादि दोष कुपित होकर रसधातु दूषित करके हृदयमें जाकर हृदयको पीडा करे । ५ वातज हृदयरोगमें हृदय ईंचा सरीखा, सुईसे टोंचने सरीखा, फोडने सरीखा, दो टुकडा करनेके समान, मथनेके समान, कुल्हाडीसे फाडनेके समान पीडा होती है । ६ पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धुआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं । ७ कफके हृदयरोगमें भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मंदाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं । ८ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे त्रिदोषका हृद्रोग जानना । इसमें कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है उस गांठसे कृमि पैदा होती है ऐसा चरकमें लिखा है । ९ तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडा करके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो), थूकना, तोद (सूई चुभानेकीसी पिडा), शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड जांय और मुखशोष यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं ।

उदररोग।

तथाष्टावुदराणि च॥वातात्पित्तात्कफात्त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जलादपि॥ ८०॥ प्लीह्नःक्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम्॥

अर्थ–उदररोग १ वातोदर २ पित्तोदर ३ कफोदर ४ त्रिदोषोदर ५ जलोदर

---

१ अफरा चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता, मंदाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना, दाह, तंद्रा ये लक्षण सब उदरोंमें होते हैं। २ वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि, और कूख इनमें सूजन होय, संधियोंका टूटना तथा कूख, पसवाडे, पेट, कमर इनमें पीडा, सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचे भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा, नख, नेत्रादिका काला लाल होना, पेट अकस्मात् (निमित्तके विना) बडा हो जाय, छोटी सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमें चारों तरफ बारीक काली शिरा (नाडियों) से व्याप्त होय, चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय, इस उदरमें वायु चारों तरफ डोलकर शूल करता तथा गूंगता है। ३ पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कडुआस, भ्रम, अतिसार, त्वचा, नख, नेत्र इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पीली तामेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे सब देहमें दाह होय, आंतोंसे धूंआसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमें घोर पीडा होय। ४ कफके उदररोगमें हाथ, पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड जाय, सूजन और अंग भारी हो जाय, निद्रा आवे, वमन होयगी ऐसा मालुम होय, अरुचि होय, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सपेद होंय, पेट निश्चल, चिकना, सपेद, नाडियोंसे व्याप्त हो। इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेट करडा और शीतल मालुम होय, तथा भारी और स्थिर होय। ५ खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (बाल), मल, मूत्र और आर्तव (रजोदर्शका रुधिर) मिला अन्न पान देय अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहर मिलाई, मछली तिनका पत्ता आदि औंटा हुआ ऐसा जल) और दूषी विष (मंदविष) इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यंत भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं वे शीतकालमें अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेष करके कोपको प्राप्त होते हैं और दाह होय, वह रोगी निरंतर विषके संयोगसे मूर्छित होय, देहका पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, इसी संनिपातोदरको दुष्योदरभी कहते हैं। ६ जिसने स्नेह घृत तैलादि पान किया होय, अथवा अनुवासन बस्ति की हो, वमन किया हो, अथवा दस्त किये हों, अथवा निरूह बस्ति की हो, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल वहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं। वे उदक वहनेवाली स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चीकने) होनेसे उदरको उत्पन्न करते हैं। वह जलोदर होता है। उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय, नाभीके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पखालमें जल हिलता है उसी प्रकार हिले, गुडगुड शब्द करें, कांपे इसको जलोदर अर्थात् जलंधर रोग कहते हैं।

६ प्लीहोदर ७ क्षतोदर ८ बद्धगुदोदर इस प्रकार आठ प्रकारका उदररोग जानना ॥

गुल्मरोग।

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ५१ ॥ द्वन्द्वभेदात्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः संनिपाततः ॥ रक्तस्त्वष्टम आख्यातः—

अर्थ—गुल्म (गोलेका) रोग आठ प्रकारका है। जैसे १ वातगोला २ पित्तगोला

---

१ विदाही (वंश करीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् स्रोत (छिद्र) रोकनेवाले ऐसे अन्न निरंतर सेवन करनेवाले मनुष्यके अत्यंत दुष्ट भए जे रुधिर और कफ बढकर प्लीह (तापतिल्ली) को बढाते हैं इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं। यह बांईतरफ बढता है। इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है। देहमें मंद ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हों, बल क्षीण होय और अत्यंत पीलावर्ण हो जाय। २ कांटा, धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चला जाय अर्थात् पक्वाशयमें विलोम (टेढा तिरछा) चला जाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे, अथवा जंभाई, अति अशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आंत फट जाय। उन फटे आंतोंसे गलित पानीके समान स्राव गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभीके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पीडासे अत्यंत व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रंथांतरमें परिस्राविउदर कहते हैं और कही छिद्रोदर कहते हैं ऐसा यह क्षतोदर है। ३ जिस पुरुषकी आंत उपलेपी अर्थात् गाढे अन्न (शाकादिक) करके अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडे करके बद्ध हो जाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीकी नलीमें होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बैठता है उसी प्रकार यही बढता है। और वह मल बडे कष्टसे गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलता है। जब मलका निकसना बंद हो जाय, तब मल दोषोंकरके गुदासे ऊपर आता है इसीसे उदर बढता है अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि होय इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं। अथवा गुदाके ऊपर आंतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं। ४ जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ति, कभी पसवाडेमें चला जाय, तथा कभी लंबा, कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें कभी थोडी, कभी बहुत पीडा होय तोद भेद (सुई चुभानेकीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय। जो गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम हो जाय, वह गोला वादीसे प्रगट होता है। उसमें रूखा, कसैला, कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होता। ५ ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें ललाई, अन्न पचनेके समय अत्यंत शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श न सहा जाय ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं।

३ कफगुल्म ४ वातपित्तगुल्म ५ पित्तकफगुल्म ६ कफवातगुल्म ७ संनिपात गुल्म ८ रक्तगुल्म इस प्रकार आठ प्रकारका गुल्मरोग जानना ॥

मूत्राघातरोग ।

मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ५२ ॥ वातकुण्डलिका पूर्वं वाताष्ठीला ततः परम्॥वातबस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः॥५३॥ पंचमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः॥ मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ॥ ५४ ॥ मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः ॥ मूत्रसादश्चोष्णवातो बस्तिकुण्डलिका तथा ॥ त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥

अर्थ—मूत्राघातरोग १३ प्रकारका है । जैसे १ वातकुंडलिका २ वाताष्ठीला

---

१ देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानी, सुखी रद्द (उवाकी), खांसी, अरुची, भारीपन, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय और ऊंचा होय ये सब कफात्मक गुल्मके लक्षण हैं । २ जिस गुल्ममें वात और पित्त इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको वातपित्तका गुल्म जानना । ३ जिस गुल्ममें पित्त और कफ इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको पित्तकफका गुल्म जानना । ४ जिस गुल्ममें कफ और वात इन दोनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसे कफवातका गुल्म जानना। ५ भारी पीडा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन तथा ऊंचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला, ऐसे त्रिदोषज गुल्मको असाध्य जानना । ६ नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे, अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले) को लेकर गुल्म करता है वो गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है । यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्षण मिलें (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड जाय, स्तनका अग्रभाग काला हो जाय, और दोहदादि लक्षण सब मिलें, ये लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होता है । दश महीना व्यतीत हो जाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । ७ मूत्रके वेग रोकनेसे कुपित भये दोषोंसे वात कुंडलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघात रोग होते हैं । ८ रूखे पदार्थ खानेसे, अथवा मल मूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे कुपित भई जो वायु सो बस्ति (मूत्राशय) में प्राप्त हो पीडा करे, और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा) करके वहां आप कुंडलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको वारंवार थोडा थोडा पीडाके साथ त्याग करे । इस दारुण व्याधिको वातकुंडलिका कहते हैं । ९ बस्ति और गुदा इनमें यह वायु अफरा करे, तथा गुदाकी वायुको रोककर चंचल और उन्नत (ऊंची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश) को प्रगट करे, यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है । उसको वाताष्ठीला कहते हैं ।

३ वातबस्ती ४ मूत्रातीत ५ मूत्रजठर ६ मूत्रक्षय ७ मूत्रोत्संग ८ मूत्रग्रंथी ९ मूत्रशुक्र १० विड्घात ११ मूत्रसाद १२ उष्णवात १३ बस्तिकुंडलिका ऐसे तेरह प्रकारके मूत्राघात जानने। तिनमें मूत्रसाद उष्णवात बस्ति कुंडलिका ये तीन बडे भारी प्राण-संकट करनेवाले हैं । पीडा थोडी होकर मूत्रका रुकना अधिक होवे उस व्याधिको मूत्राघात कहते हैं । और मूत्रकृच्छ्रमें मूत्रका रुकना अल्प होकर पीडा अत्यंत होती है इतना मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें भेद है ॥

---

१ जो मनुष्य अड (जिद) से मूत्र बाधाको रोकता है उसको बस्ति (मूत्राशय)-के मुखको वायु बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बंद हो जाय और वो वायु बस्तिमें और कूखमें पीडा करे । उस व्याधिको वातबस्ति कहते हैं । यह बडे कष्टसे साध्य होता है । २ मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वो जल्दी नहीं उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं । ३ मूत्रके वेगको रोकनेसे मूत्रवेग धारण जनित और उदावर्तका कारणभूत ऐसा अपानवायु कुपित होनेसे पेट बहुत फूल जाय, और नाभीके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोबस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं । ४ रूखा अथवा श्रांत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुषके बस्ति मूत्राशयमें रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय कहते हैं । ५ प्रवृत्त भया मूत्र बस्तिमें अथवा शिश्न (लिंग) में अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करेभी तो वादीसे बस्तीको फाडकर जो मूत्र निकले वो मंद मंद थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं । ६ बस्तिके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय, इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं । ७ मूत्रबाधाको रोकके जो पुरुष स्त्रीसंग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय उसको मूत्रशुक्र कहते हैं । ८ रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत (मल) जब वायुकरके उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मलमूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तौ बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्घात कहते हैं । ९ पित्त अथवा कफ ये दोनों वायुकरके बिगडे हुए होय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूत-नेके समय दाह होय जब वो मूत्र पृथ्वीमें सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय, अथवा सर्व वर्णका होय, इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं । १० व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो बस्तीमें प्राप्त हो वायुसे मिल बस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्र वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं । ११ जल्दी २ चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे बस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहे, उससे शूल, कंप और दाह ये होंय मूतकी एक एक बूंद गिरे यदि बस्ति जोरसे पीडित होय तौ बडी धार पडे, बस्तिमें सूजन होय, पेटमें पीडा होय इस रोगको बस्तिकुंडलिका कहते हैं ।

मूत्रकृच्छ्र।

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ५६ ॥ संनिपाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं तु पञ्चमम् ॥ विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ॥ ५७ ॥ अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं–

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। जैसे १ वातमूत्रकृच्छ्र २ पित्तमूत्रकृच्छ्र ३ कफमूत्रकृच्छ्र ४ संन्निपातमूत्रकृच्छ्र ५ शुक्रमूत्रकृच्छ्र ६ विट्मूत्रकृच्छ्र ७ घातमूत्रकृच्छ्र और ८ अश्मरीमूत्रकृच्छ्र इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। मूत्रकृच्छ्र कहिये वातादिक दोष अपने २ कारण करके पृथक् २ अथवा मिलकर कुपित हो मूत्राशयमें प्रवेशकर मूत्रमार्गको पीडित करे। उस समय वह मनुष्य अत्यंत क्लेश करके मूते उस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं॥

अश्मरीरोग।

चतुर्धा चाश्मरी मता ॥ वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्–

अर्थ–अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वाताश्मरी २ पित्ताश्मरी ३ कफाश्मरी और ४ शुक्राश्मरी। इस प्रकार चार प्रकारकी पथरी जाननी। वायु

---

१ वातके मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण (जांघ और ऊरू इनकी संधि), मूत्राशय और इंद्री इनमें पीडा होय और मूत्र वारंवार थोडा उतरे। २ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त, अग्निके समान वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे। ३ कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय। ४ संनिपातके मूत्रकृच्छ्रमें सर्व लक्षण होते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है। ५ दोषोंके योगमें शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्रके संग वीर्यपतन होय। ६ मल (विष्ठा) के अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय। ७ मूत्र वहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विध जाय, अथवा पीडित होय तौ उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है। इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं। ८ पथरीके निदानसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। ९ वायुकी पथरीसे रोगी अत्यंत पीडाकरके व्याप्त होय, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे, और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुका परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपकके गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होय। १० पित्तकी पथरीसे रोगीके बस्तिमें दाह होय और खारसे जैसा दाह होय, ऐसी वेदना होय, बस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालुम होय और भिलाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय। ११ कफकी पथरीसे बस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय, शीतलपन होय और पथरी बडी मुर्गीके अंडेके समान, स्वच्छ और मद्य (दारु)-के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीरीसी होय। यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है। १२ शुक्राश्मरी शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे होती है। यह पथरी बडे मनुष्योंकेही होती है।

कुपित हो बस्तिमें जायके मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखायके उसीके मुखमें क्रम करके पाषाणके गोलेके समान गांठ उत्पन्न करे उस रोगको पथरी कहते हैं। जैसे गौके पित्तमें क्रमसे गोलोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती है। इसमें बस्तिका फूलना, तथा बास्ति, शिश्न (लिंग) और अंडकोश इनमें पीडा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं। उस पथरीका पाक होकर वालूके समान मूत्रमार्गमें होकर गिरे उसको शर्कराश्मरी कहते हैं॥

प्रमेहरोग।

तथा मेहाश्च विंशतिः ॥ ५८ ॥ इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः ॥ शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च शीतकः ॥५९॥ सिकताह्वः शनैर्मेहो दशैते कफसंभवाः ॥ मंजिष्ठाख्यो हरिद्राह्वो नीलमेहश्च रक्तकः ॥ ६० ॥ कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसंभवाः ॥ हस्तिमेहो वसामेहो मज्जमेहो मधुप्रभः ॥ चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ॥ ६१ ॥

अर्थ–प्रमेहरोग वीस प्रकारका है। जैसे १ इक्षुप्रमेह[१], २ सुरामेह[२], ३ पिष्टमेह[३], ४ सांद्र[४] मेह, ५ शुक्र[५]मेह, ६ उदक[६]मेह, ७ लाला[७]मेह, ८ शीत[८]मेह, ९ सिकता[९]मेह और १० शनैर्मेह[१०] ये दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफसे प्रगट होते हैं। १मंजिष्ठ[११]मेह २हरिद्र[१२]मेह

मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे वीर्य चलायमान हो गया हो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले भीतरही रहे, तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है। उसीको शुक्रजा अश्मरी कहते हैं। इसकरके अंडकोशोंमें सूजन, वलीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। इस शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीडा होती है। वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नांई शर्करा उत्पन्न होती है।

१ इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके समान अत्यंत मीठा मूत्र होय। २ सुराप्रमेहसे दारुके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा मूते। ३ पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच होय। ४ सांद्रप्रमेहसे रात्रिमें पात्रमें धरनेसे जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय। ५ शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्र मिला होय। ६ उदकप्रमेह करके स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गंधरहित, पानीके समान, कुछ गाढा और चिकना मूत होता है। ७ लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है। ८ शीतप्रमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा वारंवार बहुत मूते। ९ सिकताप्रमेहसे मूत्रके कण और वालूरेतके समान मलके रवा गिरें। १० शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मंद मंद मूते। ११ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते। १२ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण, हलदीके समान और दाहयुक्त मूते।

३ नीलमेह ४ रक्तमेह ५ कृष्णमेह और ६ क्षारमेह ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं। १ हस्तिमेह २ वसामेह ३ मज्जामेह ४ मधुमेह । ये चार प्रकारके प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वातसे प्रगट हैं। इस प्रकार सब मिलकर वीस प्रकारके प्रमेह जानना ॥

सोमरोग।

सोमरोगस्तथा चैकः--

अर्थ—सब देहमें उदक क्षोभित होकर योनिमार्गसे सफेद रंगका गिरता है उसको सोमरोग कहते हैं वह एकही प्रकारका है ॥

प्रमेहपिटिका।

प्रमेहपिटिका दश ॥ ६२ ॥ शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनतालजी ॥ मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ॥ विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसंभवाः ॥ ६३ ॥

अर्थ—प्रमेहकी पिडिका (फुनसी) दश प्रकारकी हैं । जैसे १ शराविका, २ कच्छपिका, ३ पुत्रिणी, ४ विनता, ५ अलजी, ६ मसूरिका, ७ सर्षपिका, ८ जालिनी, ९ विदारिका और १० विद्रधिका । इस प्रकार दश प्रकारकी पिटिका प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे होती हैं । यह संधिमें मर्मस्थलमें तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देहमें मेद दुष्ट होनेसे उत्पन्न होती है ॥

---

१ नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते । २ रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे । ३ कृष्ण (काले) प्रमेहसे स्याहीके समान, काला मूते । ४ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है । ५ हस्तिप्रमेहसे मस्तहाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूते । ६ वसाप्रमेहसे वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते । ७ मज्जाप्रमेहसे मज्जाके समान अथवा मज्जामिला वारंवार मूते । ८ मधुप्रमेहसे कषेला, मीठा और चिकना ऐसा मूते । ९ शराविका पिटिका ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होय जैसे कि मिट्टीका शराव होता है । १० कच्छपिका पिटिका कछुआकी पीठके समान कुछ दाहयुक्त होय है । ११ पुत्रिणी पिटिका यह बीचमें बडी फूंसी होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसियां और होंय. उसको पुत्रिणी कहते हैं । १२ विनता फुनसी पीठमें अथवा पेटमें होती है । इसकी पीडा बहुत होय, ठंडी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है । १३ अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोडोंकरके व्याप्त और भयंकर होती है । १४ मसूरिका पिटिका मसूरकी दालके समान बडी होती है । १५ सर्षपिका पिटिका सफेद सरसोंके समान बडी होती है । १६ जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुत और मांसके जालसे व्याप्त होती है । १७ विदारिका पिटिका विदारीकंदके समान गोल और करडी होती है । १८ विद्रधिका पिटिका विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है ।

मेदोरोग ।

मेदोदोषस्तथा चैकः—

अर्थ—मेदरोग एक प्रकारका है । उसके लक्षण ये हैं कि कफको उत्पन्न करनेवाला आहार, मधुरान्न, मधुररस, स्नेहान्न कहिये घृतपक्क गोधूम पिष्टादिक लड्डू शकल्पारे इत्यादिकोंके सेवन करनेसे मेद बढता है उससे अन्यधातु, अस्थ्यादि शुक्रांत, उनका पोषण नहीं होता है किंतु मेद बढता है जिससे मनुष्य सर्व कर्ममें अशक्त हो जाता है और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोतेमें अत्यंत ठोरना, शरीरमें ग्लानि, छींक, पसीनोंकी दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं । मेद सर्व प्राणीमात्रोंके प्रायः करके रहती है । अत एव जिस मनुष्यके मेद रोग होता है उसको बहुधा पेटकी अधिक वृद्धि होती है और उस मेदकरके मार्ग रुद्ध होनेपर पवन कोष्ठाग्निमें विशेष करके संचार करने लगता है और अग्निको प्रदीप्त करके आहारको शोषण कर लेता है । इसीसे भोजन किया हुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण होकर दूसरे भोजन करनेकी इच्छा होती है । कदाचित् भोजनका समय टल जावे तो घोर विकार, प्रमेह, पिडिका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि और वातरोग इनमेंसे कोईसा एक रोग होता है । और विशेषकर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होनेसे मेदरोगीके शरीरको जलाते हैं । इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वनसंबंधी अग्नि वायुकी सहायतासे वनको जलाता है इस प्रकार जलावे । तथा वह मेद अत्यंत कुपित होनेसे एकाएकी वातादिदोष कुपित हो घोर उपद्रव करके मनुष्यको शीघ्र मारते हैं । उस मेदके योगसे शरीर अत्यंत मोटा होनेसे मनुष्यका उदर, स्तन और कूले ये चलते समय थलर २ हिलते हैं तथा विसर्प, भगंदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं। इस प्रकार मेदरोगके लक्षण जानने॥

शोथरोग ।

शोथरोगा नव स्मृताः॥दोषैः पृथग्द्वैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि॥६४॥

अर्थ—शोथरोग नौ प्रकारका है । १ वातशोथ[1] २ पित्तशोथ[2] ३ कफशोथ[3] ४ वात-

---

१ वादीसे सूजन, चंचल, त्वचा पतली हो जाय, कोठा कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा शून्य पड जाय, भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीडा हो । कदाचित् निमित्तके विना शांत हो जाय, उस सूजनके दाबनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे । दिनमें जोर बहुत करे । २ पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गंधियुक्त, काली, पीली और लाल । ३ कफकी सूजन भारी, स्थिर और पीली होती है इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मंदाग्नि ये लक्षण होंय, तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमें होय । इसको दबानेसे ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी प्रबलता होती है । ४ वात, पित्त इन दोनोंके लक्षण जब सूजनमें हों उसको वातपित्तकी सूजन कहते हैं ।

पित्तशोथ ५ पित्तकफशोथ ६ कफवातशोथ ७ त्रिदोषकी शोथ ८ अभिघातशोथ और ९ विषशोथ । इस प्रकार शोथरोग नौ प्रकारका है । इसको लोकमें सूजन कहते हैं । स्वकारणसे वायु कुपित होकर उसी प्रकार दुष्ट हुआ रक्त,पित्त और कफ इनको बाहरकी शिराओंमें लायकर फिर वह वायु उस रक्तपित्त और कफकरके रुद्धगति हो त्वचा और मांस इनके आश्रित जो उसे कहिये सूजन उसको अकस्मात् उत्पन्न करे उस रोगको सूजन कहते हैं ॥

वृद्धिरोग ।

वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ॥
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमा ॥ ६९ ॥

अर्थ–वृषण जिससे बडे होवें उस रोगको वृद्धि कहते हैं । वह रोग सात प्रकारका है। जैसे १ वातवृद्धि २ पित्तवृद्धि ३ कफवृद्धि ४ रक्तवृद्धि ५ मेदोवृद्धि ६ मूत्रवृद्धि होय उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण हों । दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल होय उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होय

---

१ पित्त और कफ इनके लक्षण जिस सूजनमें मिलते हों उसको पित्तकफकी सूजन जानना । २ कफ और वात इन दोनोंके लक्षण जिस सूजनमें मिले उसको कफ और वातकी सूजन जानना । ३ सन्निपातके सूजनमें वात, पित्त और कफ इन तीनोंकेभी लक्षण होते हैं । ४ अभिघातज सूजन काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे, फूटनेसे अथवा घावके होनेसे, लकडी आदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलाएका तेल लग जानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय उसमें अत्यंत दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमें पित्तके लक्षण होते हैं । ५ विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे, अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादिक) प्राणीके दाढ, दांत, नख लगनेसे अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा, अथवा मलीनवस्त्र अंगमें लगनेसे, अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे अथवा संयोगाविष अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलाती है । वह सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है । ६ वातसे भरी मस्तक जैसी और हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसी मालूम होय, रूक्ष और विनाकारण दूखने लगे उसे वातकी अंडवृद्धि जानना । ७ जिसमें पित्तके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको पित्तकी अंडवृद्धि जानना । इससे अंड पके गूलरके समान होता है तथा दाह, गरमी और पाक होती है । ८ कफकी अंडवृद्धिमें अंड शीतल, भारी, चिकना (तथा खुजलीयुक्त) कठिन और थोडी पीडायुक्त होता है । ९ काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको रक्तज अंडवृद्धि कहते हैं । १० मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु, नरम तथा तालफलके समान अर्थात् पीले रंगकी होय । ११ मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह रोग मूत्रवृद्धि होय है, वह पुरुष

और ७ अंत्रवृद्धि । इस प्रकार वृद्धिरोग सात प्रकारका है वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूलको करती नीचेके भागमें जायकर वंक्षण-द्वारा अंडकोशोंमें जायके वृषणवाहिनी नाडियोंको दूषित कर कफ जैसे वृषणकी गोळीके ऊपरकी त्वचाको बढाय देवे उसको वृद्धिका रोग कहते हैं ॥

अंडवृद्धिरोग ।

अण्डवृद्धिस्तथा चैकः-

अर्थ-अंडकोशकी वृद्धिको (पोते छिटकना) तथा कुरंड कहते हैं । यह एक प्रकारका है । इसके लक्षण बहुधा अंत्रवृद्धिके समान होते हैं ॥

गंडमाला, गलगण्ड और अपचीरोग ।

तथैका गण्डमालिका ॥ ६६ ॥ गण्डापचीति चैका स्यात्-

अर्थ-गंडमाला[2], गंड (गलगंड[3]) और अपची[4] ये तीन रोग एक एक प्रकारके हैं । इनके लक्षण नीचे लिखे सो देखना ॥

जब चले तब पानीसे भरे पखालके समान डबक डबक हिले तथा बजे और उसमें पीडा थोडी हो, हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय, फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होय ।

१ वातकोपकारक आहारके सेवनसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे, उपस्थित मूत्रादिकके वेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्तवेग (करनेकी इच्छा न होय) उसको बलपूर्वक करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा (टेढा तिरछा अंगकरके गमनादिक करना), बलवानसे वैर करना, कठिन धनुष्यका ईंचना, इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपित भई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको बिगाडकर अर्थात् उनका संकोचकर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे ले जाय तब वंक्षण संधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे । उसकी उपेक्षा करनेसे (औषध न करनेसे) तथा अंडकोशोंके दाबनेसे जो वायु कौंकौं शब्द करे, तथा हाथके दाबनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अंडोंको फुलाय दे यह रोग अंत्रवृद्धि कहलाता है । २ मेद और कफसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें और वंक्षण (जानु मेढ्र संधि) इन ठिकानोंमें छोटे बेरके बराबर, बडे बेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेक प्रकारकी गंड होती हैं, वे बहुत दिनमें हौले हौले पके, उनको गंडमाला कहते हैं । ३ मन्या नाडी, ठोडी इन ठिकानेपर अंडके बराबर ग्रंथिरूप सूजन लंबायमान होती है और वह सूजन बडी छोटीभी रहती है, उसको गंड अथवा गलगंड कहते हैं, वह गलगंडरोग गलेमें जो होता है सो वायु और इनके दुष्ट होनेसे होता है और मन्यानाडीमें जो होता है सो मेदके दुष्ट होनेसे होता है । ४ गंडमालाकी गांठ पके नहीं, अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन उठे, ऐसी पीडा बहुत दिन रहे उसको अपची कहते हैं ।

ग्रंथिरोग।

ग्रन्थयो नवधा मताः ॥ त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेद-सो व्रणात् ॥ ६७ ॥ अस्थ्ना मांसेन नवमः-

अर्थ-ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है। जैसे १ वातग्रंथी २ पित्तग्रंथी ३ कफग्रंथी ४ रक्तग्रंथी ५ शिराग्रंथी ६ मेदोग्रंथी ७ व्रणग्रंथी ८ अस्थिग्रंथि और ९ मांसग्रंथी। इस प्रकार ग्रंथीरोग नौ प्रकारका है। ग्रंथी कहिये गांठ। वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषित कर गोल और ऊंची तथा गांठके समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथी अर्थात् गांठ कहते हैं ॥

अर्बुदरोग।

षड्विधं स्यात्तथार्बुदम् ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मेदसः ॥ ६८ ॥

अर्थ-अर्बुदरोग[११] छः प्रकारका है। जैसे १ वातार्बुद, २ पित्तार्बुद, ३ कफार्बुद,

---

१ वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, सुई चुभने-कीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, कालवर्ण हो, बस्तिके समान चौडी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले। २पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यंत दाह करे, आंतोंसे धुंआ निकलतासा मालूम होय मानो सिंगी लगायके कोई चूंसे है। खार लगानेके सदृश पका मालुम हो, अग्निके समान जलीसी मालुम हो, उस गांठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले। ३ कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (किंचित् वि-वर्ण), थोडी पीडा हो, अत्यंत खुजली चले, पत्थरके समान कठिन, बडी होय और चिर-कालमें बढनेवाली होय, फूटनेसे सफेद गाढी राध निकले। ४ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको रक्त ग्रंथि कहते हैं। इसके लक्षण पित्तग्रंथिके सदृश जानना। ५ निर्बल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर, एकत्र कर और सुखायकर ऊंची गांठ शीघ्र प्रगट करती है। ६ मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण हो जाय, चिकनी, बडी, खुजलीयुक्त, पीडारहित होय और जब वो फूट जाय, तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेद निकले। ७ क्षतादिकोंकरके व्रण होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको व्रण-ग्रंथि कहते हैं। ८ वातादिक दोष कुपित होकर हड्डियोंको दूषित करे तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थिग्रंथि कहते हैं। ९ मांसके दुष्ट होनेपर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रंथि कहते हैं और व्रणग्रंथि तथा अस्थिग्रंथियोंमें जिस दोषका कोप हो उसीके लक्षणसे जान लेना। १० शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मंद पीडायुक्त, पूर्वोक्त ग्रंथियोंसे बडी बडी जिसकी जड होय, बहुकालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गांठ उठे उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं। ११ इन वातादि तीन दोषोंके अर्बुदोंके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके समान होते हैं।

४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद और ६ मेदकी अर्बुद ऐसे अर्बुद रोगको छः प्रकारका जानना॥

श्लीपदरोग।

श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि॥

अर्थ–श्लीपद रोग तीन प्रकारका है। १ वातका श्लीपद २ पित्तका श्लीपद ३ कफका श्लीपद ऐसे तीन प्रकार जानने॥

विद्रधिरोग।

विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः॥ ६९॥ रक्तात्क्षतात्त्रिदोषैश्च–

अर्थ–विद्रधिरोग छः प्रकारका है। जैसे १ वातकी विद्रधि २ पित्तकी विद्रधि

---

१ दुष्ट भये जो दोष सो नसोंमें रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडितकर मांसके गोल्को प्रगट करे वो यत्किंचित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है। उसमेंसे रुधिर वहा करे यह रक्तार्बुद असाध्य है। वो रक्तार्बुद पीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरके पीडित होता है इससे उसका वर्ण पीला हो जाता है। ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं। २ मुक्का आदिके लगनेसे अंगमें पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे। उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वो चिकनी, देहके वर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं, ऐसी होती है। जिस मनुष्यका मांस बिगड जाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है। यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है। कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते हैं। ३ जो सूजन प्रथम वंक्षण (रोगों) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवे और उसके साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं। यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होंट, नाक इनमेंभी होती है ऐसा किसीका मत है। ४ वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें पीडा होय, विनाकारणके दूखे और उसमें ज्वर बहुत होय। ५ पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय। ६ कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सपेद, पीला, भारी और कठिन होता है। ७ अत्यंत बढे तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रयकरके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरे२ भयंकर शोथ उत्पन्न करे, उसकी जड हड्डीपर्यंत पहुंच जाय। उत्पत्तिकालमें अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उसको विद्रधि कहते हैं। ८ जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी हो, अत्यंत वेदनायुक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक नाना प्रकारका होय, उसको वातविद्रधि कहते हैं। ९ पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा काला वर्ण होय, ज्वर, दाह करनेवाली, उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय।

३ कफकी विद्रधि ४ रुधिरजन्यविद्रधि ५ क्षतजन्यविद्रधि और संनिपातकी विद्रधि। इस प्रकार छः भेद विद्रधिके हैं ॥

व्रणरोग।

व्रणाः पंचदशोदिताः॥ तेषां चतुर्धा भेदः स्यादागंतुर्देहजस्तथा ॥७०॥ शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक् ॥ वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः ॥७१॥वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा ॥ तथा पित्तकफाभ्यां च संनिपातेन चाष्टमः ॥ ७२ ॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः ॥ श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः ॥७३॥ वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः॥ संनिपातासृगुद्भूत इति पंचदश व्रणाः ॥ ७४ ॥

अर्थ—व्रण (घाव) पंदरह प्रकारके हैं। उनके चार भेद हैं। जैसे १ आगंतुक व्रण २ देहजव्रण ३ शुद्धव्रण ४ दुष्टव्रण। इस प्रकार चार प्रकारके व्रण जानने।

---

१ कफकी विद्रधि मिट्टीके शरावसदृश बडी होय, पीला वर्ण, शीतल, चिकनी, अल्प पीडा होय, उसकी उत्पत्ति और पाक देरमें होती है। २ काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा और ज्वर ये उसमें तीव्र होंय। तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय उसके रक्तविद्रधि जानना। ३ लकडी, पत्थर, डेला आदिका अभिघात (चोट लगना पिच जाना इत्यादि) होनेसे अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे, घाव हो जानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके विस्तृत (फैली) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिरसहित पित्तको कोप करे उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते हों, इसको क्षतज विद्रधि जानना। इसकोही आगंतुज विद्रधि कहते हैं। ४ संनिपातज विद्रधिमें अनेक प्रकारकी पीडा (जैसे तोद, दाह, खजली आदि) तथा अनेक प्रकारका स्राव (जैसे पतला, पीला, सपेद स्राव होय, घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय) छोटी, बडी, कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय। ५ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रोंके अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगंतुकव्रण कहते हैं। ६ वात, पित्त, कफ ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होता है उसको देहज व्रण कहते हैं। ७ जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोडी पीडायुत, भले प्रकारका होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना। ८ जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और सडा भया रुधिर वहे, जो ऊपर ऊंचा तथा भीतरसे पोला हो बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं वह शुद्धलिंगके विपरीत होती है।

उनकी संख्या कहते हैं। जैसे १ वातव्रण २ पित्तव्रण ३ कफव्रण ४ रक्तव्रण ५ वातपित्तव्रण ६ वातकफव्रण ७ पित्तकफव्रण ८ संनिपातव्रण ९ वातरक्तव्रण १० रक्तपित्तव्रण ११ कफरक्तव्रण १२ वातपित्त और रक्तजन्यव्रण १३ वातकफ और रुधिरजन्यव्रण १४ पित्तकफरुधिरजन्यव्रण १५ संनिपात और रुधिरजन्यव्रण। इस प्रकार पंदरह प्रकारके व्रण जानने॥

आगंतुकव्रणरोग।

सद्यो व्रणस्त्वष्टधा स्यादवक्लृप्तविलम्बितौ॥
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः॥ ७८॥

अर्थ–सद्योव्रण (आँगंतुक) आठ प्रकारका है। जैसे १ अवक्लृप्त २ विलंबित ३ छिन्न ४ भिन्न ५ प्रचलित ६ घृष्ट ७ विद्ध और ८ निपातित। इस प्रकार आगंतुक व्रण आठ प्रकारके हैं॥

---

१ वादीसे प्रगट व्रणमें जकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंसे थोडा स्राव होय, तथा पीडा बहुत होय, तथा सुईके चुभानेकीसी पीडा होय और उसका रंग काला होय। २ प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, गिरना, चिरासा होय, वास आवे, स्राव होय, ये पित्तव्रणके लक्षण हैं। ३ कफका स्राव अत्यंत गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मंदपीडा, स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके। ४ जो रक्तके कोपसे होय वो रक्तव्रण उसमेंसे रुधिर स्रवे। ५ वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रणमें हों उसे वातकफजव्रण जानना। इसी प्रकारसे पित्तकफव्रण, संनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने। ६ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगंतुक व्रण कहते हैं। ७ जिस व्रणके भीतर कतरनीसे कतरनेके सदृश पीडा होय, उसको अवक्लृप्तव्रण कहते हैं। ८ जिस व्रणका मांस लटकता है उसको विलंबित व्रण कहते हैं। ९ जो व्रण तिरछा, सरल (सीधा) अथवा लंबा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं। १० बर्छी, भाला, बाण, तरवारके अग्रभाग विषाण (दांत सींगी) इनसे आशय (कोष्ठ) को वेधकर थोडासा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्नव्रण कहते हैं। ११ जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किवार आदिसे इनके योगसे पिच जाय, तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय (घाव न होय) उसको प्रचलित व्रण कहते हैं। इसको कोई पिच्चित व्रणभी कहते हैं। १२ कठिन वस्त्र आदिके घर्षण (घिसने) से, चोटके लगनेसे, जिस अंगके ऊपरकी त्वचा जाती रहे, तथा आगके समान गरम रुधिर चुवाय उसको घृष्टव्रण कहते हैं। १३ बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे आशय विना जे अंग हैं उनमें वेध होनेसे तुंडित (कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (शस्त्र निकल गया) हो उसको विद्धव्रण कहते हैं। १४ जिसमें अंग अतिच्छिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनोंके लक्षण जिसमें मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बांका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं। इसको क्षतव्रणभी कहते हैं।

कोष्ठरोग ।

कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तो छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ॥

अर्थ-कोष्ठभेद दो प्रकारका है जैसे १ छिन्नांत्रक २ निःसृतांत्रक है ॥

अस्थिभंगरोग ।

अस्थिभंगोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७६ ॥ विवर्तितश्च विश्लिष्टतिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः ॥ ऊर्ध्वगः संधिभंगश्च-

अर्थ-अस्थिभंग शब्द करके इस जगह हस्तादिकोंके कांडका भंग और संधिभंग इन दोनोंका ग्रहण है । वह भग्नरोग आठ प्रकारका है । जैसे १ भग्नपृष्ठ २ विदारित ३ विवर्तित ४ विश्लिष्ट ५ तिर्यक्क्षिप्त ६ अधोगत ७ ऊर्ध्वग और ८ संधिभंग इस रीतिसे आठ प्रकार जानने । हड्डी टूटने आदिको भग्न कहते हैं ॥

वह्निदग्धरोग ।

वह्निदग्धश्चतुर्विधः ॥ ७७ ॥ प्लुष्टोऽतिदग्धो दुर्दग्धः सम्यग्दग्धश्च कीर्तितः ॥

अर्थ-अग्निसे जले हुएको दग्ध कहते हैं । वह रोग चार प्रकारका है । जैसे १ प्लुष्ट

---

१ शस्त्रादिकोंकरके पेटकी आंत टूट गई हो और शस्त्र और अंत ये दोनोंभी पेटके भीतर हों उसको छिन्नांत्रक कहते हैं । २ शस्त्रादिकों करके पेटकी आंत टूटके बाहर निकल आई हो उसको निःसृतांत्रक कहते हैं । ३ संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियोंके परस्पर घिसनेसे सूजन होती है और रात्रिमें पीडा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं । कोई इसको उत्पिष्टभी कहते हैं । ४ विश्लिष्ट संधियोंके दोनों तरफकी हड्डियां टूटके उनमें बहुत पीडा होय, उसको विदारित कहते हैं । ५ विवर्तित संधियोंमें दोनों तरफके हाड संधिसे पलट जांय, तब अत्यंत पीडा होय इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करें । ६ विश्लिष्ट संधियोंमें सूजन और रात्रिमें पीडा होकर सर्वकालमें अत्यंत पीडा होय । संधि शिथिलमात्र होय, इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गढेला हो जाय । ७ हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी हो जाय । ८ संधिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होंय परंतु नीचेको गमन करें । ९ संधिके ऊपरका हाड संधिसे बाहर हो जाय, उसमें पीडा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते हैं । १० संधिकी हड्डी चूर्ण हो जावे, अथवा टूटके दो टुकडे हों, उसको संधिभंग कहते हैं । ११ अग्निकरके अंग दग्ध होनेसे जो अंगका वर्ण पलट जाय उसको प्लुष्ट कहते हैं ।

२ अतिदग्ध ३ दुर्दग्ध और ४ सम्यग्दग्ध । इस प्रकार अग्निदग्ध रोग चार प्रकारका जानना ॥

नाडीव्रणरोग ।

नाड्यः पंच समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ७८ ॥
त्रिदोषैरपि शल्येन-

अर्थ-नाडीव्रण (नासूर) पांच प्रकारके हैं । जैसे १ वातनाडीव्रण २ पित्तनाडीव्रण ३ कफनाडीव्रण ४ त्रिदोषनाडिव्रण और ५ शल्यनाडीव्रण । इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥

भगंदररोग ।

तथाष्टौ स्युर्भगन्दराः ॥ शतपोतस्तु पवनादुष्ट्रगीवस्तु पित्ततः ॥ ७९ ॥ परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफोद्भवः ॥ परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥ आगंतुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः ॥ ८० ॥

---

१ अग्निसे दग्ध होकर रक्त, मांस, शिरा, स्नायु, संधि और हड्डी दीखने लगे और ज्वर, दाह, प्यास, मूर्छा इनकरके व्याप्त हो; उसको अतिदग्ध कहते हैं । २ अग्निसे दग्ध होनेसे बहुत पीडा होय, अंगमें फोडे हों और वे फोडे जल्दी अच्छे न हों । उसको दुर्दग्ध कहते हैं । ३ अग्निसे जो अंग दग्ध होय और ताडवृक्षके समान अंग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध कहते हैं । ४ जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोडोंको कच्चा समझ कर उपेक्षा करे, किंवा बहुत राध पढे फोडेकी उपेक्षा कर दे, तब वह बढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जायकर उनको भेदकर बहुत भीतर पहुँच जाय, तब एकमार्गकर उसमें वह राध नाडीके समान वहे इसीसे इसको नाडीव्रण ' नासूर ' कहते हैं । ५ वादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, उसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रमें अधिक स्रवे । ६ पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय । उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे और दिनमें स्राव अधिक होय । ७ कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत होय । ८ जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्छा, मुखका सूखना और तीनों दोषोंके लक्षण होंय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना । इसे भयंकर प्राणनाश करनेवाली कालरात्रिके समान जानना । ९ किसी प्रकारसे शल्य (कंटकादि), रक्त, मांस, राध आदिके स्थानमें पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करे । उस नाडीव्रणमें झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध वहे, तथा पीडा होय ।

अर्थ—भगंदररोगें आठ प्रकारका है। तहां १ वातसे शतपोतक २ पित्तसे उष्ट्रग्रीव ३ कफसे परिस्रावी ४ वातकफसे ऋजु ५ वातपित्तसे परिक्षेपी ६ कफपित्तसे अर्शोज ७ आगंतुज उन्मार्गी और त्रिदोषसे ८ शंखावर्त भगंदर होता है। इस प्रकार आठ प्रकारके भगंदर जानने॥

उपदंशरोग।

मेढ्रे पंचोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥८१॥ संनिपातेन रक्ताच्च—

अर्थ—लिंगमें उपदंश रोग पांच प्रकारका होता है। जैसे वात[10], पित्त[11], कफ[12], संनिपात[13] और रक्तसे[14] उपजा हुआ तहां लिंगेन्द्रियमें किसी कारणसे हस्तका कठोर स्पर्श होनेसे, बडी कामबाधा प्राप्त हो नख (नाखून), दांत इनका अभिघात होनेसे, मैथु-

---

१ गुदाके समीप दो अंगुल ऊंची पिछाडी एक पिटिका (फुन्सी) होय उसमें बहुत पीडा होय और वह पीटिका फूट जाय उसको भगंदर रोग कहते हैं। यदाह भोजः– "भगं परिसमन्ताच्च गुदबस्तिस्तथैव च। भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगंदरः" इति। २ कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर गुदस्थानमें जो पिटिका (फुन्सी) करे उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पकें और फूट जांय तब पीडा होय उनमेंसे लाल झाग मिली राध वहे, तथा अनेक छिद्र हो जांय। उन छिद्रोंमें होकर मूत्र मल और शुक्र (रेत) वहे चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इस रोगको शतपोतक कहते हैं शतपोतक नाम संस्कृतमें चालनीका है। ३ पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त सो गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे वह शीघ्र पक जाय और उनमेंसे गरम राध वहे। ये पिटिका (फुन्सियां) ऊंटकी नाडके समान होंय इसीसे इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं। ४ कफसे प्रगट भये भगंदरमें खुजली चले तथा उसमेंसे गाढी राध वहे वह पिटिका कठिन होय उसमें पीडा थोडी होय और उसका वर्ण सपेद होय उसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं। ५ जो भगंदर वात और कफ इनके लक्षणोंकरके युक्त होय और सीधा वहता हो उसको ऋजुभगंदर कहते हैं। ६ जो भगंदर वात और पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगंदर कहते हैं। ७ जो कफ पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो, उसको अर्शोज भगंदर कहते हैं। ८ गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षत (घाव) हो जाय उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पडते जांय वह कृमि उस क्षतको विदारण करे ऐसे वह घाव बढकर गुदापर्यंत पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवें उसको उन्मार्गी भगंदर कहते हैं। ९ जिसमें गौके थनके समान अनेक पीडिका होंय, उनका रंग पीला और स्राव अनेक प्रकारका होय और व्रण शंखके आंटेके समान गोल होय, इसको शंखावर्त अथवा शंबुकावर्तभी कहते हैं। १० लिंगेंद्रियके ऊपर काले फोडे उठें, मनमें चोटनेकीसी पीडा होय, तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण हो ये लक्षण वातोपदंशके जानने। ११ पित्तके उपदंश करके पीले रंगके फोडे होते हैं। उनमेंसे पानी बहुत वहे, दाह होय। १२ कफके उपदंश करके सपेद मोटा फोडा होय उसमें खुजली चले, सूजन होय और गाढी राध वहे। १३ जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव और पीडा होय। यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है। १४ रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लालरंगके फोडे होंय।

नके पश्चात् लिंग न धोनेसे, दासी आदिके साथ अत्यंत विषय करनेसे, दीर्घ, कठोर, केश तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोषसे, ब्रह्मचारिणी (रजस्वला) में गमनादिक तथा वाजीकरणादिकमें अनेक उपचार करनेसे इन सब कारणोंसे लिंगेन्द्रियमें रोग प्रगट होवे उसको उपदंश कहते हैं ॥

शूकरोग।

मेढ्रशूकामयास्तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता लिंगार्शो ग्रथितं तथा ॥ ८२ ॥ निवृत्तमवमंथश्च मृदितं शतपोनकः ॥ अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥ ८३ ॥ मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः ॥ मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकालजी ॥ ८४ ॥ रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिका तिलकालकः ॥ निरुद्धं प्रकशिः प्रोक्तस्तथैव परिवर्तिका ॥ ८५ ॥

अर्थ–लिंगेन्द्रियमें शूकरोग चौवीस प्रकारका होता है। जैसे १ लिंगार्श[2] २ ग्रथित[3] ३ निवृत्त[4] ४ अवमंथ[5] ५ मृदित[6] ६ शतपोनक[7] ७ अष्ठीलिका[8] ८ सर्षपिका[9] ९ त्वक्पाक[10] १० अवपाटिका[11] ११ मांसपाक[12] १२ स्पर्शहानि[13] १३ निरुद्धमणि[14]

१ जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिंगको मोटा किया चाहे, वह विषैं कृमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे, अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे, उसके लिंगपर शूकरोग होता है शूक नाम जलके मलसे उत्पन्न जलजंतुका है उसके सदृश यह रोग होनेसे इसकाभी नाम शूक कहा है। २ लिंगार्श शूकरोगमें अर्शके लक्षण जानना। ३ निरंतर शूक लेप करनेसे लिंगेंद्रियके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रथित कहते हैं। ४ निवृत्त रोगमें कफका संबंध ज्यादा रहता है। ५ कफ रक्तसे लिंगेंद्रियके बाह्य प्रदेशमें लंबी लंबी पिटिका होती है और वह पिटिका फूट फूट भीतर फैलती है उसको अवमंथ रोग कहते हैं। ६ वायुके कोपसे लिंगमें फुन्सी होय उसमें लिंगको पीडा होय लिंग जोरसे ठाढा होय; सूजन आवे, इसको मृदित कहते हैं। ७ जिस पुरुषके लिंगमें बारीक छिद्र हो जांय, वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है इसको शतपोनक कहते हैं। ८ शूकके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय और कोई छोटी, कोई बडी, टेढे ऐसे मांसांकुरोंसे व्याप्त होय इसको अष्ठीलिका कहते हैं। ९ दुष्ट जलजंतुका दुष्ट रीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सपेद सरसोंके समान जो फुन्सी होंय इसको सर्षपिका कहते हैं। १० वातपित्तसे लिंगकी त्वचा पक जाय उसको त्वक्पाक कहते हैं। इसमें ज्वर और दाह होता है। ११ अवपाटिका शूकरोगमें लिंग फटासा मालूम होय। १२ जिसकी इन्द्रियका मांस गल जाय और अनेक प्रकारकी पीडा हो इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं। यह व्याधि त्रिदोषज है। १३ शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे। १४ निरुद्धमणि शूकरोगमें लिंगकी मणिकी चेतना जाती रहती है।

१४ मांसार्बुद १५ पुष्करिका १६ संमूढपिटिका १७ अलजी १८ रक्तार्बुद १९ विद्रधि २० कुंभिका २१ तिलकालक २२ निरुद्ध २३ प्रकशि और २४ परिवर्तिका। इस प्रकार शूकरोग चौवीस प्रकारका जानना॥

कुष्ठरोग।

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत्॥ पित्तेनौदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके॥८६॥ मरुत्पित्ताद्दृष्यजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका॥ तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा॥८७॥ कफात्पित्तात्पुनर्दद्रुः पामा विस्फोटकं तथा॥ महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम्॥८८॥ त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम्॥ तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत्॥८९॥

अर्थ—कुष्ठरोग कापालिक, औदुंबर, मंडल ऐसा अठारह प्रकारका है। जैसे

---

१ मांस दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है। २ पित्त रक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारों तरफ अनेक छोटी छोटी फुंसियां होंय और कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होंय, उसको पुष्करिका कहते हैं। ३ लेप करनेके अनन्तर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खूब खुजानेसे एक मूढ (विना मुखकी) पिटिका होय, उसको संमूढपिटिका कहते हैं। ४ यह पिटिका प्रमेह पिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजीके समान होते हैं। ५ जिस पुरुषके लिंगेंद्रियके ऊपर काले, लाल फोडे उत्पन्न हों उसको रक्तार्बुद कहते हैं। ६ विद्रधिके लक्षणमें जो संनिपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं, वेही यहां विद्रधि शूकके लक्षण जानने। ७ रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उसको कुंभिका कहते हैं। ८ काले अथवा चित्र विचित्र रंगके विषशूकोंके लेप करनेसे तत्काल सर्वलिंग पक जाय, तथा सब मांस तिलके समान काला होकर गल जाय। इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते हैं। ९ निरुद्ध, प्रकाशि और परिवर्तिका इनके लक्षण ग्रंथांतरमें निदानस्थानमें क्षुद्ररोगोंमें लिखे हैं। उनके समान शिश्नमें रोग होते हैं ऐसा जानना। १० विरोधि कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे रद्दके वेगको रोकनेसे और मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजन करके अत्यंत व्यायाम (दंड कसरत) अथवा अतिसंताप करनेसे, सूर्यका ताप सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोडके सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भय इनसे पीडित हो और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारणसे, अजीर्णपर अन्न भक्षण करनेसे तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके करते समय

१कापालिक २ औदुंबर ३ मंडल ४विचर्चिका ५ ऋक्षजिव्ह ६विपादिका ७ सिध्मकुष्ठ ८किटिभ ९अलस १० दद्रू ११पामा १२विस्फोटक १३महाकुष्ठ १४चर्मदल १५ पुंडरीक

अपथ्य करनेसे, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, मूरी, मिष्टान्न (लड्डू, खजला, फेनी आदि), तिल, दूध, गुड इनके खानेसे, अन्नके पचे विना स्त्रीसंग करनेसे तथा दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसे, पापकर्मका आचरण करनेसे, पुरुषोंके वातादि तीनों दोष त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्टकर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करते हैं, कुष्ठ होनेसे वातादिदोष और त्वचादि दूष्य ये सात (वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल) पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं । इनसेही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं, तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं ।

१ जो चढे काले तथा लाल, खीपडाके सदृश, रूखे,कठोर, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोंचनेकीसी पीडायुक्त होय, वे दुश्चिकित्स्य हैं इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं । २ औदुंबरकुष्ठ यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय, इनमें बाल कपिल वर्णके होंय तथा ये गूलरफल समान होते हैं । ३ मंडलकुष्ठ सपेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिसका आकार मंडलके सदृश होय । तथा एक दूसरेसे मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ असाध्य है । ४ खुजलीयुक्त, काले रंगकी जो फुन्सी (माताके समान) होय, तथा उनमेंसे स्राव बहुत होय, उसको चर्चिक अथवा विचर्चिका कहते हैं । ५ ऋक्षजिह्वकुष्ठ कठोर अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे, तथा रीछकी जीभके समान होता है, इसको ऋक्षजिह्व कहते हैं । ६ विपादिककुष्ठ जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फट जाय और पीडा बहुत होय । ७ सिध्मकुष्ठ सपेद, लाल पतला हो, खुजानेसे भूसीसी उडे यह विशेषकरके छातीमें होता है और घीयाके फूलके आकारका होता है । ८ किटिभकुष्ठ नीलवर्णका हो, व्रणकी चट्के समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रूक्ष होय । ९ अलसकुष्ठ इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तीके समान बहुत और लाल होय, इसमें बहुतसे मूर्खवैद्य पित्तीकी शंका करते हैं। १० दद्रूकुष्ठमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय और ये ऊंचे उठ आवें, मंडलके आकार गोल उत्पन्न होंय इसीसे इसको दद्रुमंडलभी कहते हैं। ११ पामाकुष्ठ जो पिटिका छोटी और बहुत होय, उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं। १२ विस्फोटककुष्ठ जो फोडे काले वा लाल रंगके होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं । १३ जो कुष्ठ घर्म (पसीना) से रहित होता है और जिसकरके सर्व अंग मक्खियोंके अंगके सदृश होता है और रसादि धातुओंको व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं । कहीं इसको चर्मकुष्ठभी कहते हैं। १४ चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय,इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय इसमें त्वचा फट जाती है। १५ पुंडरीक कुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसके अंतभाग लाल होय यत्किंचित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमें थोडा लाल होता है ।

१६ शतारुकं १७ काकण और १८ श्वित्रकुष्ठ इस प्रकार १८ कुष्ठ जानना ॥

क्षुद्ररोग, विस्फोटक और मसूरिका रोग।

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्कराबुंदम् ॥ इंद्रवृद्धा पनसिका विवृत्तांधालजी तथा ॥ ९० ॥ वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपी तिलकालकः॥ गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका ॥९१॥ कंदरो मसकश्चैव नीलिका जालगर्दभः ॥ ईरिवेल्ली जंतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥ ९२ ॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा ॥ पद्मिनीकंटकश्चिप्यमलसौ मुखदूषिका ॥९३॥ कक्षा वृषणकच्छूश्च गंधः पाषाणगर्दभः ॥ राजिका च तथा व्यंगश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥ ९४ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यंगलक्षणम् ॥ विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः ॥ ९५ ॥ पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः ॥ अष्टमः संनिपातेन क्षुद्ररुक्षु मसूरिका ॥९६॥ चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा ॥ द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता संनिपातेन सप्तमी॥ ९७ ॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता ॥ दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः ॥ मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९८ ॥

---

१ शतारुक कुष्ठ जो लाल होय,श्याम होय,जिसमें जलन होय,शूल हो,तथा अनेक फोडे हों उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं। २ काकणक कुष्ठ जो चिरमिटीके समान लाल अर्थात् बीचमें काला होय और आसपास लाल होय अथवा बीचमें लाल और औरपास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता। ३ श्वित्रकुष्ठ पूर्वोक्त कुष्ठोंके समान है निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसा होता है और उसमेंसे स्राव होता है और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनों धातुओंसे उत्पन्न होता है वह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदोंसे तीन प्रकारका होता है वायुसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसे लाल कमलपत्रके समान लाल होय उसमें दाह होय, उसके ऊपरके बाल गिर पडे, कफके योगसे वह कोढ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमें खुजली चलती है, ऐसे तीन भेदका श्वित्रकुष्ठ जानना।

अर्थ-क्षुद्ररोग ६० साठ प्रकारका है । जैसे १ शर्करार्बुद[1] २ इन्द्रवृद्धा[2] ३ पनसिकां[3] ४ विवृत्ता[4] ५ अंधालजी[5] ६ वराहदंष्ट्र[6] ७ वल्मीक[7] ८ कच्छपी[8] ९ तिलकालक[9] १० गर्दभी[10] ११ रकसा[11] १२ यवप्रख्या[12] १३ विदारिका[13] १४ कंदर[14] १५ मसक[15] १६ नीलिका[16]

---

१ कफ, मेद और वायु ये मांस शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हों गांठ करते हैं । जब वह फूटे तब उसमेंसे सहत, घृत, चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढकर मांसको सुखाय उसकी बारीक खिचीसी गांठ करे, उसको शर्करा कहते हैं । शर्करा होनेके अनंतर नाडियोंसे दुर्गंधयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्ण (घृत, मेद और वसा इनके वर्ण) का रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं । २ कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडिका होय, उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियां हों उसको इंद्रवृद्धा कहते हैं यह वातपित्तसे उत्पन्न होती है । ३ कानके भीतर वात, पित्त, कफसे जो फुंसी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित होय उसको पनसिका कहते हैं । ४ पित्तके योगसे फटे मुखकी, अत्यंत दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारों ओर बल पडी हुई जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते हैं । ५ कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमें मुख न हो, तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारों ओर मंडलाकार हो और जिसमें राध थोडी होय, उसको अंधालजी कहते हैं । ६ शरीरमें गांठके समान कठिन सूजन उत्पन्न होय, उसका आकार सूअरकी ठोडीके सदृश होय उसमें दाह, खुजली और पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पक जाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदंष्ट्र, वराहडाढभी कहते हैं । ७ कंठ, कंधा, कूख, पैर, हाथ, संधि, गला इन ठिकानोंपर तीनों दोषोंसे सर्पकी बांबीके समान गांठ होय उसका उपाय न करे तब वह धीरे धीरे बढे, उसमें अनेक मुख हो जांय, उनमेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं । इसके ऊपर औषधिउपचार नहीं चले और पुरानी होनेसे विशेष असाध्य जानना । ८ कफवायुसे प्रगट गांठ बंधी, पांच अथवा छः कठिन कछुएकी पीठके समान ऊंची जो पिडिका होय उनको कच्छपिका कहते हैं । ९ वात, पित्त, कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित, त्वचासे मिले ऐसे अंगमें दाग हौंय, उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं । १० वातपित्तसे प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोडोंसे व्याप्त ऐसा मंडल होय, वह बहुत दूखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं । ११ शरीरमें जो पिटिका (फुंसी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हों उनको रकसा कहते हैं । १२ कफवातसे प्रगट जौके समान, कठिन, गांठके सदृश, मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं तथा इसको अंत्रालजीभी कहते हैं । १३ विदारी कंदके समान गोल कांखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तामेके रंगकीसी हो, उसको विदारिका कहते हैं । यह संनिपातसे होय है अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं । १४ पैरोंमें कंकर छिदनेसे अथवा कांटे लगनेसे बेरके समान ऊंची गांठ प्रगट होय उसको कंदर अथवा ठेक कहते हैं । यह कंदररोग हाथोंमेंभी होता है । ऐसा भोजका मत है । १५ बादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय, उसको मसक, माष, मस्सा ऐसे कहते हैं । १६ व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय, अथवा मुखपर होय, उसको नीलिका कहते हैं ।

१७ जालगर्दभ १८ ईरिवेल्लिका १९ जंतुमणि २० गुदभ्रंश २१ अग्निरोहिणी २२ संनिरुद्धगुद २३ कोठ २४ कुनख २५ अनुशयी २६ पद्मिनीकंटक २७ चिप्य २८ अलस २९ मुखदूषिका ३० कक्षा ३१ वृषणकच्छू

१ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमें दाह होय और ज्वर होय, उसको जालगर्दभ कहते हैं। २ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको ईरिवेल्ली कहते हैं। ३ कफरक्तसे जन्मसेही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊंचा, जिसमें पीडा होय नहीं, ऐसा गोलमंडलके समान देहमें चिन्ह होय उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसे कहते हैं यह स्त्रीपुरुषोंको अंगभेदकरके शुभाशुभफलदायक है। ४ जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुंथन) तथा अतिसार हेतुकरके गुदा बाहर निकल आवे अर्थात् कांच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं इस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है। ५ कांखके आसपास मांसके विदारण करनेवाले जो फोडे होते हैं तिसकरके अंतर्दाह होय, तथा ज्वर होय, वो फोडे प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पांच दिनमें रोगी मरे, यह अग्निरोहिणीनामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है और कठिन है। ६ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महाश्रोत्र (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते हैं। ७ कफ, रक्त, पित्त इनके कोपसे देहमें मोहारकी मख्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित् लालरंगकी सूजन आवे, उनमें खुजली बहुत चले, क्षणमें उत्पन्न होती है और क्षणमें चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते हैं। ८ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख (नखन) दुष्ट होकर रूख, काले वर्णके और खरदरे हो उसको कुनख कहते हैं। ९ पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते हैं। १० देहमें सपेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होता है उसके ऊपर कांटेके सदृश मांसके अंकुर आते हैं और उनको खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकंटक कहते हैं। ११ वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थिर होकर दाह और पाकको करे, इस रोगको चिप्य ऐसे कहते हैं यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं। १२ दुष्ट कीच (वर्षा आदिके पानी और सडी कीच) में डोलनेसे पैरोंकी उंगली गीली रहनेसे, जंगलियोंके सपेद २ बीचमें चकत्ता होंय, उनमें खुजली, दाह और गीलापन तथा पीडा होय; उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं। यह कफरक्तके दोषसे होता है। १३ कफ वायुके कोपसे सेमरके कांटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुनसी होय उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं, इनके होनेसे मुख बुरा हो जाता है। १४ बाहु (भुजा) की जड कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको कक्षा वा कंखलाई कहते हैं। १५ जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अंडकोशमें संचित

३२गंध ३३पाषाणगर्दभ ३४राजिका ३५व्यंग (यह १वात २पित्त ३कफ ४रुधिर इन भेदोंसे चार प्रकारका है) सब चौतीस और ये चार ऐसे अडतीस प्रकारके क्षुद्ररोग हुए। तथा स्फोट रोगसे देहमें फुन्सी होती है अतएव उनका क्षुद्ररोगोंमें संग्रह किया। वह विस्फोट आठ प्रकारका है। १ वातविस्फोटक २ पित्तविस्फोटक ३ कफविस्फोटक ४ वातपित्तविस्फोटक ५ कफपित्तविस्फोटक ६ वातकफविस्फोटक ७ रक्तविस्फोटक ८ संनिपातविस्फोटक। इस प्रकार आठ प्रकारका विस्फोटक जानना। देहमें शीतला रोगसे ये फुन्सियां होती हैं इसवास्ते क्षुद्ररोगमें मसूरिका रोगका संग्रह किया है वह

होय। पीछे वो पसीना आनेसे गीला हो, तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडे होंय। पीछे वे फोडे स्रवकर आपसमें मिल जाते हैं। कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं।

१ पित्तके कोपसे त्वचाके भीतर जो एक पिडिका फोडेके समान बडी होय, उसको गंधनाम्नी पिटिका कहते हैं। २ वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन मंदपीडा करनेवाली, चिकनी ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं। ३ कफवायुकरके देहमें सरसोंके सदृश फुनसी होती हैं उनको राजिका कहते हैं कोई कोद्रवभी कहते हैं। ४ क्रोध और श्रम इनसे कुपित भया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे। वह दुखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्णका होय, उसको व्यंग (झांई) ऐसे कहते हैं। ५ कडुआ, खट्टा, तीखा (मरीचादि), गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग, अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रयकर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक (फोडा) उत्पन्न करें। उनके प्रगट होनेके पूर्व घोर ज्वर होता है। ६ मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधिमें पीडा, फोडोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं। ७ ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोंका पकना, प्यास, देह पीली अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं। ८ वमन, अरुचि, जडता तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले और उसमें पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें। यह विस्फोटक कफका जानना। ९ वातपित्तके विस्फोटमें तीव्र पीडा होती है। १० खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना। ११ खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणोंसे वातकफका विस्फोटक जानना। १२ रक्तसे प्रगट भया विस्फोट तामेके रंगका, गुंजा (चिरमिटी) के समान लाल, वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है, यह सैंकडों अनुभवकारी औषधके करनेसेभी साध्य नहीं होता। १३ जो फोडा बीचमें नीचा होय और औरपाससे ऊंचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तंद्रा ये लक्षण होते हैं। उसे संनिपातका विस्फोट जानना वह असाध्य है।

मसूरिका चौदह प्रकारकी है जैसे १ वातमसूरिका २ पित्तमसूरिका ३ कफमसूरिका ४ कफपित्तमसूरिका ५ वातपित्तमसूरिका ६ वातकफमसूरिका ७ संनिपातमसूरिका ८ त्वक्शब्दोक्त जो रसधातु उससे होनेवाली मसूरिका ९ रक्तजा १० मांसजा

---

१ कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिंबीबीज, उडद, मूंग) आदि शाक विषैले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहोंका देखना इन सब कारणोंका देखना इन सब कारणों करके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी करें उनको मसूरिका (माता) ऐसे कहते हैं । तिस माता (शीतला) के पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होंय ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं । २ वातमसूरिकाके फोडे काले, लाल और रूक्ष होते हैं, उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होय, शीघ्र पकें नहीं, इसके योगसे संधि हाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खांसी, कंप, पित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ, होठ और जीभ ये सूखने लगें, प्यास, अरुचि हो ये लक्षण होते हैं । ३ पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सपेद होता है । उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्र पके । इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होंय । ४ कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तकमें शूल, वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तंद्रा, आलस्य ये होंय और फोडे सपेद चिकने अत्यंत मोटे होय, इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय और वे बहुत दिनमें पकें । ५ कफ पित्तसे केशों (बालों) के छिद्र समान बारीक और लाल ऐसी मसूरिका होती हैं इनके होनेसे खांसी अरुचि होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय । इनको रोमान्तिक (कसुंभीमाता) ऐसे कहते हैं । ६ जिन मसूरिकाओंमें वातपित्तके लक्षण मिलते हों उन्हें वातापित्तकी मसूरिका जाननी । ७ जिनमें वातकफके लक्षण मिलते हों उनको वातकफकी मसूरिका जाननी । ८ त्रिदोषके मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होय, उनमें पीडा अत्यंत होय, तथा वे बहुत दिनमें पकें और उनमेंसे दुर्गंधयुक्त स्राव होय । वे सर्व दोषोंके फोडे बहुत होते हैं । ९ रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हों इनके फूटनेसे पानी बहे । यह त्वग्गतमसूरिका है कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है । १० रुधिरगतमसूरिका तामेके रंगकी और जलदी पकनेवाली होती है उसके ऊपरकी त्वचा पतली होती है यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं हो और इसके फूटनेसे इसमेंसे रुधिर निकले । ११ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है यह बहुत दिनमें पके तथा इसकी त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं ।

११ मेदोजा १२ अस्थिजा १३ मज्जाजन्य तथा १४ शुक्रधातुसे होनेवाली इनमें अंतकी चार मसूरिका कष्टसाध्य जाननी। इस प्रकार सब १४ मसूरिका ८ विस्फोट और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मिलानेसे साठ प्रकारका क्षुद्ररोग जानना॥

विसर्परोग।

विसर्परोगा नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा॥
त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः॥
अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः॥ ९९॥

अर्थ–विसर्परोग९ प्रकारका है। जैसे १वातविसर्प २पित्तविसर्प ३कफविसर्प ४वातपित्त-

१ मेदोगतमसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती है इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्रियोंका विकल होना, मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप ये लक्षण होते हैं। इस मसूरिकासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है। २ अस्थिगतमसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होती है उसे अस्थिगत मसूरिका जाननी। ३ जिस मसूरिकामें अत्यंत चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते हैं वह मर्मस्थानोंको भेदकरके शीघ्र प्राण हरण करे। इसके होनेसे सर्व हड्डियोंमें भौंराके काटनेके समान पीडा होती है। उसे मज्जागतमसूरिका जानना। ४ शुक्रधातुगतमसूरिका पकेके समान चिकनी और अलग अलग होती है। इनमें अत्यंत पीडा होय, इनके होनेसे गीलापन, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ये लक्षण होते हैं। रोगी बचे ऐसे इनमें कोई लक्षण नहीं दीखे इसीसे इनको असाध्य जानना। ५ खारी, खट्टा, कडुवा, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर विसर्परोग होता है वह सर्वत्र फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं। ६ वादीसे जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों तथा वह विसर्प लंबा होता है। ७ पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् जो जल्दी फैल जाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों, तथा अत्यंत लाल होय। ८ विसर्पमें खुजली बहुत होय, तथा चिकनी होय और उसमें कफज्वरकीसी पीडा करे। ९ वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भौंर, हडफूटन, मंदाग्नि, अंधकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणोंकरके संयुक्त होवे, इसके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोंसे भरासा मालूम होय जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्निरहित अंगारके समान काला, लाल होकर शीघ्र सूजे। आगसे फूकके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्रगति होनेसे जल्दी हृदयमें जायकर मर्मानुसारी विसर्प होय। अथवा वह अत्यंत बलवान् होय। अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश करे, श्वास बढावे, तथा हिचकी उत्पन्न करे। ऐसी मनुष्यकी अवस्था अस्वस्थ होनेके कारण धरती, सेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख होवे नहीं, हिलने चलनेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय इस रोगको अग्निविसर्प कहते हैं।

विसर्प ५ कफवातविसर्प ६ कफपित्तविसर्प ७ संनिपातविसर्प ८ जठराग्नितापजन्यविसर्प और ९ अभिघातविसर्प इस प्रकार नौ प्रकारका विसर्परोग जानना ॥

शीतपित्तरोग ।

तथैकः श्लेष्मपिताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ॥
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ॥ १०० ॥

अर्थ—शीतलवायुके संपर्ककरके कफ और वायु ये दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादि धातुमें और बाहर त्वचामें प्रवेश कर देहमें जैसे मोहारकी मक्खीके काटनेके समान ददोडा उत्पन्न होता है उस प्रकार ददोडा उत्पन्न हो उनमें खुजली पीडा और दाह ये उपद्रव होवें कफपित्तके कोपसे जिसमें खुजली अधिक चले और पीडा न्यून हो उसको उदर्द कहते हैं। वह रोग एक प्रकारका है। वातपित्तके कोपकरके

---

१ स्वहेतुसे कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा बढे भये रुधिरको भेदकर त्वचा, नस (नाडी) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्ट कर लंबी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल गांठोंकी माला प्रगट करे। उन गांठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खांसी, अतिसार, मुखमें पपडी परे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होते हैं. इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं। यह कफवातके कुपित होनेसे उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुतमें अपची कहते हैं। २ कफपित्तके विसर्पमें ज्वर, अंगोंका जकडना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथ पैरोंका पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रियोंका जकडना, आमका गिरना, मुखादिस्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं, तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले उसमें पीडा थोडी होय, सर्वत्र पीली, तामेके रंगकी, सफेद रंगकी पिडिका होय, तथा वह विसर्प चिकनी स्याहीके समान काली, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उनमें घोर दाह हो और वह दबानेसे तत्क्षण गीली हो जाय तथा फट जाय वह कीचके समान हो और उसका मांस गल जाय, उसमें शिरा, नाडी (नस) ये दीखने लगे उसमें मुर्दाकीसी बास आवे, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते हैं। ३ सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे हैं सो सब होंय। ४ जठराग्निके बहुत संतप्त होनेसे रक्त दूषित होकर जो विसर्प होता है उसको वह्निदाहज विसर्प कहते हैं। इसके लक्षण पित्तविसर्पके समान जानना। ५ बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधिर सहित पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे। उसमें कुल्थीके समान श्यामवर्णके फोडे होते हैं। सूजन, ज्वर और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले। ये अभिघातज (क्षतज) विसर्पके लक्षण जानने। ६ वरटी (ततैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ते हो जांय, उनमें खुजली चले और सुई चुभानेकीसी पीडा होय उसके संयोगसे वमन, संताप और दाह होय, इसको उदर्द कहते हैं।

जिसमें खुजली थोडी और व्यथा अधिक होवे उसको शीतपित्त (पित्ती) कहते हैं। इतनाही इनमें भेद जानना तथा ज्वर, वमन और दाह इत्यादि ये दोनोंके साधारण लक्षण जानने ॥

अम्लपित्तरोग।

अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा ॥ १०१ ॥
तृतीयं श्लेष्मवाताभ्यां–

अर्थ–अम्लपित्तरोग तीन प्रकारका है। १ वातज अम्लपित्त २ कफज अम्लपित्त और ३ कफवातज अम्लपित्त इस प्रकार अम्लपित्तके तीन भेद जानने चाहिये ॥

वातरक्तरोग।

वातरक्तं तथाष्टधा ॥ वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद्दोषत्रयेण च ॥
रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः ॥ १०२ ॥

अर्थ–वातरक्तरोग आठ प्रकारका है। जैसे वायुकी आधिक्यता जिस वातरक्तमें

---

१ शीतल पवनके लगनेसे कफ वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोंमें और बाहर त्वचामें विचरे, प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये शीतपित्त होनेके पूर्व होते हैं। शीतापित्तको लौकिकमें पित्ती कहते हैं। इसमें खुजली होती है सो कफसे जानना। चोटनी वादीसे होती है। ओकारी, संताप और दाह पित्तसे होते हैं ऐसे जानना। २ विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, वर्षादि ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे संचित भया पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं। अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होनेसे अलमपित्त जानना। ३ वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्छा, चिमचिमा (चैंटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान), देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अंधकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्रिय मनको मोह, रोमांच खडे हों ये लक्षण होते हैं। ४ कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके डेला गिरें, शरीरका अत्यंत जड पडना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख कफसे लिहसा रहे, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं। ५ वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं। ६ नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खल), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम), शाक (तरकारी), पलल (तिलकी चटनी), ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, शुक्त (सिरका आदि), छाछ, दारू, आसव, (मद्यविशेष), विरुद्ध (जैसे दूध मछली), अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेषकरके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यके वातरक्त

है वह १ वातज २ पित्तजवातरक्त ३ कफजवातरक्त ४ त्रिदोषजवातरक्त और ५ रक्तके आधिक्यसे होनेवाला रक्तज। दोषोंसे प्रगट द्वंद्वज वातरक्त तीन प्रकारके होते हैं। ऐसे सब मिलायके वातरक्तरोग आठ प्रकारका जानना॥

वातरोग।

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः॥ १०३॥
आक्षेपको हनुस्तंभ ऊरुस्तंभः शिरोग्रहः॥
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलः कटिग्रहः॥ १०४॥
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तंभस्तथार्दितः॥
पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तंभश्च पंगुता॥ १०५॥
कलायखंजता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता॥
पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चावबाहुकः॥ १०६॥
अपतानो व्रणायामो वातकण्ठोऽपतन्त्रकः॥
अंगभेदोंऽगशोषश्च मिम्मिणत्वं च कल्लता॥ १०७॥

रोग होता है। हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढनेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्ध रुधिरकी वृद्धि होती है) गरमागरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इस रोगको वातरक्त कहते हैं।

१ वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोंटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं। सूजन, रूखापन, नीलापन अथवा श्यामवर्णता एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें ह्रास (कम) हो, धमनी और अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच होय, शरीर जकड बंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं। २ पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यंत दाह, इंद्रिय मनको मोह, पसीना, मूर्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीरे फोडे, अत्यंत गरमी ये लक्षण होते हैं। ३ कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडेसे आच्छादित समान), भारीपना, शून्यता, चिकनापन, शीतलता, खुजली और मंद पीडा ये लक्षण होते हैं। ४ तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के वातरक्तमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। ५ रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यंत पीडा हो और उसमेंसे तामेके रंगका क्लेद बहे। उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शांत न होय, उस सूजनमें खुजली होय और पानी निकले। ६ दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं। वातरक्त, वातकफ, कफपित्त इन दो दो दोषोंके लक्षण जिसमें हों उसे द्विदोषज जानना।

प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता ॥
अंगपीडांगशूलं च संकोचस्तंभरूक्षताः ॥ १०८ ॥
अंगभंगोऽगविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता ॥
मूकत्वमतिजृम्भास्यादत्युद्गारोऽन्त्रकूजनम् ॥ १०९ ॥
वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा ॥
कंपः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ॥ ११० ॥
निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः ॥
अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः ॥ १११ ॥
अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता ॥
कषायवक्रताध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ॥ ११२ ॥
रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कंडू रसाज्ञता ॥
शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गंधाज्ञत्वं दृशः क्षयः ॥ ११३ ॥

अर्थ—वादिका रोग ८० प्रकारका ऋषियोंने कहा है। उनके नाम कहते हैं। १ आक्षेपक[1] २ हनुस्तंभ[2] ३ ऊरुस्तंभ[3] ४ शिरोग्रह[4] ५ बाह्यायाम[5] ६ अंतरायाम[6] ७ पार्श्वशूल[7]

---

१ जिस कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडियोंमें जायकर प्राप्त होय, तब उस जगह वह बारंवार संचार करके देहको आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करती है उस देहके वारंवार चलनेको आक्षेपरोग कहते हैं। २ जिह्वाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे अथवा किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढकी जडमें रहा जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचेकर मुखको खुलाही रख दे अथवा मुखको बंद कर दे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहते हैं। ३ वायु, कफ और मेद इनसे मिलकर जांघोंमें जाके जांघोंके जडकरके जकडता है; उस करके जांघें अचेतन होती हैं, हिलने चलनेका सामर्थ्य नहीं रहता उसको ऊरुस्तंभ कहते हैं। ४ वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाडियोंको रूखी, पीडायुक्त और काली कर दे यह शिरोग्रह रोग असाध्य है इसको शिराग्रहभी कहते हैं। ५ बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो बाह्यायाम अर्थात् पीठको बांकी कर दे। उरःस्थल, जांघों और कमरको मोड दे. ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं। ६ पैरकी उंगली, घींटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहनेवाला वायु सो वेगवान् होकर वहांके नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकाल दे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर हो जांय, मेंज रहि जाय, पसवाडोंमें पीडा होय, मुखसे कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नम जाय तब वह बली वायु अंतरायाम रोगको करे; इसको धनुर्वातभी कहते हैं। ७ कोष्ठाशयमें वायु कुपित होकर पसवाडोंमें शूल करे, उसको पार्श्वशूल कहते हैं।

८ कटिग्रह ९ दंडापतानक[२] १० खल्ली[३] ११ जिव्हास्तंभ[४] १२ अर्दित[५] १३ पक्षाघात[६] १४ क्रोष्टुशीर्ष[७] १५ मन्यास्तंभ १६ पंगु[९] १७ कलायखंज[१०] १८ तूणी[११] १९ प्रतितूणी[१२] २० खंज[१३] २१ पादहर्ष[१४]

---

१ जो वायु कमरका स्तंभन करे उसको कटिग्रह कहते हैं । २ वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर तब सब देहको दंड (लकडी) के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है । ३ जो वायु पैर, जंघा, ऊरू और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली (मूलाम्नाय) रोग कहते हैं । ४ वायु वाणीकी वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त हो जिव्हाका स्तंभन कर दे, उसको जिह्वास्तंभ रोग कहते हैं । यह अन्न पान तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे । ५ ऊंचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे, बहुत हँसने और बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊंचे नीचे स्थानमें सोनेसे, विषमाशन (विरुद्ध भोजन) के करनेसे कोपको प्राप्त भई जो वायु सो मस्तक, नाक, होठ, ठोडी, ललाट और नेत्र इनकी संधिमें प्राप्त हो मुखमें पीडा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे । उस पुरुषका मुख आधा टेढा हो जाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला नहीं जाय, नेत्र, भ्रुकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफकी नाड, ठोढी और दांत इनमें पीडा होय । इस व्याधिको अर्दित रोग कहते हैं । ६ वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य कर दे और संधिके बंधनोंको शिथिल कर दे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हिले चलें नहीं और उसको देखने स्पर्श करने आदिका थोडाभी ज्ञान नहीं रहे, इसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किंवा पक्षाघात कहते हैं । ७ वातरक्तसे जानु, घेंटू इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं । ८ दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्या(नाडी)का स्तंभन करे । इस रोगको मन्यास्तंभ कहते हैं (अर्थात् गर्दन रह जावे) । ९ दोनों जांघोंकी नसोंको पकड दोनों पैरोंको स्तंभित कर दे उसको पांगुला कहते हैं । १० जो पुरुष चलते समय थरथर कांपे और खंज अर्थात् एक पैरसे हीन मालुम होय । इस रोगमें संधिके बंधन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखंज कहते हैं । ११ पक्वाशय और मूत्राशयमें उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीडा करे, उसको तूणीरोग कहते हैं । १२ गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोरसे पक्वाशयमें प्राप्त हो, और तूनीके समान पीडा करे, उसको प्रतितूणी अथवा प्रतूनीभी कहते हैं । १३ कमरमें रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित कर देय, उसको खंज (खोडा) रोग कहते हैं । १४ जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त) होय, उसको पादहर्ष कहते हैं । यह रोग कफवातके कोपसे होता है ।

२२ गृध्रसी २३ विश्वाची[2] २४ अवबाहुक[3] २५ अपतंत्रक[4] २६ व्रणायाम[5] २७ वातकंटक[6] २८ अपतानक[7] २९ अंगभेद[8] ३० अंगशोष[9] ३१ मिंमिण[10] ३२ कल्लता[11] ३३ प्रत्यष्ठीलिका[12] ३४ अष्ठीला[13] ३५ वामनत्व[14] ३६ कुब्जत्व[15] ३७ अंगपीडा[16]

---

१ प्रथमास्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित कर देय, पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरू, जानु, जंघा और पग इनको स्तांभित कर दे अर्थात् ये रही जाय वेदना और तोद कहिये चोटनेकीसी पीडा होय और वारंवार कंप होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होता है और वातकफसे होय तो इसमें तंद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेष होते हैं। २ बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपर भागपर्यंत प्रत्येक उंगलियोंके नीचे मोटी नसें हैं उनको दुष्टकर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारना इत्यादिक कार्योंका नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाची रोग कहते हैं। ३ कंधामें रहे जो वायु सो नसोंका संकोच करता है, उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक रोग कहते हैं। ४ दृष्टिका स्तंभन हो जाय, संज्ञा जाती रहे, गलेमें घुरघुर शब्द हो जाय, वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करे तब फिर मोह हो जाय इस भयंकर रोगको अपतानक कहते हैं। गर्भपातके होनेसे अथवा अतिरक्तस्त्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतानकरोग सो असाध्य है। ५ जो वायु अभिघातकरके व्रण उत्पन्न होनेसे उसमें पीडा करता है उसको व्रणायाम कहते हैं। ६ ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित होकर टकनामें प्राप्त होकर पीडा करे, उस रोगको वातकंटक कहते हैं। ७ रूक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड ऊपर जायकर प्राप्त हो और हृदयमें जायकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीडा करे और देहको धनुषकी समान नवाय देवे और चले तो मूर्छित कर दे वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मिच जावें, अथवा टेढे हो जांय, कबूतरके समान गुंजे, तथा बेहोश होय इस रोगको अपतंत्रक कहते हैं। ८ जो वायु सब अंगोंका भेद करता है अर्थात् अंगमें फूटन उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं। ९ जो वायु सब अंगोंको सुखाय देता है उस रोगको अंगशोष कहते हैं। १० कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योंके वचनको क्रियारहित मिम्मिण ऐसा कर दे मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोलना। ११ जिस वायुकरके कंठमें स्पष्ट शब्द नहीं निकले है उसको कल्लरोग कहते हैं। १२ जो वाताष्ठीला अत्यंत पीडा॰ युक्त हो वात, मूत्र, मलकी रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं। १३ नाभिके नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाणके समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आडी कुछ ऊंची होय, और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र इनका अवरोध कहिये रुकना हो ऐसी गांठको अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं। १४ दुष्ट हुआ वायु गर्भाशयमें जाकर गर्भको विकार करता है। उस करके मनुष्य बौना होता है। इस रोगको वामनरोग कहते हैं। १५ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ अथवा छातीको कुबडा कर दे उसको कुब्जरोग कहते हैं। १६ जिस वायुकरके सब अंगोंको पीडा होती है उस रोगको अंगपीडा कहते हैं।

३८ अंगशूल[1] ३९ संकोच[2] ४० स्तंभ[3] ४१ रूक्षता[4] ४२ अंगभंग[5] ४३ अंगविभ्रंश[6] ४४ विड्ग्रह[7] ४५ बद्धविट्कता[8] ४६ मूकत्व[9] ४७ अतिजृंभ[10] ४८ अत्युद्गार[11] ४९ अंत्रकूजन[12] ५० वातप्रवृत्ति[13] ५१ स्फुरण[14] ५२ शिरापूरण[15] ५३ कंपवायु[16] ५४ कार्श्य[17] ५५ श्यावता[18] ५६ प्रलाप[19] ५७ क्षिप्रमूत्रता[20] ५८ निद्रानाश[21] ५९ स्वेदनाश[22] ६० दुर्बलत्व[23] ६१ बलक्षय[24] ६२ शुक्रातिप्रवृत्ति[25] ६३ शुक्रकार्श्य[26] ६४ शुक्रनाश[27] ६५ अनवस्थितचित्तत्व[28] ६६ काठिन्य[29]

---

१ जिस वायुकरके सब अंगोंमें शूल (चमका) चले उसको अंगशूल कहते हैं। २ जिस वायुकरके सब अंगोंका संकोच (सुकडना) होय उसको संकोच कहते हैं। ३ जिस वायुकरके सब अंगोंका स्तंभ होवे (सब अंग स्तब्ध होवे) उसको स्तंभ कहते हैं। ४ जो वायु शरीरको तेजहीन करता है उसको रूक्ष कहते हैं। ५ जिस वायुकरके अंगमें पीडा होती है उसको अंगभंग कहते हैं। ६ जिस वायुकरके शरीरका कोई एक अवयव काष्ठ (लकडी) के समान चेतनारहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं। ७ जिस वायुकरके मलका अवरोध हो अर्थात् मल साफ नहीं निकले उसको विड्ग्रह कहते हैं। ८ जिस वायुकरके मल पक्काशयमें संघट्ट (गाढा) हो उसको बद्धविट्क कहते हैं। ९ कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्योंको वचनक्रियारहित कर दे उसको मूकरोग कहते हैं। १० वायु दुष्ट होकर जंभाई बहुत लावे उसको अतिजृंभ कहते हैं। ११ आमाशयमें वायु दुष्ट होनेसे बहुत डकार आते हैं उसको अत्युद्गार कहते हैं। १२ जो वायु पक्काशयमें रहकर आंतोंमें जाकर शब्द करता है उसको अंत्रकूजन कहते हैं। १३ जो वायु गुदाके द्वारा बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते हैं। १४ जिस वायुकरके अंग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं। १५ वायु शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, अभ्यंतरायाम, खल्ली और कुबडापन इन रोगोंको उत्पन्न करे। इसको शिरापूरण कहते हैं। १६ सब अंगोंको और मस्तकको कंपावे उस वायुको वेपथु (कंप) वायु कहते हैं। १७ जो वायु सब अंगोंको कृश कर दे उसको कार्श्य कहते हैं। १८ जिस वायु करके सब शरीर काले वर्णका हो जावे उसको श्याव कहते हैं। १९ अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणी बोले अर्थात् बकवाद करे। अथवा बड़बड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं। २० जिस वायुकरके वारंवार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं। २१ जिस वायुकरके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं। २२ जिस वायुकरके शरीरको स्वेद (पसीना) नहीं आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं। २३ जिस वायुकरके पुरुषका बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना) कहते हैं। २४ जिस वायुकरके शरीरके बलका क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं। २५ शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु बहुत शुक्र (वीर्य) को जल्दी पतन कर दे उसको शुक्रातिपात कहते हैं। २६ जो वायु शुक्र (वीर्य) धातुको क्षीण कर दे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं। २७जिस वायुकरके शुक्र (वीर्य) नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं। २८ जिस वायु करके मनइन्द्रियको स्वस्थता नहीं रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते हैं। २९ जिस वायुकरके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं।

६७ विरसास्यतौ ६८ कषायवक्त्रता ६९ आध्मान ७० प्रत्याध्मान ७१ शीतता ७२ रोमहर्ष ७३ भीरुत्व ७४ तोद ७५ कंडू ७६ रसाज्ञता ७७ शब्दाज्ञता ७८ प्रसुप्ति ७९ गंधाज्ञत्व और ८० दृशःक्षय इस प्रकार वादीके अस्सी रोग जानने ॥

पित्तरोग ।

अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥
धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णांगत्वं मतिभ्रमः ॥ ११४ ॥
कांतिहानिः कंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥
तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽगपाकता ॥ ११५ ॥
क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतकामता ॥
रक्तस्रावोऽगदरणं लोहगंधास्यता तथा ॥ ११६ ॥
दौर्गंध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता ॥
पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदंतता ॥ ११७ ॥
शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥
कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमंधता ॥ ११८ ॥

१जिस वायुकरके मुखमें स्वाद नहीं रहे उसको विरसास्य कहते हैं। २ जिस वायुकरके मुख कसैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते हैं। ३ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यंत पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्काशय) अत्यंत फूले अर्थात् वादीसे भरकर चमडेकी थैलीके समान हो जाय इस भयंकर रोगको आध्मान कहते हैं यह वातके रुकनेसे होती है। ४ वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तौ उसको प्रत्याध्मान कहते हैं। इसमें पसवाडे और हृदय इनमें पीडा नहीं होय और वायु कफकरके व्याकुल होता है। ५ जिस वायुकरके देह शीतल होय उसको शैत्य रोग कहते हैं। ६ वायु त्वचागत होनेसे सब शरीरमें रोमांच खडे हों उसको रोमहर्ष कहते हैं। ७ जिस वायुकरके भय उत्पन्न होता है उसको भीरु-रोग कहते हैं। ८ जिस वायुकरके शरीरमें सूई चुभानेकीसी पीडा हो उसको तोद कहते हैं। ९ जिस वायुकरके शरीरमें खुजली चले उसको कंडू कहते हैं। १० जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञता कहते हैं। ११ कान इन्द्रीमें वायु कुपित होनेसे शब्दका ज्ञान जाता रहे अर्थात् कोई शब्द करे सो सुननेमें आवे नहीं उसको शब्दाज्ञान कहते हैं। १२ जिस वायुकरके त्वचामें स्पर्श करनेसे मृदु, कठिन, शीत, उष्ण पदार्थका ज्ञान नहीं होवे उसको प्रसुप्ति कहते हैं। १३ जिस वायुकरके घ्राणेंद्रियका ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगंध वा दुर्गंध कुछभी समझनेमें नहीं आवे उसको गंधाज्ञान कहते हैं। १४ जिस वायुकरके दृष्टिका नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नहीं दीखता उसको दृशःक्षय (दृष्टिका नाश) कहते हैं।

उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ॥
तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥
निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥ ११९ ॥

अर्थ—पित्तरोग चालीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं । १ धूमोद्गार[1] २ विदाह[2] ३ उष्णांगत्व[3] ४ मतिभ्रम[4] ५ कांतिहानि[5] ६ कंठशोष[6] ७ मुखशोष[7] ८ अल्पशुक्रता[8] ९ तिक्तास्यता[9] १० अम्लवक्त्रत्व[10] ११ स्वेदस्राव[11] १२ अंगपाकता[12] १३ क्लम[13] १४ हरितवर्णत्व[14] १५ अतृप्ति[15] १६ पीतकायता[16] १७ रक्तस्राव[17] १८ अंगदरण[18] १९ लोहगंधास्यता[19] २० दौर्गंध्यं[20] २१ पीतमूत्रत्व[21] २२ अरति[22] २३ पीतविट्कता[23] २४ पीतावलोकन[24] २५ पीतनेत्रता[25] २६ पीतदंतता[26] २७ शीतेच्छा[27] २८ पीतनखता[28]

---

१ डकार आते समय मुखमेंसे धूंआसा निकले वह धूमोद्गाररोग पित्तके कुपित होनेसे होता है । २ जिस पित्तसे शरीरमें बहुत दाह होय उसको विदाह कहते हैं ।३ जिस पित्तसे सब अंग उष्ण होवे उसको उष्णांग कहते हैं । ४ जिस पित्तकरके बुद्धिकी चेष्टा ठिकानेपर न रहे उसको मतिभ्रम कहते हैं । ५ जिस पित्तकरके शरीरके तेजका नाश होता है उसको कांतिहानि कहते हैं । ६ जिस पित्तकरके कंठका शोष (सूखना) होता है उसको कंठशोष कहते हैं । ७ जिस पित्तकरके मुख सूख जाता है उसको मुखशोष कहते हैं । ८ जिस करके शुक्र (वीर्य) थोडा उत्पन्न होवे उसको अल्पवीर्य जानना । ९ जिस पित्तसे मुख कडुआ होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं । १० जिस पित्तकरके मुख खट्टासा रहे उसको अम्लवक्त्र कहते हैं । ११ जिस पित्तसे देहमें पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं । १२ जिस पित्तसे अंग पक जाय उसको अंगपाक कहते हैं । १३ जिस पित्तके योगसे शरीरमें ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्लम कहते हैं । १४ जिस पित्तकरके देहका वर्ण हरा नीला हो जावे उसको हरितवर्ण कहते हैं । १५ जिस पित्तके योगसे कितनाभी अच्छा भोजन पान किया हो तौभी भोजनपानकी इच्छा निवृत्ति नहीं होती है उसको अतृप्ति कहते हैं । १६ जिसमें सब शरीरका वर्ण पीला दीखे उसको पीतकाय कहते हैं । १७ जिस पित्तसे स्रोतों (छिद्रों) मेंसे अर्थात् मुख, नाक आदिसे रुधिरका स्राव होवे उसको रक्तस्राव कहते हैं । १८ जिस पित्तसे अंग फट जाय उसको अंगदरण कहते हैं । १९ जिस पित्तसे मुखमेंसे अग्निमें तपाये लोहेके गंधके सदृश गंध आवे उसको लोहगंधास्य कहते हैं । २० जिस पित्तकरके सब अंगसे बुरा गंध आवे उसको दौर्गंध्य कहते हैं । २१ जिस पित्तकरके मूत्रका वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्र कहते हैं । २२ जिस पित्तकरके मनकी कभी पदार्थमें प्रीति नहीं रहती है उसको अरति कहते हैं । २३ जिस पित्तकरके मल (विष्ठा)-का वर्ण पीला होवे इसको पीतविट्क कहते हैं । २४ जिस पित्तकरके पुरुष सब पदार्थोंका पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते हैं । २५ जिस पित्तकरके नेत्र पीले वर्णके रहें उसको पीतनेत्र कहते हैं । २६ जिस पित्तसे दांत पीले वर्णके होवें उसको पीतदंत कहते हैं । २७ जिस पित्तसे पुरुषको शीतल जलादिककी इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते हैं । २८ जिस पित्तसे पुरुषके नख पीले हों उसको पीतनख कहते हैं ।

२९ तेजोद्वेष ३० अल्पनिद्रता ३१ कोप ३२ गात्रसाद ३३ भिन्नविट्कत्व ३४ अंधता ३५ उष्णोच्छ्वासत्व ३६ उष्णमूत्रत्व ३७ उष्णमलत्व ३८ तमोदर्शन ३९ पीतमंडलदर्शन और ४० निःसरत्व इस प्रकार चालीस प्रकारका पित्तरोग जानना ॥

कफरोग ।

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तंद्रातिनिद्रता ॥ १२० ॥
गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ॥
श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता ॥१२१ ॥
श्वेतांगवर्णताशैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता ॥
मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता ॥ १२२ ॥
आलस्यं मंदबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥
अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥ १२३ ॥

अर्थ–कफरोग वीस प्रकारका है। जैसे १ तन्द्री २ अतिनिद्रा ३ गौरव ४ मुख मीठा रहना ५ मुखलेप ६ प्रसेकता ७ श्वेत देखना ८ श्वेतविष्ठाका उतरना ९ श्वेतमूत्र

---

१ जिस पित्तसे पुरुषसे सूर्यादिकोंका तेज नहीं देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते हैं। २ जिस पित्तसे पुरुषको निद्रा थोडी आवे उसको अल्पनिद्रता कहते हैं। ३ जिस पित्तकरके पुरुषको हर किसीभी पदार्थपर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते हैं। ४ जिस पित्तसे शरीरके संधिभाग दूखे उसको गात्रसाद कहते हैं। ५ जिस पित्तसे पुरुषका मल (विष्ठा) पतला होवे उसको भिन्नविट्क कहते हैं। ६ जिस पित्तसे दृष्टिसे कुछ देखनेमें नहीं आवे उसको अंध कहते हैं। ७ जिस पित्तसे नासिकाके द्वारा गरम गरम पवन निकले उसको उष्णोच्छ्वास कहते हैं। ८ जिस पित्तसे पुरुषका मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं। ९ जिस पित्तसे मल (विष्ठा) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते हैं। १० जिससे नेत्रके सामने अंधेरासा दीखे उसको तमोदर्शन कहते हैं। ११ जिस पित्तसे देहके ऊपर पीले वर्णके चकत्ते देखनेमें आवें उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं। १२ जो पित्त मुख तथा नासिकाके द्वारा गिरे उसको निःसर कहते हैं। १३ जिससे नेत्र भारी होते हैं उसको तंद्रा कहते हैं। १४ जिस कफसे बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रता कहते हैं। १५ जिस कफसे सब शरीरमें जडता हो उसको गौरव कहते हैं। १६ जिस कफसे मुखमें निरंतर मीठासा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते हैं। १७ जिस कफसे मुख कफकरके लिपटा रहे उसको मुखलेप कहते हैं। १८ जिस कफसे मुखमेंसे लार गिरा करे उसको प्रसेक कहते हैं। १९ जिस कफसे सब पदार्थ सफेद दीखें उसको श्वेतावलोकन कहते हैं। २० जिस कफसे मल (विष्ठा) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं। २१ जिस कफकरके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं।

होना १० देह[1]का वर्ण सफेद होना ११ शैत्यता[2] १२ उष्णेच्छा[3] १३ तिक्तकामिता[4] १४ मलाधिक्य[5] १५ शुक्रबाहुल्य[6] १६ बहुमूत्रता[7] १७ आलस्य[8] १८ मंदबुद्धि[9] १९ तृप्ति[10] २० घर्घरवाक्यता[11] २१ अचैतन्य[12] इस प्रकार कफके वीस रोग जानने। परंतु यह संख्या करनेपर २१ होते हैं सो शैत्य और उष्णेच्छा एक माननेसे संख्या ठीक हो जाती है॥

रक्तरोग ।

रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तस्य गौरवम् ॥
रक्तमंडलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता ॥ १२४ ॥
रक्तष्ठीवनता रक्तपिटिकानां च दर्शनम् ॥
उष्णत्वं पूतिगंधित्वं पीडापाकश्च जायते ॥ १२५ ॥

अर्थ–रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले १० रोग हैं। जैसे १ गौरव[13] २ रक्तमंडलता[14] ३ रक्तनेत्रत्व[15] ४ रक्तमूत्रता[16] ५ रक्तष्ठीवनता[17] ६ रक्तपिटिकादर्शन[18] ७ उष्णत्व[19] ८ पूतिगंधत्व[20] ९ पीडा[21] और १० पाक[22] ऐसे दश प्रकारके रक्तरोग हैं॥

---

१ जिस कफसे सब अंगोंका वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेतांगवर्ण कहते हैं। २ जिससे सर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते हैं। ३ जिस कफकरके उष्ण सूर्य अग्नि आदिके तापकी इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते हैं। ४ जिस कफकरके तिक्त पदार्थ (मिरच आदिके) खानेकी इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते हैं। ५ जिस कफके योगमें मल (विष्ठा) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते हैं। ६ जिस कफकरके शुक्र (वीर्य) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्रबाहुल्य कहते हैं। ७ जिस कफकरके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहते हैं। ८ जिस कफसे मनुष्य भारी रहे, कोई काम करनेमें उत्सुकता नहीं रहे उसको आलस्य कहते हैं। ९ जिस करके बुद्धि मंद होवे उसको मंदबुद्धि कहते हैं। १० जिस कफकरके खाने पीनेमें इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं। ११जिस कफसे बोलते समय कंठमेंसे घरड घरड आवाज निकले उसको घर्घरवाक्य कहते हैं। १२ जिस कफसे मनुष्य चैतन्यतामें मंद होय उसको अचैतन्यता कहते हैं। १३ जिस रक्तसे अंग जड होता है उसको रक्तगौरव कहते हैं। १४ जिस रक्तसे शरीरके ऊपर लालवर्णके चकत्ते उठें उसको रक्तमंडल कहते हैं। १५ जिस रक्तसे नेत्र लालवर्णके हों उसको रक्तनेत्र कहते हैं। १६ जिस रक्तसे लालवर्णका मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते हैं। १७जिस रक्तसे लालवर्णका थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते हैं। १८ जिस रक्तसे लालवर्णके फोडे (फुंसी) अंगपर दीखें उसको रक्तपिटिकादर्शन कहते हैं। १९ जिस रक्तसे शरीरमें गरमी मालुम हो उसको उष्णत्व कहते हैं। २० जिस रक्तसे शरीरमेंसे दुर्गंध आवे उसको पूतिगंध कहते हैं। २१ शरीरमें रक्तकरके जो पीडा होती है उसको रक्तपीडा कहते हैं। २२ शरीरमें जो रुधिर पकता है उसको रक्तपाक कहते हैं।

ओष्ठरोग ।

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः ॥
तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ॥ १२६ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषैरसृजस्तथा ॥
क्षतमांसार्बुदं चैव खंडौष्ठश्च जलार्बुदम् ॥
मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः ॥ १२७ ॥

अर्थ–मुखके रोग चौहत्तर हैं उनमें ओष्ठरोग ग्यारह प्रकारके हैं। जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ संनिपातज ५ रक्तज ६ क्षतज ७ मांसार्बुद ८ खंडोष्ठ ९ जलार्बुद १० मेदोर्बुद ११ अर्बुदसे ओष्ठके ग्यारह रोग हैं ॥

दंतरोग ।

दन्तरोगा दशाख्याता दालनः कृमिदंतकः ॥ १२८ ॥
दंतहर्षः करालश्च दंतचालश्च शर्करा ॥
अधिदंतः श्यावदंतो दंतभेदः कपालिका ॥ १२९ ॥

अर्थ–दांतके १० रोग हैं उनको कहते हैं। जैसे १ दालन २ कृमिदंत

---

१ वादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होते हैं उनमें तीव्र पीडा हो और दो टुकडोंके समान हो जाते हैं तथा होठकी त्वचा किंचित फट जाती है। २ पित्तसे होठ चारों ओरसे फुन्सियोंसे व्याप्त हो, उनमें पीडा होय, तथा पक जावें और पीलेसे दीखें। ३ कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सियोंसे व्याप्त होंय, कुछ दूखे, तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी होय। ४ सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सपेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सियोंसे व्याप्त होंय। ५ रक्तसे होठोंमें खजूर फलके वर्णकी फुंसी होय, उनमेंसे रुधिर गिरे, तथा वह होठ रुधिरके समान लाल होंय। ६ अभिघातसे (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिर जाय, पीडा होय, उनमें गांठ हो जाय तथा खुजली चलते समय पीव बहे। ७ मांस दुष्ट होनेसे होठ जड (भारी) मोटे होते हैं मांसपिंडके समान ऊंचे होंय इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होठोंमें अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पड जावें। ८ होठोंके एक भागमें चीरा जावे और उसमेंसे स्राव होय उसको खंडौष्ठ कहते हैं। ९ मांसके भाग बढके होठ ऊंचे और मोटे होकर उनमेंसे पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं। १० मेदसे होठ घृतके झागसमान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होय, तथा उनमेंसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय इसमें भया हुआ व्रण नहीं भरता है तथा उसमें मृदुता नहीं रहती। ११ वातादिक दोष कुपित होनेसे होठोंमें ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं। १२ जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय उसको दालनरोग कहते हैं यह रोग वादीसे होता है। १३ वादीके योगसे दांतोंमें काले छिद्र पड जांय तथा हिलने लगे उनमेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाले और कारण विना दूखनेवाले ऐसे

३ दंतहर्ष ४ कराल ५ दंतचाल ६ दंतशर्करा ७ अधिदंत ८ श्यावदंत ९ दंतभेद और १० कपालिका इस प्रकार दश भेद जानने ॥

दंतमूलरोग ।

तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः ॥ शीतादोपकुशौ द्वौ तु दंतविद्रधिपुप्पुटौ ॥१३०॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ॥ तथैव गतयः पंच वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडी च पंचमी ॥ १३१ ॥

अर्थ—अब दंतमूलके रोगोंको कहते हैं । तहां दांतकी जडके रोग तेरह हैं । जैसे १ शीताद २ उपकुश ३ दंतविद्रधि ४ पुप्पुट ५ अधिमांस

दांत होंय, उसको कृमिदंतरोग कहते हैं यहां दांतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्ट रुधिरसे कृमि (कीडा) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं ।

१ शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो दांत नहीं सहि सकें, उसको दंतहर्ष कहते हैं । यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है यह रोग वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी) को नहीं सह सके, यह व्याधिका स्वभाव है । २ वादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करे उसको करालरोग कहते हैं यह रोग साध्य नहीं होता । ३ वादीके योगसे तिस तिस अभिघातादिक करके हनुसंधि (ठोडी) में चोट लगनेसे दांत चलायमान हो जांय उसको दंतजाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं । ४ दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दंतशर्करा कहते हैं । ५ वादीके योगसे दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे उस समय पीडा होय जब वह दांत ऊग आवे तब पीडा शांत होय उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते हैं । ६ जो दांत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले हो जांय उनको श्यावदंत कहते हैं । ७ जिस व्याधिकरके मुख टेढा होकर दांत फूटने लगे, उसको दंतभेद कहते हैं यह व्याधि कफवात करके होती है इस दंतभंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा होता है । ८ कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होते हैं ऐसे दांत मलकरके सहित हो जांय उसको कपालिका ऐसे कहते हैं यह रोग दांतोंको सदा नाश करता है । ९ जिसके मसूढेमेंसे अकस्मात् रुधिर बहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त, काला पीबसहित तथा नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे दुसरे मसूढेको पकावे, इस कफरुधिरसे प्रगट व्याधिको शीताद नाम कहते हैं । १० जिसके मसूढेमें दाह होकर पाक होय और दांत हिलने लगे, मसूढोंमें घिसनेसे रुधिर मंद पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फेर मसूढे फूल आवें और मुखमें वास आवें इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं । ११ वातादिक दोष और रक्त कुपित होकर दांतोंके मसूढोंके भीतर और बाहर सूजन करे और रुधिरसे मिली राध गिरावे, पीडा और दाह होय इसको दंतविद्रधि कहते हैं । १२ जिसके दो अथवा तीन दांतोंकी जडमें महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते हैं । यह व्याधि कफरक्तसे होती है । १३ जिसके पीछेकी डाढ़के नीचे

६ विदर्भ ७ महासौषिर ८ सौषिर ९ वातनाडी १० पित्तनाडी ११ कफनाडी १२ सन्निपातनाडी और १३ रक्तनाडी ऐसे तेरह प्रकारके दंतमूलरोग हैं ॥

जिह्वारोग ।

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
अलसश्च चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्च पंचमः ॥ १३२ ॥
षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्-

अर्थ-जीभके रोग छः प्रकारके हैं उनके नाम १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ अलस ५ अधिजिह्व और ६ उपजिह्व इस प्रकार जिह्वाके रोग छः प्रकारके हैं ॥

अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन होय और घोर पीडा होय तथा लार बहुत वहे, उसको अधिमांसक कहते हैं। यह कफके कोपसे होता है।

१ मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दांत हिलने लगे उसको विदर्भ कहते हैं यह रोग चोटके लगनेसे होता है। २ जिस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीपसे दांत हलें और तालुएमें छिद्र पड जाय, दांत और होठभी फट जाय, उसको महासौषिर रोग कहते हैं। यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार डालता है। ३ कफरुधिरसे दांतोंकी जडमें सूजन होय, उसमें पीडा और स्राव होय, उसको सौषिररोग कहते हैं। ४ दंतमूलमें व्रण होनेसे उसके बीच नली हो जानी है। उस नलीमेंसे दुर्गंधयुक्त राध वहने लगे उसको नाडी कहते हैं। जिसमें वात दुष्ट होनेसे शूलादिक होते हैं उसको वातनाडी कहते हैं। ५ उस पूर्वोक्त नाडीकी नलीमें दाहादिक पित्तके लक्षण होनेसे पित्तनाडी जानना। ६ जिस नाडीमेंसे गाढी और सपेद राध वहे उसमें खुजली और जडपना इत्यादिक कफके लक्षण हों उनको कफनाडी कहते हैं। ७ जो नाडी तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होती है, उसको सन्निपातनाडी कहते हैं। ८ जिस नाडीमेंसे लाल वर्णकी और दाहयुक्त राध वहे और उसमें पित्तके दाहादिक लक्षण हों उसको रक्तनाडी कहते हैं। ९ वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहे) और पर्वती वृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदरी हो। १० पित्तसे जीभ पीली हो उसमें दाह होय तथा लंबे लंबे तामेके समान कांटे होंय, इस रोगको लौकिकमें जाली अथवा जोडी कहते हैं। ११ कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमरकेसे कांटेके समान मांसके अंकुर होते हैं। १२ जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अलस कहते हैं, उसके बढनेसे स्तंभ होय, तथा जीभके मूलमें सूजन होय, यह रोग असाध्य है। १३ कफरक्तके विकारसे जीभके ऊपर अग्रभागके समान अंकुर आवे उसको अधिजिह्व कहते हैं। १४ कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान (जैसा जीभका आगेका भाग होता है ऐसी) सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत वहे और उसमें खुजली चले तथा दाह होय। इस रोगको वैद्य उपजिह्व कहते हैं।

तालुरोग।

तथाष्टौ तालुजा गदाः ॥ १३३ ॥
अर्बुदं तालुपिटिका कच्छपी मांससंहतिः ॥
गलशुंडी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥ १३४ ॥

अर्थ—तालुएके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ अर्बुद २ तालुपिटिका ३ कच्छपी ४ मांससंहति ५ गलशुंडी ६ तालुशोष ७ तालुपाक और ८ पुप्पुट ॥

गलरोग।

गलरोगास्तथाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ॥
वातरोहिणिका पूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी ॥ १३५ ॥
कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी ॥
मेदोरोहिणिका वृंदो गलौघो गलविद्रधिः ॥ १३६ ॥
स्वरहा तुंडिकेरी च शतघ्नी तालुकोऽर्बुदम् ॥
गिलायुर्वलयश्चापि वातगंडः कफस्तथा ॥
मेदोगंडस्तथैव स्यादित्यष्टादश कंठजाः ॥ १३७ ॥

अर्थ—कंठरोग अठारह प्रकारके हैं। जैसे १ वातरोहिणी २ पित्तरोहिणी

---

१ रुधिरसे तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय और उसमें पीडा थोडी होय उसको अर्बुद कहते हैं। २ रुधिरसे तालुएमें लाल, स्तब्ध (लठर) ऐसी सूजन होय उसमें पीडा और ज्वर होय उसको तालुपिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं। ३ कफसे तालुएमें कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय उसमें पीडा थोडी होय वह शीघ्र बढे नहीं उसको कच्छपी कहते हैं। ४ कफकरके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं, उसको मांससंहति कहते हैं। ५ कफरुधिरसे तालुएके मूलमें फूली बस्तीके समान सूजन होय इसके प्रभावसे प्यास, खांसी, श्वास ये होते हैं इस रोगको गलशुंडी कहते हैं। ६ वादीसे तालु अत्यंत सूखकर फट जाय, तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते हैं। ७ पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुंसी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहते हैं। ८ मेदयुक्त कफकरके तालुएमें पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय उसको पुप्पुट वा तालुपुप्पुट कहते हैं। ९ जीभके चारों ओर अत्यंत वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होय, उनसे कंठका अवरोध होय, तथा कंप, विनाम (कंठ नवे) स्तंभ आदि वातके विकार होते हैं इसको वातरोहिणी कहते हैं। १० पित्तसे प्रगट भई रोहिणी शीघ्रही बढे तथा शीघ्रही पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय।

३ कफरोहिणी ४ संनिपातरोहिणी ५ मेदोरोहिणी ६ वृंद ७ गलौघ ८ गलविद्रधि ९ स्वरहा १० तुंडिकेरी ११ शतघ्नी १२ तालुक १३ अर्बुद १४ गिलायु १५ वलय १६ वातगंड १७ कफगंड १८ मेदोगंड इस प्रकार अठारह प्रकारके कंठरोग हैं॥

मुखान्तर्गतरोग।

मुखांतःसंश्रया रोगा अष्टौ ख्याता महर्षिभिः॥
मुखपाको भवेद्वातात्पित्तात्तद्वत्कफादपि॥ १३८॥
रक्ताच्च संनिपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वगुदावपि॥
अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः॥ १३९॥

अर्थ–मुखके भीतरके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ वातमुखपाक २ पित्तमुखपाक ३ कफमुखपाक ४ रक्तमुखपाक ५ संनिपातमुखपाक ६ दुर्गंधास्य ७ ऊर्ध्वगुद और ८ अर्बुद इस प्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकारका है॥

---

१ जो रोहिणी कंठके मार्गको रोध करे (रोक दे) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होंय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी। २ त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी होती है। तिन करके गला रुक जाता है ज्वरयुक्त जो उसमें रोध बहुत हों जिसमें औषधिका प्रभाव नहीं चले और तीन दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंको हरण करे। ३ मेद दुष्ट होनेसे गलेमें फुंसी उत्पन्न होती है उसको मेदोरोहिणी कहते हैं। ४ गलेमें ऊंची गोल तीव्र दाह तथा सूजन होय, उसको वृंद कहते हैं। यह वृंद रक्तपित्तके कोपसे होता है। इसमें वायुका संबंध होनेसे चोटनेसेकीसी पीडा होय। ५ रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय उसके योगसे कंठमें अन्नजलका अवरोध (रुकावट) होय तथा वायुका संचार होवे नहीं, इसको गलौघ कहते हैं। ६ जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्वप्रकारकी पीडा उसको विद्रधि कहते हैं। ७ वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वारंवार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कंठ सूखे और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन नहीं अर्थात् थोडाभी अन्न खाया हो तथापि कंठके नीचे न उतरे इस वातजरोगको स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं। ८ वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले हो जांय और चिनमिनावें, मुख, जिह्वा, गला, हौंठ, मसूढे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोगको मुखपाक (मुख आना) अथवा सर्वसर कहते हैं। ९ पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे। १० कफसे मुखमें मंद पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय। ११ रक्तके कोपसे मुखमें लाल फोडे होते हैं उनके लक्षण पित्तके सदृश होंय। उसको रक्तजमुखपाक कहते हैं। १२ मुखमें जो फोडे होते हैं उनमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलनेसे उन्हें संनिपातज मुखपाक कहते हैं। १३ मुखमें फोडेकीसी दुर्गंध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गंधमुख कहते हैं। १४ मुखमें जो फोडे होते हैं उनके फूटनेसे उनका आकार गुदाके सदृश होवे उसको ऊर्ध्वगुद कहते हैं। १५ संनिपातके योगसे मुखमें गोल आकारवाली ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अर्बुद कहते हैं।

कर्णरोग।

कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ॥ १४० ॥
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपाताच्च विद्रधिः ॥
शोथोऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका ॥ १४१ ॥
बाधिर्यं तंत्रिका कंडूः शष्कुलिः कृमिकर्णकः ॥
कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ॥ १४२ ॥

अर्थ–कर्णरोग १८ प्रकारके हैं। जैसे १ वात २ पित्त ३ कफ ४ रक्त ५ संनिपात ६ विद्रधि ७ शोथ ८ अर्बुद ९ पूतिकर्ण १० कर्णार्श ११ कर्णहल्लिका १२ बाधिर्य १३ तंत्रिका १४ कंडू १५ शष्कुल

---

१ वादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा हो जाय। २ पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा हो जाय, तथा किंचित् पीला दुर्गंधियुक्त स्राव होय। ३ कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय। ४ पित्तके लक्षणसे रक्तज कर्णरोग जानना। ५ संनिपातसे सब लक्षण होंय, स्राव होय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसेही दोषानुसार वर्णका स्राव होय। ६ कानमें खुजानेसे व्रण हो जाय, अथवा चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय उसी प्रकार वातादिदोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है, जब वह फूटे तब उसमेंसे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होय, धूंआंसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे चूसनेकीसी पीडा होवे। ७ सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एकसाथ बहुत बढावे तौ कानकी लौरमें सूजन होकर फूल जावे और दूखे उसको कर्णशोथ कहते हैं। ८ त्रिदोषके कोपसे कानमें गोलाकार मांसकी फुंसी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहते हैं। ९ कानमेंसे राध निकले और दुर्गंध आवे उसको कर्णपूति कहते हैं। १० वातादिक दोष कुपित होनेसे कानमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं, उनमें शूल, कंडू, दाह ये उपद्रव होते हैं उसको कर्णार्श कहते हैं। ११ पतंग, कानखजूरा, गिजाई आदिके कानमें घसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय तथा कानमें नोचनेकीसी पीडा होय वह कीडा कानमें फडके और फिरे उस समय घोर पीडा होय और जब वह बंद होय तब पीडा बंद होय इसको कर्णहली कहते हैं। १२ जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द वहनेवाली नाडियोंमें स्थित हो जाय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देता अर्थात् बहरा हो जाता है। उसको बाधिर्य कहते हैं। १३ पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायुसे कानोंमें वेणु (बंसी)-का शब्द सुनाई देता है, उसको तंत्रिक अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं। १४ कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकंडू कहते हैं। १५ मस्तकमें पाषाण, लकडी आदिका अभिघात होनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानमेंसे राध वहे उसको कर्णशष्कुलि अथवा कर्णस्राव कहते हैं।

१६ कृमिकर्णक १७ कर्णनाद और १८ प्रतीनाह इस प्रकार कानके रोग अठारह प्रकारके जानने ॥

कर्णपालीरोग ।

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः ॥
उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्धनः ॥
परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ॥ १४३ ॥

अर्थ–कर्णपालिके रोग सात प्रकारके हैं । जैसे १ उत्पात २ पालिशोष ३ विदारी ४ दुःखवर्धन ५ परिपोट ६ लेही और ७ पिप्पली ॥

कर्णमूलरोग ।

कर्णमूलामयाः पंच वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १४४ ॥
संनिपाताच्च रक्ताच्च–

अर्थ–कर्णमूलरोगेंको वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त इन भेदोंसे पांच प्रकारका जानना ॥

---

१ जिस समय कानमें कृमि पड जाय, अथवा मक्खी अंडा धरे, तब कृमिके लक्षण होते हैं । इसको कृमिकर्ण कहते हैं । २ वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके शब्द सुनाई देवे इस रोगको कर्णनाद कहते हैं । ३ जिस समय कानका मैल पतला होकर मुखमें और नाकमें उतरता है उसको प्रतीनाह रोग कहते हैं । इसमें आधा मस्तक दूखता है । ४ कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालीमें हरा, नीला अथवा लाल सूजन होय, उसमें दाह होवे, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं । ५ वायुके कोपसे कानकी पाली सूख जाय उसको पालीशोष कहते हैं । ६ कानकी लौर फटकर उसमें खुजली चले उसको विदारी कहते हैं । ७ दुष्टरीति करके कानको छेदने तथा बढानेसे, खुजली दाह पीडायुक्त सूजन होय, वह पक जाय, उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं । ८ सुकुमार स्त्री अथवा बालकोंके कानोंमें अलंकार (गहने) पहनानेके वास्ते प्रथम छिद्र करके कई दिन उनमें गहने नहीं पहने । फिर किसी कालमें कानमें गहने पहननेका समय आवे तब ये छिद्र मोटे होनेके वास्ते कानमें सींक आदि डालकर बढानेको चाहे, तब उससे काले वर्णकी वा लालवर्णकी सूजन उत्पन्न होवे, उसमें पीडा होवे, वह वादीसे होती है। उसको परिपोट कहते हैं । ९ कफ, रक्त, कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली जो सूजन कानकी पालीमें होय, वह कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही ऐसे कहते हैं । १० कानको बलपूर्वक पाली (लौर) में वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मंदपडायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको पिप्पली अथवा उन्मंथक कहते हैं । ११ कानके नीचे मूलकी जगहपर गांठके आकार सूजन उत्पन्न हो । उसमें जिस दोषका कोप हुआ हो उसके लक्षण होते हैं। जैसे वायुका कोप होनेसे पीडा होती है, पित्तका कोप होनेसे दाह होता है, कफका कोप

नासारोग ।

तथा नासाभवा गदाः ॥ अष्टादशैव संख्याताः प्रतिश्यायास्तु तेष्वपि ॥१४५॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपातेन पंचमः ॥ आपीनसः पूतिनासो नासार्शो भ्रंशथुः क्षवः ॥ १४६ ॥ नासानाहः पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् ॥ नासाशोषो घ्राणपाकः पुटस्रावश्च दीप्तकः ॥ १४७ ॥

अर्थ–नाकमें होनेवाले रोग अठारह हैं । जैसे १ वातप्रतिश्याय २ पित्तप्रतिश्याय ३ कफप्रतिश्याय ४ रक्तप्रतिश्याय ५ सन्निपातप्रतिश्याय ६ आपीनस ७ पूतिनास ८ नासार्श ९ भ्रंशथु १० क्षव ११ नासानाह १२ पूतिरक्त

होनेसे खुजली होती है, संनिपातसे तीनों लक्षण होते हैं और रक्तसे दाह होता है इस प्रकारकरके पांच कर्णमूल रोग जानने ।

१ जिसके नाकका मार्ग रुक जाय, आच्छादित हो जाय और उसमेंसे पतला पानी निकले, गला, तालु, होठ ये सूख जाय और कनपटी दूखे, गला बैठ जाय, ये वातके प्रतिश्याय (पीनस) के लक्षण जानने । २ जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव निकले, वह मनुष्य पीला और कृश हो जाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धूंआं निकले ये पित्तके पीनसके लक्षण हैं । ३ नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद हो जाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु, शिर तथा होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले । ये कफके पीनसके लक्षण हैं । ४ रुधिरके पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होंय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय ये रक्तके पीनसके लक्षण हैं । ५ जिसके नाकमें वात, पित्त, कफके पीनसके लक्षण होंय, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट हो जाय उसको संनिपातकी पीनस कहते हैं । यह विदेह आचार्यके मतसे असाध्य है । ६ जिसके नाक रुक जाय, वात, शोणित, कफसे नाक भीतरमें सूखासा रहे, गीला रहे, धुंआंसा निकले, जिसके नाकमें सुगंध, दुर्गंध मालुम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी । इस वातजन्य विकारको आपीनस कहते हैं । ७ गले और तालुएमें दुष्ट भया पित्त रक्तादि दोषकरके वायुमिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गोंसे दुर्गंधि निकले । इस रोगको पूतिनास वा पूतिनास्य कहते हैं । ८ वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर त्वचा, मांस और मेद इनको दूषित करते हैं । उससे नाकमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं उसको नासार्श कहते हैं । ९ सूर्यकी गरमीकरके मस्तक तप्त होनेसे पूर्व संचित भया विदग्ध गाढा, खारी, ऐसा कफ नाकसे गिरे, उस व्याधिको भ्रंशथुरोम कहते हैं । १० नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्मके) विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव (छींक) कहते हैं । ११ वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे नहीं चले, इसको नासानाह कहते हैं । १२ जो दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राध और रुधिर वहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं ।

१३ अर्बुद १४ दुष्टपीनस १५ नासाशोष १६ घ्राणपाक १७ पुटस्राव और १८ दीप्तक ऐसे ये अठारह नासिकाके रोग हैं ॥

शिरोरोग ।

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः ॥ शिरस्तापश्च वातेन पित्तात्पीडा तृतीयका ॥१४८॥ चतुर्थी कफपीडा च रक्तजा संनिपातजा ॥ सूर्यावर्ताच्छिरःपाकात्क्रिमिभिः शंखकेन च ॥१४९॥

अर्थ–मस्तकरोग दश प्रकारका है। जैसे १ अर्धावभेदक २ वातजशिरोभिताप ३ पित्तजशिरोभिताप ४ कफजशिरोभिताप ५ रक्तजशिरोभिताप ६ सन्निपातजशिरोभिताप

---

१ वातादिदोष कुपित होनेसे नाकमें ऊंची गांठ उत्पन्न होती है उसको नासार्बुद कहते हैं। २ वारंवार जिसकी नाक झडा करे और सूख जाय नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय। श्वास लेनेमें वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान न रहे। ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय वा दुष्ट पीनस कहते हैं यह कष्टसाध्य है। ३ वायुसे नासिकाका द्वार अत्यंत तप्त होकर सूख जाय, तब मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासाशोष कहते हैं। ४ जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुंसी प्रगट करे और नाक भीतरसे पक जाय उसको घ्राणपाक कहते हैं। ५ नाकसे गाढा, पीला अथवा सफेद पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते हैं। ६ नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धूंआंके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गरम होवे उसको दीप्तक कहते हैं। ७ रूखे अन्नसे, अत्यंत भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), पूर्व दिशाकी पवन सेवन करनेसे, बर्फसे, मैथुनसे, मल मूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंड कसरत करनेसे इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भ्रुकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखें, कुल्हाडीसे घाव करनेकीसी अथवा अरणिके (आंच लगानेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्धावभेदक अर्थात् आधासीसी कहते हैं। यह रोग जब बहुत बढ जाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन हो जाता है। अथवा एक ओरकी आंख मारी जाती है जिस ओरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं। ८जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रिमें विशेष दूखे, बांधनेसे अथवा सेकनेसे शांति हो, उसको वातजशिरस्ताप कहते हैं। ९ जिसका मस्तक अंगारसे तपायके समान गरम होवे, और नाकमें दाह होय, शीतल पदार्थसे किंवा रात्रिमें शांत हो, उस मस्तकशूलको पित्तका जानना। १० जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त (लिहसासा) होवे, भारी, बंधासा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना। ११ रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकका स्पर्श सहा नहीं जाता यह विशेष होता है। १२ त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण होते हैं।

७ सूर्यावर्त्त ८ शिरःपाक ९ कृमिज और १० शंखक ऐसे मस्तकके दश रोग हैं ॥

कपालरोग ।

तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम् ॥
अरूंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम् ॥
इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ॥ १५० ॥

अर्थ-कपालके रोग नौ प्रकारके हैं। जैसे १ उपशीर्षक २ अरूंषिका ३ विद्रधि ४ दारुण ५ पिटिका ६ अर्बुद-

---

१ सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य बढें तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भृकुटी (भौंह) में दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ बढकर फिर जैसे जैसे सूर्य अस्त होय तैसे तैसे पीडा मंद होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय इस सांनिपातिक विकारको सूर्यावर्त कहते हैं। २ मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल होता है। छींक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे, तथा उसमें स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर निकलना ये कर्म करनेसे यह मस्तकशूल बढता है। इसको शिरः-पाक अथवा क्षयजशिरोरोग कहते हैं। ३ जिसके मस्तकमें टांकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक खाकर पोला करदेवे, तथा भीतरसे मस्तक फडके तथा नाकमें रुधिर, राध और कीडे पडे यह कृमिजशिरोरोग बडा भयंकर है। ४ दुष्ट भये जो पित्त, रक्त और वायु सो विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करें इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोक दे इस शंखक रोगसे रोगीका तीन दिनमें प्राणोंका नाश होवे इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषध पहुँचनेसे रोगी बचे, परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना। ५ वातादिक दोष कुपित होनेसे मस्तकके समीप माथेके ऊपरके भागपर सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक कहते हैं। ६ रुधिर, कफ और कृमिके कोपसे माथेमें बहुत फुंसी हो जाय उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेदयुक्त होय। इन फुंसीको अथवा व्रणोंको अरूंषिका कहते हैं। ७ वातादिक दोषोंसे माथेमें गांठ होकर पके और फुटे उसमें शूल दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते हैं। ८ कफ वायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खबरदारी होय तथा बारीक फुंसी होकर पकें उसको दारुण कहते हैं कफवातके कोपसे यह रोग होता है इसका कारण यह है कि विना पित्तके पाक नहीं होय। ९ त्रिदोषके कोपसे मस्तकमें गोल फुंसी होती है उससे शूल दाह आदि पीडा होवे उसको पिटिका कहते हैं। १० माथेमें वातादि दोष कुपित होकर रुधिर और मांसको दूषित कर मोटी और गोल ऐसी गांठ उत्पन्न करे उसमें पीडा थोडी होवे, उसकी जड नीचे रहती है यह गांठ बहुत देरमें बढती और बहुत देरमें पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं।

७ इन्द्रलुप्त ८ खालित्य और ९ पलित ऐसे नौ प्रकारके कपालके रोग हैं॥

वर्त्मरोग।

तथा नेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥ १५१ ॥ तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञिताः॥ कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मशातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥ १५२ ॥ अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः ॥ पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ॥१५३॥ श्लिष्टवर्त्मा च बहलः पक्ष्मोत्संगस्तथार्बुदम् ॥ कुंभिका सिकतावर्त्मा लगणोऽजननामिका ॥ १५४ ॥ कर्दमः श्याववर्त्मापि विसवर्त्म तथालजी ॥ उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १५५ ॥

अर्थ-नेत्रके रोग ९४ हैं उनमें पलकोंके रोग २४ हैं । जैसे १ कृच्छ्रोन्मील २ पक्ष्मशात ३ कफोत्क्लिष्ट ४ लोहित ५ अरुङ्निमेष

---

१ पित्त बादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्यस्थानके बाल झडने लगे पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोकदे उससे फेर बाल नहीं ऊगे इस रोगको इन्द्रलुप्त अर्थात् चाई-रोग कहते हैं यह रोग स्त्रियोंके नहीं होता कारण यह कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता रहता है और निकलता रहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नहीं रोकता । २ इंद्र-लुप्त सदृशही खालित्य रोगके लक्षण हैं । तहां इंद्रलुप्त रोग मूंछ डाढीमें होता है और खालित्य रोग शिरमें होता है । ३ क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे शरीरमें उत्पन्न भई जो ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सपेद कर दे, उस करके यह पलित रोग होता है। ४ वातादि दोष जब कोएके मार्गको संकुचित करें तब मनुष्य नेत्रको उघाड कर नहीं देख सके । उस रोगको कुंचन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं। ५ पलकोंकी जडमें रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको बरूनी अथवा वांफणी कहते हैं उनका नाश करे, नेत्रोंमें खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं । ६ कोएमें अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट वा प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं । ७ रुधिरके संबंधसे नेत्रके कोएके भीतरके भागमें लाल तथा नरम अंकुर बढे उसको शोणितार्श वा लोहित कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहाचार्य असाध्य मानते हैं। ८ वर्त्माश्रित (कोएमें स्थित) जो वायु सो निमेष (कहिये पलकके उघाडने मूंदने-वाली नस) में प्रविष्ट होकर वारंवार पलकोंको चलायमान कर उसको अरुङ्निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं। यह रोग सन्निपातज है ।

६ रक्तोत्क्लिष्ट ७ कुकूणक ८ पक्ष्मार्श ९ पक्ष्मरोध १० पित्तोत्क्लिष्ट ११ पोथकी १२ श्लिष्टवर्त्म १३ बहल १४ पक्ष्मोत्संग १५ अर्बुद १६ कुंभिका १७ सिकतावर्त्म १८ अलगर्ण १९ अंजननामिका २० कर्दम २१ श्यावर्वर्त्म २२ बिसवर्त्म २३ अलजी और २४ उत्क्लिष्टवर्त्म इस प्रकार चौवीस प्रकारके पलकोंके रोग हैं॥

---

१ नेत्रके कोएमें लंबे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मासांकुर होते हैं उसको शुष्कार्श अथवा रक्तोत्क्लिष्ट कहते हैं। २ दूधके विकारसे छोटे बालकोंके नेत्रमें खुजली, दाह और वारंवार स्राव होता है उसको कुकूणक कहते हैं। ३ ककडीके बीजके बराबर, मंद पीडायुक्त, पृथक् ऐसी फुंसी कोएमें उठे उसको पक्ष्मार्श कहते हैं। यह सन्निपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्यका मत है। ४ जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे। इस रोगको पक्ष्मरोध वा वर्त्मबंध कहते हैं। ५ वादीसे चलायमान कोएके बाल नेत्रमें प्रवेश करें और वे वारंवार नेत्रसे रगडे जांय इसीसे नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय, वह केश (बाल) जडसे टूट-जावें, अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म, अथवा पित्तोत्क्लिष्टभी कहते हैं। ६ कोयोंमें लाल सरसोंके समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीसंयुक्त, भारी तथा पीडासंयुक्त ऐसी फुंसी होय उसको पोथकी कहते हैं। ७ नेत्रके वर्त्म धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपक जावें, कोए पककर राधसे नहीं चिकटें तौ इस रोगको अक्लिष्टवर्त्म अथवा श्लिष्टवर्त्म कहते हैं। ८ नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुन्सीसे व्याप्त होय उस रोगको बहलवर्त्मरोग कहते हैं। ९ नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुंसी होय, और उसका मुख भीतर होय, वह लाल बडी तथा खुजलीसंयुक्त होय उसको पक्ष्मोत्संगपिटिका कहते हैं, यह त्रिदोषजन्य है। १० नेत्रके कोएके भीतर गोल, मंद, वेदनायुक्त, कुछ लाल, जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गांठ होय उसको अर्बुद कहते हैं। यह संनिपातज है। ११ पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुंसी होय वह पककर फूट जाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि कच्छदेशमें दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है। १२ कोएमें जो पिडिका कठिन और बडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर, अथवा सिकतावर्त्म कहते हैं। १३ नेत्रके कोएमें बेरके समान बडी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गांठ होय उसको अलगण कहते हैं। यह रोग कफजन्य है इसमें पीडा और पकना नहीं होता। १४ दाह, तोद (चौंटनी) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मंद पीडा करनेवाली ऐसी फुंसी नेत्रके कोएमें होय उसको अंजना कहते हैं यह संनिपातज है। १५ क्लिष्टवर्त्मरोग (जो पूर्व कहा) फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे तब वह दही दूध माखनके समान गीला हो जाय अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं। १६ जिसके नेत्रके कोएमें बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीडा होय उसको श्याववर्त्म कहते हैं यह वातादिक त्रिदोषजन्य है। १७ तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें तथा उनमें छिद्र हो जांय, उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं। १८ नेत्रकी सपेद काली संधियोंमें तामेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं। १९जिसके नेत्रके

नेत्रसंधिगतरोग ।

नेत्रसंधिसमुद्भूता नव रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १५६ ॥ पूयस्रावः कृमिग्रन्थिरुपनाहस्त-थालजी ॥ पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसंधिजाः ॥ १५७ ॥

अर्थ-नेत्रोंकी संधिके रोग नौ हैं। जैसे १ जलस्रांव २ कफस्रांव ३ रक्तस्रांव ४ पर्वणी ५ पूयस्रांव ६ कृमिग्रंथि ७ उपनाह ८ अलजी और ९ पूयालंस इस प्र-कार नेत्रके रोग हैं ॥

नेत्रके सपेद बबूलेके रोग ।

तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश ॥ शिरोत्पातः शिरा-हर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥ १५८ ॥ शुक्लार्मं चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः ॥ शिराजपिटिका चैव कफग्रथितकोऽ-र्जुनः ॥ स्नाय्वर्म चाधिमांसः स्यादिति शुक्लगता गदाः ॥१५९॥

अर्थ-नेत्रके सपेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं। जैसे १ शिरोत्पातं २ शिरोंहर्ष

पलक पृथक् पृथक् हौंय, तथा जिसके पलक मिचें और खुलें नहीं । ऐसे नेत्रके कोए मिले नहीं, उसको उत्क्लिष्टवर्त्म कहते हैं। उसकोही शालाक्यसिद्धांतवाला वातहतवर्त्म कहता है।
१ जिसकी संधिमें पित्तसे पीला गरम जल वहे उसको जलस्राव कहते हैं । २ जिसमेंसे सफेद, गाढी और चिकनी राध वहे, उसको कफस्राव कहते हैं । ३ जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर वहे, उसको रक्तस्राव कहते हैं। ४ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तामेके समान छोटी गोल जो फुंसी होवे और वह फुंसी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं। ५ ने-त्रकी संधिमें सूजन होकर पके तथा उसमें राध वहे, उसको पूयस्राव कहते हैं । यह रोग सन्निपातात्मक है। ६ जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रकी पलक और सफेदी भागके संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथि कहते हैं। ७ नेत्रकी संधिमें बडी गांठ होवे, वह थोडी पके, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उसको उपनाह कहते हैं। ८ नेत्रकी सफेदकाली संधियोंमें तामेके समान बडी फुंसी उठे उसको अलजी कहते हैं। ९ नेत्रकी संधिमें सूजन होवे और पककर फूट जाय, उसमेंसे दुर्गंधि आवे और राध वहे तथा तोद (सुई छेदनेकीसी पीडा) होय उसको पूयालस कहते हैं। १० जिसके नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तामेके समान लाल रंगकी हो जाय और वह बराबर अधिकाधिक (जियादेसे जियादा) लाल हो जाय इस रोगको शिरोत्पात (सबलवायु) कहते हैं। यह रोग रक्तजन्य है। ११ अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबलवायु) की उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिराहर्षरोग होता है। उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें और उस रोगीको नेत्रसे कुछ दिखलाई न देवे ।

३ शिराजाल ४ शुक्तिक ५ शुक्रार्म ६ अधिमांसार्म ७ प्रस्तार्यर्म ८ पिष्टक ९ शिराजपिटिका १० कफग्रथितक ११ अर्जुन १२ स्नाय्वर्म १३ आधिमांस इस प्रकार नेत्रके सपेद भागमें होनेवाले १३ रोग जानने ॥

नेत्रके काले बबूलेके रोग।

तथा कृष्णसमुद्भूताः पंच रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १६० ॥
शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः ॥
शिरासंगश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६१ ॥

अर्थ–नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं। जैसे १ शुद्धशुक्र २ शिराशुक्र ३ क्षत-

---

१ नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे इसको शिराजाल कहते हैं। २ नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिंदु होय उसको शुक्तिक कहते हैं। ३ नेत्रके शुक्लभागमें सपेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्रार्म कहते हैं। ४ नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ लाल काला) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं। ५ नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल ऐसा मांस बढे उसको प्रास्तारिअर्मरोग कहते हैं। ६ कफवायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा) सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं वह मलसे मिले अर्श (बवासीर)-के समान होता है। ७ नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त सफेद फुंसी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं। वह कृष्णभागके समीप होती है। ८ नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीके बुंदके समान कुछ ऊंची जो गांठ होय उसको कफग्रथितक अथवा बलास कहते हैं। ९ शुक्लभागमें ससेके रुधिरके समान जो बिंदु (बूंद) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं। १० नेत्रमें जो कठिन तथा फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं। ११ नेत्रके सफेद भागमें लाल कमलके सदृश लाल वर्णका और मृदु ऐसा मांस बढता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते हैं। १२ नेत्रके काले भागमें अभिष्यंदसे सींग तुमडीकी पीडायुक्त, शंख, चंद्र, कुंदपुष्प इनके समान सपेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है। १३ जिस शुक्रके बीचका मांस गिर जाय इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला हो जाय, अथवा उसके विपरीत पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओंकरके व्याप्त हो बारीक हो गया हो। दृष्टिका नाश करनेवाला, दो पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो, चारों ओरसे लाल हो, और बीचमें सपेद और बहुत दिनका शुक्र (फूला) हो, इसको शिराशुक्र कहते हैं, यह असाध्य है। १४ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा हो जाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सूईके छेदके समान छिद्र पडा हुआ देखनेमें आवे, तथा नेत्रोंमेंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको क्षतशुक्र कहते हैं। इसमें पीडा बहुत होती है।

शुक्र ४ अर्जक ५ शिरासंग इस प्रकार पांच भेद जानने ॥

काचबिन्दुरोग ।

काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ॥
संनिपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसंभवम् ॥ १६२ ॥

अर्थ–वातादिदोष कुपित हो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो काँचरोगको प्रगट करते हैं। वह छः प्रकारका है। जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ सन्निपातज ५ रक्तज ६ संसर्गज ऐसे मोतियाबिंदु छः प्रकारका है ॥

तिमिररोग ।

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्संनिपाततः ॥ १६३ ॥

अर्थ–नेत्रके पटल (पडदे) वातादि दोषोंसे दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं। तिस करके मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है। उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहले पटलमें वातादिदोष जानेसे इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ

---

१ काले भागमें बकरीकी शुष्क विष्ठाके समान, दूखनेवाला, लाल हो और गाढा, कुछ कालेसे आंसू वहे उसको अजक कहते हैं। २ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सपेद शुक्र (फूला) फैल जावे, उसे संनिपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना। ३ दृष्टिके सर्वपटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें वातादि दोष प्राप्तहोकर मनुष्य नेत्रके आगे अनेक प्रकारके स्वरूप देखें उसको तिमिर कहते हैं। फिर वही तिमिर कुछदिन रोग दशाको प्राप्त होता है उसको काच (मोतियाबिंदु) कहते हैं। ४ वादीके काच (मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन, कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे, इसे वातज काचबिंदु जानना। ५ जिस मोतिया बिंदुसे रोगीको सूर्य खद्योत (पटवीजना), इंद्रधनुष, बिजली और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे, वह पित्तज काचबिंदु कहाता है। ६ चिकनी और सफेद तथा पानीमें कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप कफज काचरोगसे दीखे। ७ अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एकके अनेक, दो अथवा अनेक प्रकारके रूप दीखें), हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें इस काचाबिंदुको संनिपातज जानना। ८ रक्तज काचबिंदुरोगमें लाल और अनेक प्रकारका अंधकार तथा किंचित् सफेद, काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे। ९ रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गज काचबिंदु होता है इसके योगसे रोगीको दिशा, आकाश और सूर्य ये पीले दीखें उसे सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेज स्वरूपसे दीखें, इसको परिम्लायि रोगभी कहते हैं, परिम्लायि पित्तको मील कहते हैं। इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसे कहते हैं।

धुंधरे २ से दीखें तथा वातादिदोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखें, अर्थात् वादी-से काजलके समान, पित्तसे नीले रंगके, कफसे सपेद रंगके, रुधिरसे लाल रंगके, और संनिपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं। ऐसे लक्षण सर्वपटलोंमें जानने। दूसरे पडदेंमें वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है। अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर मक्खी बाल मंडल जाली पताका किरण कुंडल वर्षा बद्दल ये सब अंधेरेके समूह और जालसे दीखते हैं। दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे। बडे यत्नसेभी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि। नेत्रके तीसरे पडदेमें दोष पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढे हुएसे दीखें। और नीचेके बिलकुल नहीं दीखें। नाक और कानके विना मुख दीखे इत्यादि। वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और संनिपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है। उनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छः प्रकारका प्रथम लिख आये हैं, उसके समान जानना॥

लिंगनाशरोग।

लिंगनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेन च॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा॥ १६४॥

अर्थ–तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल (पर्दे) में पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिको व्याप्त-कर न दीखनेसमान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं। वह लिंगनाश १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ त्रिदोषजन्य ५ उपसर्गजन्य ६ संसर्गज और ७ रक्तज इन सात कारणोंसे सात प्रकारका है॥

---

१ वातके लिंगनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मंडल होता है, वह चंचल और खरदरा होता है। २ पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला तथा कांचके समान पीला होवे। ३ कफसे भारी, चिकना, कुंदफूलके समान और चंद्रके समान सफेद होय और नेत्रमें हलनेवाले कमलपत्रके ऊपर पानीकी बुंदके समान टेढी तिरछी सफेद बुंद फैलीसी दिखलाई दे। ४ त्रिदोषज लिंगनाशमें तरहतरहके मंगल होय तथा सर्व दोषोंके लक्षण न्यारे न्यारे दीखें। ५ उपसर्गज अर्थात् अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है। एक निमि-त्तजन्य और दूसरा अनिमित्तजन्य तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवन-का मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं। इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं। देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय, उसको अनिमित्तज लिंगनाश कहते हैं इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय। ६ संसर्गज लिंगनाशमें पित्त दुष्ट हुए रुधिरसे दूषित होनेसे दृष्टिका मंडल लाल और पीला हो जाता है। ७ रुधिरसे दृष्टिमंडल मूंगेके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे।

दृष्टिरोग ।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् ॥ अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥ १६५॥ नकुलांध्यं धूसरांध्यं रात्र्यांध्यं ह्रस्वदृष्टिकः ॥ गंभीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः॥ १६६॥

अर्थ–दृष्टिमंडलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं । वे १ पित्तविदग्ध २ अम्लपित्तविदग्ध ३ उष्णविदग्ध ४ नकुलांध्य ५ धूसरांध्य ६ रात्र्यांध्य ७ ह्रस्वदृष्टि ८ गंभीर ऐसे आठ प्रकारके हैं ॥

अभिष्यन्दरोग ।

अभिष्यंदाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्तथा ॥

अर्थ–संपूर्ण नेत्ररोगोंके कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं । १ रक्ताभिष्यंद २ वाताभिष्यंद ३ पित्ताभिष्यंद और ४ कफाभिष्यंद ॥

---

१ पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखे, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं । २ अम्लपित्त करके मनुष्यको रद्द करनेके समय दृष्टिको अभिघात होनेसे सर्व पदार्थ सफेद रंगके दीखने लग जाते हैं । उस दृष्टिरोगको अम्लपित्तविदग्ध कहते हैं । ३ तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दिखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे इसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं । ४ जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिसे समान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं । ५ शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होवे, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूंएके रंगके दीखें इस रोगको धूसरांध्य, धूमदर्शी अथवा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं । ६ जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वह नक्तांध (रतोंधा) को उत्पन्न करे, वह पुरुष दिवसमें सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे देखे, रातको नहीं देखे उसको रात्र्यांध्य वा नक्तांध्य कहते हैं । ७ दृष्टिके मध्यगत पित्त दुष्ट होनेसे मनुष्यको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखें और रात्रिमें अच्छे दीखे उसको ह्रस्वदृष्टि कहते हैं । ८ जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरसे संकुचित होवे तथा उसमें पीडा होवे, उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं । ९ रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंमें और पास रेखासी लाल दीखे और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वह सब लक्षण इसमें होवे। १० वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभानेकीसी पिडा होय, नेत्रोंका स्तंभन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेसमान खटके तथा रूक्ष होय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे परंतु नेत्र सूखेसे रहे और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल होय । ११ पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जाय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले अथवा नेत्रोंमें धुआं जानेकीसी पीडा होय तथा नेत्रोंसे अश्रु (आंसू) बहुत पडें और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पडे । १२ कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगा-

अधिमंथरोग।

चत्वारश्चाधिमंथाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६७॥

अर्थ—उस अभिष्यंद रोगकी उपेक्षा करनेसे उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणोंसे चार प्रकारके अधिमंथरोग उत्पन्न हो उनके निस्तोद (चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यंदोंके लक्षण होते हैं व कडासे गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रोंमें कोई घस गया ऐसा माॡम हो, आधा मस्तक बहुत दूखे। ये इसके विशेष लक्षण हैं। अधिमंथ वातज होनेसे वातके लक्षण शूलादिक, पित्तज होनेसे पित्तके लक्षण दाहादिक और कफज होनेसे कफके लक्षण खुजली आदि होते हैं। इस अधिमंथमें अंजनादिक मिथ्या उपचार करनेसे दृष्टि नष्ट होती है। वह प्रकार इस प्रकार जैसे कफाधिमंथ मिथ्योपचारसे कुपित होनेसे सात दिनमें, रक्ताधिमंथ पांच दिनमें, वाताधिमंथ छः दिनमें और पित्ताधिमंथ तत्काल दृष्टिनाश करता है॥

सर्वाक्षिरोग।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः ॥
अल्पशोथोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६८॥
शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एव च ॥
हताधिमंथ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६९॥

अर्थ—संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं। वे आठ प्रकारके हैं। जैसे १ वातविपर्यय २ अल्पशोथ ३ अन्यतोवात ४ पाकात्यय

नेसे आराम माॡम हो अर्थात् नेत्रमें सेक अच्छा माॡम हो तथा नेत्र भारी होंय, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हों और शीतल हों, उनमेंसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय।

१ वायु क्रमसे कभी कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं। २ नेत्रोंमें सूजन आकर पक जाय, उनमें आंसू वहें और पके गूलरके समान लाल होंय, ये अल्पशोथके लक्षण हैं। यह अल्पशोथ त्रिदोषज है। ३ घाटी (घार), कान, मस्तक, ठोडी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, इस रोगको अन्यतोवात कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्य स्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं। ४ वातादि दोषोंकरके नेत्रके काले भाग ऊपर छर होके सब नेत्र सफेद हो जावे और तीव्र वेदना होय उसको पाकात्यय कहते हैं।

५ शुष्काक्षिपाक ६ शोफ ७ अध्युषित ८ हताधिमंथ इस प्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं। इस प्रकार सब नेत्ररोग मिलानेसे ९४ होते हैं ॥

षंढरोग।

पुंस्त्वदोषाश्च पंचैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ॥
आसेक्यश्चैव कुंभीकः सुगंधिः षंढसंज्ञकः ॥ १७० ॥

अर्थ—पुंस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणताके कारण मनुष्यको नपुंसकत्व प्राप्त होता है उसे १ ईर्ष्यक २ आसेक्य ३ कुंभिक ४ सुगंधि ५ षंढ इस प्रकार पांच प्रकारका जानना ॥

---

१ नेत्र खुले नहीं अर्थात् संकुचित हो जांय, जिनकी वाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय यथार्थ दीखे नहीं, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है। २ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाय, उनमें आंसू बहे और पके गूलरके समान लाल होंय। ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं यह व्याधि त्रिदोषजन्य है। ३ मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पक जाय और उनमें पीली रंगकी फुंसी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे यह अम्ल (खटाई) के खानेसे होता है। इसको अध्युषित वा अम्लाध्युषित कहते हैं। ४ वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे। उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (सूईके चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय यह हताधिमंथ नामक नेत्ररोग असाध्य है। इसको दृष्टचुत्क्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं। इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे हो जाते हैं। ५ जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे,उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है। ६ मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह आसेक्यनामक नपुंसक होता है वह अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खा जाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतर) होवे तब स्त्रीसे मैथुन करे उसका दूसरा नाम मुखयोनि है। ७ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावे। जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्रीके विषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुंभिक नपुंसक कहते हैं। इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुंभिक नपुंसककी उत्पत्ति ऐसे होती है कि ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवारे पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शांत न हो, इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुंभिक नामक नपुंसक होता है कोई आचार्य कुंभिक नपुंसकका लक्षण ऐसा कहते हैं कि जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं वह पहले स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदा भंजन करें। इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करें। इसको कुंभिक नामक नपुंसक कहते हैं। ८ जो पुरुष दुष्ट योनिमें उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं। ९ जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचेसे सीधा होकर ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे उससे

शुक्ररोग ।

शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ॥
कुणपं चास्रपित्ताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७१ ॥
क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रंथिलं श्लेष्मवाततः ॥
मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७२ ॥

अर्थ–१ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ रक्तपित्तजन्य कुर्णपसंज्ञक ५ कफपित्तजन्य पूयाभ ६ वातपित्तजन्य क्षीण ७ कफवातजन्य ग्रंथिल ८ सन्निपातजन्य मलाभ ऐसे आठ पुरुषोंके शुक्रधातुके दोष हैं ॥

स्त्रियोंके आर्तवदोष ।

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः ॥
अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
पूयाभं कुणपं ग्रंथि क्षीणं मलसमं तथा ॥ १७३ ॥

अर्थ–स्त्रियोंका आर्तव कहिये ऋतुसमयका रुधिर वहता है जिसको रज कहते हैं उसके दोष आठ प्रकारके हैं । जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ पूयाभ ५ कुणप ६ ग्रंथी ७ क्षीण और ८ मलसम इस प्रकार आर्तवदोष आठ प्रकारके हैं ॥

प्रदररोग ।

तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः ॥ १७४ ॥

जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय। स्त्रीकी चेष्टा करे (अर्थात् स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्यपतन करावे) ।

१ वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो यह गर्भके अर्थका नहीं है । २ पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला, अत्यंत गरम होता है उससे बुरी वास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होय । ३ कफसे शुक्र (वीर्य) शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यंत गाढा हो जाता है । ४ कुणप शुक्र दोषमें शुक्रकी गंध मुर्दाके सदृश आवे । ५ पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवे । ६ पित्तवादीसे शुक्र क्षीण हो जाता है । ७ कफवादीसे शुक्र गाँठदार होता है । ८ संनिपातसे दूषित हुए शुक्रमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं और पीडा होय तथा उसमें मूत्र और विष्ठाकीसी वास आवे । ९ आर्तव अर्थात् स्त्रियोंके यौवनमें महीनेकी महीने जो योनिके द्वारा रज निकलता है सो आठ प्रकारके दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इन करके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होता है तिन तिन दोषोंके अनुसार शुक्र दोषके सदृश लक्षण जान लेना ।

अर्थ—रक्तप्रदरके १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य और ४ सन्निपातजन्य इस प्रकार चार भेद हैं ॥

योनिरोग ।

विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातपित्तकफादपि ॥१७५॥ संनिपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा ॥ शुष्का च वामिनी चैव षंढी चांतर्मुखी तथा ॥१७६॥ सूचीमुखी विप्लुता च जातघ्नी च परिप्लुता ॥ उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिका ॥ स्यान्नंदा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ॥ १७७ ॥

अर्थ—१ वातला[6] २ पित्तला[7] ३ श्लेष्मला[8] ४ सन्निपातजा[9] ५ रक्तजा[10] ६ लोहितक्षया[11] ७ शुष्का[12] ८ वामिनी[13] ९ षंढी[14] १० अंतर्मुखी[15]

१ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अत्यंत भोजन, अत्यंत बोझेका उठाना तथा दिनमें सोना इत्यादि सर्व कारणोंकरके स्त्रियोंका रज दुष्ट होकर प्रवाह वहे उसको प्रदर कहते हैं। उसके पूर्वरूप ये हैं अंगोंका टूटना, पीडा, दुर्बलता, ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, देहमें पिलास, नेत्रोंमें तंद्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते हैं। २ वातसे प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मांसके और सपेद पानीके समान थोडा वहे उसमें वादीकी आक्षेपकादि पीडा होती है। ३ पित्तसे किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम, ऐसा प्रदर वहे उसमें दाह चिमचिमादि पीडा होय। तथा उसका वेग अत्यंत होय। ४ कफसे आमरस (कच्चा रस) संयुक्त, चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं। ५ जो प्रदर शहद, घृत, हरिताळ और मज्जा इनके रंगके समान तथा मुर्दोकीसी दुर्गंधियुक्त होय इसको त्रिदोषज प्रदर जानना वह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे। ६ जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं। ७ जो योनि दाह, पाक, ज्वर आदि पित्तके लक्षणोंसे युक्त होय और उसमेंसे नीला, पीला, काला, आर्तव (रज) निकले उसको पित्तला कहते हैं। ८ जो योनि बहुत शीतल और सेमरके गोंदके समान चिकनी होय तथा उसमें खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते हैं। ९ जिस योनिमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलें उसको सन्निपातजा कहते हैं। १० जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बडे कष्टसे बालकको प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रस्रंसिनी कहते हैं। जिस योनिका अंग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होता है। ११ जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर वहे उसको लोहितक्षया कहते हैं। १२ जिस योनिका आर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वंध्या कहते हैं। १३ जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर वहे उसको वामिनी कहते हैं। १४ जो योनि आर्तवसे रहित रहती है उस स्त्रीके स्तन नहीं होते। और मैथुनके समय जिस योनिका खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षंढी कहते हैं। १५ बडे लिंगवाले पुरुषको तरुण स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उस स्त्रीके योनिके

११ सूचीमुखी १२ विप्लुता १३ पुत्रघ्नी १४ परिप्लुता १५ उपप्लुता १६ प्राक्चरणा १७महायोनि १८ कर्णिका १९नंदा और २०अतिचरणा ऐसे बीस प्रकारके योनिरोग हैं॥

योनिकंदरोग।

चतुर्विधं योनिकंदं वातपित्तकफैस्त्रिधा॥ १७८॥
चतुर्थं संनिपातेन–

अर्थ–योनिकंदरोग १ वातज २ पित्तज ३ कफज और ४ सन्निपातज ऐसे योनिकंदरोग चार प्रकारका है॥

गर्भके रोग।

तथाष्टौ गर्भजा गदाः॥
उपविष्टकगर्भः स्यात्तथा नागोदरः स्मृतः॥ १७९॥
मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टंभो गूढगर्भकः॥
जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः॥ १८०॥

बाहर दोनों तरफ अंडकोशके समान मांसकी दो गांठें उत्पन्न हों उस योनिको अंतर्मुखी कहते हैं।

१ जिस योनिका छिद्र सुईके अग्रभागके समान सूक्ष्म होता है उसको सूचीमुखी कहते हैं। २ जिसमें निरंतर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं। ३ जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहते हैं। ४ जिसके मैथुन करनेमें अत्यंत पीडा होय उसको परिप्लुता कहते हैं। ५ जिस योनिसे झागसे मिला आर्तव (रज) ऊपरके भागमें बडे कष्टसे उतरे उसको उपप्लुता कहते हैं। ६ जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते हैं। उसमें गर्भ धारण नहीं होता। ७ जिस योनिका मुख निरंतर फटा रहे उसको महायोनी वा विवृता कहते हैं। ८ जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकंद) होय उसको कर्णिका कहते हैं। ९ जो योनि अतिमैथुनसेभी संतोषको प्राप्त नहीं होवे उसको नंदा कहते हैं। १० जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं यह कफजनित रोग है। ११ दिनमें सोनेसे, अतिक्रोध, अतिशय परिश्रम, अत्यंत मैथुन करनेसे और योनिमें नख आदिसे क्षत पडनेसे, वातादिक दोष कुपित होनेसे योनिमें संतराके आकारका राधसे मिला ऐसा मांसका गोला होता है उसको योनिकंद कहते हैं। १२ वादीसे योनिकंद रूक्ष, विवर्ण और तना हुआ ऐसा होता है। १३ पित्तसे योनिकंद लाल, दाह और ज्वर इन करके युक्त होता है। १४ कफसे योनिकंद नीला और कंडूयुक्त होता है। १५ संनिपातज योनिकंद वात, पित्त, कफ इनके लक्षणोंसे युक्त होता है।

अर्थ-गर्भसंबंधी रोग आठ प्रकारके हैं । जैसे १ उपविष्टकगर्भ २ नागोदर ३ मक्कल्ल ४ मूढगर्भ ५ विष्टंभ ६ गूढगर्भ ७ जरायुदोष और ८ गर्भपात ऐसे आठ प्रकारके गर्भपात रोग हैं ॥

स्तनरोग ।

पंचैव स्तनरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८१ ॥ बालरोगेषु गदिताः–

---

१ स्त्रीका गर्भ रहनेके पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खानेसे देहमें गरमी बढती है उससे योनिके द्वारा रक्तस्राव होता है । रक्तस्राव होनेसे गर्भ बढता नहीं और पेटमें किंचित् हले उसको उपविष्ट गर्भ कहते हैं । २ शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भका आकार सर्पके सदृश कर दे उसको नागोदर कहते हैं । यह गर्भ निर्बल होकर पडता है अथवा पेटमेंही नष्ट हो जाता है । ३ माताके मानसिक तथा आगंतुक दुःखसे प्रसूत होनेके प्रथम वायु कुपित होकर कूखमें शूल उत्पन्न करके गर्भको मार दे । इसको गर्भमक्कल्ल कहते हैं । और प्रसूतिके अनंतर वायु कुपित होकर योनिसे रुधिर, जाल आदि जो गिरते हैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, बस्ति, मस्तक और कूखमें शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल्ल कहते हैं । यह योनिके संकोच और घोर ऊर्ध्व श्वासको उत्पन्न करके प्रसूत भई स्त्रीको मार देता है । ४ मूढ (कुंठित गति) वायु गर्भको मूढ (टेढा) कर देता है और योनि तथा पेटमें शूल उत्पन्न करे और मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकलना) करे, इसको मूढगर्भ कहते हैं । इस मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति होती है । विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमें आयकर अड जाता है, [१ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बंद कर देता है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनसे योनिके मार्गको रोक देय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे, ५ कोई दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोक दे, ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुँडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोक दे, ८ कोई गर्भ पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक देय] इस प्रकारसे मूढगर्भकी आठ गति जाननी । ५ जो स्त्री गर्भिणी होनेसे पश्चात् अकालमें भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भको वायु कुपित होकर सुखाय दे है । उस करके उस स्त्रीकी कूख बडी नहीं दीखती वह गर्भ वायुसे पीडित होकर उतनेका उतनाही रहे । बढे नहीं इसको विष्टंभगर्भ कहते हैं । ६ गर्भ रहकर बढे नहीं और कुछ कालसे पेटमेंही जीर्ण हो जाय उसको गूढगर्भ कहते हैं । ७ गर्भशय्यामें गर्भके वेष्टनके अर्थ जरायु (झिल्ली) रहती है उसके दोषसे जो गर्भको विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं । ८ अभिघात (चोट), विषमाशन (विषम भोजन), पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पका हुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिर जाता है इसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है, चौथे मासपर्यंत गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और पांचवें छठे महीने पर्यंत शरीर बनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं ।

अर्थ–स्तनरोग १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ सन्निपातजन्य और ५ क्षतजन्य ऐसे पांच हैं । स्त्रियोंके दूधसंबंधी रोग बालरोगप्रकरणमें कहे हैं ॥

स्त्रीदोष ।

स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः ॥ अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहित-स्तथा ॥ १८२ ॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु–

अर्थ–स्त्रियोंको दुःख उत्पन्न करनेवाले तीन दोष हैं । जैसे १ अदक्षपुरुषोत्पन्न २ सपत्नीविहित ३ दैविक इस प्रकार स्त्रियोंमें तीन दोष हैं ॥

प्रसूतिरोग ।

तथा च सूतिकागदाः ॥
ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥ १८३ ॥

अर्थ–बालक होनेके पश्चात् ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं उनको प्रसूतके रोग कहते हैं उन रोगोंका दोषानुसार बलाबल विचार चिकित्सा करनी ॥

बालरोग ।

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः ॥ वातात्पित्तात्कफा-

---

१ वातादिदोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे । २ वादीसे होनेवाले स्तनरोगमें शूल, तोद आदि पीडा होती है । ३ पित्तसे ज्वर, दाह आदिक होते हैं । ४ कफसे थोडी पीडा और खुजली होय । ५ संनिपातज स्तनरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं । ६ अभिघात (चोट) आदिके लगनेसे स्तनमें सूजन उत्पन्न होती है । उसमें व्रण पड जावे उसमें वातादिकोंके लक्षण होते हैं, उसको क्षतज स्तनरोग कहते हैं । ७ जो पुरुष स्त्रीके कामदेवकी शांति करनेमें समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय, तथा व्यवहारको न जाने ऐसा पति होनेसे जो संताप होता है, उस करके जो रोग होय उसको अदक्षपुरुषोत्पन्न स्त्रीरोग कहते हैं । ८ जिस स्त्रीके सपत्नी (सौत) होवे उसको अपने पतिकी प्रीति दूसरी स्त्रीके ऊपर होनेके दुःखसे जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते हैं । ९ अपने पतिका मरण होनेसे उसके साथ सती होनेकी इच्छा जो करे उसकी इच्छा निष्फल होनेसे शोकादिकनकरके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं । १० जिस स्त्रीके बालक प्रगट हो चुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे, कोपके करनेसे, अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरोग होता है । उसमें ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगमें उत्पन्न होनेवाले तंद्रा अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना आदि विकार, अशक्तता, मंदाग्नि ये होते हैं । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं इन सबमें एक रोग प्रधान होता है और बाकीके उपद्रव कहलाते हैं ।

श्चैव दंतोद्भेदश्चतुर्थकः ॥ १८४॥ दंतघातो दंतशब्दोऽकालदं-तोऽहिपूतनम् ॥ मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके॥१८५॥ पार्श्वारुणस्तालुकंठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः ॥ दौर्बल्यं गात्र-शोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वा-विंशतिः स्मृताः ॥ १८६ ॥

अर्थ–बालकोंके जो रोग होते हैं उनको बालरोग कहते हैं। वे रोग बाईस हैं। तिनमें स्त्रीके स्तनसंबंधी दूध दुष्ट होनेसे उत्पन्न होनेवाले १ वातजन्य[1] २ पित्तजन्य[2] और ३ कफजन्य[3] ऐसे तीन प्रकारके हैं। ४ दंतोद्भेद[4] ५ दंतघात[5] ६ दंतशब्द[6] ७ अकालदंत[7] ८ अहिपूतनरोग[8] ९ मुखपाक[9] १० मुखस्राव[10] ११ गुदपाक[11] १२ उपशीर्षक[12] १३ पार्श्वारुण[13]

---

१ जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं। उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे। २ जो बालक पित्त-दूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला हो जाय, कामलारोग होय, तथा पित्त-के औरभी रोग होंय (प्यासका लगना, सर्वांगमें दाह आदि अनेक रोग होंय) । ३ जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय (निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले)। ४ बालकोंके प्रथम दांत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खांसी, मस्तकमें पीडा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतोद्भेद कहते हैं। ५ सातवें वा आठवें वर्षमें बालकके दंत गिरते हैं उस समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतघात कहते हैं। ६ निद्रामें जो बालक दांतसे दांत घिसके बजाता है उसके दंतशब्द कहते हैं। ७ जिस बालकके दांत जिस कालमें गिरते हैं उसके प्रथमही गिरे, उसको अकालदंत कहते हैं। ८ बालकके मल-मूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनंतर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय। तदनंतर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उससे स्राव होय पीछे ये सब मिल्कर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे इसको अहिपूतन कहते हैं। यह रोग ग्रंथांतरमें क्षुद्र रोगोंमें कहा गया है परंतु यह रोग बालकोंके होता है अतएव इसको बाल-रोगोंमें कहा है। यह रोग माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है। ९ बालकका मुख पक जावे उसको मुखपाक कहते हैं। १० बालकके मुखमेंसे लार वहे उसको मुखस्राव कहते हैं। ११ बालककी गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं। १२ बालकके कपालमें व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है उसको उपशीर्षक कहते हैं। १३बालकके भीतर त्रिदोषसे महापद्म विसर्प रोग होता है वह दो प्रकारका १ शीर्षज २ बस्तिज, जो शंखभागसे लेकर हृदयतक बडे वेगसे दुःख देता है उसको शीर्षज कहते हैं, उसमें मुख और तालुए बाह्य प्रदेशमें लाल कमलके सदृश लाल होते हैं और हृदयसे गुदातक वेगसे दुःख देता है उसको बस्तिज कहते हैं। उसमें बस्ति और गुदा लाल कमलके समान लाल होय इसीको पार्श्वारुण कहते हैं।

१४ तालुकंठ १५ विच्छिन्न १६ पारिगर्भिक १७ दौर्बल्य १८ गात्रसोद १९ शय्यामूत्र २० कुकूणक २१ रोदन २२ अजगल्ली ऐसे सब बाईस रोग हैं॥

बालग्रह।

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः॥ १८७॥ स्कंदग्रहो विशाखः स्यात्स्वग्रहश्च पितृग्रहः॥ नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना॥१८८॥ मुखमंडनिका तद्वत्पूतना चांधपूतना॥ रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती॥ १८९॥

अर्थ–बालग्रहं बारह प्रकारके हैं। जैसे १ स्कंदग्रह

---

१ बालकके तालुएमें जो मांस होता है, उसमें कफ कुपित होनेसे तालु कांटेके समान खरदरा होवे उसको तालुकंटक कहते हैं। २ बालकके तालुएमें घाव पडनेसे उसको स्तनपान करनेमें कष्ट होवे, पतला मल निकले, प्यास बहुत लगे, नेत्र और कंठ इनमें विकार होवे, मन्यानाडी धरे नहीं, दूधकी रद्द कर दे, इसको विच्छिन्नरोग कहते हैं। ३ बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खांसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होंय और उसके पेटकी वृद्धि होय। इस रोगको पारिगर्भित अथवा परिभव ऐसे कहते हैं। इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देना चाहिये। ४ जिस दोष करके देह दुर्बल (बलरहित) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं। ५ जिस दोषसे बालकके अंग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष कहते हैं। ६ बालक वातादि दोषोंकरके शय्यामेंही मूत दे उसे ज्ञान नहीं रहे उसको शय्यामूत्र कहते हैं। ७ कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है। इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र खुजावें और पानी बहे। नेत्रोंमें कीचड आनेसे वह ललाट नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने न देखा जाय और उसके नेत्र खुलें नहीं। इसको लौकिकमें कोथस्राव कहते हैं। यह रोग बालकोंकेही होता है। ८ बालक थोडा वा बहुत रोने लगे तब युक्तिकरके रोगके अनुसारसे बडा अथवा छोटा रोग जानना इसको रोदन कहते हैं। ९ बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णसमान वर्णवाली, गांठसी बंधी, रुजा (पीडा) रहित, तथा मूंगके सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं। १० स्कंदादिक बारह ग्रहोंसे गृहीत बालकके ये सामान्य लक्षण होते हैं। जैसे कभी क्षणभरमें बालक विह्वल हो जाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जंभाई लेय, भौंहको तिर्छी करे, दांतोंसे होठोंको खाय और वारंवार मुखसे झाग डाले। वह अत्यंत क्षीण होय, रात्रिमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय और स्वर बैठ जाय। उसके देहमेंसे रुधिर मांसकी बास आवे, जितना पहिले खाता होय उतना नहीं खाय, ये सामान्यग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं। ११ बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव कहिये पसीना बहे, एक ओरका अंग फडके तथा थरथर कांपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा हो जाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे, वह बालक दांतोंको चबावे, अंग शिथिल हो जाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे, ये स्कंदग्रह लगे बालकके लक्षण हैं।

२ विशाखग्रह ३ स्वग्रह ४ पितृग्रह ५ नैगमेय ६ शकुनि ७ शीतपूतना ८ मुखमंडनिका ९ पूतना १० अंधपूतना ११ रेवती १२ शुष्करेवती ऐसे बारह बालग्रह जानने ॥

अनुक्तरोगोंका संग्रह ।

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये ॥
द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः ॥ १९० ॥
द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः संनिपातादिकाश्च ये ॥
तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित् ॥ १९१ ॥

अर्थ—वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, षाक तथा फूटन इत्यादि पैरोंके रोग किसीआचार्यने ब्यालीस प्रकारके कहे हैं। उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकारके वातादिदोषोंके भेद कहे हैं वो ऋषियोंने कहींभी पृथक् नहीं कहे किंतु उनकी गणना अनुक्रमसे पादरोगोंमें तथा वातव्याधिमेंही की है ॥

पंचकर्मोंके मिथ्यादियोगसे होनेवाले रोग ।

हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पंचदशोदिताः ॥
पंचकर्म भवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः ॥ १९२ ॥

---

१ विशाख ग्रहकरके पीडित बालकके ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टि आदिक लक्षण होते हैं। २ बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होस हो तब रोवे, उसके देहमें राधसे मिले रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणोंकरके स्वग्रहगृहीत बालक जानना। इस स्वग्रहको स्कंदापस्मारभी कहते हैं। ३ पितृग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं। ४ वमन, कंप, कंठ, मुखका सूखना, मूर्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेय ग्रहकी बाधा जाननी। ५ शकुनि ग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होंय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान वास आवे, घाव हो उसमेंसे लस बहे, सब अंगोंमें फोडा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय। ६ शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होय। ७ मुखमंडनिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुंदर होय और देहकी कांति सुंदर होय, शिरासे बंधा देह हो जाय उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे। यह बालक बहुत भक्षण करे। ८ पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल हो जाय ये लक्षण होते हैं। ९ अंधपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंध, बहुत रोना, दूध पीवे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं। १० रेवती ग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडा होय उनमेंसे रुधिर वहे उसमें कीचकीसी वास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय। ११ शुष्करेवती ग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तकमें पीडा, मुख और हृदय इनका शोष ये लक्षण होते हैं।

अर्थ–१ वमन २ विरेचन ३ निरूहणबस्ती ४ अनुवासनबस्ती और ५ नस्य ये पांच कर्म उत्तर खंडमें कहे हैं। इन पांच कर्मोंमें जिसका हीनयोग मिथ्यायोग किंवा अतियोग होवे तो वे कर्म इन तीन कारणोंसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ऐसे पांचोंके मिलानेसे पंदरह होते हैं उनका अंतर्भाव उक्त रोगोंमेंही जानना॥

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग।

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गंडूषोऽजनतर्पणे॥
अष्टादशैतज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः॥ १९३॥

अर्थ– १ स्नेहपान २ स्वेदविधि ३ धूमपान ४ गंडूष ५ अंजन ६ तर्पण इन छःमेंसे प्रत्येकके हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेदकरके अठारह भेद होते हैं और उनसे जो होनेवाले रोग होते हैं वेभी सब उक्त रोगोंमें संगृहीत किये गये हैं॥

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग।

शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोपतापकः॥
शल्योपद्रव एकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा॥ १९४॥

अर्थ–अत्यंत सरदीके योगकरके मनुष्यको ठंडकका उपद्रव होवे वह १ अत्यंत गरमीसे मनुष्यके उष्णताका उपद्रव होवे वह २ शल्य कहिये नख, केश, कांटा, खोवरा, हाड, सींग इत्यादिक पदार्थ एक साथ पेटमें जानेसे जो रोग होवे उसको शल्य कहते हैं वह और ३ तीक्ष्णक्षारादिकसे पेटमें अथवा बाह्यस्पर्श करके जो उपद्रव होवे वह इस प्रकार ४ प्रकारके उपद्रव वैद्यको जानने चाहिये॥

---

१ औषधादिकोंकरके रद्द करानेके प्रयोगको वमन कहते हैं। २ औषधादिकोंकरके दस्त करानेके प्रयोगको विरेचन कहते हैं। ३ स्नेहादि औषधसे गुदामें पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणबास्ति कहते हैं। ४ अनुवासनबस्तिभी निरूहण बस्तिके सदृशही होती है। ५ नाकमें औषध डारनेके प्रयोगको नस्य कहते हैं। ६ कहे हुए प्रमाणसे कम प्रमाणका उपयोग करनेको हीनयोग कहते हैं। ७ प्रमाणसे रहित उपयोग करनेको मिथ्यायोग कहते हैं। ८ अधिक प्रमाणसे उपयोग करनेको अतियोग कहते हैं। ९ स्नेहपान तैल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं। १० अंगको पसीना लानेके प्रयोगको स्वेदविधि कहते हैं। ११ गुडगुडी हुक्का आदिमें औषध डारके पीनेके प्रयोगको धूमपान कहते हैं। १२ कषाय और रसादिकोंसे कुरला करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं। १३ नेत्रमें औषध डारनेके प्रयोगको अंजनविधि कहते हैं। १४ औषधादि करके धातुओंकी वृद्धि करनेके विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण कहते हैं, अथवा नेत्रकी तृप्ति करनेके प्रयोगको तर्पण कहते हैं।

विषरोग ।

स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम् ॥ तेषां च कालकूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम् ॥ १९५ ॥ जंगमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजंगमाः ॥ वृश्चिका मूषकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः ॥१९६ ॥ दंष्ट्राविषनखाविषवालशृंगास्थिभिस्तथा ॥ मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा ॥ १९७ ॥ लालायाः स्पर्शतस्तद्वत्तथा शंकाविषं मतम् ॥ कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः ॥ १९८ ॥

अर्थ–स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकारके विष हैं उनमें स्थावर विष कालकूट वच्छनागादि विषोंके भेदकरके नौ प्रकारके हैं। जंगम विष बहुत प्रकारके हैं, जैसे लूता, सर्प, विच्छू, मूंसा, कीडा, इनके वात, पित्त, कफ और संनिपात भेदसे एक एकके चार २ भेद हैं। जिन ठिकानोंपर विष है उनका ठिकाना जातिभेदसे पृथक् २ है। जैसे–डाढ, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, मल, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श इत्यादि। मनमें विषकी शंका आकर उसे वायु कुपित हो संपूर्ण देहको सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवे उसको शंकाविष कहते हैं। यह और दूषीविष (पदार्थके संयोगसे प्रगट) इस भेद करके कृत्रिम विष दो प्रकारका है। दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीरमें जीर्ण होकर छिपकर रहे। तथा विषका अल्पवीर्य हो इसीसे प्राणनाश नहीं करे परंतु ज्वरादिक उपद्रव करे। तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इनकरके दूषित होनेसे रसादि सप्त धातुओंको दूषित करते हैं। इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं इस प्रकार कृत्रिम विष दो प्रकारके जानने ॥

विषके भेद ।

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ॥
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९९ ॥

अर्थ–सुवर्णादिक सप्तधातुओंकी शुद्धिके विना की हुई भस्म भक्षण करनेसे तथा हरितालादिक सात उपधातुओंकी अशुद्धभस्म, आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करनेसे ये विषके समान पीडा करते हैं अतएव इनको विष संज्ञा है ॥

अन्यविषके भेद ।

दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ॥

अर्थ–जिस पानीमें कीचड, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक जंतुके मल, मूत्र तथा

मछली और मेंडक मर गये हों तो इन कारणोंसे पानी खराब हो जावे उस पानीको दुष्ट नीर कहते हैं। उसमें स्नान करने अथवा पीवे तो उससे विषके समान पीडा उत्पन्न होवे। शस्त्रादिकमें विषका लेपकर प्रहार करनेसे उससे घाव हो जावे और वह जल्दी अच्छा नहीं हो एवं विषके समान ज्वरादिक उपद्रव हो उसको विषदग्ध शस्त्रज जानना ॥

उपद्रव।

कपिकच्छुभवा कंडूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥
तथा सूरणकंडूश्च शोथो भल्लातजस्तथा ॥ २०० ॥

अर्थ—कौंछ (किवाछ) की फलीके रुआं लगनेसे दुष्टजल और जमीकंद (सूरण) इन तीनोंका देहमें स्पर्श होनेसे अंगमें अत्यंत खुजली चलती है तथा देहमें दाह होता है। एवं भिलाएके तेलका स्पर्श होनेसे अंगमें सूजन होय और खुजली चले इस प्रकार चार चार प्रकारके उपद्रव जानना ॥

आगंतुकभेद।

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभंगाक्षकोद्रवैः ॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ॥२०१॥

अर्थ—सुपारी, भांग, बहेडेके फलकी भीतरकी मिंगी, कोदों धान्य ये चार पदार्थ भक्षण करनेसे इनसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं सो मदात्यय रोगमें कहा है उसे जानना। और औषधी, वनस्पति इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारोंके भक्षण करनेसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं ॥

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ॥
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः ॥२०२॥

इति श्रीदामोदरतनूजेन शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां प्रथमखण्डे रोगगण नानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ—ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्यने कही है इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकारकी वनस्पति, औषधि और जीवादिकसे उपद्रव होते हैं वे उपद्रव असंख्य (बेशुमार) हैं उनकी संख्या नहीं होती। वह अनुमानकरके जाननी ॥

इति श्रीमन्माथुरकुलकमलमार्त्तंडपाठकज्ञातीयश्रीकृष्णलालशिशुना दत्तरामेण रचितायां शार्ङ्गधरभाषाटीकायां सप्तमाध्यायः परिपूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

इति प्रथमखण्ड संपूर्ण।

अथ

शार्ङ्गधरसंहितायां

द्वितीयखण्डम् ।

पांच काढे ।

अथातः स्वरसः कल्कः क्राथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ—१ स्वरस २ कल्क ३ क्राथ ४ हिम ५ फांट इन पांचोंको कषाय कहते हैं यह एककी अपेक्षा दूसरा हलका है । जैसे स्वरसकी अपेक्षा कल्क हलका है । कल्ककी अपेक्षा क्राथ हलकी है । क्राथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फांट हलका है। रोगगणनाके पश्चात् कषायादिकोंका कथन ठीक है अतएव (अथातः) ऐसा श्लोकमें पद कहा है ॥

स्वरस ।

आहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः ॥
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ—कीडा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगडी न हों ऐसी वनस्पतिको लायके उसको उसी समय कूट कपडेमें डालके निचोड लेवे । उस निचुडे हुए रसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं ॥

स्वरसकी दूसरी विधि ।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ॥
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥

अर्थ—एक कुडव सूखी औषधका चूर्ण करे। फिर उस औषधसे दूना जल किसी घडे आदि पात्रमें भरके उस औषधको भिगो देवे । इस प्रकार एक दिन और एक रात्र भीगने दे । फिर दूसरे दिन औषधोंको मसलकर उस पानीको कपडेसे छान लेवे इसकोभी स्वरस कहते हैं ॥

---

१ वनस्पति आदिके अवयवके रसको अंगरस अथवा स्वरस कहते हैं । २ तोलेके विषयमें मागध परिभाषाके मतानुसार व्यवहारिक १६ तोले होते हैं ।

स्वरसकी तीसरी विधि।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ॥जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥४॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् ॥ निःशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–यदि गीली वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पतिको लाकर उसमें आठगुना पानी डालके काढा करे। जब जलते २ चौथा हिस्सा जल रहे तब उतारके पानी छान ले। यह स्वरसका तीसरा प्रकार है। स्वरस भारी है अत एव दो तोले सेवन करे और जिस औषधिको रात्रिमें भिगोयके प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोलेके प्रमाण सेवन करे। औषध भक्षणमें कलिंग परिभाषाका मान लेना चाहिये ॥

स्वरसमें औषध डालनेका प्रमाण।

मधुश्वेतागुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा ॥
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–सहत, खांड, गुड, जवाखार, जीरा, सेंधा निमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरसमें डालने हों तो १ कोल डाले ॥

अमृतादि स्वरस प्रमेहपर।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥
हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह दूर होवें अथवा आमलेके स्वरसमें हलदीका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवें ॥

वासकादि स्वरस रक्तपित्तादिकोंपर।

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ॥ ज्वरकासक्षयहरः कामला श्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥ त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो दार्वीरसोऽथ वा ॥ निंबस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति कामलाम् ॥९॥

अर्थ–अडूसेके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी और क्षयरोगको दूर करे। एवं त्रिफला, दारुहलदी, नीमकी छाल और गिलोय इनमेंसे किसी एकके स्वरसमें सहत मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे ॥

---

१ दो तोले भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान है। उस मानसे तोलेके व्यवहारिक मासे आठ होते हैं। यह मान रोगीका बलाबल देखके देना चाहिये यह तात्पर्य है। २ अडूसेका स्वरस अर्धपल और सहत दो टंकप्रमाण मिलायके सेवन करे तो रक्तपित्तका नाश होवे।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इनका स्वरस विषमज्वरपर ।

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ॥
द्रोणपुष्पीरसोप्येवं निहंति विषमज्वरान् ॥ १० ॥

अर्थ–तुलसीके पत्तोंका स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी (गोमा रूखडी) के पत्तोंका स्वरस इन दोनोंमेंसे किसी एकको ले उसमें काली मिरचका चूरा डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होवे ॥

जम्ब्वादि स्वरस रक्तातिसारपर ।

जंब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत् ॥
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ११ ॥

अर्थ–जामुन, आम, आमले इनके पत्तोंका स्वरस निकाल सहत, घी और दूध मिलायके पीवे तो घोर रक्तातिसारको दूर करे ॥

स्थूल बब्बुल्यादिस्वरस सब अतिसारोंपर ।

स्थूलबब्बूलिकापत्ररसः पानाद्व्यपोहति ॥
सर्वातिसाराञ्छ्योनाककुटजत्वग्रसोऽथ वा ॥ १२ ॥

अर्थ–कांटेरहित बडे बबूलके पत्तोंका स्वरस पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर होवें अथवा टेंटूकी छालका स्वरस अथवा कूडेकी छालका स्वरस इनमेंसे किसी एकको पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों ॥

अद्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर ।

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत् ॥
श्वासकासारुचीर्हंति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥ १३ ॥

अर्थ–अदरखके रसमें सहत मिलायके पीवे तो अंडकोशोंकी वादीको दूर करे तथा श्वास, खांसी, अरुचि और सरेकमाको दूर करे ॥

बिजोरेका स्वरस पार्श्वादि शूलोंपर ।

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् ॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १४ ॥

---

१ द्रोणपुष्प एक जातकी रूखडी है । इसका वृक्ष हाथ डेढ हाथसे अधिक ऊंचा नहीं होता और इसकी ठंडीमें फूलके गुच्छसे २ होते हैं । मध्यदेश (दिल्ली, आगरा, मथुरा) के प्रान्तोंमें इसको गूमा कहते हैं ।

अर्थ-बिजोरेके फलका अथवा जडका स्वरस, सहत और जवाखार मिलायके पीवे तो कुक्षिशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल तथा दारुण ऐसा कोठेका वायु इन सबको दूर करे ॥

शतावरका स्वरस पित्तशूलपर तथा घीगुवारका स्वरस तिल्लीपर।

शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः ॥
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः ॥ १५ ॥

अर्थ-सतावरीके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीगुवारेका रस हलदी मिलायके पीवे तो प्लीहा (तिल्ली) का रोग जौर गंडमालाका भेद जो अपची है उसको दूर करे ॥

अलंबुषादिरस गंडमालापर।

अलंबुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ॥
अपचीगंडमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

अर्थ-गोरखमुंडीका स्वरस दो पेल पीवे तो अपचीरोग, गंडमाला और कामला रोग दूर होवे ॥

शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर।

रसो मुंडयाः सकोष्णो वा मरिचैरवधूलितः ॥
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

अर्थ-गोरखमुंडीके स्वरसको कुछ थोडा गरम कर काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त्त[३] और अर्धावभेदक (आधासीसी) इनको दूर करे ॥

ब्राह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर।

ब्राह्मीकूष्मांडषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसाः पृथक् ॥
मधुकुष्ठयुतः पीतः सर्वोन्मादापहारकः ॥ १८ ॥

अर्थ-ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहूली इनके स्वरस पृथक् २ निकालके किसी एकको सहत और कूडेका चूर्ण मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्मादके रोग दूर होवें ॥

---

१ पेटमें बांई तरफ रोग होता है उसको कोई कोई फीहा और कोई प्लीह तिल्ली कहते हैं। २ भक्षण विषयमें कलिंगपरिभाषाके मानानुसार दो पलके व्यवहारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं। ३ सूर्यावर्त्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तकमें दर्द बढे और जैसे २ अस्त होय तैसे २ पीडाशांति होवे उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं। ४ ब्राह्मी रूखडी गंगायमुनाके किनारे बहुत होती है। इसकी दो जाति हैं एक ब्राह्मी और दूसरी मंडूकपर्णी। यह प्रसर जातिकी रूखडी है। ५ संखाहूलीको शंखपुष्पीभी कहते हैं। इसमें सपेद रंगके परम सुंदर पुष्प होते हैं। यह प्रसरजातिकी रूखडी है।

कूष्मांडकरस मदरोगपर ।

कूष्मांडकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः ॥
दुष्टकोद्रवसंजातं मदं पानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

अर्थ–पेठेके रसमें गुड मिलायके सेवन करें तो दुष्ट कोदों धान्यसे उत्पन्न मदको दूर करे॥

गांगेरुकीस्वरस व्रणरोगपर ।

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालपूरितो व्रणः ॥
गांगेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥ २० ॥

अर्थ–तलवार आदि शस्त्रका घाव देहमें होनेसे उसी समय उस घावमें गांगेरु-कीकी जडके स्वरसको भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे ॥

पुटपाक कहनेका कारण ।

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ॥
अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ २१ ॥

अर्थ–पुटपाक और कल्क इन दोनोंकाही स्वरस लिया जाता है अतएव पुटपा-ककी युक्ति कहते हैं ॥

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपं च द्व्यंगुलं स्थूलं कुर्याद्वांगुष्ठमात्रकम् ॥ २२ ॥ काश्मरीवटजंब्वाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ॥ पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसवद् बुधैः ॥ २३ ॥

अर्थ–गीली वनस्पतिको कूट पीस गोला बनावे उसको कंभारी, वड अथवा जामुनके पत्तोंसे लपेट उसपर दो अंगुल मोटा अथवा अंगुष्ठ प्रमाण मिट्टीका लेप करे । फिर उस गोलेके नीचे उपले चुनके उसके बीचमें उस गोलेको रखके आंच जलावे । जब गोलेकी मिट्टी लाल हो जावे तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते ऊपरके दूर कर उसका रस निचोड लेवे यदि वह वनस्पति कठोर होवे तो उसके पानीमें अथवा जो द्रव द्रव्य कहे हैं उनमें पीसके इसी प्रकार गोले आदिकी कृति करके रस काढ लेना चाहिये इसके लेनेकी मात्रा एक पलकी जाननी । यदि उस रसमें सहत डालना होवे तो अर्द्ध पल डाले कल्क चूर्ण दूध आदि शब्दसे जो द्रवद्रव्योंका मान जैसा स्वरसमें डालना लिखा है उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये ॥

---

१ गांगेरुकीको भाषामें गंगेर कहते हैं यह क्षुप जातिकी औषधि है । इसके गुण दोष बलाचक्षुमें लिखे हैं ।

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर ।

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तंडुलवारिणा ॥ २४ ॥ पिष्टां चतुःपल-
मितां जंबूपल्लववेष्टिताम् ॥ सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टि-
ताम् ॥ २५ ॥ लिप्तां च घनपंकेन गोमयैर्वह्निना दहेत् ॥
अंगारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ॥ २६ ॥ ततो रसं
गृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरा-
न्सुचिरोत्थितान् ॥ २७ ॥

अर्थ–तत्कालकी लाई कूडेकी छाल ४ पल ले । उसको उसी समय चांवलोंके धोवनके जलमें पीसके गोला बनावे । फिर उसको जामुनके पत्तोंसे लपेट सूतसे बांध देवे । उसके ऊपर गेहूंके चूनको सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढी २ मिट्टीका लेप करे । फिर उसको आरने उपलोंमें रखके फूंक देवे । जब गोलेकी मिट्टी आगके वेगसे लाल हो जावे तब निकाल ले । उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूर कर किसी स्वच्छ कपडे आदिमें दबायके रस निचोड लेवे । जब यह रस शीतल हो जावे तब सहत मिलायके पीवे तो बहुत कालका दुर्घट अतिसार रोग दूर होवे ॥

चावलोंके धोनेकी विधि ।

कंडितं तंडुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् ॥
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ २८ ॥

अर्थ–एक पल बीने और फटके हुए चांवलोंमें आठ गुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथोंसे मसलके चांवलोंको धोवे फिर यह चांवलोंका धुला हुआ पानी सब कार्यमें लेना चाहिये ॥

अरलुपुटपाक ।

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः ॥
मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

अर्थ–टेंटूकी गीली छालको लायके उसी समय कूटके गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाककी कही है उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे । फिर रस निकाल उसमें सहत और मोचरसका चूर्ण डालके पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हों ॥

न्यग्रोधादि पुटपाक ।

न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद्गौरतित्तिरेः ॥
निरंत्रमुदरं सम्यक् पुटपाकेन तत्पचेत् ॥
तत्कल्कः स्वरसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत् ॥ ३० ॥

अर्थ– १ वड, २ गूलर, ३ पापरी[१], ४ जलवेत[२], ५ पीपर इनकी छालका चूर्ण करके पानीसे पीस कल्क करके उसको सपेद तीतरके[३] पेटमें भरके पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे उसका पुटपाक कर लेवे । फिर अग्निसे निकाल पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर, उस तीतर पक्षीके पेटसे कल्कको निकालके रस निचोड उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब अतिसार नष्ट होवें ॥

दाडिमादि पुटपाक ।

पुटपाकेन विपचेत्सुपक्कं दाडिमीफलम् ॥
तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः ॥३१॥

अर्थ–पके हुए अनारको पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । फिर रक्तवर्ण होनेपर अग्निसे निकाल पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस अनारको निकाल दाबकर रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार रोग दूर होवें ॥

बीजपूरादि पुटपाक ।

बीजपूराम्रजंबूनां पल्लवानि जटाः पृथक् ॥ ३२ ॥
विपचेत्पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः ॥
छर्दिं निवारयेद्व घोरां सर्वदोषसमुद्भवाम् ॥ ३३ ॥

अर्थ–बिजोरा, आम और जामन इनके गीले पत्ते और जड लायके उसी समय कूट पीस गोला बनाय पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देवे । फिर उस गोलेको बाहर निकाल दाबके रस निकाल लेवे । उस रसमें सहत मिलायके पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओकारीका रोग दूर हो ॥

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ॥
मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥

अर्थ–अडूसेके गीले पत्तोंको उसी समय कूट गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त विधि-

---

१ पापरी यह एक जातिका बडा भारी वृक्ष होता है । इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको दादपर घिसनेसे दादको दूर करे हैं । २ जलवेतस जलमें होनेवाले बेतको कहते हैं । ३ उस तीतरके पेटकी आंतडी आदि निकाल कर साफ कर डाले फिर कल्कको भरे ।

से अग्नि देकर उसमेंसे रस निकाल लेवे। उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवे ॥

कंटकारिपुटपाक।

पचेत्क्षुद्रां सपंचांगां पुटपाकेन तद्रसः ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः॥ ३५ ॥

अर्थ-छोटी कटेरीके संपूर्ण वृक्षको फलसहित लाकर उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पुटपाककी विधिसे पकाय रस निकाल उस रसमें पीपलका चूर्ण मिलाय पीवे तो श्वास, खांसी और कफ ये दूर हों ॥

बिभीतकपुटपाक।

बिभीतकफलं किंचिद् घृतेनाभ्यज्य लेपयेत् ॥
गोधूमपिष्टेनांगारैर्विपचेत्पुटपाकवत् ॥ ३६ ॥
ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत् ॥
कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभंगाञ्जयेत्ततः ॥ ३७ ॥

अर्थ-बहेडके फलमें घी चुपडके उसपर गेहूंके चूनका लेपकर पुटपाककी विधिसे अंगारोंपर भूने। फिर उसके टुकडे करके मुखमें रक्खे तो श्वास[1], कास[2], खांसी, सरेकमा और स्वरभंग इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करे ॥

शुंठीपुटपाक आमातिसारपर।

चूर्णं किंचिद् घृताभ्यक्तं शुंठ्या एरंडजैर्दलैः॥ वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मंदवह्निना ॥ ३८ ॥ तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम् ॥ तेन यांति शमं पीडा आमातीसारसंभवाः॥३९॥

अर्थ-सोंठके चूर्णमें थोडा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडीके[3] पत्तोंसे लपेट उस गोलेको सूतसे लपेट ऊपर मिट्टीका लेप करे। फिर उसको पुटपाककी विधिसे पक्व करे। पीछे उस गोलेको आगसे निकाल उस सोंठके चूर्णको खांडके साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसारसे उत्पन्न हुई जो पीडा सो सब दूर होवे ॥

दूसरा शुंठीपुटपाक आमवातपर।

शुंठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरंडमूलजैः॥विपचेत्पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः॥आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥४०॥

---

१ मनुष्यके दम चढनेको अर्थात् दमेके रोगको श्वास रोग कहते हैं। २गीली अथवा नीली खांसीको कास कहते हैं। ३ अंडके कहनेसे सूरती अंड लेना उसके अभावमें दूसरा लेना।

अर्थ–अंडकी जडके रसमें सोंठके चूर्णको सानके गोला बनावे । उसको पुटपाककी विधिसे पकायके रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो आमवायुसे होनेवाली घोर पीडा दूर होवे ॥

सूरणपुटपाक बवासीरपर ।

सौरणं कंदमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ॥
सतैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ॥४१॥

अर्थ–सूरन (जमींकंद) को कूटके गोला बनावे फिर पुटकी विधिसे पक करके रस निचोड लेवे । उसमें तिलका तेल और सेंधा नमक डालके पीवे तो बवासीरका विकार दूर होवे ॥

मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर ।

शरावसंपुटे दग्धं शृंगं हरिणजं पिबेत् ॥
गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखंडे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–मिट्टीके शरावेमें हिरणके सींगके टुकडे रखके उसको दूसरे शरावेसे ढककर उपलोंमें रखके फूंक देवे । फिर इस भस्मको गौके घीमें मिलायके चाटे तो हृदयका शूल दूर होवे ॥

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

काढे करनेकी विधि ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ १ ॥ तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ॥ शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥ आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मितम् ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत्क्वाथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥

अर्थ–एक पल औषधको जौकूट कर १६ पल पानीमें डालके हलकी अग्निसे औटावे । जब दो पल पानी शेष रहे तब उतारके छान ले इसको कुछ २ गरम २

पीवे तथा रोगीको भले प्रकार अन्नपचन होनेके पश्चात् वृद्ध वैद्यको विचार करके काढा देना चाहिये। १ शृत २ क्वाथ ३ कषाय और ४ निर्यूह ये काढेके पर्याय-वाचक नाम हैं॥

काढेमें खांड और सहत डालनेका प्रमाण।

क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः॥
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम्॥ ४॥

अर्थ–काढेमें खांड डालनी होवे सो वातरोगमें काढेकी चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवां हिस्सा और कफरोग होवे तो काढेका सोलहवां भाग डाले। तथा सहत पित्तरोग होय तो काढेका सौलहवां हिस्सा, वातरोग होय तो आठवां हिस्सा और कफरोग होवे तो चतुर्थांश सहत डाले॥

काढेमें जीरा आदि करडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण।

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु॥
हिंगु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्॥ ५॥
क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्रवं तथा॥
कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसंमितम्॥ ६॥

अर्थ–जीरा, गूगल, जवाखार, सैंधा नमक, शिलाजीत, हींग, त्रिकुटा ये पदार्थ काढेमें डालने हों तो शाणप्रमाण डाले और दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक कर्ष (तोले २) डाले॥

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध।

अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्॥
तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः॥ ७॥

अर्थ–काढा होते समय उस पात्रको ढके नहीं क्योंकि काढेके पात्रको ढकनेसे काढा भारी हो जाता है। इस कारण काढा करते समय उसके मुखपर ढकना न देय यह नियम सर्वत्र है॥

गुडूच्यादि काढा सर्व ज्वरपर।

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः॥
गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः॥
दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत्॥ ८॥

अर्थ–१ गिलोय २ धनिया ३ नीमकी छाल ४ पद्माख और ५ रक्तचंदन इन

पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो जठराग्निको दीपन करके सर्व ज्वरोंको दूर करे । उसी प्रकार दाह, वमन और अरुचि इन सब रोगोंको दूर करे । इसे गुडूच्यादि काथ कहते हैं ॥

नागरादि वा शुंठ्यादिकाढा सर्वज्वरपर ।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥ ९ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ देवदारु ३ धानिया ४ कटेरी और ५ बडी कटेरी (भटकटैया) इन पांच औषधोंको छदाम २ भर ले काढा कर प्रथम ज्वरके पचानेको यह पाचन काढा देवे तो ज्वर दूर हो ॥

क्षुद्रादि काथ ।

क्षुद्रा किराततिक्तं च शुंठी छिन्नानपौष्करम् ॥
कषाय एषां शमयेत्पीतश्चाष्टविधं ज्वरम् ॥ १० ॥

अर्थ–१ कटेरी २ चिरायता ३ कुटकी ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अंडकी जड इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर दूर हों ॥

गुडूच्यादि काथ ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥
दद्याद्वातज्वरे पूर्णे लिंगे सप्तमवासरे ॥ ११ ॥

अर्थ–१ गिलोय २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका काढा वातज्वर पूर्णलिंग होनेपर सातवें दिनके पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे ॥

शालपर्ण्यादि काढा वातज्वरपर ।

शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा ॥
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ १२ ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ खरेंटी ३ रास्ना ४ गिलोय और ५ सरिवन इन पांच औषधोंका काढा थोडा गरम २ पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय ॥

काश्मर्यादि क्वाथ वातज्वरपर ।

काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥ १३ ॥

अर्थ–१ कंभारी २ सरवन ३ रास्ना ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पांच औषधोंका काढा कर गुड मिलायके पीवे तो वातज्वर दूर हो ॥

कट्फलादि पाचन पित्तज्वरपर।

कट्फलेंद्रयवांबष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम्॥
पाचनं दशमेह्नि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम्॥ १४॥

अर्थ-१ कायफल २ इन्द्रजो ३ पाढ ४ कुटकी और ५ नागरमोथा इन पांच औषधोंका काढा तीव्र पित्तज्वरके दश दिन जानेपर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे॥

पर्पटादि काढा पित्तज्वरपर।

पर्पटो वासकस्तिक्ता किरातो धन्वयासकः॥ १५॥
पियंगुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः॥
पिपासादाहपित्तास्रयुतं पित्तज्वरं जयेत्॥ १६॥

अर्थ-१ पित्तपापडा २ अडूसा ३ कुटकी ४ चिरायता ५ धमासा और फूलप्रियंगु इनका काढा करके खांड मिलायके पीवे तो प्यास, दाह और रक्तपित्त इन करके युक्त पित्तज्वर दूर होवे॥

द्राक्षादि काढा पित्तज्वरपर।

द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुका कृतमालकः॥
पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः॥
तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्शमनो भेदनः स्मृतः॥ १७॥

अर्थ-१ दाख, २ छोटी हरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किवारेका गूदा और ६ पित्तपापडा इन छः औषधोंका काढा पित्तज्वरको दूर करे, तथा तृषा मूर्छा दाह रक्तपित्त इनको शांत करे एवं भेदक (बंधे हुए मलको तोरनेवाला) है॥

बीजपूरादि पाचन कफज्वरपर।

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम्॥
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे॥ १८॥

अर्थ-१ बिजोरेकी जड २ छोटी हरड ३ सोंठ और ४ पीपरामूल इन चार औषधोंका काढा करके उसमें जवाखार मिलाय बारह दिनके पश्चात् कफज्वरपर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय॥

भूनिंबादि क्वाथ कफज्वरपर।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यः शठी शुंठी शतावरी॥
गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात्कफज्वरम्॥ १९॥

अर्थ-१ चिरायता २ नीमकी छाल ३ पीपर ४ कचूर ५ सोंठ ६ सतावर ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधोंका काढा करके पीवे तो कफज्वरको दूर करे॥

पटोलादिकाढा कफज्वरपर ।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ॥ २० ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ कचूर ७ अडूसा और ८ गिलोय इन आठ औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो कफज्वरको नष्ट करे॥

पर्पटादिकाढा वातापित्तज्वरपर ।

पर्पटाब्जामृताविश्वकिरातैः साधितं जलम् ॥
पंचभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ॥ २१ ॥

अर्थ-१ पित्तपापडा २ नागरमोथा ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातपित्तज्वर दूर होवे ॥

लघुक्षुद्रादिकाढा वातकफज्वरपर ।

क्षुद्राशुंठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे ॥
कासश्वासारुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

अर्थ-१ कटेरी २ सोंठ ३ गिलोय और ४ अंडकी जड इन चार औषधोंका काढा पीनेसे जिस ज्वरमें कफवायु प्रबल हों उसको हरे और खांसीको दूर करे। एवं श्वास, खांसी, अरुचि, पीठका शूल इन उपद्रवोंकरके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे ॥

आरग्वधादिकाढा वातकफज्वरपर ।

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः ॥
क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥
आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः ॥ २४ ॥

अर्थ-१ अमलतासका गूदा २ पीपरामूल ३ नागरमोथा ४ कुटकी और ५ जंगी हरड इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातकफज्वर और आमका शूल तत्काल नष्ट होय तथा मल उत्तम होकर दीपन पाचन करे ॥

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः ॥ पटोलचंदनाभ्यां च

पिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ २५ ॥ अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्व-
रापहम् ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥ २६ ॥

अर्थ-१ गिलोय २ नीमकी छाल ३ कुटकी ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजो ६ सोंठ ७ पटोलपत्र और ८ लालचंदन इन आठ औषधोंका काढा करके पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो पित्तकफज्वर दूर होवे तथा वमन अरुचि हल्लास दाह और प्यासको नष्ट करे ॥

पटोलादिकाढा पित्तकफज्वरपर।

पटोलं चंदनं मूर्वा तिक्ता पाठामृतागणः ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥ २७ ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र २ रक्तचंदन ३ मूर्वा ४ कुटकी ५ पाढ और ६ गिलोय इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर वमन दाह खुजली और विषबाधा इनको दूर करे ॥

कंटकार्यादि पाचन सर्वज्वरपर।

कंटकारीद्वयं शुंठी धान्यकं सुरदारु च ॥
एभिः शृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २८ ॥

अर्थ-१ कटेरी २ छोटी कटेरी ३ सोंठ ४ धनिया और ५ देवदारु इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर हों इसको पाचन कहते हैं ॥

दशमूलादिकाढा वातकफज्वरादिपर।

शालिपर्णीपृष्ठपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ २९ ॥ बिल्वाग्निमंथ-
स्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः॥ दशमूलमिति ख्यातं कथितं त-
ज्जलं पिबेत् ॥ ३० ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वराप-
हम् ॥ सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥ शोषशै-
त्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् ॥ हृत्कंपग्रहपार्श्वार्तितंद्राम-
स्तकशूलहृत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ पिठवन ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी ५ गोखरू ६ बेलगिरी ७ अरनी ८ टेंटू ९ कंभारी और १० पाढल इन दश मूलका काढा पिप्पलीका चूर्ण डालके पीवे तो वातकफज्वर, संनिपातज्वर, प्रसूतका रोग, शोष[१], सरदीका लगना, भ्रम, पसीने, खांसी और श्वास इन रोगोंको दूर करे ॥

---

१ शोषशैत्य, इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है तहां हाथ' पैरमें सरदी होना ऐसा अर्थ जानना चाहिये।

अभयादिकाढा त्रिदोषज्वरपर ।

अभयामुस्तधान्याकरक्तचंदनपद्मकैः ॥ वासकेंद्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३३ ॥ पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्शृतम् ॥ पिबेत्त्रिदोषज्वरजित्पिपासादाहकासनुत् ॥३४॥ प्रलापश्वासतंद्राघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–१ जंगी हरड, २ नागरमोथा, ३ धनिया, ४ लालचंदन, ५ पद्माख, ६ अडूसा, ७ इन्द्रजो, ८ खस, ९ गिलोय, १०अमलतासका गूदा, ११ पाढ, १२ सोंठ और १३ कुटकी इनका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो त्रिदोषज्वर, प्यास, दाह, खांसी, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा इनको दूर करे। दीपन और पाचन है। एवं मल, मूत्र, अधोवायु इनके रुकनेको, वमन, शोष और अरुचि इनको दूर करे ॥

अष्टादशांगकाढा सन्निपातादिकोंपर ।

किरातकटुकीमुस्ताधान्येंद्रयवनागरैः ॥ दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥ कृतः कषायः पार्श्वार्तिसन्निपातज्वरं जयेत् ॥ कासश्वासवमीहिक्कातंद्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ चिरायता, २ कुटकी, ३ नागरमोथा, ४ धनिया, ५ इन्द्रजो, ६ सोंठ, १० दशमूल मिलायकर १६ हुए, १७ देवदारु और १८ गजपीपल, इन अठारह औषधोंका काढा करके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हों। उसी प्रकार श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, तंद्रा और हृदयपीडा इनको दूर करे ॥

यवान्यादिकाढा श्वासादिकोंपर ।

यवानी पिप्पली वासा तथा वत्सकवल्कलः ॥
एषां क्वाथं पिबेत्कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ३८ ॥

अर्थ–१ अजमायन, २ पीपल, ३ अडूसेके पत्ते और ४ कूडेकी छाल इन चार औषधोंका काढा करके पीवे तो खांसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे ॥

कट्फलादिकाढा कासआदिपर ।

कट्फलांबुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ॥
वचाहरीतकीशृंगीदेवदारुमहौषधैः ॥
क्वाथः कासं ज्वरं हंति श्वासश्लेष्मगलग्रहान् ॥ ३९ ॥

अर्थ–१ कायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनिया, ५ रोहिषतृण, ६ पित्तपापडा, ७ वच, ८ हरड, ९कांकडासिंगी, १० देवदारु और ११सोंठ इन ग्यारह औषधोंका काढा पीनेसे खांसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठका रुकना इन सबको दूर करे ॥

गुडूच्यादिकाढा तथा पर्पटादिकाढा।

क्राथो जीर्णज्वरं हंति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥
तथा पर्पटजः क्राथः पित्तज्वरहरः परम् ॥
किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोदीच्यनागरैः ॥ ४० ॥

अर्थ–गिलोयका काढा सिद्ध होनेपर पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो बहुत दिनका ज्वर जाय। उसी प्रकार केवल पित्तपापडेका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तज्वर होय। यदि लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापडेका काढा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चला जाय इसमें क्या कहना है ॥

निदिग्धिकामृताशुंठीकषायं पाययेद्भिषक् ॥ ४१ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलाजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४२ ॥

अर्थ–१ कटेरी, २ गिलोय, ३ सोंठ इन तीन औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करे तो श्वास, खांसी, अर्दितवायु, सरेकमा, अरुचि, स्वरभंग, शूल और जीर्णज्वर इनको दूर करे ॥

देवदार्वादिकाढा प्रसूतदोषपर।

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ कट्फलं मुस्तभूनिंबतिक्तधान्या हरीतकी ॥ ४३ ॥ गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ॥ बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥४४॥ काथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्छाकंपशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ वच, ३ कूट, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफल, ७ नागरमोथा, ८ चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया, ११ जंगी हरड, १२ गजपीपल, १३ लाल धमासा, १४ गोखरू, १५ धमासा, १६ कटेरी, १७ अतीस, १८ गिलोय, १९ कां-

---

१ रोहिष तृणके प्रतिनिधिमें चिरायता डालनेकी संप्रदाय है। २ यहां दुस्पर्शा और धन्वयासक दोनों शब्दोंका अर्थ धमासाही [illegible]ा है अत एव परिभाषामें कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दुस्पर्शा शब्द करके कौंचके बीज लेने चाहिये।

कडासिंगी और २० काला जीरा इन वीस औषधोंका अष्टावशेष काढा करके पीवे तो प्रसूतरोग, शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कंपवायु और मस्तकपीडा इन सबको दूर करे ॥

क्षुद्रादिकाढा सर्वशीतज्वरोंपर ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ रक्तचंदनभूनिंबपटोलवृषपौष्करैः ॥ ४६ ॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समैः ॥ क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-१ कटेरी, २ धनिया, ३ सोंठ, ४ गिलोय, ५ नागरमोथा, ६ पद्माख, ७ लाल चंदन, ८ चिरायता, ९ पटोलपत्र, १० अडूसा, ११ अंडकी जड, १२ कुटकी, १३ इंद्रजौ, १४ नीमकी छाल, १५ भारंग और १६ पित्तपापडा इन सोलह औषधोंका काढा प्रातःकालमें पीवे तो सर्वशीतज्वर दूर हों ॥

मुस्तादिकाढा विषमज्वरपर ।

मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥

अर्थ-१ नागरमोथा, २ कटेरी, ३ गिलोय, ४ सोंठ और ५ आमले इन पांच औषधोंका काढा सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होय ॥

पटोलादिकाढा एकाहिकज्वरपर ।

पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्याकविश्वकैः ॥
क्वाथः सितामधुयुतो जयेदेकाहिकं ज्वरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र, २ त्रिफला, ३ नीमकी छाल, ४ मुनक्का दाख, ५ अमलतासका गूदा और ६ अडूसा इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो नित्य आनेवाला ज्वर दूर होवे ॥

पटोलेंद्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ॥ मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ५० ॥ संतते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके ॥ एकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे नवज्वरे ॥ ५१ ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र, २ इन्द्रजौ, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नागरमोथा, ६ मुनक्का दाख, ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन ग्यारह औषधोंका काढा कर सहत मिलायके पीवे तो संततज्वर, सततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयकज्वर, एकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर और नवज्वर इतने रोगोंको दूर करे ॥

गुडूच्यादिकाढा तृतीयकज्वरपर ।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥
कृतं क्वाथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ॥
तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ नागरमोथा, ४ लाल चंदन, ५ नेत्रवाला और ६ सोंठ इन छः औषधोंका काढा सहत और खांड डालके पीवे तो तिजारीका आना दूर होवे ॥

देवदार्वादिकाढा चातुर्थिकज्वरपर ।

देवदारुशिवावासासालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥
धात्रीयुतं शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ॥
चातुर्थिकज्वरश्वासे कासे मंदानले तथा ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ जंगी हरड, ३ अडूसा, ४ सालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधोंका काढा करके शीतल होनेपर सहत और खांड मिलायके पीवे तो चौथियाज्वर, श्वास और खांसी दूर हो तथा अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

गुडूच्यादिकाढा ज्वरातिसारपर ।

गुडूचीधान्यकोशीरशुंठीवालकपर्पटैः ॥ बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचंदनवत्सकैः ॥ ५५ ॥ किरातमुस्तेंद्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत् ॥ सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ खस, ४ सोंठ, ५ नेत्रवाला, ६ पित्तपापडा, ७ बेलगिरी, ८ अतीस, ९ पाढ, १० लाल चंदन, ११ कूटकी छाल, १२ चिरायता, १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ इन चौदह औषधोंका काढा शीतल कर सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे ॥

नागरादिकाढा ज्वरातिसारपर ।

नागरं कुटजो मुस्तममृतातिविषा तथा ॥
एभिः कृतं पिबेत्क्राथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–१ सोंठ, २ कुडेकी छाल, ३ नागरमोथा, ४ गिलोय और ५ अतीस इन पांच औषधोंका काढा पीवे तो ज्वरातिसार शांत होवे ॥

धान्यपंचक आमशूलपर ।

धान्यवालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम् ॥
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ५८ ॥

अर्थ-१ धनिया, २ नेत्रवाला, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा पीनेसे आमशूल दूर करके मलका अवष्टंभ और दीपन पाचन करे ॥

धान्यकादिकाढा दीपनपाचनपर ।

धान्यनागरजः क्काथो दीपनः पाचनस्तथा ॥
एरंडमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-१ धनिया, २ सोंठ इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे दीपन पाचन करे और यदि इसमें अंडकी जड डाल लेवे तो आमवायुको दूर करता है ॥

वत्सकादिकाढा आमातिसार और रक्तातिसारपर ।

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तवालकमाशृतम् ॥
अतिसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

अर्थ-१ कूडाकी छाल, २ अतीस, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला, इन पांच औषधोंका काढा बहुत दिनके आमातिसारको और शूलसहित रक्तातिसारको दूर करे ॥

कुटजाष्टककाढा अतिसारादिकोंपर ।

कुटजातिविषापाठधातकीलोध्रमुस्तकैः ॥ ह्रीबेरदाडिमयुतैः कृतः क्काथः समाक्षिकः ॥ ६१ ॥ पेया मोचरसेनैव कुटजाष्टकसंज्ञकाः ॥ अतिसारान् जयेद्धातरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ-१ कूडेकी छाल, २ अतीस, ३ पाढ, ४ धायके फूल, ५ लोध, ६ नागरमोथा, ७ नेत्रवाला और ८ अनारकी छाल इन आठ औषधोंका काढा सहत और मोचरस मिलायके पीवे तो जिस अतिसारमें दाह, रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसारको नष्ट करे ॥

ह्रीबेरादिकाढा अतिसारादिरोगोंपर ।

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठलज्जालुवत्सकैः ॥ धान्यकातिविषामुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः ॥ ६३ ॥ कृतः कषायः शमयेदतिसारं चिरोत्थितम् ॥ अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः ॥६४॥

अर्थ–१ नेत्रवाला, २ धायके फूल, ३ लोध, ४ पाढ, ५ लजालू, ६ कूडेकी छाल, ७ धनिया, ८ अतीस, ९ नागरमोथा, १० गिलोय, ११ बेलगिरी और १२ सोंठ इन बारह औषधोंका काढा पीवे तो बहुत दिनका अतिसार अरुचि आमशूल रुधिर-विकार और ज्वर इनको दूर करे तथा पाचन करे है ॥

धातक्यादिकाढा बालकोंके सब अतिसारोंपर ।

धातकीबिल्वलोध्राणि वालकं गजपिप्पली ॥
एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम् ॥
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातीसारशांतये ॥ ६५ ॥

अर्थ–१ धायके फूल २ बेलगिरी ३ लोध ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल इन पांच औषधोंके काढेको शीतल कर सहत मिलायके बालकको चटावे तो बालकका अतिसाररोग दूर होवे ॥

शालपर्ण्यादिकाढा संग्रहणीपर ।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुंठीकृतं शृतम् ॥
आध्मानशूलसहितां वातजां ग्रहणीं जयेत् ॥ ६६ ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ खरेटी ३ बेलगिरी ४ धनिया और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो पेटका फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणीको दूर करे ॥

चतुर्भद्रादिकाढा आमसंग्रहणीपर ।

गुडूच्यातिविषाशुंठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत् ॥
आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः ॥ ६७ ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ अतीस, ३ सोंठ और ४ नागरमोथा इन चार औषधोंका काढा पीवे तो आमयुक्त ग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मलको अवष्टंभ करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है ॥

इन्द्रयवादिकाढा सब अतिसारोंपर ।

यवधान्यपटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः ॥
योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ॥ ६८ ॥

अर्थ–१ इन्द्रजौ, २ धनिया और ३ पटोलपत्र इन तीन औषधोंके काढेमें मिश्री और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार दूर होवें । उसी प्रकार बेलगिरीका अथवा आमकी गुठलीका अथवा आमकी गुठली और बेलगिरीका काढा करके सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और दुर्घट श्वास और खांसी दूर हो ॥

त्रिफलादिकाढा कृमिरोगपर ।

त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका ॥६९॥
शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
विडंगचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा ॥ ७० ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ देवदारु, ५ नागरमोथा, ६ मूसाकर्णी और ७ सहजनेकी छाल इन सात औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण वा वायविडंगका चूर्ण मिलायके पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि जंतुविकार दूर होंय ॥

फलत्रिकादिकाढा कामलापांडुरोगपर ।

फलत्रिकामृतातिक्तानिंबकैरातवासकैः ॥
जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पांडुतां तथा ॥ ७१ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ गिलोय, ५ कुटकी, ६ नीमकी छाल, ७ चिरायता और ८ अडूसेके पत्ते इन आठ औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो कामला और पांडुरोगको दूर करे ॥

पुनर्नवादिकाढा पांडुकासादिरोगोंपर ।

पुनर्नवाभयानिंबदार्वीतिक्तापटोलकैः॥ गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः ॥ पांडुकासोदरश्वासशूलसर्वांगशोथहा ॥ ७२ ॥

अर्थ–१ सोंठकी जड, २ हरड, ३ नीमकी छाल, ४ दारुहलदी, ५ कुटकी, ६ पटोलपत्र, ७ गिलोय और ८ सोंठ इनका काढा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खांसी, उदररोग, श्वास, शूल और सर्वांगकी सूजनको नष्ट करे ॥

वासादिकाढा ।

वासाद्राक्षाभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥
निहंति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान् सुदारुणान् ॥ ७३ ॥

अर्थ–१ अडूसा, २ दाख, ३ हरड इनके काढेमें सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्तकी पीडा, श्वास और दारुण खांसी इन सबको दूर करे ॥

वांसेका काढा रक्तपित्तक्षयादिपर ।

रक्तपित्तक्षयं कासं श्लेष्मपितज्वरं तथा ॥
केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत् ॥ ७४ ॥

---

१ किसी २ आचार्यने कटुपटोल फल कहे हैं परंतु “ पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा ” इस प्रमाणसे इस जगह परवलके पत्तेही लेने चाहिये ।

अर्थ– १ केवल अडूसेके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्तक्षय खांसी और ज्वरको दूर करे ॥

वासादिकाढा ज्वरखांसीपर।

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा ॥ ७५ ॥

अर्थ– १ अडूसा, २ कटेरी और ३ गिलोय इनके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी दूर होवे ॥

क्षुद्रादि काढा खांसीपर।

कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राशृतस्तथा ॥

अर्थ–कटेरीके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो खांसी दूर होवे ॥

क्षुद्रादिकाढा श्वासखांसीपर।

क्षुद्राकुलित्थावासाभिर्नागरेण च साधितः ॥
क्वाथः पौष्करचूर्णाप्तः श्वासकासौ निवारयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ– १ कटेरी, २ कुलथी, ३ अडूसा और ४ सोंठ इनके काढेमें पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो श्वास खांसीको दूर करे ॥

रेणुकादिकाढा हिक्कापर।

रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिंगुकल्केन संयुतः ॥
पानादेव हि पंचापि हिक्कां नाशयति क्षणात् ॥ ७७ ॥

अर्थ–१ रेणुका और २ पीपल इनके काढेमें हींगका कल्क मिलायके पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकियोंको तत्काल दूर करे ॥

हिंग्वादिकाढा गृध्रसीरोगपर।

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलशृतं जयेत् ॥
गृध्रसीं केवलः क्वाथः शेफालीपत्रजस्तथा ॥ ७८ ॥

अर्थ–१ दशमूलके काढेमें भूनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसीनाम वातका रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडीके पत्तोंके काढेमें भूनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तोभी गृध्रसी वायु दूर होवे ॥

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ।

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ॥
जयेत्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ॥ ७९ ॥

अर्थ-बेलकी छाल अथवा गिलोयके काढेमें सहत डालके पीवे तो संनिपातकी छर्दि (वमनरोग) को दूर करे । अथवा पित्तपापडेका काढा सहत मिलायके पीनेसे पित्तजन्य छर्दिको दूर करे ॥

रास्नादि पंचक क्काथ सर्वांगवातपर ।

रास्नामृतामहादारुनागरैरंडजं शृतम् ॥
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगजे पिबेत् ॥ ८० ॥

अर्थ-१ रास्ना, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ सोंठ और ५ अंडकी जड इनका काढा सप्तधातुगत वायु, आमवात और सर्वांगगत वातके रोगमें पीना चाहिये ॥

रास्नासप्तक ।

रास्ना गोक्षुरकैरंडदेवदारु पुनर्नवा ॥ गुडूच्यारग्वधौ चैव क्काथ एषां विपाचयेत् ॥ ८१ ॥ शुंठीचूर्णेन संयुक्तः पिबेज्जंघाटिकग्रहे ॥ पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ॥ ८२ ॥

अर्थ-१ रास्ना, २ गोखरू, ३ अंड, ४ देवदारु, ५ पुनर्नवा, ६ गिलोय और ७ अमलतासका गूदा इनके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके जंघा और कमरके रह जानेमें एवं पसवाडे, पीठ, ऊरु और आमवात इन रोगोंमें यह काढा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों ॥

महारास्नादिकाढा संपूर्ण वायुपर ।

रास्नादि गुणभागा स्यादेकभागास्तथापरे ॥ ८३ ॥ धन्वयासबलैरंडदेवदारु शठी वचा ॥ वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ॥८४॥ गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥ अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥ ८५ ॥ कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥ एभिः कृतं पिबेत्काथं शुंठीचूर्णेन संयुतम् ॥ ८६ ॥ कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाथ वा ॥ अजमोदादिना वापि तैलेनैरंडजेन वा ॥ ८७ ॥ सर्वांगकंपे कुब्जत्वे पक्षाघातेपबाहुके ॥ गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ॥८८॥ अंडवृद्धौ तथाध्माने जंघाजानुगतेर्दिते ॥ शुक्रामये मेढ्ररोगे वंध्यायोन्याशयेषु च ॥ महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–१ रास्ना दो तोले, २ धमासा, ३ खरेटी, ४ अंडकी जड, ५ देवदारु, ६ कचूर, ७ वच, ८ अडूसेका पंचांग, ९ सोंठ, १० हरडकी छाल, ११ चव्य, १२ नागरमोथा, १३ सोंठकी जड, १४ गिलोय, १५ विधायरा, १६ सौंफ, १७ गोखरू, १८ असगंध, १९ अतीस, २० अमलतासका गूदा, २१ शतावर, २२ पीपल छोटी, २३ पियावांसा, २४ धनिया और २५–२६ दोनों छोटी बडी कटेरी । इन छव्वीस औषधोंके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके अथवा पीपलके चूर्णको मिलायके अथवा योगराजगुग्गुलके साथ अथवा अजमोदादि चूर्णके साथ अथवा अंडीके तेलके साथ इस काढेको पीवे तो सर्वांगकंप, कुबडापना, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा, जानुकी पीडा, शुक्रके दोष, लिंगके रोग, वंध्याके योनि और गर्भाशयके रोग इन सबको दूर करे । ब्रह्मदेवने गर्भस्थापनेके कारण यह महारास्नादि क्वाथ कहा है ॥

एरंडसप्तक स्तनादिगतवायुपर ।

एरंडो बीजपूरश्च गोक्षुरो बृहतीद्वयम् ॥ अश्मभेदस्तथा बिल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः ॥ ९० ॥ एरंडतैलहिंग्वाढ्यः सयवक्षारसैंधवः ॥ स्तनस्कंधकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ–१ अंडकी जड, २ बिजोरेकी जड, ३ गोखरू, ४ छोटी कटेरी, ५ बडी कटेरी, ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरी इन सात औषधोंकी जडके काढेमें अंडीका तेल और भूनी हींग तथा जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण मिलायकर पीवे तो स्तन, कंधा, कमर, लिंग और छाती इन ठिकानोंपर होनेवाली वातसंबंधी पीडाको दूर करे ॥

नागरादिकाढा वातशूलपर ।

नागरैरंडयोः क्वाथः क्वाथ इंद्रयवस्य वा ॥
हिंगुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ ९२ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ अंडकी जड इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें भूनी हींग और काला नमक मिलायके पीवे तो अथवा इन्द्रजौके काढेमें काला नमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसंबंधी पीडा दूर होवे ॥

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर ।

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥
रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ॥ ९३ ॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधोंके काढेमें खांड और सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, दाह और पित्तशूल ये दूर हों ॥

एरंडमूलादिकाढा कफशूलपर ।

एरंडमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत् ॥
तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा ॥ ९४ ॥

अर्थ–१ अंडकी जड दो पल ले। उसमें आठ पल पानी मिलायके काढा करे। जब अष्टावशेष काढा हो जावे तब उतार छान उसमें जवाखार मिलायके पीवे तो पसवाडे और हृदयमें होनेवाला कफके शूलका नाश होवे ॥

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर ।

दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैंधवः ॥
हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासं श्वासं च नाशयेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ–दशमूलका काढा कर उसमें जवाखार और सैंधानमक मिलायके पीवे तो हृदयरोग, गोला, शूल, श्वास और खांसी इनका नाश करे ॥

हरीतक्यादिकाढा मूत्रकृच्छ्रपर ।

हरीतकीदुरालभाकृतमालकगोक्षुरैः ॥ पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः ॥ विबंधे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ छोटी हरड, २ धमासा, ३ अमलतासका गूदा, ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इन पांच औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो दाह, मूत्रका रुकना तथा वायुका अवरोध इन उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ॥

वीरतर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर ।

वीरतरुर्वृक्षवंदाकाशः सहचरत्रयम् ॥ कुशद्वयनलो गुंद्रा बकपुष्पोऽग्निमंथकः ॥ ९७ ॥ मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा ॥ अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥ ९८ ॥ वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥ मूत्राघातं वायुरोगान्नाशयेन्निखिलानपि ॥ ९९ ॥

अर्थ–१ कोहवृक्षकी छाल २ वांदा ३ कांस ४ सपेद ५ पीला और ६ काला ऐसा पियावांसा ७ कुशा ८ डाभ ९ देवनल १० गुंद्रा[२] (पटेरे) ११ बकपुष्प (शिवलिंगी) १२ अरनीकी जड १३ मूर्वा १४ पाषाणभेद १५ टेंटूकी जड १६

---

१ मागध परिभाषाके मानसे दो पलके व्यावहारिक आठ तोले होते हैं। २ गुंद्राको हिन्दीमें पटेरे और मरेहठीमें गोदणी गवत कहते हैं।

गोखरू १७ ओंगा (चिरचिटा) १८ कमल और १९ ब्राह्मीके पत्ते इन उन्नीस औषधोंका काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिक्काथ शर्करा पथरी मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और सर्व प्रकारके वादीके रोगोंको दूर करे ॥

एलादिकाढा पथरीशर्करादिकपर ।

एलामधुकगोकंटरेणुकैरंडवासकः ॥
कृष्णाश्मभेदसहितः क्वाथ एषां सुसाधितः ॥
शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥ १०० ॥

अर्थ–१ छोटी इलायचीके बीज २ मुलहटी ३ गोखरू ४ रेणुकाबीज ५ अंडकी जड ६ अडूसा ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें शिलाजीत मिलायके पीवे तो शर्करा पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे ॥

समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ॥
नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥ १०१ ॥

अर्थ–जडसहित गोखरूके वृक्षका काढा कर उसमें खांड और सहत मिलायके पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात (गरमीका रोग) दूर होता है ॥

त्रिफलादिकाढा प्रमेहपर ।

वरादार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥
वत्सका त्रिफला दार्वी मुस्तको बीजकस्तथा ॥ १०२ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेह दूर हो । १ कूडाकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ दारुहल्दी ६ नागरमोथा ७ बीजक इन सात औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेहको दूर करे ॥

दूसरा फलत्रिकादिकाढा प्रमेहपर ।

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः शृतं पिवेत् ॥
निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये ॥ १०३ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ दारुहलदी ५ नागरमोथा और ६ इन्द्रायनकी जड इन छः औषधोंके काढेमें हलदी मिलायके पीवे तो सर्व प्रकारका प्रमेह दूर होवे॥

---

१ ब्राह्मी रूखडी गंगायमुनानदीके खादरमें बहुत होती है । इसका पृथ्वीमें फैला हुआ छत्ता होता है । पत्ते गोल कुछ सुकडे हुए होते हैं । इसके दो भेद हैं एक ब्राह्मी दूसरी मंडूकपर्णी । २ रेणुका बीज प्रसिद्ध है । इसके काले २ दाने होते हैं ।

दार्व्यादिकाढा प्रदररोगपर।

दार्वी रसांजनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः ॥ १०४ ॥
कैरातश्च पिबेदेषां काथं शीतं समाक्षिकम् ॥
जयेत्सशूलं प्रदरं पीतश्वेतासितारुणम् ॥ १०५ ॥

अर्थ-१ दारुहलदी २ रसोत ३ नागरमोथा ४ भिलावा ५ बेलगिरी ६ अडूसा और ७ चिरायता इन सात औषधोंके काढेको शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला सफेद काला और लाल ऐसे रंगवाला स्त्रियोंका प्रदर रोग दूर हो ॥

न्यग्रोधादिकाढा व्रणादिरोगोंपर।

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसो बदरी तुणिः॥ मधुयष्टिप्रियालुश्च लोध्रद्वयमुदुंबरः ॥ १०६ ॥ पिप्पल्यश्च मधूकश्च तथा पारिस-पिप्पलः ॥ सल्लकी तिंदुकी जंबूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ १०७ ॥ कदंबककुभौ चैव भल्लातकफलानि च ॥ न्यग्रोधादिगणकाथं यथालाभं च कारयेत् ॥ १०८ ॥ अयं काथो महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत् ॥ योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः ॥१०९॥

अर्थ-१ बडकी छाल २ पाखरकी छाल ३ अंबाडेकी छाल ४ वेतकी छाल ५ बेरकी छाल ६ तूनी (तूत वृक्षकी छाल) ७ मुलहटी ८ चिरोंजी ९ लाल लोध १० सपेद लोध ११ गूलरकी छाल १२ पीपलकी छाल १३ महुएकी छाल १४ पारस पीपलकी छाल १५ सालई वृक्षकी छाल १६ तेंदू १७ छोटी जामुन १८ बडी जामुनकी छाल १९ आम २० छोटी हरड २१ कदंबकी छाल २२ कोहकी छाल और २३ भिलाए इन तेईस औषधोंका काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होकर व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष ये नष्ट होवें ॥

बिल्वादिकाढा मेदोरोगपर।

बिल्वोग्निमंथः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ॥
काथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ॥ ११० ॥

अर्थ-१ बेलगिरी २ अरनी ३ टेंटू ४ कंभारी ५ पाढल इस बृहत्पंचमूलका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब शरीरमें मेद बढकर जो पीडा होती है वह दूर होवे ॥

दूसरा त्रिफलादिकाढा।

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदहरः स्मृतः॥
शीतीवीतं तथोष्णांबु मेदोहृत्क्षौद्रसंयुतः॥ १११॥

अर्थ-त्रिफलाका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग नष्ट होवे। उसी प्रकार औटे हुए जलको शीत कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेद रोग दूर होवे॥

चव्यादिकाढा उदररोगपर।

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा॥
क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदराञ्जयेत्॥ ११२॥

अर्थ-१ चव्य २ चीतेकी छाल ३ सोंठ घाडकी और ४ देवदारू इन चार औषधोंका काढा कर उसमें निसोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलायके पीवे तो संपूर्ण उदररोग दूर होवें॥

पुनर्नवादिकाढा शोथोदरपर।

पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः॥
गोमूत्रगुग्गुलयुतः क्वाथः शोथोदरापहः॥ ११३॥

अर्थ-१ सांठकी जड २ गिलोय ३ देवदारु ४ जंगी हरड और ५ सोंठ इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल और गोमूत्र मिलाकर पीनेसे सूजनवाला उदर रोग नष्ट होवे॥

पथ्यादिकाढा यकृत्प्लीहादिकोंपर।

पथ्यारोहीतकक्वाथं यवक्षारकणायुतम्॥
प्रातः पिबेद्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये॥ ११४॥

अर्थ-१ जंगी हरड २ रक्त रोहिडा[1] इन दोनों औषधोंका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो यकृत[2] रोग और प्लीहाका रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे॥

पुनर्नवादिकाढा सूजनपर

पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुंठी हरीतकी॥

---

१ रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है। २ यकृत और प्लीहा ये दोनों मांसके पिंड हैं। (जिनको इनके विशेष लक्षण जानने हों तो प्रथम खंडमें शारीरकमें ९९ पत्रमें देख लेंवे) सूजन आयकर जिसमें रुधिर नष्ट हो जावे तथा राध वगैरह होय उस रोगको क्रमसे प्लीहोदर और यकृदाल्युदर कहते हैं।

गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः ॥
पाणिपादोदरमुखप्राप्तशोफं निवारयेत् ॥ ११५ ॥

अर्थ–१ सोंठकी जड २ दारुहलदी ३ हलदी ४ सोंठ ५ जंगी हरड ६ गिलोय ७ चीतेकी छाल ८ भारंगी ९ देवदारु इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण अंगकी सूजन दूर होवे ॥

त्रिफलादिकाढा वृषणशोथपर ।

फलत्रिकोद्भवं क्राथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥
वातश्लेष्मकृतं हंति शोथं वृषणसंभवम् ॥ ११६ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला इन तीन औषधोंका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोषोंकी सूजन है वह दूर होवे ॥

रास्नादिकाढा अंत्रवृद्धिपर ।

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकंटैरंडजः शृतः ॥
एरंडतैलसंयुक्तो वृद्धिमंत्रोद्भवां जयेत् ॥ ११७ ॥

अर्थ–१ रास्ना २ गिलोय ३ खरेटी ४ मुलहटी ५ गोखरू ६ अंडकी जड इन छः औषधोंका काढा करके उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो अंत्रवृद्धि (अर्थात् अंतर्गत वायु कि जिससे अंडकोश बडे होते हैं) रोग दूर होवे ॥

कांचनारादिकाढा गंडमालापर ।

कांचनारत्वचः क्राथः शुंठीचूर्णेन नाशयेत् ॥
गंडमालां तथा क्राथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः ॥ ११८ ॥

अर्थ–कचनार वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सोंठका चूर्ण मिलायके पीवे तो अथवा उसी प्रकार [१]वरना वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो गंडमाला दूर होवे ॥

शाखोटकादिका काढा श्लीपद और मेदरोगपर ।

शाखोटवल्कलक्राथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥
श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ॥ ११९ ॥

अर्थ–सहोडेकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपदरोग (कि जो विशेष करके पैरोंमें होता है जिसको पीलपाव कहते हैं वह) और मेदोरोग ये दूर हों ॥

---

१ वरनाके पत्ते बेलपत्रके समान तीन २ होते हैं और बेलसे छोटा फल लगता है इसके पत्तेभी बेलपत्रसे कुछ छोटे होते हैं ।

पुनर्नवादिकाढा अंतर्विद्रधिपर ।

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोंतर्विद्रधीन् जयेत् ॥
तथा शिग्रुमयः क्वाथो हिंगुकल्केन संयुतः ॥ १२० ॥

अर्थ–१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अंतर्विद्रधिको दूर करे । अथवा सहजनेकी छालका काढा करके उसमें भूनी हींग डालके पीवे तोभी अंतर्विद्रधि रोग दूर होय ॥

वरणादिकाढा मध्यविद्रधिपर ।

वरुणादिगणक्वाथमपक्के मध्यविद्रधौ ॥
ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे ॥ १२१ ॥

अर्थ–वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊषकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवे तो पक्क नहीं हुआ जो विद्रधि रोग सो दूर होवे ॥

वरुणादि काढा ।

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ अग्निमंथद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥ १२२ ॥ सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृंगी किरातकः॥ अजशृंगी च बिंबी च करञ्जश्च शतावरी ॥१२३॥ वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥ हंति गुल्मं शिरःशूलं तथाभ्यंतरविद्रधीन् ॥ १२४ ॥

अर्थ–१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओंगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बडी अरनी ८ कडुआ सहजना ९ मीठा सहजना १० छोटी कटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूलका पियावांसा १३ सपेद फूलका पियावांसा १४ काले फूलका पियावांसा १५ मूर्वा १६ कांकडासिंगी १७ चिरायता १८ मेंढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते २० कंजा और २१ सतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेद रोग, मस्तकशूल और गोलेका रोग ये दूर हों अंतर्विद्रधि नामका रोग होता है वह दूर हो मूलके श्लोकमें " तथा विद्रधिपीनसान् " ऐसाभी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगकोभी दूर करे ऐसा अर्थ जानना ॥

---

१ इस जगह बक पुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियंगु लेना चाहिये । २ मेषशृंगी प्रसिद्ध है । इसकी वेल होती है उसको लौकिकमें मेढासिंगी कहते हैं ।

ऊषकादिगण ।

ऊषकस्तुत्थकं हिंगु काशीसद्वयसैंधवम् ॥
सशिलाजतु कृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् ॥ १२५ ॥

अर्थ–१ खारी मिट्टी २ मोचरस शुद्ध किया हुआ ३ भूनी हींग ४ सपेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्ध करके लेना चाहिये) ६ सैंधानमक और ७ शिलाजीत इन सात औषधोंका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेद रोगको दूर करे ॥

खदिरादिकाढा भगंदररोगपर ।

खदिरत्रिफलाक्काथो महिषीघृतसंयुतः ॥
विडंगचूर्णयुक्तश्च भगंदरविनाशनः ॥ १२६ ॥

अर्थ–१ खैरसार २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा कर उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलाय पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे ॥

पटोलादिकाढा उपदंशपर ।

पटोलत्रिफलानिंबकिरातखदिरासनैः ॥
क्काथः पीतो जयेत्सर्वानुपदंशान् सगुग्गुलः ॥ १२७ ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आवला ५ नींबकी छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजैसार[१] इन आठ औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो संपूर्ण उपदंश (गरमीके रोग) दूर हों ॥

अमृतादिकाढा वातरक्तपर ।

अमृतैरंडवासानां क्काथ एरंडतैलयुक् ॥
पीतः सर्वांगसंचारि वातरक्तं जयेद् ध्रुवम् ॥ १२८ ॥

अर्थ–१ गिलोय २ अंडकी जड और ३ अडूसा इन तीन औषधोंका काढा कर उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो संपूर्ण अंगमें विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर हो ॥

दूसरा पटोलादिकाढा ।

पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी ॥
एतत्क्काथो जयेत्पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ॥ १२९ ॥

---

१ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजैसार दूसरा वनकुलथी परंतु इस जगह विजैसारही लेना चाहिये ।

अर्थ–१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आवला ५ कुटकी ६ गिलोय और ७ सतावर इन सात औषधोंका काढा करके पीवे तो दाहयुक्त जो वातरक्त सो दूर हो ॥

वल्गुजादिकाढा श्वेतकुष्ठपर ।

क्वाथो वल्गुजचूर्णाख्यो धात्रीखदिरसारयोः ॥
जयेत्स शीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम् ॥ १३० ॥

अर्थ–आवला और खैरसार इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें बावचीका चूर्ण मिलायके पीवे तो पथ्यसे रहनेवाले मनुष्यका सपेद कुष्ठ दूर हो ॥

लघुमंजिष्ठादिकाढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर ।

मंजिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारु निशामृता ॥
निंबश्चैषां कृतः क्वाथो वातरक्तविनाशनः ॥
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमंडलजिन्मतः ॥ १३१ ॥

अर्थ–१ मंजिष्ठ २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ वच ७ दारुहलदी ८ गिलोय और ९ नीमकी छाल इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो वातरक्त खाज और कापालिक कुष्ठ तथा रुधिरके विकार (देहमें काले चकत्तोंका होना) इतने रोग दूर होवें ॥

बृहन्मंजिष्ठादिकाढा कुष्ठादिकोंपर ।

मंजिष्ठामुस्तकुटजो गुडूचीकुष्ठनागरैः ॥ भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंब-
निशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३२ ॥ पटोलकटुकीमूर्वाविडंगासन-
चित्रकैः ॥ शतावरीत्रायमाणाकृष्णेंद्रयववासकैः ॥ १३३ ॥
भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ॥ त्रिवृद्वरुणकैरातवाकुचीकृ-
तमालकैः ॥ १३४ ॥ शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषाजलैः ॥
इंद्रवारुणिकानंतासारीवापर्पटैः समैः ॥ १३५ ॥ एभिः कृतं
पिबेत्क्वाथं कणागुग्गुलसंयुतम् ॥ अष्टादशसु कुष्ठेषु वातर-
क्तार्दिते तथा ॥ १३६ ॥ उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके ॥
मेदोदोषे नेत्ररोगे मंजिष्ठादि प्रशस्यते ॥ १३७ ॥

अर्थ–१ मंजीठ, २ नागरमोथा, ३ कूडा[१]की छाल, ४ गिलोय, ५ कूठ, ६ सोंठ, ७ भारंगी, ८ कटेरीका पंचांग, ९ वच, १० नीमकी छाल, ११ हलदी, १२ दारुह-

[१] कूडाकी जड लेना ऐसाभी किसी २ आचार्यका मत है ।

ल्दी, १३ हरड, १४ बहेडा, १५ आवला, १६ पटोलपत्र, १७ कुटकी, १८ मूर्वा, १९ वायविडंग, २० विजैसार, २१ चीतेकी छाल, २२ सतावर, २३ त्रायमाण, २४ पीपल, २५ इन्द्रजौ, २६ अडूसेके पत्ते, २७ भांगरा, २८ देवदारु, २९ पाठ, ३० खैरसार, ३१ लाल चंदन, ३२ निसोथ, ३३ वरनाकी छाल, ३४ चिरायता, ३५ बावची, ३६ अमलतासका गुदा, ३७ सहोंडाकी छाल, ३८ बकायन, ३९ कंजा, ४० अतीस, ४१ नेत्रवाला, ४२ इन्द्रायनकी जड, ४३ घमासा, ४४ सारवा और ४५ पित्तपापडा इन पैंतालीस औषधोंको कूट पीस जवकूट करके १ तोलेका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और गूगल मिलायके पीवे तो अठारह प्रकारके कोढ रोग वातरक्त उपदंश अर्थात् गरमीका रोग श्लीपद रोग अंगशून्य होना पक्षाघात वायु मेदरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों ॥

यदि इसमें कचनारकी छाल बबूलकी छाल सालसाकी लकडी सरफोंका ये और मिलायकर काढा करे अथवा इसका भबकेमें अर्क निकाल लेवे तो यह खूनकी सब बीमारियोंको दूर करे यदि इसमें सहत अथवा उन्नाबका शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव किया हुआ है ॥

पथ्यादिकाढा शिरोरोगादिकोंपर ।

पथ्याक्षधात्रीभूनिंबनिशानिंबामृतायुतैः ॥ कृतः काथः षडंगोयं सगुडः शीर्षशूलहा ॥ १३८ ॥ भूशंखकर्णशूलानि तथार्धशिरसो रुजम् ॥ सूर्यावर्तं शंखकं च दंतघातं च तद्रुजम् ॥ नक्तांध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति ॥ १३९ ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आवला ४ चिरायता ५ हलदी ६ नीमकी छाल और ७ गिलोय इन सात औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो मस्तकशूल, भौंह, शंख (कनपटी) और कानसंबंधी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त्त (सूर्योदयसे दो प्रहरपर्यंत जो शूल मस्तकमें बढता है वह) शंखका शूल, दांतोंके हिलनेसे जो पीडा होती है वह, साधारण दंतशूल, रतौंध, नेत्रोंके पटलगत रोग होते हैं वे सब, नेत्रका फूला तथा नेत्रोंका दुखना इन सब उपद्रवसहित रोगोंको यह पथ्यादि काढा दूर करता है ॥

वासादिकाढा नेत्ररोगपर ।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः ॥ भूनिंबनिंबकटुकापटोलत्रिफलांबुदैः ॥ १४० ॥ यवकालिंगकुटजैः काथः सर्वाक्षिरोगहा ॥ वैस्वर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसः क्षतम् ॥ १४१ ॥

अर्थ–१ अडूसा २ सोंठ ३ गिलोय ४ दारुहलदी ५ लालचंदन ६ चीतेकी छाल ७ चिरायता ८ नीमकी छाल ९ कुटकी १० पटोलपत्र ११ हरड १२ बहेडा १३ आमला १४ नागरमोथा १५ जौ १६ इन्द्रजौ और १७ कूडेकी छाल इन सत्रह औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग, स्वरभंग, पीनसरोग, श्वास और उरक्षत ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

दूसरा अमृतादिकाढा।

अमृतात्रिफलाक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥
सक्षौद्रः शीलतो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत् ॥ १४२ ॥

अर्थ–१ गिलोय २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होते हैं ॥

व्रणादिक प्रक्षालन करनेका काढा।

अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥
व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ १४३ ॥

अर्थ–१ पीपल २ गूलर ३ पाखर ४ वड और ५ वेत[1] इन पांच औषधोंके छालके काढेसे व्रण, सूजन, गर्मीका रोग (जो लिंगमें होता है) तीन वार धोनेसे नष्ट होता है ॥

प्रमथ्यादि कषायभेद।

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ॥
तोयेष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ॥ १४४ ॥

अर्थ–एक पल औषध लेकर उसको कूट पीस कर कल्क करे। यदि औषध सूखी हुई हो तो उसको भिगोकर कल्क करे। उसमें आठ गुना जल डालके औटावे जब २ पल जल शेष रहे तब उतार ले इसको प्रमथ्या कहते हैं। इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है ॥

मुस्तादिप्रमथ्या रक्तातिसारपर।

मुस्तकेंद्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या पिप्पलीन्विता ॥
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी ॥ १४५ ॥

अर्थ–१ नागरमोथा और २ इन्द्रजौ इन दोनों औषधोंको १ पल ले कूट पीसके कल्क करे। उसमें आठ गुना जल मिलायके २ पल शेष रहने पर्यंत औटावे। फिर उतार शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ॥

---

१ यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेनी चाहिये।

यवागुका विधान।

साध्यं चतुःपलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले ॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद् घनाम् ॥ १४६ ॥

अर्थ–चार पल औषध लेकर कुछ थोडीसी कूटके उसमें चौसठ पल पानी मिलायके औटावे। जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छानके उसमें दूसरे द्रव्य चांवल आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे और जब गाढी हो जावे तब उतार ले। इसे यवागू कहते हैं॥

आम्रादियवागू संग्रहणीपर।

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषाये विपचेद् बुधः ॥
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत् ॥ १४७ ॥

अर्थ–१ आम २ अंबाडा ३ जामुन इन तीन वृक्षोंकी चार पल छालको जवकूट कर चौसठ गुने पानीमें डालके औटावे। जब आधा पानी रह जावे तब उतारके इस जलको छान ले। फिर उसमें चार पल चांवल डालके फिर औटावे। जब औटाते २ गाढा हो जावे तब उतार ले इसे आम्रादि यवागू कहते हैं इस यवागूके भोजन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होवे॥

कल्कद्रव्यपलं शुंठी पिप्पली चार्धकार्षिकी ॥
वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते ॥ १४८ ॥

अर्थ–कल्ककी औषध सामान्यता करके १ पल लेय। तथा जिस प्रयोगमें सोंठ और पीपल हो उस जगह वह तीक्ष्ण होनेके कारण आधा २ कर्ष लेवे अथवा दोनों मिलाकर अर्ध कर्ष लेवे। फिर उनका कल्क करके उसमें जल एक प्रस्थ (सेरभर) डालके मिलाय लेवे। उसको चूल्हेपर रखके पेजके समान गाढी करे उसको यूष ऐसा कहते हैं॥

सप्तमुष्टिकयूष संनिपातादिकोंपर।

कुलित्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकग्रंथिकैः ॥
शुंठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः ॥ १४९ ॥

---

१ औषधोंका काढा करे जब आधा रहे तब उसको छानके उसमें चांवल डालके यवागू करे। तथा दूसरे प्रकारकी यवागू जो कहेंगे उसमें चांवल और दूसरे धान्य जो कहेंगे उनमें पानी छगुना डालके यवागू बनावे इतनाही भेद है। २ मागध परिभाषाके मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने।

सप्तमुष्टिक इत्येषः सन्निपातज्वरं जयेत् ॥
आमवातहरः कंठहृद्वक्त्राणां विशोधनः ॥ १५० ॥

अर्थ–१ कुलथी २ जौ ३ बेर ४ मूंग ५ छोटी मूली ६ सोंठ और ७ धनिया इन सात औषधोंको एक २ पल लेकर सोलह गुने गाढा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। यह यूष पानेसे कफवायु संनिपात ज्वर और आमवात इनको दूर करे तथा कंठ हृदय मुख इनको शुद्ध करे ॥

पानादिककल्पना।

क्षुण्णं द्रव्यफलं साध्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंनिधौ ॥ १५१ ॥

अर्थ–एक पल औषध ले जौकूट कर उसको चौसठ पल जलमें डालके औटावे। जब औटाते २ आधा पानी रह जावे तब उतारके कपडेसे छान ले। इसको जब २ प्यास लगे तब और भोजनके समय थोडा २ पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाता है ॥

उशीरादिपानक पिपासाज्वरपर।

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचंदनैः ॥
जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ॥ १५२ ॥

अर्थ–१ खस २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ नागरमोथा ५ सोंठ और ६ रक्तचंदन इन छः औषधोंको मिलाय चार तोले लेवे। जवकूट करके उसको २५६ तोले जलमें डालके आधा पानी रहने पर्यंत औटावे फिर उसको उतारके छान लेवे। शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास अत्यंत लगती हो उसमें थोडा २ क्रमसे पीनेको देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर हों ॥

गरम जलकी विधि ज्वरादिकोंपर।

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा ॥
अथवा क्वाथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ॥ १५३ ॥

अर्थ–पानीको औटायके आठवां हिस्सा चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रक्ख अथवा उत्तम रीतिसे खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरम जल) कहते हैं ॥

रात्रिमें गरम जल पीनेकी विधि।

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधनदीपनम् ॥
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १५४ ॥

अर्थ–रात्रिमें गरम जल पीनेसे कफ आमवात मेदरोग खांसी श्वास और ज्वर ये नष्ट होवें तथा पेट शुद्ध होकर अग्नि प्रदीप्त होय ॥

दूधके पाककी विधि आमशूलपर ।

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ॥
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ॥ १५५ ॥

अर्थ–औषधका आठ गुणा गौका दूध लेवे और दूधसे चौगुणा पानी ले । सबको एकत्र करके दूध शेष रहने पर्यंत औटावे फिर उस दूधको पीवे तो आमशूल दूर होवे ॥

पंचमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर ।

सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भेषज्यमुत्तमम् ॥ १५६ ॥
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ॥
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पंचमूलीशृतं पयः ॥ १५७ ॥

अर्थ–१ सालपर्णी २ पृष्ठपर्णी ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी और ५ गोखरू इन पांच औषधोंकी जडको जौकूट कर अठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डालके औटावे । जब औटते २ केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसके पीनेसे श्वास, खांसी, मस्तकशूल, पसवाडोंका शूल, पीनस और जीर्णज्वर ये दूर हों । यह दूध संपूर्ण जीर्णज्वरोंको उत्तम औषधि है ॥

त्रिकंटकादि क्षीरपाक ।

त्रिकंटकबलाव्याघ्रीकूटनागरसाधितम् ॥
वर्चोमूत्रविबंधघ्नं कफज्वरहरं पयः ॥ १५८ ॥

अर्थ–१ गोखरू २ खरेंटी ३ कटेरीकी जडका वक्कल ४ गुड और ५ सोंठ इन पांच औषधोंको आठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे । जब दूध मात्र बाकी रहे तब उतार ले । इस दूधको पीनेसे मल और मूत्र ये उत्तम रीतिसे उतरें तथा कफज्वर दूर होवे ॥

---

१ "कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे। पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥१॥" अर्थ–तिक्त कहिये १ नागरमोथा २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ चंदन ५ खस और ६ सोंठ इन छः औषधोंको कूटके औटते हुए पानीमें डालके उतार ले फिर शीतल करके इसे पित्त और मद्यसे प्रगट ज्वर प्यास कफज्वर वातज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे " ऐसाही ग्रंथान्तरमें पाठ है । २ औषध इस जगह अनुक्त हैं इसवास्ते १ सोंठ २ भूयआंवला और ३ अंडके बीज इन औषधोंका आठ गुना जल लेना चाहिये ।

अन्नस्वरूप यवागू।

अथान्नप्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात् ॥ यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशराधुना ॥१५९॥ तंदुलैर्माषमुद्गैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ॥ यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशिनी॥१६०॥

अर्थ–अन्नप्रक्रिया कहिये अन्न स्वरूप यवागू, विलेपी और पेया इनके तयार करनेकी विधि संक्षेप करके कहता हूं। चांवल अथवा मूंग किंवा उडद न होय तो तिल इनमेंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छः गुना पानी डालके जबतक गाढी न होवे तबतक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं। उस यवागूके दो नाम हैं एक कृसरा और दूसरा घनावह। इसको मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली बल देनेवाली शरीरको पुष्ट करनेवाली तथा वायुका नाश करनेवाली जाननी ॥

विलेपीके लक्षण और गुण।

विलेपी च घना सिक्था सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ॥
बृंहणी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी ॥ १६१ ॥

अर्थ–द्रव्यसे चौगुने पानी डालके औटावे। जब लहापसीके समान गाढी और लिपटनेवाली हो जावे उसको विलेपी कहते हैं। यह धातुकी वृद्धि करनेवाली शरीरपुष्टिकर्त्ता, हृदयको हितकारी, मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है ॥

पेयालक्षण।

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले ॥
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किंचिद्घनः स्मृतः ॥ १६२ ॥
पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा ॥
यूषो बल्यस्ततः कंठ्यो लघूपायः कफापहः ॥ १६३ ॥

अर्थ–द्रव्यसे चौदहगुने पानीमें डालके पतली पेजके समान और कुछ लहसदार होने पर्यंत औटानेसे उसको पेया कहते हैं। पेयाकी अपेक्षा कुछ गाढीको यूष कहते हैं। वह पेया बहुत हलकी होकर मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली और धातु पुष्ट करनेवाली है। और यूष बलका देनेवाली, कंठको हितकारी, हलकी तथा कफको दूर करनेवाली जानना ॥

भात करनेका प्रकार।

जले चतुर्दशगुणे तंदुलानां चतुः पलम् ॥
विपचेत्स्रावयेन्मंडं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ १६४ ॥

अर्थ–चार पल विने फटके बारीक चांवलोंको चौदह गुने जलमें डालके औटावे जब सीज जावे तब मांड निकाल ले। यह चावलोंका भात मधुर तथा हलका होता है ॥

शुद्धमंड ।

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मंडस्त्वसिक्थकः ॥
शुंठीसैंधवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ॥ १६५ ॥

अर्थ–शुद्ध चांवलोंको चौदह गुने पानीमें डालके औटावे। जब चांवल सीज जावें तब मांड निकाल लेवे। इस मांडको शुद्ध मंड कहते हैं। इसमें सोंठ और सैंधानमक मिलायके पीवे तो अन्नका पचन और अग्निका दीपन होवे ॥

अष्टगुण मंड ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थमुद्गतंदुलयोजितः ॥ भृष्टश्च हिंगुतैलाभ्यां स मंडोऽष्टगुणः स्मृतः ॥ १६६ ॥ दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ॥ ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मंडोष्टगुण उच्यते ॥ १६७ ॥

अर्थ– १ धनिया २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ५ सैंधानमक ६ मूंग ७ चावल ८ हींग और ९ तेल इन नौ औषधोंमेंसे प्रथम तेलमें हींग मिलायके उसमें मूंग एक पल तथा चांवल दो पल लेकर दोनोंको भूने। फिर दूसरी औषध रही हुई वो थोडी २ खारी और चरपेरे न होवे इस प्रकार मूंग चांवलोंमें मिलायके चौदह गुने पानीमें डालके औटावे। जब सीज जावे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसको पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणोंमें तेज आता है तथा बस्तिका शोधन होकर रुधिरकी वृद्धि होती है ज्वर और वातादि तीन दोष ये दूर होवें। इसको अष्टगुण मंड कहते हैं ॥

वाट्यमंड कफपित्तादिरोगोंपर ।

सुकंडितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमंडो यवैर्भवेत् ॥
कफपित्तहरः कंठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६८ ॥

अर्थ–उत्तम जवोंको उत्तम रीतिसे कूट फटककर भूने फिर बीन फटक कर उसमें चौदह गुने पानीमें चढायके सिजावे फिर उस पानीको छानके सेवन करे इसको वाट्यमंड कहते हैं यह मंड पीवे तो कफ पित्तका प्रकोप दूर होवे कंठको हितकारक होय है तथा रक्तपित्तका प्रकोप दूर होय ॥

१–१ क्षुधानाशक २ मूत्रबस्तिशोधक ३ बलवर्द्धक ४ रक्तवर्द्धक ५ ज्वरनाशक ६ कफनाशक ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने ।

लाजामंड कफपित्तज्वरादिकोंपर ।

लाजैर्वा तंडुलैर्भृष्टैर्लाजमंडः प्रकीर्तितः ॥
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १६९ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ—धानकी भूनी खील अथवा चांवलोंको भूनके उसमें चौदह गुना पानी डालके औटावे । फिर उसको पसायके मांड निकाल लेवे इसे लाजमंड कहते हैं । यह मंड पीवे तो कफपित्तका प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय तथा जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगे सो दूर हो ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितमाथुरीभाषाटीकायां चिकित्सास्थाने द्वितीयोध्यायः ॥२॥

अथ तृतीऽयोध्यायः ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग् जलमुष्णं विनिःक्षिपेत् ॥
मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥
सस्यचूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥
मधुश्वेतागुडादींश्च क्काथवत्तत्र निःक्षिपेत् ॥ २ ॥

अर्थ—एक पल औषधोंको लेकर अच्छी रीतिसे कूट एक कुडव[1] प्रमाण जलको किसी पात्रमें भरके जब अच्छी तरह गरम हो जावे तब पूर्वोक्त कुटी हुई औषधोंको डालके खूब औटावे । फिर उस पानीको कपडेसे छान लेवे । इसको फांट तथा चूर्णद्रव कहते हैं । इस फांटके पीनेका प्रमाण दो पल है । तथा उस फांटमें सहत, मिश्री, खांड, गुड आदि शब्दसे अन्य पदार्थ डालना होय तो जिस प्रकार काढेमें सहत मिश्री आदिका डालना लिखा है उसी प्रमाण इस जगह फांटमें डालना चाहिये ॥

मधूकादिफांट वातापित्तज्वरपर ।

मधूकपुष्पं मधुकं चंदनं सपरूषकम् ॥
मृणालं कमलं लोध्रं गंभारीं नागकेशरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान् कोष्णे जले क्षिपेत् ॥
सितामधुयुते पेयः फांटो वासौ हिमोथ वा ॥ ४ ॥

१ कुडवके व्यावहारिक तोले सोलह होते हैं ।

वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान् ॥
रक्तपित्तमदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

अर्थ-१ महुएके फूल २ मुलहटी ३ लाल चंदन ४ फालसे[1] ५ कमलकी डंडी ६ कमल ७ लोध ८ कंभारी ९ नागकेशर १० त्रिफला ११ सारिवा १२ मुनक्का दाख और १३ धानकी खील। इन तेरह औषधोंको कूट कर इसमेंसे १ पल लेवे। फिर चार पल पानीको चूल्हेपर चढायके खूब गरम करे। जब जल खदबदाने लगे तब उक्त कुटी हुई १ पल औषधको इसमें गेर देवे। जब खूब औट जावे तब उस पानीको उतारके छान लेवे। इसको मधुकादि फांट कहते हैं। यह फांट खांड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मदरोग ये दूर होवें इसमें संदेह नहीं है। तथा ये तेरह औषध रात्रिमें पानीमें भिगो देवे। प्रातःकाल उस पानीको छानके सेवन करे इसको हिमविधि कहते हैं। इस हिमके पीनेसे यहभी फांटके समान गुण करता है ॥

आम्रादिफांट पिपासादिकोंपर।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशृंगप्ररोहकैः ॥
उशीरेण कृतः फांटः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः ॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान् मूर्छां जयति दुस्तराम् ॥ ६ ॥

अर्थ-१ आम और २ जामुन इनके कोमल पत्ते और बडकी कलीके भीतरके पत्ते तथा उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंका पूर्व रीति फांट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छाका रोग दूर हो ॥

मधुकादि फांट पित्ततृष्णादिकोंपर।

मधूकपुष्पगंभारीचंदनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षया च कृतः फांटः शीतः शर्करया युतः ॥
तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्छाभ्रमान् जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-१ महुएके फूल २ कंभारी ३ लाल चंदन ४ नेत्रवाला ५ धनिया और ६ दाख इन छः औषधोंका फांट करके पीवे तो प्यास पित्त दाह मूर्छा और भ्रम ये दूर हों ॥

मंथकल्पना।

मंथोऽपि फांटभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते ॥

अर्थ-मंथभी फांटकाही भेद है इसीसे उसकोभी इसी जगह कहते हैं ॥

---

[1] फालसे मेवामें प्रसिद्ध हैं।

मंथकी विधि ।

जले चतुष्पथे शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं पिबेत् ॥
मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ॥ ९ ॥

अर्थ—१ पल औषधको अच्छी रीतिसे कूटे । फिर चार पल शीतल पानीको मटकेमें भरके उसमें उस कुटी हुई औषधको डालके रईसे मथन करे । जब अत्यंत झाग उठे तब उसको छान ले इसे मंथ कहते हैं । इस मंथके पीनेकी मात्रा दो पलकी है ॥

खर्जूरादिमंथ सर्वमद्यविकारोंपर ।

खर्जूरदाडिमं द्राक्षा तिंत्तिडीकाम्लिकामलैः ॥
सपरूषैः कृतो मंथः सर्वमद्यविकारनुत् ॥ १० ॥

अर्थ—१ खजूर २ अनारदाने ३ दाख ४ तंतडीक ५ इमली ६ आमले और ७ फालसे इन सात औषधोंको कूटके एक पल लेवे । फिर चार पल शीतल जलको मटकेमें भरके उस कुटी हुई औषधको डालके रईसे खूब मथे । फिर उस पानीको नितारके छान लेय । इसको पीवे तो संपूर्ण मद्यविकार, सुपारीका मद, कोदों धान्यका मद तथा आसवोंका मद ये सब मद दूर होंय ॥

मसूरादिमंथ वमनरोगपर ।

क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमांभसा ॥
मथिता वारयंत्याशु छर्दि दोषत्रयोद्भवाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—साबत मसूरको भुनायके चून कराय ले । फिर पके हुए अनारदानेका पानी करके उसमें उस मसूरके चूनको मिलायके पीवे तो वातपित्तकफसे उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो ॥

यवोंका मंथ तृष्णादिकोंपर ।

प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः ॥
मथिता वारयंत्याशु छर्दि दोषत्रयोद्भवाम् ॥ १२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ—साबत जवोंको भुनायके चून पिसवाय ले । उसको शीतल जलमें इस प्रकार मिलावे जिसमें न बहुत पतला होवे न बहुत गाढा होवे । फिर मथके उसमें घी मिलायके पीवे तो प्यास, दाह और रक्तपित्त ये दूर हों ॥

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितशार्ङ्गधरमाथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे चिकित्सास्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

हिमकल्पना।

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ॥
निःशोषितं हिमः सः स्यात्तथा शीतकषायकः ॥
तन्मानं फांटवज्ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ १ ॥

अर्थ–एक पल औषधको जवकूट कूटके फिर छः पल जलको किसी मटकेमें भरके उसमें उस कुटी हुई औषधको मिलायके रात्रिमें भिगो देवे। प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे। इसको हिम अथवा शीत काढा इस प्रकार कहते हैं। इसके पीनेका मान फांटके समान दो पल जानना॥

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर।

आम्रं जंबू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥
हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ॥ २ ॥

अर्थ–१ आमकी छाल २ जामुनकी छाल और ३ कोहकी छाल इन तीन छालोंको एक पल प्रमाण लेकर चूर्ण करे। फिर छः पल पानी किसी मिट्टीके पात्रमें भरके पूर्वोक्त कूटी हुई छालोंके चूर्णको उसमें भिगो देवे रात्रिभर भीगने दे प्रातःकाल उस पानीको छान सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दूर होवे॥

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर।

मरीचं मधुयष्टिं च काकोदुंबरपल्लवैः ॥
नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाछर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ मुलहटी ३ कटूमरके पत्ते और ४ नीला कमल इन चार औषधोंका एक पल ले सबको जौकूट करे। फिर छः पल पानीको एक पात्रमें भरके उसमें पूर्वोक्त औषधोंको भिगोय देवे। प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे तो प्यास और वमन इनको दूर करे॥

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर।

नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा॥ उशीरं पद्मकं चैव काश्मरीं च परूषकम्॥ ४॥ एतच्छीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत्॥ स प्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः॥ ५॥

अर्थ-१ नीला कमल २ खेरंटीकी छाल ३ दाख ४ महुआ ५ मुलहटी ६ नेत्रवाला ७ आख ८ कंभारी और ९ फालसे इन नौ औषधोंका पूर्व विधिसे हिम बनायके पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्छा और प्यास ये रोग दूर होवें ॥

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर।

अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त विधिसे गिलोयका हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे ॥

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर।

वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वरान् जयेत् ॥

अर्थ-अडूसेका हिम करके पीवे तो खांसी और रक्तपित्तज्वर ये दूर हों ॥

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर।

प्रातः सशर्करो पेयो हिमो धान्याकसंभवः ॥
अंतर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ॥ ७ ॥

अर्थ-रात्रिको पानीमें धनियेको भिगोय देवे। प्रातःकाल उस पानीको खांड मिलायके पीवे तो शरीरके भीतरका दाह और प्यास ये दूर हों तथा मूत्रादि मार्गोंका शोधन होय ॥

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥
रक्तपित्तज्वरं दाहं तृष्णां शोथं च नाशयेत् ॥ ८ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ-१ धनिया २ आंवले ३ अडूसा ४ दाख और ५ पित्तपापडा इन पांचोंका हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोष इनको दूर करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

कल्ककी कल्पना।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ॥
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ १ ॥

कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ॥
सिताгुडौ समौ दद्याद्द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

अर्थ-गीली औषधको चटनीके समान बारीक पीसे। यदि सूखी औषध होय तो उसमें पानी डालके पीसनी चाहिये इसको कल्क कहते हैं इसके सेवन करनेकी मात्रा १ कर्ष अर्थात् एक तोलेकी कही है, तथा उसके दो नाम हैं एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप। यदि कल्कमें सहत घी और तेल डालने हों तो कल्कसे दुगुने डाले। खांड और गुड ये पदार्थ डालने हों तो कल्कके समान डाले। दूध पानी आदि शब्दसे पतले पदार्थ डालने हों तो कल्कके चौगुने डालने चाहिये ॥

वर्द्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर।

त्रिवृद्ध्या पंचवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथ वा कणाः ॥ पिबेत्पिष्ट्वा दशदिनं तास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥ एवं विंशद्दिनैः सिद्धं पिप्पली वर्द्धमानकम् ॥ अनेन पांडुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः॥ उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यंत्युरोग्रहाः ॥ ४ ॥

अर्थ-आज तीन, कल्ह छः, परसों नौ, इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पांचसे वा सातसे वृद्धि करके पीपर बारीक कल्क करे। उस कल्कमें कल्कसे चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे। फिर जिस क्रमसे बढाई हो उसी क्रमसे दश दिनमें घटाय लावे। इस प्रकार वीस दिन पीपल पीवे तो पांडुरोग, वातरक्त, खांसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवें। इस औषधको वर्धमानपीपल कहते हैं। मथुरा आदिके प्रान्तोंमें उस पीपलको विषमज्वरमें दूधमें औटायकर देते हैं ॥

निंबकल्क व्रणादिकोंपर।

लेपान्निंबदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ॥
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंको पानीसे बारीक पीस कल्क करे। उस कल्कका लेप व्रण-

---

१ दूध अथवा पानीमें पीपल पीसके कल्क करे। फिर उसमें दूध अथवा पानी डालनेका हो वह दो तीन दिन चार २ तोले मिलावे। फिर कल्कसे चौगुणा मिलावे परंतु वैद्यकी संप्रदाय दूध मिलानेकी है। इस मथुरा आगरेके वैद्य पीपलोंको क्रमसे बढाय आधा दूध और आधा पानी डालके औटाते हैं। जब जलमात्र जरजावे तब उस दूधमेंही उन पीपलोंको पीसके देते हैं। कोई पीपलोंको निकालके फैंक देते हैं परंतु फैंकनेसे कुछ गुण नहीं होता। यह विधि प्रायः विषमज्वर और मंदाग्निपर करते हैं।

(घाव) पर करनेसे तथा इसकी टिकिया बांधनेसे उस व्रणका शोधन होकर घाव भर जाता है तथा इस कल्कको खानेसे वमन, कुष्ठ और पित्त कफकी बीमारी संबंधी कृमिरोग दूर हो ॥

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर ।

महानिंबजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ-बकायनकी जडको पानीसे पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो वादीके रोगोंमें कही है वह दूर होवे ॥

रसोनकल्क वायु और विषमज्वरपर ।

शुद्धकल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ॥
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान् विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

अर्थ-लहसनका कल्ककरके उसमें तिलका तैल मिलायके पीवे तो दारुण वायुका रोग और विषमज्वर दूर होवे ॥

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर ।

पक्वकंदरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता ॥ पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ८ ॥ तदुग्रगंधनाशाय रात्रौ तक्रे विनिःक्षिपेत् ॥ अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥९॥ तन्मध्ये पंचमांशेन चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ सौवर्चलं यवानी च भर्जितं हिंगु सैंधवम् ॥ १० ॥ कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत् ॥ एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥ खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानं ततः कुर्यादेरंडश्टृतमन्वहम् ॥१२॥सर्वांगैकाङ्गजं पातमर्दितं चापतंत्रकम् ॥ अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभं च गृध्रसीम् ॥ १३ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीञ्जयेत् ॥ अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ॥ १४ ॥ रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम्॥ मद्यं मांसं तथाम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ १५॥

अर्थ-उत्तम एक पोती लहसनकी गांठोंको लाकर उनके ऊपरका छिलका उतारके दूर करे। फिर उस लहसनकी वास दूर करनेको रात्रिमें छाछमें भिगोकर रख छोडे। प्रातःकाल उनको निकाल शिल और लोढेसे बारीक पीसकर कल्क

करे । फिर १ संचरनोन २ अजमोद ३ भूनी हुई हींग ४ सेंधानमक ५ सोंठ ६ काली मिरच ७ पीपल और ८ जीरा इन आठ औषधोंके चूर्णको उस लहसनके कल्कका पांचवां हिस्सा लेकर मिलावे । सबको एकत्र कर अंडीके जडका काढा करके उस कल्कमें १ तोला मिलायके पीवे तथा अपनी शक्तिको विचारके और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित होवे उसी प्रकार सेवन करे, तो सर्वांगवात एकांगवात मुखका टेढा होना ऐसी अर्दित वायु धनुर्वात मृगी उन्माद ऊरुस्तंभ वायु गृध्रसी वायु उर पीठ कमर तथा पसवाडा इन सबका शूल और कृमिरोग इनको दूर करे । लहसनका खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ धूपमें रहना क्रोध करना, अत्यंत जल पीना दूध गुड इन सब पदार्थोंको सर्वथा त्याग देवे । तथा मद्यपान, मांसभक्षण, खटाईवाले पदार्थ इनको सदैव सेवन करा करे ये पथ्य हैं ॥

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च ॥
एतत्कल्कश्च सक्षौद्र ऊरुस्तंभनिवारणः ॥ १६ ॥

अर्थ–१ पीपर २ पीपरामूल ३ भिलाएके फल इन तीन औषधोंको पानीमें पीसके कल्क करके उसमें सहत मिलायके सेवन करनेसे ऊरुस्तंभ वायु दूर हो ॥

विष्णुक्रान्ताकल्क परिणामशूलपर ।

विष्णुक्रांताजटाकल्कः सिताक्षौद्रयुतैर्घृतः ॥
परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १७ ॥

अर्थ–विष्णुक्रांता (कोयल) की जडका कल्क करके उसमें खांड और सहत तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणाम शूल सात दिनोंमें दूर होवे ॥

दूसरा शुंठीकल्क ।

शुंठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् ॥
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ तिल समान ले दोनोंकी बराबर गुड लेवे । इन तीन औषधोंका कल्क करके गौके चौगुने दूधमें मिलायके सेवन करे तो परिणाम शूल तथा आमवात ये दूर होवें । अन्नके पचनेके समय जो शूल होता है उसको परिणाम शूल कहते हैं ॥

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर ।

अपामार्गस्य बीजानि कल्कस्तंडुलवारिणा ॥
पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः ॥ १९ ॥

अर्थ–ओंगा (चिराचिरा) के बीजोंका कल्क करके चांवलोंके धोवनके पानीसे पीवे तो खुनी बवासीर दूर होय ॥

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर।

बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः ॥
मधुक्षीरयुतः कुर्याद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ २० ॥

अर्थ–झरबेरीकी जड और तिल इनके कल्क पृथक् पृथक् तयार करके दोनोंको मिलाय उसमें सहत मिलाय गौके दूधमें अथवा बकरीके दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ॥

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर।

कूष्मांडकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत् ॥
रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–बेरकी अथवा पीपरकी लाख दो तोलेका बारीक चूर्ण कर चौगुना पेठेका रस मिलायके पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोगसे छाती दूखे वह और क्षयरोग दूर होय ॥

तंदुलीयकल्क रक्तप्रदरपर।

तंदुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसांजनः ॥
तंदुलोदकसंपीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥

अर्थ–चौलाईकी जडको पीस कल्क करके उसमें सहत और रसोत मिलाय चावलोंके धोवनसे पीवे तो स्त्रियोंका रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोगमें स्त्रीकी योनिसे लाल २ पानी गिरा करता है) ॥

अंकोलकल्क अतिसारपर।

अंकोलमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तंदुलांबुना ॥
अतिसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥

अर्थ–अंकोल वृक्षकी जडको कूट पीस कल्क करे उसमें सहत मिलायके चांवलोंके धोवनके जलसे पीवे तो अतिसार दूर होय। तथा सिंगिया विषादिका विष और सर्पादिकोंका विष येभी दूर हों ॥

---

१ चांवल धोवनमें पीसे अथवा कल्कका चौगुना चांवलोंका धोवन लेवे। २ कल्ककी अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे, इस प्रकार पानी दूध इत्यादिक सर्वत्र चौगुने लेने।

कर्कोटिकाकल्क विषोंपर ।

वंध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ॥
घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥

अर्थ—१ वांझ ककोडेकी जड २ पाढकी जड और ३ बेलकी जड इन तीन जडोंमेंसे जो मिले उस जडको कूट पीस कल्क करके घीमें मिलायके पीवे तो बच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकोंका विष दूर होवे ॥

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर ।

अभयासैंधवकणाशुंठीकल्कस्त्रिदोषहा ॥
पथ्यासैंधवशुंठीभिः कल्को दीपनपाचनः ॥ २५ ॥

अर्थ—१ जंगी हरड २ सैंधानमक ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार औषधोंके चूर्णको पानीमें पीसके कल्क करे । इस कल्कके पीनेसे वात, पित्त, कफ इनका प्रकोप दूर होय । उसी प्रकार १ छोटी हरड २ सैंधानमक और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके पीवे तो अन्नका पचन होय तथा अग्नि प्रदीप्त होवे ॥

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर ।

त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीययवानिका ॥
कंपिल्लकं विडंगं च गुडश्च समभागकः ॥
तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत् कृमिगणापहम् ॥ २६ ॥

अर्थ—१ निसोथ २ पलास (ढाक) के बीज ३ किरनी अजमायन ४ कंषीला[1] और ५ वायविडंग इन पांच औषधोंका चूर्ण करउसके समान गुड मिलायके सबको मिलायके कल्क करे । इसको छाछमें मिलायके पीवे तो कृमि रोग दूर होय । ग्रंथान्तरमें इस प्रकार है कि किरमानी अजमायनको प्रातःकाल शीतल जलसे पीवे तो कृमिविकार दूर होय ॥

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर ।

वननीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः ॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापि तद्विधः ॥ २७ ॥

अर्थ—तिलोंको पीस उसका मक्खनमें कल्क करके सेवन करे । अथवा नागकेशरको पीस मक्खन और मिश्रीमें कल्क करके पीवे तो खूनी बवासीरके कारण जो रुधिर निकला करे वह बंद हो जावे ॥

---

१ कषीला लालवर्णका मिट्टीकासा चूर्ण होता है । २ कल्क एक भाग लेके दुगनी लोनीमें मिलायके सेवन करे ।

मसूरकल्क संग्रहणीपर ।

पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुंठीशलाटुजः ॥
जयेत्संग्रहणीं तद्वत्तक्रेण बृहतीभवः ॥ २८ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ-१ सोंठ और २ छोटा कच्चा बेलका फल इन दोनों औषधोंका कल्क करे। फिर मसूरका यूष जो प्रथम कह आये हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्कको मिलायके पीवे । इसी प्रकार कटेरीके फलका कल्क करके मसूरके यूषमें मिलायके पीवे तो संग्रहणीका रोग दूर हो ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

चूर्णकी कल्पना ।

अत्यंतशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ॥ तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षौद्रस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥ १ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् ॥ चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ २ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः ॥ पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ३ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् ॥ पित्तवातकफातंके त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४ ॥ यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति ॥ अनुपानबलादंगे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ५ ॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत् ॥ भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ६ ॥

अर्थ--अत्यंत सूखी औषधको कूट पीस कपड छान करे उसको चूर्ण कहते हैं। उस चूर्णके दो नाम हैं एक रज, दूसरा क्षोद, इस चूर्णके भक्षणकी मात्रा एककर्ष अर्थात् तोले भरकी है । यदि चूर्णमें गुड मिलाना होय तो चूर्णकी बराबर डालना चाहिये । यदि हींग डालनी होय तो घीमें भूनके हींग डाले तो विकलता नहीं करे । घी और सहत आदि चिकने पदार्थके साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूर्णसे दुगुणे लेवे । तथा दूध गोमूत्र पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्णमें डालनी

होय तो चूर्णसे चौगुने लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे । चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तौ तीन पल लेवे। वातरोग होय तो दो पलके अनुमान लेवे । और कफके रोगमें एक पल लेवे तो औषधि उत्तमताके साथ देहमें फैल जाती है। इस विषयमें दृष्टांत देते हैं कि जैसे जलमें तेलकी बूंद डालनेसे फैल जाती है उसी प्रकार अनुपानके बलसे देहमें औषध फैल जाती है । तथा चूर्णमें नींबूके रसके अथवा दूसरी वनस्पतिके रसका पुट देना होवे तो चूर्ण रसमें डूब जाय तबतक पुट देवे । इस प्रकार सब चूर्णोंके बनानेकी विधि जाननी ॥

आमलक्यादिचूर्ण सर्वज्वरोंपर ।

अमलं चित्रकः पथ्या पिप्पली सैंधवं तथा ॥
चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥
भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः ॥ ७ ॥

अर्थ–१ आमले २ चीतेकी छाल ३ जंगी हरड ४ पीपल और ५ सैंधानमक ये पांच वस्तु समान भाग लेकर चूर्ण करके सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हो। यह दस्तावर है, रुचि प्रगट करता है तथा कफको दूर करे, अग्निप्रदीप्त हो और अन्नका पचन होवे ॥

पिप्पलीचूर्ण ज्वरपर ।

मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत्कासज्वरापहम् ॥
हिक्काश्वासहरं कंठच्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–एक मासे पीपलके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो खांसी, ज्वर, हिचकी, प्यास ये दूर हों । यह चूर्ण कंठको हितकारी है, प्लीह रोगको दूर करे तथा बालकोंको उपयोगी पडता है ॥

त्रिफलादिचूर्ण ज्वरपर ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ ॥ ९ ॥ चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ॥ त्रिफला मेहशोथघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ १० ॥ दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी ॥ सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयाञ्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–हरंड एक बहेडा दो आमले चार इन तीन औषधोंका चूर्ण करे । इसे

---

१ तात्पर्य यह है कि–उत्तम मोटी हरड दो कर्षकी होती है, बहेडा एक कर्षका होता है

त्रिफला कहते हैं । यह त्रिफला चूर्ण सेवन करनेसे प्रमेह सूजन विषमज्वर कफ पित्त और कुष्ठ ये दूर हों अग्नि प्रदीप्त हो । यह त्रिफला रसायन है । घी और सहत ये दोनों विषम भाग ले एकत्र कर उसमें इस त्रिफलेके चूर्णको मिलाय सेवन करे तो संपूर्ण नेत्रके विकार दूर हों ॥

त्र्यूषणचूर्णकफादिकोंपर ।

पिप्पली मरिचं शुंठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ॥
जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान् ॥ १२ ॥

अर्थ–१ पीपल २ काली मिरच और सोंठ इन तीन औषधोंको त्र्यूषण ऐसा कहते हैं इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो कफ मेद कुष्ठ पीनस अरुचि आमवात प्रमेह गोला और कंठरोग ये दूर हों ॥

पंचकोलचूर्ण रुच्यादिकोंपर ।

पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पंचकोलमिति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम् ॥
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ–१ पीपल २ चव्य ३ सोंठ ४ पीपरामूल और ५ चीतेकी छाल इन पांच औषधोंको पंचकोल कहते हैं । इस पंचकोलका चूर्ण करके सेवन करे तो यह पाचन और दीपन है । इससे अफरा प्लीह गोलेका रोग शूल और कफोदर ये दूर होंय ॥

त्रिगंध तथा चतुर्जातचूर्ण ।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरम् ॥
त्रिगंधं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघुपित्तकृत् ॥
वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ–छोटी इलायची, दालचीनी और पत्रज इन तीन औषधोंको त्रिगंध कहते हैं इसमें चौथी नागकेशर मिलावे तो इसीको चतुर्जात कहते हैं । तहां त्रिगंध और

और आमला अर्धकर्षका तोलमें होता है इसीसे एक हरड दो बहेडे चार आमले लेनेसे सम भाग हो जाता है । यह मत बहुवैद्यसंमत है । कोई एक भाग हरड दो भाग बहेडा और चार भाग आंवले लेते हैं ।

१ जो देहकी वृद्धावस्था और रोगोंका नाश करे उसको रसायन कहते हैं । २ घी और सहत समान लेनेसे विष हो जाता है वह देहमें अनेक बिकार करता है । अत एव विषम-भाग करके लेना चाहिये ।

चतुर्जात इनका चूर्ण वीर्य करके रूक्ष, गरम, पाककालमें हलका, पित्तको बढानेवाला, कांतिका दाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण और पित्तकफ संबंधी रोगोंको दूर करनेवाला है ॥

कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर ।

कृष्णारुणामुस्तकशृंगिकाणां तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकेण ॥
ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम् ॥१६॥

अर्थ–१ पीपल २ अतीस ३ नागरमोथा और ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंके चूर्णको सहतमें मिलायके बालकको चटावे तो श्वास, खांसी, वमन इन उपद्रवोंकरके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय ॥

जीवनीयगण तथा उसके गुण ।

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥
मेदा चान्या महामेदा जीवंती मधुकं तथा ॥ १७ ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम् ॥
जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः ॥ १८ ॥
स्तन्यकृद्बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः ॥
रक्तपित्तं क्षयं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–१ काकोली २ क्षीरकाकोली ३ जीवक ४ ऋषभक ५ मेदा ६ महामेदा ७ जीवंती ८ मुलहटी ९ मुद्गपर्णी १० माषपर्णी इन दस औषधोंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं । यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला, शरीरको पुष्ट करनेवाला, स्त्रीगमनमें हर्ष देनेवाला स्निग्ध तथा शीतल होकर प्यास रक्तपित्त घाव शोष ज्वर दाह और वायु इनका नाश करे ॥

अष्टवर्ग तथा उनके गुण ।

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥
ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः ॥ २० ॥
अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥ २१ ॥

अर्थ–१ मेदा २ महामेदा ३ काकोली ४ क्षीरकाकोली ५ जीवक ६ ऋषभक ७ ऋद्धि और ८ वृद्धि ये आठ औषधी समीप नहीं मिलतीं किन्तु काश्मीर काबुल आदि देशोंमें और हिमालय पर्वतपर तलाश करनेसे मिलती हैं अत एव इनके अभावमें औषध कहते हैं–मेदा और महामेदा इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें असगंध लेनी, जीवक और ऋषभकके

अभावमें विदारीकंद लेना और ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनोंके अभावमें वाराहीकंद वैद्यको लेना चाहिये । इस अष्टवर्गकेभी गुण जीवनीयगणके समान जानने ॥

लवणपंचकचूर्ण तथा गुण ।

सिंधुसौवर्चलं चैव बिडं सामुद्रिकं गडम् ॥ एकद्वित्रिचतुःपंच लवणानि क्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥ तेषु मुख्यं सैंधवं स्यादनुक्ते तच्च योजयेत् ॥ सैंधवाद्यं रोमकांतं ज्ञेयं लवणपंचकम् ॥ २३ ॥

मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं मलापहम् ॥
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

अर्थ–१ सैंधानमक २ संचरनमक ३ बिडनमक[1] ४ सामुद्रनमक[2] और ५ साम्हरनमक इन पांचोंमें पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला दूसरा तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण एवं पहला दूसरा तीसरा चतुर्थ और पांचवां इनको पंचलवण कहते हैं तथा इन पांचोंमें सैंधानमक उत्तम है । अतएव जिस जगह लवण डाले ऐसा विना नामके कहा हो वहांपर सैंधानमक डालना चाहिये । यह लवणपंचक मधुर है । इससे मूत्र और मल अच्छी रीतिसे उतरते हैं । ये पंचलवण स्निग्ध और सूक्ष्म होकर बलहीन करते हैं । उष्णवीर्यवाले होनेसे अग्नि प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण हैं अतएव कफ पित्तको बढाते हैं ॥

क्षार गुल्मादिकोंपर ।

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चाऽन्येपि गुल्माशोंग्रहणीरुक्छिदः सराः ॥
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

अर्थ–१ सज्जीखार २ जवाखार ये दोनों खार अग्निके समान पाचक हैं इस प्रकार जानना । तथा आक, इमली, ओंगा, थूहर, केला, अमलतास, मोखा इत्यादिक जो अन्य औषधोंके खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करते हैं । दस्तकारक होकर अग्निको दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार पुरुषत्व और शर्करा पथरीको नष्ट करते हैं ॥

---

१ प्रसारणीका कल्क करके नमकके साथ अग्निके संयोग करके जो होवे वह कृत्रिम बिडनमक कहलाता है । २ दक्षिण समुद्रके समीप उत्पन्न होनेवालेको सामुद्र नमक कहते हैं ।

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर।

त्रिफला रजनीयुग्मं कंटकारीयुगं सटी ॥ त्रिकटु ग्रंथिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ २७ ॥ कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च वालकम् ॥ निंबः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥ २८ ॥ यवानींद्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा ॥ वचा त्वक् पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः ॥ २९ ॥ शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडंगं तगरं तथा ॥ चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ ३० ॥ जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशरोचना ॥ पुंडरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ ३१ ॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ॥ सर्वचूर्णस्य चार्धांशं किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्च निखिलान् हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥ पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ ३४ ॥ शीतज्वरैकाहिकादीन् मोहं तंद्रां भ्रमं तृषाम् ॥ श्वासं कासं च पांडुं च हृद्रोगं हंति कामलाम् ॥३५॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ॥ शीतांबुना पिबेद्धीमान् सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ॥ तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ हलदी ५ दारुहलदी ६ छोटी कटेरी ७ बडी कटेरी ८ कचूर ९ सोंठ १० मिरच ११ पीपल १२ पीपरामूल १३ मूर्वा १४ गिलोय १५ धमासा १६ कुटकी १७ पित्तपापडा १८ नागरमोथा १९ त्रायमाण २० नेत्रवाला २१ नीमकी छाल २२ पुहकरमूल २३ मुलहटी २४ कूडाकी छाल २५ अजमायन २६ इन्द्रजौ २७ भारंगी २८ सहजनेके बीज २९ फिटकरी ३० वच ३१ दालचीनी ३२ पद्माख ३३ चंदन ३४ अतीस ३५ खरेंटी ३६ शालपर्णी ३७ पृष्ठपर्णी ३८ वायविडंग ३९ तगर ४० चीतेकी छाल ४१ देवदार ४२ चव्य ४३ पटोलपत्र ४४ जीवक[1] ४५ ऋषभक ४६ लौंग ४७ वंशलोचन ४८ सपेद कमल

---

१ जीवक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते अतएव इनके प्रतिनिधिमें विदारीकंद लेवे।

४९ कांकोली ५० पत्रज ५१ जावित्री तथा ५२ तालीसपत्र इन बावन औषधोंको समान भाग ले और सब औषधोंका आधा चिरायता मिलावे । सबको कूटके दरदरा चूर्ण करे, इसको सुदर्शन कहते हैं । इस चूर्णको शीतल जलसे सेवन करे तो वात पित्त कफ द्वंद्व संनिपात इनसे होनेवाले ज्वर विषमज्वर आगंतुकज्वर धातुजन्यज्वर मानसज्वर इत्यादि संपूर्ण ज्वर शीतज्वर एकाहिक आदिज्वर मोह तंद्रा भ्रम तृषा श्वास खांसी पांडुरोग हृदयरोग कामला त्रिक पीठ कमर जानु पसवाडा इनका शूल ये सब दूर होवें । जैसे सुदर्शन चक्र दैत्योंका नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब ज्वरोंका नाश करता है ॥

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखांसीपर ।

कासश्वासज्वरहरा त्रिफला पिप्पलीयुता ॥
चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आंवला और ४ पीपर इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलायके चाटे तो मलका भेद हो (दस्त साफ हो) कर अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खांसी तथा ज्वर ये दूर हों ॥

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर ।

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शुंठी शृंगी च पौष्करम् ॥
चूर्णमेषां च मधुना शृंगवेररसेन वा ॥ ३९ ॥
लिहेज्ज्वरहरं कंठयं कासश्वासारुचीर्जयेत् ॥
वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥ ४० ॥

अर्थ-१ कायफल २ नागरमोथा ३ कुटकी ४ सोंठ ५ काकडासिंगी और ६ पुहकरमूल इन छः औषधोंका चूर्ण करके सहत अथवा अदरखके रससे सेवन करे तो ज्वर दूर होवे, तथा खांसी, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल और क्षयका रोग ये दूर होवें ॥

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी मुस्ता त्रिकटुकं शठी ॥
समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४१ ॥
आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम् ॥
शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-१ कायफल २ पुहकरमूल ३ काकडासिंगी ४ नागरमोथा ५ सोंठ ६ मि-

---

१ काकोलीके अभावमें मुलहटी डालनी चाहिये ।

रच ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधोंको पृथक् २ कूटके अथवा सबको एकही जगह कूट चूर्ण करे । फिर अदरखके रससे अथवा सहतके साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल, वादी, अरुचि, ओकारी, खांसी, श्वास और क्षयरोग ये दूर होवें ॥

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोंपर ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह ॥
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफांतकृत् ॥ ४३ ॥

अर्थ-१ कायफल २ पुहकरमूल ३ पीपल ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतसे चाटे तो श्वास, खांसी और कफज्वर इनको नष्ट करे ॥

शृंग्यादिचूर्ण बालकोंके कासज्वरपर ।

शृंगी प्रतिविषा कृष्णा चूर्णिता मधुना लिहेत् ॥
शिशोः कासज्वरच्छर्दिशांत्यै वा केवला विषा ॥ ४४ ॥

अर्थ-१ काकडासिंगी २ अतीस और ३ पीपर इन तीन औषधोंका चूर्ण कर सहत मिलाय बालकोंको चटावे । अथवा एक अतीसकाही चूर्ण करके सहत मिलायके चटावे तो बालककी खांसी, ज्वर और वमन ये दूर होवें ॥

यवक्षारादिचूर्ण बालकोंके पांचों खांसीपर ।

यवक्षारविषाशृंगीमागधीपौष्करोद्भवम् ॥
चूर्णंक्षौद्रयुतं लीढं पंचकासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥

अर्थ-१ जवाखार २ अतीस ३ काकडासिंगी ४ पीपल ५ पुहकरमूल इन पांच औषधोंका चूर्ण बालकोंको सहतमें चटावे तो पांच प्रकारकी खांसीका रोग दूर हो ॥

शुंठ्यादिचूर्ण आमातिसारपर ।

शुंठीप्रतिविषाहिंगुमुस्ताकुटजचित्रकैः ॥
चूर्णमुष्णांबुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ अतीस ३ हींग ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ और ६ चीतेकी छाल इन छः औषधोंके चूर्णको चौगुने गरम जलसे पीवे तो आमातिसार दूर हो ॥

दूसरा हरीतक्यादिचूर्ण ।

हरीतकी प्रतिविषा सिंधुसौवर्चलं वचा ॥
हिंगु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥
आमातिसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम् ॥ ४७ ॥

अर्थ-१ जंगी हरड २ अतीस ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ वच और ६ भूनी हुई हींग इन छः औषधोंका चूर्ण करके गरमजलके साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे, तथा मलका अवष्टंभ होकर अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

लघुगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तमिंद्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा ॥
धातकीं चूर्णयेत्तक्रगुडाभ्यां पाययेत्सुधीः ॥ ४८ ॥
सर्वातिसारशमनं न्यरुणद्धि प्रवाहिकाम् ॥
लघुगंगाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-१ नागरमोथा २ इन्द्रजौ ३ बेलगिरी ४ लोध पठानी ५ मोचरस और ६ धायके फूल इन छः औषधोंका चूर्ण कर छाछमें गुड मिलाय उसके साथ इस चूर्णको पीवे संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवे । इस चूर्णको लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण मलका अवष्टंभ करनेवाला है ॥

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तारलूकशुंठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥ बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेंद्रयववत्सकैः ॥ ५० ॥ आम्रबीजं प्रतिविषा लज्जालुरिति चूर्णितम् ॥ क्षौद्रतंदुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका ॥ ५१ ॥ सर्वातिसारग्रहणी प्रशमं याति वेगतः ॥ वृद्धगंगाधरं चूर्णं सरिद्वेगविबंधकम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-१ नागरमोथा २ टेंटू ३ सोंठ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नेत्रवाला ७ बेलगिरि ८ मोचरस ९ पाढ १० इन्द्रजौ ११ कूडेकी छाल १२ आमकी गुठली १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह औषधोंका चूर्ण करके चांवलोंके धोवनके जलमें सहत मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहिका रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूर हों । इस चूर्णको वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण अतिसारके नदीसमान वेगकोभी दूर करता है ॥

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर ।

अजमोदा मोचरसं सशृंगवेरं सधातकीकुसुमम् ॥
मथितेन युतं पीतं गंगामपि वाहिनीं रुंध्यात् ॥ ५३ ॥

---

१ इस योगको कोई २ वैद्य हरडके बिनाभी बनाते हैं । २ 'तक्रशुंठीभ्यां' ऐसाभी पाठान्तर है ।

अर्थ–१ अजमोदा २ मोचरस ३ अदरख और ४ धायके फूल इन चार औषधोंका चूर्ण करके विना पानीके जमाये हुए गौदहीमें मिलायके पीवे तो गंगाके समानभी दस्तोंके वेगको यह बंद करता है ॥

मरीच्यादि चूर्ण संग्रहणीपर ।

तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसंभवम् ॥ ५४ ॥
चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति ॥
उदरप्लीहमंदाग्निगुल्माशोंनाशनं भवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ चीतेकी छाल ३ संचर नमक इन तीन औषधोंका चूर्ण छाछमें मिलायके नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीह, मंदाग्नि, गोला और बवासीर इनको दूर करे ॥

कपित्थाष्टक चूर्ण संग्रहणी आदिपर ।

अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता ॥ दाडिमं तिंतिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा ॥ ५६ ॥ अजमोदा च पिप्पल्यः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ॥ मरिचं जीरकं धान्यं ग्रंथिकं वालकं तथा ॥ ५७ ॥ सौवर्चलं यवानी च चातुर्जातं सचित्रकम् ॥ नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥ कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद्गलामयान् ॥ अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति ॥ ५९ ॥

अर्थ–कैथका गूदा ८ तोले, मिश्री ६ तोले और १ अनारदाना २ इमली ३ बेलगिरी ४ धायके फूल ५ अजमोद और ६ पीपली इन छः औषधोंको तीन तीन तोले लेवे १ काली मिरच २ जीरा ३ धनिया ४ पीपरामूल ५ नेत्रवाला ६ संचरनौन ७ अजमायन ८ दालचीनी ९ इलायचीके बीज १० तमालपत्र ११ नागकेशर १२ चीतेकी छाल और १३ सोंठ इन तेरह औषधोंको एक एक तोले लेवे । सबका बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं इसका सेवन करनेसे कंठके रोग अतिसार क्षय गोला और संग्रहणी ये दूर होंय ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण संग्रहणीपर ।

पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिंगकाः ॥ चित्रकं सारिवा पाठा सठी लवणपंचकम् ॥ ६० ॥ तच्चूर्णं पाययेद्दध्ना सुरयोष्णांबुनापि वा ॥ मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–१ पीपल २ कटेरी ३ बडी कटेरी ४ जवाखार ५ इन्द्रजौ ६ चीतेकी छाल ७ सारिवन ८ पाढ ९ कपूरकचरी और १० पांचों नमक इन चौदह औषधोंका चूर्ण कर दही मद्य अथवा गरम जलके साथ पीवे तो वातकी संग्रहणी नष्ट होय ॥

दाडिमाष्टक चूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर।

दाडिमी द्विपला ग्राह्या खंडा चाष्टपलानि वा ॥
त्रिगंधस्य फलं चैकं त्रिकटु स्यात्पलत्रयम् ॥ ६२ ॥
एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद्दाडिमाष्टकम् ॥
रुचिकृद्दीपनं कंठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम् ॥ ६३ ॥

अर्थ–अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी, इलायची और तमालपत्र ये तीनों मिलायके १ पल लेवे, तथा सोंठ, काली मिरच और पीपल ये तीनों औषध एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे। इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे मुखमें रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कंठको हितकारी और मलका अवष्टंभकर्ता होकर खांसी और ज्वरको दूर करे ॥

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर।

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा ॥ ६४ ॥ धान्यकं जीरकं शुंठी प्रत्येकं पलसंमितम् ॥ कर्षमात्राः तुगाक्षीरीत्वक्पत्रैलाश्च केसरम् ॥ ६५ ॥ प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम् ॥ अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम् ॥ मंदाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ६६ ॥

अर्थ–अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ २ पल लेवे १ पीपल २ पीपरामूल ३ अजमोदा ४ काली मिरच ५ धनिया ६ जीरा ७ सोंठ प्रत्येक एक एक पल लेवे। वंशलोचन १ तोला ले और १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायची ४ नागकेशर ये चार औषध आठ २ मासे लेवे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मंदाग्नि, पीनस और खांसी ये दूर हों ॥

तालीसादि चूर्ण अरुचिआदि रोगोंपर।

तालीसं मरिचं शुंठी पिप्पली वंशरोचना ॥ ६७ ॥ एकाद्वित्रि-

चतुःपंचकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत् ॥ एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् ॥ ६८ ॥ मृतं वंगं मृतं ताम्रं समभागानि कारयेत् ॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ ६९ ॥ तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥७०॥

अर्थ–१ तालीसपत्र एक तोले, २ सोंठ तीन तोले, ३ पीपल चार तोले, ४ वंशलोचन पांच तोले, ५ इलायचीके दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे, ७ वंगभस्म और ८ ताम्रभस्म ये दोनों आठ २ तोले और मिश्री ३२ तोले ले सबका चूर्णकर मिश्री मिलाय सेवन करे तो यह तालीस चूर्ण रोचक पाचक हो, खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीह, संग्रहणी और पांडुरोग इनको नष्ट करता है ॥

लवंगादिचूर्ण ।

लवंगं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ् नागकेशरम् ॥ ७१ ॥ जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् ॥ कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा ॥७२॥ चंदनं तगरं वालं कंकोलं चेति चूर्णयेत् ॥ समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योर्धा सिता भवेत् ॥ ७३ ॥ लवंगाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम् ॥ रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् ॥७४॥ हृद्रोगं कंठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् ॥ यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरःक्षतम् ॥ प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥ ७५ ॥

अर्थ–१ लौंग २ भीमसेनीकपूर[२] ३ इलायची ४ दालचीनी ५ नागकेशर ६ जायफल ७ खस ८ सोंठ ९ काला जीरा १० काली अगर ११ वंशलोचन १२ जटामांसी १३ नीलाकमल १४ पीपल १५ सपेद चंदन १६ तगर १७ नेत्रवाला और १८ कंकोल इन अठारह औषधोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे। चूर्णसे आधी मिश्री मिलावे। इस चूर्णको लवंगादि चूर्ण कहते हैं यह चूर्ण राजाओंको देनेके योग्य है। इस चूर्णसे अग्नि प्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है, शरीर पुष्ट होवे, स्त्री भोगनेकी

---

१ मागध परिभाषाके मान अनुसार एक कर्षका व्यवहारिक तोला १ होता है। पलके चार तोले होते हैं। २ कपूरके तीन भेद हैं ईशावास हिम और पोताश्रित परंतु राजनिघंटुमें वरास चीनिया और पत्रकपूर भेद माने हैं। शुद्ध कपूरको भीमसेनीकपूर या वरास कहते हैं।

शक्ति हो, वात पित्त कफ इनके प्रकोपको दूर करे, बल करे, हृदयरोग, कंठरोग, खांसी, हिचकी, पीनस, खई, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोल और संग्रहणी इन सब रोगोंको दूर करता है ॥

जातीफलादि चूर्ण संग्रहणी आदिपर ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरम् ॥ ७६ ॥ कपूरचंदनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ तालीसपिप्पलीमिथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥७७॥ शुंठीविडंगमरिचान् समभागान् विचूर्णयेत् ॥ यावंत्येतानि सर्वाणि कुर्याद्भंगां च तावतीम् ॥ ७८ ॥ सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः ॥ ७९ ॥ अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यांति वेगतः ॥ ८० ॥

अर्थ–१ जायफल २ लौंग ३ इलायची ४ तमालपत्रक ५ दालचीनी ६ नागकेशर ७ कपूर ८ सपेद चंदन ९ काले तिल १० वंशलोचन ११ तगर १२ आंवले १३ तालीसपत्र १४ पीपल १५ हरड १६ काला जीरा १७ चीतेकी छाल १८ सोंठ १९ वायविडंग और २० काली मिरच ये वीस औषध समान भाग लेवे तथा इन सब औषधोंके समान भाग शुद्ध भांग मिलाकर सबका चूर्ण कर चूर्णकी बराबर सपेद मिश्री मिलावे । सबको एकत्र कर १ तोला नित्य सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खांसी, श्वास, अरुचि, खई, वातकफके विकार और पीनस ये रोग शीघ्र दूर होवें ॥

महाखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर ।

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च ॥ प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ८१ ॥ त्वक्कणा तिंतिडीकं च जीरकं च द्विभागकम् ॥ धान्याम्लवेतसौ विश्वभद्रैलाबदराणि च ॥ ८२ ॥ अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधचतुर्थांशं दाडिमस्य फलं भवेत् ॥ ८३ ॥ द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयार्धमात्रया ॥ महाखांडवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥८४॥ अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम् ॥ हृद्रोगकंठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥८५॥ विषूचिकां तथाध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ॥ छर्दिं पंचविधां श्वासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ८६

अर्थ–१ काली मिरच २ नागकेशर ३ तालीसपत्र ४ सैंधानमक ५ संचरनमक ६ बिडनमक ७ समुद्रनमक और ८ रेहका नमक ये आठ औषध एक एक तोला लेवे। तथा १ पीपरामूल २ चित्रक ३ दालचीनी ४ पीपल ५ इमलीकी छाल ६ जीरा ये औषध दो दो तोले लेवे। १ धनिया २ अमलवेत ३ सोंठ ४ बडी इलायचीके दाने ५ छोटे बेर ६ अजमोद और ७ नागरमोथा ये सातों औषध तीन २ तोले लेवे और सब औषधोंका चतुर्थ भाग अनारदाना ले फिर सब औषधोंका चूर्ण कर इस चूर्णसे आधी सपेद मिश्री मिलावे, सबको एकत्र करे इसको महाखांडव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे रुचि हो, अग्नि प्रदीप्त हो, तथा यह हृदयको हितकारी, खांसी, अतिसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग मुखरोग, त्रिषूचिका (हैजा), अफरा, बवासीर, गोला, कृमिरोग, पांच प्रकारका छर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें॥

नारायणचूर्ण उदररोगपर।

चित्रकस्त्रिफला व्योषं जीरकं हपुषा वचा॥ यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाजगंधिका॥८७॥ अजमोदा शठी धान्यं विडंगं स्थूलजीरकम्॥ हेमाह्वा पौष्करं मूलं क्षारौ लवणपंचकम्॥॥८८॥ कुष्ठं चेति समांशानि विशाला स्याद्विभागिका॥ त्रिवृत्रिभागा विज्ञेया दंत्या भागत्रयं भवेत्॥८९॥ चतुर्भागा शातला स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्॥ पाचनं स्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः॥९०॥ दद्याच्चूर्णं विरेकाय सर्वरोगप्रणाशनम्॥ हृद्रोगे पांडुरोगे च कासे श्वासे भगंदरे॥९१॥ मंदेऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे॥ दद्याद्युक्तानुपानेन तथाध्माने सुरादिभिः॥९२॥ गुल्मे बदरनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना॥ उष्णांबुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिकर्तिषु॥९३॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम्॥ प्रसन्नया वातरोगे दाडिमांभोभिरर्शसि॥९४॥ द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम्॥ चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम्॥९५॥

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि कहीं न मिले तो उसके अभावमें चूका अथवा चनाकी खटाई डालनी चाहिये।

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल ८ जीरा ९ हाऊबेर १० वच ११ अजमायन १२ पीपरामूल १३ सौंफ १४ बर्बरी (वनतुलसी) १५ अजमोदा १६ कचूर १७ धनिया १८ वायविडंग १९ मगरेला (कलौंजी) २० पुहकरमूल २१ सज्जीखार २२ जवाखार २३ सैंधानमक २४ संचरनमक २५ बिडनमक २६ समुद्रनमक २७ कचिया नमक और २८ कूठ इन अठाईस औषधोंको एक एक तोला लेवे । इन्द्रायनकी जड २ तोले निसोथ ३ तोले और दंतीकी जड ३ तोले एवं पीली थूहर ४ तोले । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे फिर पा[1]चनकरके और स्नेहनादिक करके जिस मनुष्यका चिकना कोठा हो गया हो उस मनुष्यको दस्त होनेके वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें; हृदयरोग, पांडुरोग, खांसी, श्वास, भगंदर, मंदाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी इन रोगोंमें मद्य आदि अनुपानके साथ देवे । पेटके फूलनेपर दारूके साथ देवे । गोलेके रोगमें बेरके काढेके साथ देवे । मलबद्धवालेको दहीके जलसे देवे । अजीर्ण रोगीको गरम जलके साथ देवे । गुदामें कतरनीकीसी पीडा होती होवे तो तंतडीके काढेके साथ देवे । उदररोग (जलंधर) में ऊंटनीके दूधके साथ अथवा गौके दूधके साथ देवे । वादीके रोगोंमें प्रसन्ना मद्यके साथ देवे । बवासीरमें अनारदानेके जलके साथ देवे । तो सर्व रोग नष्ट हों । स्थावर और जंगम विषोंमें घृतके साथ देवे तो दोनों प्रकारके विष दूर हों । इसको नारायण चूर्ण कहते हैं । इससे संपूर्ण दुष्टरोग दूर होते हैं ॥

हपुषादि चूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर ।

हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली ॥ हेमक्षीरी त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा ॥९६॥ नीलिनी सैंधवं कृष्णलवणं चेति चूर्णयेत् ॥ उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः ॥९७॥ तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः ॥ अजीर्णे प्लीहिगुल्मेषु शोफाशीविषमाग्निषु ॥ हलीमकामलापांडुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि ॥९८॥

अर्थ–१ हाऊबेर २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला ५ त्राय[2]माण ६ पीपल ७ चोक ८ निसोथ ९ पीली थूहर १० कुटकी ११ वच १२ नी[3]ली १३ सैंधानमक १४ काला नमक प्रत्येक समान भाग लेवे सबका चूर्ण कर गरमजलके साथ वा गोमूत्रके साथ वा अनारदानोंके रससे अथवा त्रिफलाके काढेके साथ अथवा वनके हरिणादिकोंके

---

१ मनुष्यको आरग्वधादि पंचकके काढेसे पाचन देकर तथा उत्तर खंडमें जो घृतपानकी विधि कही है उसी प्रकार घी पीनेको देकर कोठेको चिकना करे पीछे चूर्णको देवे। २ त्रायमाण इसी नामसे प्रसिद्ध है । इसके पत्ते जामुनकेसे होते हैं । ३ नीलीके छोटे २ होते हैं, यह नीलवृक्षके नामसे प्रसिद्ध है । इसमेंसे नीला रंग उत्पन्न होता हैं ।

मांसरससे योग्यता विचारके देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग इन सबको दूर करे ॥

पंचसमचूर्ण[1] शूलआदिपर ।

शुंठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा ॥ समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ९९ ॥ ज्ञेयं पंचसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम् ॥ प्राध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम् ॥ १०० ॥

अर्थ-१ सोंठ २ हरड ३ पीपल ४ निसोथ और ५ संचरनमक ये पांचों औषधि समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इसको पंचसम चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण सेवन करनेसे शूलरोग, पेटका फूलना, मंदाग्नि, बवासीर, आमवायु ये रोग दूर हों ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण अफरा आदिपर ।

कर्षमात्रा भवेत् कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता ॥
खंडात् पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १०१ ॥
कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम् ॥
गाढविट्कोदरकफान् पित्तशूलं च नाशयेत् ॥ १०२ ॥

अर्थ-पीपल १ तोला, निशोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण कर सहतसे सेवन करे तो पेटका अफरा दूर होय । तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूलको नाश करे ॥

लवणत्रितयादि चूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर ।

लवणत्रितयं क्षारौ शतपुष्पाद्वयं वचा ॥ १०३ ॥ अजमोदाजगंधा च हपुषा जीरकद्वयम् ॥ मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ॥ १०४ ॥ हिंगुश्च हिंगुपत्री च शठी पाठोपकुंचिका ॥ शुंठीचित्रकचव्यानि विडंगं चाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥ दाडिमं तिंतिडीकं च त्रिवृद्दंती शतावरी ॥ इंद्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारु यवानिका ॥ १०६ ॥ कुस्तुंबुरुस्तंबुरूणि पौष्करं बदराणि च ॥ शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ ॥ १०७ ॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ॥ तत्पिबेत्सर्पिषो जीर्णमद्येनोष्णोदकेन वा ॥ १०८ ॥कोलांभसा वा तक्रेण दुग्धे-

१ यह पंचसमचूर्ण प्रायः शूलरोगपर बहुत चलता है और गुणभी शीघ्र दिखलाता है ।

नौष्ट्रेन मस्तुना ॥ यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥ अर्शोविष्टंभमंदाग्निगुल्माष्ठीलोदराणि च ॥ हिक्काध्मानश्वासका-साञ्जयेदेतान्न संशयः ॥ एतैरेवौषधैः सम्यक् घृतं वा साधये-द्भिषक् ॥ ११० ॥

अर्थ—१ सैंधानमक २ संचरनमक ३ बिडनोन ४ सज्जीखार ५ जवाखार ६ सोंफ ७ मगरेल (कलोंजी) ८ वच ९ अजमोद १० वर्वरी (वनतुलसी) ११ हाऊवेर १२ सपेद जीरा १३ काला जीरा १४ काली मिरच १५ पीपलामूल १६ पीपर १७ गजपीपल १८ हींग भूनी १९ हिंगुपत्री २० कचूर २१ पाठ २२ छोटी इलायची २३ सोंठ २४ चव्य २५ चीतेकी छाल २६ वायविडंग २७ अमलवेत[1] २८ अनारदाना २९ तंतडीक ३० निशोथ ३१ दंती ३२ सतावर ३३ इंद्रायणका[2] गूदा ३४ भारंगी ३५ देवदारु ३६ अजमायन ३७ धनिया ३८ चिरफल ३९ पुहकरमूल ४० बेर और ४१ छोटी हरड ये इकतालीस औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । फिर उस चूर्णको अदरखके रसकी एक तथा बिजोरेके रसकी एक पुट देकर सुखाय लेवे । इस चूर्णको घी, पुराना मद्य, गरम जल अथवा बेरका काढा, गौकी छाछ, ऊंटनीका दूध, दहीका पानी इनमेंसे जो अनुपान रोगीको हितकारी होवे उसके साथ देवे तो कलेजेका रोग, प्लीहा (फीहा), कमरका दर्द, गुदाका रोग, कूखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मंदाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदर, हिचकी, अफरा, श्वास और खांसी ये रोग दूर होवें । अथवा इस चूर्णमें कही हुई औषधोंका काढा करके उसमें घी मिलायके साधन करे जब घी सिद्ध हो जावे तब उतार ले । इस घृतके सेवन करनेसे ऊपर कहे हुए संपूर्ण रोग दूर होंय ॥

तुंबरूण्यादिकचूर्ण शूलादिकोंपर ।

तुंबरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम् ॥ १११ ॥ यवक्षाराभ-याहिंगुविडंगानि समानि च ॥ त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णा-नि कारयेत् ॥ ११२ ॥ पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्काथेन वा पि-बेत् ॥ जयेत्सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥ ११३ ॥

---

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है यदि कहीं न मिलता होवे तो अमलवेतके अभावमें चूका डाले अथवा चनाखार डाले । २ इन्द्रायनको हमारे इस मथुरा प्रान्तके मनुष्य फरफेंदू कहते हैं । इसकी बेल होती है और पीले रंगका बडा बेलकी बराबर फल लगता है । यह अत्यंत कडुआ होता है । यदि इसका फल न मिले तो इसकी जड लेना चाहिये ।

अर्थ-१ धनिया अथवा चिरफल २ सैंधानमक ३ संचरनमक ४ बिडनमक ५ अजमोद ६ पुहकरमूल ७ जवाखार ८ हरड ९ भूनी हुई हींग और १० वायविडंग इन दश औषधोंको समान भाग लेवे । तथा निसोथ तीन भाग ले सब औषधोंका बारीक चूर्ण कर गरम जलसे अथवा जवोंके काढेसे सेवन करे तो सर्व प्रकारके शूल गोला अफरा और उदररोग ये दूर होवें ॥

चित्रकादि चूर्ण गुल्मादिकोंपर ।

चित्रको नागरं हिंगु पिप्पली पिप्पलीजटा ॥ चव्याजमोदा मरिचं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥ ११४ ॥ स्वर्जिका च यवक्षारः सिंधुसौवर्चलं बिडम् ॥ सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत् ॥ ११५ ॥ एकीकृत्वाखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुंगजैः ॥ रसैर्दाडिमजैर्वापि शोषयेदातपेन च ॥ ११६ ॥ एतच्चूर्णं जयेद्गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम् ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत्कफनाशनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ-१ चीतेकी छाल २ सोंठ ३ भूनी हुई हींग ४ पीपर ५ पीपरामूल ६ चव्य ७ अजमोद ८ काली मिरच इन आठ औषधोंको तोले २ भर लेवे । तथा १ सज्जीखार २ जवाखार ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ बिडनोन ६ समुद्रनमक और ७ रेहका नमक इन सात खारोंको आठ मासे लेवे । फिर सब औषधोंका चूर्ण कर बिजोरेके रसकी एक भावना देवे । अथवा अनारदानेके रसका एक पुट देवे । फिर धूपमें धरके सुखाय लेवे । इस चूर्णके सेवन करनेसे गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि करे तथा कफ दूर होय ॥

वडवानलचूर्ण मंदाग्नि आदि रोगोंपर ।

सैंधवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकम् ॥
शुंठी हरीतकी चेति क्रमवृद्ध्या विचूर्णयेत् ॥
वडवानलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम् ॥ ११८ ॥

अर्थ-१ सैंधानमक एक भाग २ पीपरामूल दो भाग ३ पीपर तीन भाग ४ चव्य चार भाग ५ चीतेकी छाल पांच भाग ६ सोंठ छः भाग ७ जंगी हरड सात भाग इस क्रमसे ये औषध लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहते हैं इसका सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होय ॥

अजमोदादि चूर्ण आमवातपर ।

अजमोदाविडंगानि सैंधवं देवदारु च ॥ ११९ ॥ चित्रकः पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली ॥ मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ १२० ॥ कर्षास्तु पंच पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात् ॥ नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥ १२१ ॥ पिबेत्कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम् ॥ आमवातरुजं हंति संधिपीडां च गृध्रसीम् ॥ १२२ ॥ कटिपृष्ठगुदस्थां च जंघयोश्च रुजं जयेत् ॥ तूणीप्रतूणीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् ॥ समेन वा गुडेनास्य वटकान् कारयेत्सुधीः ॥ १२३ ॥

अर्थ–१ अजमोदा २ वायविडंग ३ सैंधानमक ४ देवदारु ५ चित्रक ६ पीपरामूल ७ सौंफ ८ पीपर और ९ काली मिरच इन नौ औषधोंको तोले २ लेवे। तथा जंगी हरड ५ तोले ले विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले ले सब औषधोंको कूट पीस और छानके चूर्ण करे। इसको गरम जलके साथ लेय तो सूजन, आमवात, संधियोंका दूखना, गृध्रसीवायु (जो करसे लेकर पैरपर्यंत पीडा होती है वह), कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पींडरियोंकी पीडा, तूणीवायु, प्रतूणीवायु, विश्वाचीवायु तथा कफवायुके विकार ये संपूर्ण रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्णके समानभाग गुड मिलाके गोली बनायके खाय तो चूर्ण खानेसे जो रोग नष्ट होते हैं वेही इस गोलीके सेवनसे नष्ट होंय ॥

शुंठ्यादि चूर्ण श्वासादिकपर ।

शुंठी सौवर्चलं हिंगु दाडिमं चाम्लवेतसम् ॥
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशांतये ॥ १२४ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ संचरनमक ३ भूनी हुई हींग ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जलके साथ लेय तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवे ॥

हिंग्वादि चूर्ण शूलादिकोंपर ।

हिंगूग्रगंधाबिडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं हिमांभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १२५ ॥

अर्थ–१ हींग २ वच ३ बिडनोन ४ सोंठ ५ पीपल ६ कूठ ७ हरड ८ चीतेकी छाल ९ जवाखार १० संचरनमक और ११ पुहकरमूल इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर शीतल जलके साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होवे ॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर ।

हिंगु पाठाभया धान्यं दाडिमं चित्रकं शठी ॥ अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम् ॥ १२६ ॥ अजगंधा तिंतिडीकं जीरकं पौष्करं वचा ॥ चव्यं क्षारद्वयं पंच लवणानीति चूर्णयेत् ॥ ॥ १२७ ॥ प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत्प्रयोजयेत् ॥ पिबेद्वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा ॥ १२८ ॥ गुल्मे वातकफोद्भूते विड्ग्रहेष्ठीलिकासु च ॥ हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गुदयोनिजे ॥१२९॥ मूत्रकृच्छ्रे तथानाहे पांडुरोगेरुचौ तथा ॥ हिक्कायां यकृति प्लीह्नि श्वासे कासे गलग्रहे ॥ १३० ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत्प्रशस्यते ॥ भावितं मातुलुंगस्य बहुशः स्वरसेन वा ॥ कुर्याच्च गुटिकाः पथ्या वातश्लेष्मामयापहाः ॥१३१॥

अर्थ–१ भूनी हींग २ पाढ ३ जंगी हरड ४ धनिया ५ अनारदाना ६ चीतेकी छाल ७ कचूर ८ अजमोदा ९ सोंठ १० मिरच ११ पीपल १२हाऊवेर १३ अमलवेत १४ वनतुलसी १५ तंतडीक अथवा इमली १६ जीरा १७ पुहकरमूल १८ वच १९ चव्य २० सज्जीखार २१ जवाखार २२ सैंधानोन २३ संचरनोन २४ बिडनोन २५ बांगडका खार और २६ समुद्रका नोन । इन छव्वीस औषधोंको कूट पीसके चूर्ण करे इसको भोजनके आदिमें अथवा भोजनके मध्यमें खाय अथवा बहुत दिनके पुराने मद्यके साथ सेवन करे अथवा गौकी छाछ एवं गरम जलके साथ सेवन करे तो वात कफसे उत्पन्न होनेवाला गोलेका रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नामसे पेटमें होनेवाला वादीका रोग, हृदय कूख इनका शूल, तथा गुदाका शूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृतरोग, तिल्लीरोग, श्वास, खांसी, कंठरोग, संग्रहणी, बवासीर ये संपूर्ण रोग दूर हों । इस चूर्णमें बिजोरेके रसके सात पुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफसे होनेवाले रोग दूर होवें ॥

यवानीखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर ।

यवानी दाडिमं शुंठी तिंतिडीकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥ बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च ॥ सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ॥ १३३ ॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणिकम् ॥ चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत्॥१३४॥

चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखांडवाभिधम् ॥ चूर्णं जयेत्पांडुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम् ॥ १३५ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबंधताम् ॥ अरुचिं शूलमंदाग्नी अर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३६ ॥

अर्थ-१ अजमोद २ अनारदाना ३ सोंठ ४ तंतडीक अथवा इमली ५ अमलवेत और ६ बेर खट्टे । ये छः औषध चार २ शाण लेवे । काली मिरच ढाई शाण, पीपर दश शाण, दालचीनी संचरनमक धनिया जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौसठ शाण ले । फिर सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करे । इस चूर्णको यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं । इस चूर्णके सेवन करनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि, शूल, मंदाग्नि, बवासीर, जीभके रोग, कंठके रोग ये सब दूर होते हैं ॥

तालीसादि चूर्ण अरुचिआदि रोगोंपर ।

तालीसं मरिचं शुंठी पिप्पली वंशरोचना ॥ एकद्वित्रिचतुःपंचकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत् ॥ १३७ ॥ एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् ॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ १३८ ॥ तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥ शोषाध्मानहरं[1] प्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥ पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत्स्याद्गुटिका ततः ॥ १४० ॥

अर्थ-तालीसपत्र १ तोला काली मिरच २ तोले सोंठ ३ तोले पीपर ४ तोले वंशलोचन ५ तोले छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छः छः मासे, मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे, तथा खांसी श्वास ज्वर वमन अतिसार शोष अफरा तिल्ली संग्रहणी और पांडुरोग ये दूर हों, अथवा मिश्रीकी चासनी करके उसमें इस चूर्णको डाल गोली बनाय लेवे तो यहभी चूर्णके समान गुण करती है ॥

सितोपलादिक चूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर ।

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना ॥ पिप्पली स्या-

---

१ 'शोफाध्मानहरं' कहीं ऐसा पाठ है तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना ।
२ 'मधुसर्पिर्युतं लिहेत' क्वचित् ऐसा पाठ है तहां सहत और घी दोनों विषम भाग ले इसमें चूर्णको मिलायके सेवन करे ऐसा अर्थ जानना ।

चतुःकर्षा स्यादेला च द्विकार्षिकी ॥ १४१ ॥ एककर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः ॥ सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ १४२ ॥ श्वासकासक्षयहरं हस्तपादांगदाहजित् ॥ मंदाग्निं सुप्तजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तं पित्तमाशु व्यपोहति॥ १४३ ॥

अर्थ–मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपर ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले, दालचीनी १ तोला इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे इसको सितोपलादि चूर्ण कहते हैं और इस चूर्णको सहत और घीके साथ मिलायके खाय तो श्वास, खांसी, खई, हाथ पैरोंका तथा अंगोंका दाह, मंदाग्नि, जीभकी शून्यता, पीठका शूल, अरुचि, ज्वर, मस्तकमेंका रुधिरविकार तथा पित्तके विकार ये सब तत्काल दूर होवें ॥

लवणभास्कर चूर्ण संग्रहणीगुल्मादिकोंपर।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः॥१४४॥ पंचसौवर्चलं ग्राह्यं बिडं सैंधवधान्यके ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीरकपत्रकम् ॥ १४५ ॥ नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः ॥ १४६ ॥ मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ दाडिमं स्याच्चतुःकर्षं त्वगेला चार्धकार्षिकी ॥ १४७ ॥ बीजपूररसेनैव भावितं सप्तवारकम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः ॥ १४८ ॥ वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबंधं च भगंदरम् ॥ ॥ १४९ ॥ शोफं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् ॥ मंदाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम् ॥ सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ॥ १५० ॥

अर्थ–समुद्रनमक ८ तोले संचरनोन ५ तोले १ बिडनोन २ सैंधानमक ३ धनिया ४ पीपल ५ पीपरामूल ६ काला जीरा ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ तालीसपत्र और १० अमलवेत ये दश औषधि प्रत्येक दो दो तोले लेय; काली मिरच जीरा और सोंठ ये तीन औषधि एक २ तोला लेय; तथा अनारदाना ४ तोले, दालचीनी और इला-

यची छः छः मासे । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे । इसको दहीके जलसे वा दहीकी मलाईसे छाछ और मद्य (दारु) इनमेंसे रोगानुसार अनुपानके साथ ४ मासे देवे तो वातकफसे उत्पन्न होनेवाला गोला, फीहा, उदर, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबद्धता (बद्धकोष्ठ), भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खांसी, आमवात, हृद्रोग और मंदाग्नि ये सब रोग दूर हों । अग्नि प्रदीप्त हो तथा अन्नका परिपाक होवे । यह चूर्ण लोकोंको हितके वास्ते सूर्यने कहा है इसीसे इसका नाम लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है॥

एलादि चूर्ण वमनपर ।

एलाप्रियंगुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली ॥ श्रीचंदनं तथा लाजा लवंगं नागकेसरम् ॥१५१॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हंत्यतिवेगतः ॥ १५२ ॥

अर्थ-१छोटी इलायचीके बीज २ फूलप्रियंगु ३ नागरमोथा ४ बेरकी गुठली ५पीपर ६सपेद चंदन ७ खील ८लौंग ९नागकेशर इन नौ औषधोंको कूट पीस चूर्ण करके सहत और मिश्रीके साथ खाय तो वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ वमन (रद्द) का रोग सो तत्काल दूर हो ॥

पंचनिंबचूर्ण कुष्ठादिकोंपर ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निंबात्समाहरेत् ॥ १५३ ॥ सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात् पलैः पंचदशोन्मितैः ॥ लोहभस्म हरीतक्यो चक्रमर्दकचित्रकौ ॥ १५४ ॥ भल्लातकाविडंगानि शर्करामलकं निशा ॥ पिप्पली मरिचं शुंठी बाकुची कृतमालकः ॥ १५५ ॥ गोक्षुरश्च पलोन्मानमेकैकं कारयेद् बुधः ॥ सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ॥१५६॥ अष्टभागावशिष्टेन खदिरासनवारिणा ॥ भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः क्षिपेत् ॥ १५७॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाथ वा ॥ मासेन सर्वकुष्ठानि विनिहंति रसायनम् ॥ पंचनिंबमिदं चूर्णं सर्वरोगप्रणाशनम् ॥१५८॥

अर्थ-१ जड २ पत्ते ३ फल ४ फूल और ५ छाल ये पांच अंग नीमके १५ पल लेय उनका चूर्ण करे उसमें १ लोहकी भस्म २ जंगी हरड ३ पँवारके बीज ४ चीतेकी छाल ५ भिलाए ६ वायविडंग ७ मिश्री ८ आमले ९ हलदी १० पीपर ११ काली मिरच १२ सोंठ १३ बावची १४ अमलतासका गूदा और १५ गोखरू ये

पंद्रह औषध प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर पूर्वोक्त नीमका चूर्ण और पंद्रह औषधोंका चूर्ण मिलाय एकत्र करके भांगरेके रसकी भावना देकर सुखाय ले । पश्चात् खैरकी छालका काढा करके उसका एक पुट दे । फिर बिजैसार-की छालका काढा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे । १ तोले इस चूर्णको खैरकी छालके काढेसे पीवे । अथवा बिजैसारके काढेसे वा घीसे या गौके दूधसे पीवे तो एक महीनेमें संपूर्ण कोढ दूर होवे । इस चूर्णको पंचनिंब चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण रसायन है ॥

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर ।

शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम् ॥
गांगेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम् ॥ १५९ ॥
चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि ॥
न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ॥ १६० ॥

अर्थ-१ शतावर २ गोखरू ३ कौंचकी बीज ४ गंगेरनकी छाल ५ कंगहीकी छाल ६ तालमखाना इन छः औषधोंका चूर्ण कर रात्रिमें गौके दूधके साथ सेवन करे तो बहुत स्त्री भोगनेसेभी इच्छाकी तृप्ति नहीं हो ऐसा इस चूर्णका प्रभाव है ॥

अश्वगंधादि चूर्ण पुष्टाईपर ।

अश्वगंधा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारकः ॥
चूर्णीकृत्योभयं विद्वान् घृतभांडे निधापयेत् ॥ १६१ ॥
कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति ॥
अगत्वा प्रमदां भूयो वलीपलितवर्जितः ॥ १६२ ॥

अर्थ-असगंध १० पल, विधायरा ११ पल, इन दोनोंका चूर्ण कर घीके बासनमें भरके रात्रिको रख देवे । फिर इसमेंसे २ तोले चूर्णको गौके दूधसे सेवन करे तो ब-हुतसी स्त्रियोंसे भोग करनेपरभी तृप्त नहीं हो और यदि स्त्री सेवनको त्यागके इस चूर्णको सेवन करे तो अंगमें गुजलटोंका पडना और बालोंका सपेद होना ये रोग दूर हों और बुड्ढेसे जवान हो ॥

मुसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर ।

मुसलीकंदचूर्णं तु गुडूचीसत्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥
सक्षीरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्करामलैः ॥
आलोड्य घृतदुग्धेन पाययेत्कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥

अर्थ-१ सपेद मूसली २ गिलोयका सत्व ३ कौंछके बीज ४ गोखरू ५ सेमरका मूसला ६ मिश्री और ७ आंवले इन सात औषधोंका चूर्ण करके गौके दूधमें घी मिलाय इस चूर्णको पीवे तो धातुकी वृद्धि होकर काम बढे ॥

नवायसचूर्ण पांडुरोगादिकोंपर।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडंगं त्र्यूषणानि च ॥ समभागानि सर्वाणि नव भागा हृतायसः ॥ १६५ ॥ एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ गोमूत्रमथ वा तक्रमनुपाने प्रशस्यते ॥ १६६ ॥ पांडुरोगं जयत्युग्रं त्रिदोषं च भगंदरम् ॥ शोथकुष्ठोदरार्शांसि मंदाग्निमरुचिं कृमीन् ॥ १६७ ॥

अर्थ-१ चीतेकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला ५ नागरमोथा ६ वायविडंग ७ सोंठ ८ काली मिरच और ९ पीपल ये नौ औषध समान भाग ले चूर्ण करके उस चूर्णके समान लोहभस्म मिलावे। फिर इस चूर्णको सहत और घीके साथ अथवा गोमूत्रसे अथवा गौकी छाछसे सेवन करे तो बडा भारी घोर पांडुरोग, त्रिदोष, भगंदर, सूजन, कोढ, उदररोग, बवासीर, मंदाग्नि, अरुचि और कृमिरोग इन सबको नष्ट करे ॥

अकारकरभादि चूर्ण स्तंभनपर।

अकारकरभः शुंठी कंकोलं कुंभकं कणा ॥ जातीफलं लवंगं च चंदनं चेति कार्षिकान् ॥ १६८ ॥ चूर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतं सूक्ष्मं माषैकं मधुना लिहेत् ॥ ॥ १६९ ॥ शुक्रस्तंभकरं चूर्णं पुंसामानंदकारकम् ॥ नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ १७० ॥

अर्थ-१ अकरकरा २ सोंठ ३ कंकोल ४ केशर ५ पीपल ६ जायफल ७ लौंग और ८ सपेद चंदन ये आठ औषध एक एक तोला लेवे तथा अफीम ४ तोले लेवे। सबका एकत्र चूर्ण करके १ मासेके अनुमान इस चूर्णको सहतसे रात्रिके समय सेवन करे तो धातुका स्तंभन होकर पुरुषको आनंद होय तथा स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होवे ॥

मंजन।

बकुलत्वग्भवं चूर्णं घर्षयेदंतपंक्तिषु ॥
वज्रादपि दृढीभूता दंता स्युश्चपला ध्रुवम् ॥ १७१ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ-मौलसिरीकी छालके चूर्णको दांतोंमें घिसा करे तो हिलते हुएभी दांत वज्रके समान दृढ होवें इसमें संदेह नहीं ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितामाथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे षष्ठोध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

वटिकाश्चाथ कथ्यंते तन्नाम गुटिका वटी ॥ मोदको वटिका पिं-डी गुडो वर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराथ वा ॥ गुग्गुलुं वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ २ ॥ कुर्यादवह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटी ॥ द्रवेण मधुना वापि गु-टिकां कारयेद् बुधः ॥ ३ ॥ सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः ॥ चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ४ ॥ द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥ कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥

अर्थ-१ गुटिका २ वटी ३ मोदक ४ वटिका ५ पिंडी ६ गुड और ७ बत्ती ये सात वटिका अर्थात् गोलीके पर्याय शब्द हैं । इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड, खांड अथवा गूगलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलायकर गोली बनानी चाहिये । यदि पाक करे विना गोली बनानी होवे तो गूगलको शोध पीस उसमें चूर्ण मिलायके घीसे गोली बनाय लेवे । अथवा जल दूध सहत आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण डा-लके खरल कर गोली बनाय लेवे । यदि खांड मिश्री आदि डालके गोली बनानी होवे तो चूर्णते चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे । यदि गुड मिलायके गोली करनी होवे तो चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे । कभी गूगल और सहत दोनों डालके गोली बनानी हो तो गूगल और सहत ये दोनों चूर्णके समान भाग लेकर गोली बनावे । और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थसे गोली बनानी होवे तो चूर्णसे दूना डालके गोली बनानी चाहिये । चूर्णके सेवनकी मात्राका प्रमाण १ तोला है अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार वैद्यको मात्रा देनी चाहिये ॥

बाहुशालगुड बवासीरपर ।

इंद्रवारुणिका मुस्तं शुंठी दंती हरीतकी ॥ त्रिवृत् सठी विडंगानि

गोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥ तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथग्द्रव्याणि कारयेत् ॥ सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारु चतुष्पलम् ॥ ॥ ७ ॥ चतुःपलं स्याद्भल्लातः क्राथयेत्सर्वमेकतः ॥ जलद्रोणे चतुर्थांशं गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ ८ ॥ क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत् ॥ सम्यक् पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत्प्रदापयेत् ॥ ९ ॥ चित्रकस्त्रिवृता दंती तेजोह्वा पलिकाः पृथक् ॥ पृथक् त्रिपलिकाः कार्य्या व्योषैलामरिचत्वचः ॥ १० ॥ निक्षिपेन्मधुशीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः ॥ एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान् बाहुशालगुडः शुभः ॥ ११ ॥ जयेदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा ॥ आमवातं प्रतिश्यायं ग्रहणीक्षयपीनसान् ॥ हलीमकं पांडुरोगं प्रमेहं च रसायनम् ॥ १२ ॥

अर्थ–१ इन्द्रायनकी जड २ नागरमोथा ३ सोंठ ४ दंती ५ जंगी हरड ६ निसोथ ७ कचूर ८ वायविडंग ९ गोखरू १० चीतेकी छाल ११ तेजबल ये ग्यारह औषध प्रत्येक दो दो तोले लेवे; जमीकंद (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भीलाए ४ पल ले। इन सब औषधोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्निपर चढाय मंदी २ आंचसे चतुर्थांश जल शेष रहे पर्यंत काढा करे और सब औषधोंसे तिगुना गुड डालके फिर औटायके पाक करे। फिर इस पाकमें आगे कहे हुए औषधोंका चूर्ण डाले। जैसे–चीतेकी छाल, निशोथ, दंती, तेजबल ये चार औषधि एक २ पल ले, सोंठ, मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच औषध तीन २ पल ले। सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे। इसको बाहुशाल गुड कहते हैं। इस गुडके खानेसे संपूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, वादीसे अंगोंका जकडना, आमवात, सरेकमा, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवें। यह बाहुशाल गुड रसायन है॥

मारिचादि गुटिका खांसीपर।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसंमिता ॥ १३ ॥ अर्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्रे विधारयेत् ॥ अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यांत्येव संक्षयम् ॥ १५ ॥

अर्थ-काली मिरच और पीपल तोला २ भर, जवाखार आधा तोला, अनारकी छाल २ तोले इन चार औषधोंका चूर्ण कर आठ तोले गुड मिलायके ४ मासेकी गोली बनावे। फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खांसी दूर होवे इसमें संशय नहीं ॥

व्याघ्रीआदि गुटिका ऊर्ध्ववातपर।

व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ॥
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ-१ कटेरी २ जीरा और ३ आंवला इन तीन औषधोंका चूर्ण करके सहत मिलायके चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तमकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों ॥

गुडादि गुटिका श्वासखांसीपर।

गुडशुंठीशिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ॥
श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभीतकम् ॥ १७ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ जंगी हरड और ३ नागरमोथा इन तीन औषधोंको कूट पीस इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे। फिर एक गोलीको मुखमें राखे तो संपूर्ण खांसी और श्वास ये दूर हों। अथवा साबत बहेडेकी छालको मुखमें रखनेसे श्वास और खांसी दूर होवे ॥

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्ववटरोहकम् ॥
एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥
तृष्णां प्रवृद्धां हंत्येषा मुखशोषं च दारुणम् ॥ १८ ॥

अर्थ-१ आमला २ कमल ३ कूठ ४ खील और ५ वडकी कोंपल इन पांच औषधोंको सहतमें मिलायके गोली बनावे। इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूर करे ॥

संजीवनी गुटिका सन्निपातादिकोंपर।

विडंगं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकौ ॥ १९ ॥ वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् ॥ एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥२०॥ गुंजाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः ॥ एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥ २१ ॥ तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः संनिपातके ॥ वटी संजीवनी नाम्ना संजीवयति मानवम् ॥ २२ ॥

अर्थ—१ वायविडंग २ सोंठ ३ पीपल ४ जंगी हरड ५ आंवला ६ बहेडा ७ वच ८ गिलोय ९ भिलाए १० बच्छनाग (शुद्ध किया हुआ) इन दश औषधोंको समान भाग लेकर गौके मूत्रमें पीसके एक २ रत्तीकी गोली बनावे। फिर इसको अदरखके रससे अजीर्ण रोगमें तथा गोलाके रोगमें १ गोली सेवन करे, विषूचिका (हैजा) में दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवन करे। यह गोली मनुष्योंको संजीवन करनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं॥

व्योषादि गुटिका पीनसपर।

व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकस्तथा॥ जीरकं तिंतिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम्॥ २३॥ त्रिसुगंधं त्रिशाणं स्याद्गुडः स्यात्कर्षविंशतिः॥ व्योषादिगुटिका सामपीनसश्वासकासजित्॥ रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्यायप्रणाशिनी॥ २४॥

अर्थ—१ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल ४ अमलवेत ५ चव्य ६ तालीसपत्र ७ चित्रक ८ जीरा ९ इमलीकी छाल इन नौ औषधोंको एक २ तोला लेवे। तथा १ दालचीनी २ इलायची दाने ३ पत्रज ये तीन औषध तीन २ शाण लेवे। फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बनाय लेवे। यह व्योषादि गुटिका आम, पीनसका रोग, श्वास, खांसी इन सब रोगोंको दूर करे तथा मुखमें रुचि प्रगट करे इससे स्वर (आवाज) शुद्ध हो तथा सरेकमा दूर होय॥

गुडवटिका चतुष्टय आमादिकोंपर।

आमेषु सगुडां शुंठीचूर्णं च गुडपिप्पलीम्॥
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु च गुडाभयाम्॥ २५॥

अर्थ—सोंठके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनाकर भक्षण करे तो आंव दूर होवे। गुड और पीपल एकत्र करके गोली बनावे। इसके सेवनसे अजीर्ण दूर हो, गुड और जीरेको एकत्र कूट पीस गोली बनाकर खावे तो मूत्रकृच्छ्र दूर हो। एवं छोटी हरडके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनावे। इसको सेवन करे तो बवासीरका रोग दूर हो॥

वृद्धदारमोदक बवासीरपर।

वृद्धदारकभल्लातशुंठीमजीर्णेन योजितः॥
मोदकः सगुडो हन्यात् षड्विधार्शःकृतां रुजम्॥ २६॥

अर्थ—१ विधायरा २ भिलाये और ३ सोंठ इन तीन औषधके समान भागका चूर्ण कर चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। इसके खानेसे छः प्रकारका बवासीररोग नष्ट होय॥

सूरणवटक बवासीरपर ।

शुष्कसूरणचूर्णस्य भागान् द्वात्रिंशदाहरेत् ॥
भागान् षोडश चित्रस्य शुंठ्या भागचतुष्टयम् ॥ २७ ॥
द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥
गुडेन पिंडिकां कुर्यादर्शसां नाशिनीं परम् ॥ २८ ॥

अर्थ–१ जमींकंदको सुखायके चूर्ण कर ३२ तोले ले, चीतेकी छाल १६ तोले, सोंठ ४ तोले और काली मिरच २ तोले ले सबको कूटपीस चूर्ण करे। चूर्णके समान गुड मिलायके गोली बनावे इस गोलीको नित्य खानेसे छः प्रकारकी बवासीर नष्ट होवे। यह सूरणवटक कहाता है ॥

बृहत्सूरणवटक बवासीरपर ।

सूरणो वृद्धदारुश्च भागैः षोडशभिः पृथक् ॥२९॥ मुसलीचित्रको ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक् ॥ शिवाविभीतकौ धात्री विडंगं नागरं कणा ॥ ३० ॥ भल्लातः पिप्पलीमूलं तालीसं च पृथक् पृथक् ॥ चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेला मरिचं तथा ॥ ३१ ॥ द्विभागमात्राणि पृथक् ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत् ॥ द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान् धारयेद् बुधः ॥३२॥ प्रबलाग्निकरा एते तथार्शोनाशनाः परम् ॥ ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम् ॥ ३३ ॥ प्लीहानं श्लीपदं शोफं हिक्कां मेहं भगंदरम् ॥ निहन्युः पलितं वृष्यास्तथा मेध्या रसायनाः ॥ ३४ ॥

अर्थ–१ जमींकंद १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मसूरी ८ तोले, चीतेकी छाल ८ तोले लेवे। १ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ वायविडंग ५ सोंठ ६ पीपल ७ भिलाए ८ पीपरामूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषध चार २ तोले लेय। एवं १ दालचीनी २ इलायची ३ काली मिरच ये तीन औषध दो दो तोले लेय। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें सब चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे इसको सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त होय और बवासीरका रोग, वात कफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, श्वास, खांसी, क्षय, पेटमें होनेवाला प्लीहाका रोग, श्लीपदरोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगंदर और जिससे सपेद बाल होवें ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवें यह गोली स्त्रीगमनकी इच्छा करती है तथा बुद्धि देती है एवं शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करती है ॥

मंडूरवटक कामलादिकोंपर ।

त्रिफलं त्र्यूषणं चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वी मुस्तं विडंगकम् ॥ ३५ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वद्विगुणितं तथा ॥ मंडूरं चूर्णयेत्सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत्॥३६॥ पक्त्वा च वटकान् कृत्वा दद्यात्तक्रानुपानतः ॥ कामलापांडुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥ ऊरुस्तंभमजीर्णं च प्लीहानं नाशयंति च ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ सोंठ ५ मिरच ६ पीपल ७ चव्य ८ पीपरामूल ९ चीतेकी छाल १० देवदारु ११ सुवर्णमाक्षिककी भस्म १२ दालचीनी १३ दारुहलदी १४ नागरमोथा और १५ वायविडंग इन पंद्रह औषधोंको तोले २ भर लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णसे दूनी मंडूर मिलावे और सबसे आठ गुना गोमूत्र लेकर उसमें उस चूर्ण और मंडूरको डालके औटाकर गाढा करे जब गोली बंधने योग्य होय तब गोली बनाय लेवे । इस गोलीको छाछके साथ सेवन करे तो नेत्रोंमें जो कमलवायरोग (पीलियाका भेद) होता है सो दूर होवे । तथा पांडुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफके विकार, जिस करके जांघोंका स्तंभन होय वह वायु, अजीर्ण और प्लीहा इन सबको दूर करे ॥

पीप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर ।

क्षौद्राद्द्विगुणितं सर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ॥ ३८ ॥ सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम् ॥ चातुर्जातं क्षौद्रतुल्यं पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान् ॥३९॥ धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् श्वासं कासं च पांडुताम् ॥ धातुक्षयं वह्निमांद्यं पिप्पलीमोदको जयेत् ॥४०॥

अर्थ–सहतसे दूना घी और घीसे दूनी पीपल, पीपलकी दूनी मिश्री, मिश्रीका चौगुना दूध ले । तथा १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायचीके बीज और ४ नागकेशर इन चारोंका चूर्ण सहतके समान लेना चाहिये । फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे । एक लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगत ज्वर, श्वास, खांसी, पांडुरोग, धातुक्षय, मंदाग्नि इन सब विकारोंको नष्ट करता है ॥

चंद्रप्रभा गुटिका प्रमेहादिकोंपर ।

चंद्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिंबामृतदारुकम् ॥ हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ४१ ॥ धान्याकं त्रिफलं चव्यं विडंगं

गजपिप्पली ॥ व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥४२॥ एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद् बुधः ॥ त्रिवृद्दंती पत्रकं च त्वगेला वंशरोचना ॥ ४३ ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं च कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ॥ द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुःकर्षा सिता भवेत् ॥४४॥ शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षास्तु गुग्गुलोः ॥ एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा ॥ ४५ ॥ चंद्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ॥ प्रमेहान्विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥ ४६ ॥ विबंधानाहशूलानि मेहनग्रंथिमर्बुदम् ॥ अंडवृद्धिं तथा पांडुं कामलां च हलीमकम् ॥ ४७ ॥ अंत्रवृद्धिं कटीशूलं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसि कंडूं च प्लीहोदरभगंदरे ॥४८॥ दंतरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्तवजां रुजम् ॥ पुंसां शुक्रगतान्दोषान्मंदाग्निमरुचिं तथा ॥४९॥ वायुं पित्तं कफं हन्याद्बल्या वृष्या रसायनी ॥ चंद्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते ॥५०॥

अर्थ–१ कचूर २ वच ३ नागरमोथा ४ चिरायता ५ गिलोय ६ देवदार ७ हलदी ८ अतीस ९ दारुहलदी १० पीपरामूल ११ चीतेकी छाल १२ धनिया १३ हरड १४ बहेडा १५ आमला १६ चव्य १७ वायविडंग १८ गजपीपल १९ सोंठ २० काली मिरच २१ पीपल २२ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २३ सज्जीखार २४ जवाखार २५ सैंधानमक २६ संचरनमक और २७ बिडनमक ये सत्ताईस औषध एक एक शाण प्रमाण लेवे । तथा १ निसोथ २ दंती ३ तमालपत्र ४ दालचीनी ५ इलायचीके दाने और ६ वंशलोचन ये छः औषध सोलह २ मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे । फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजित ८ तोले लेवे । इन सब औषधोंको एक जगह कूट पीस एक जीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाणकी गोली बनावे । इस रसायनके विषयमें कर्षशब्द चार शाणका बोधक है । इस योगको चंद्रप्रभा इस प्रकार कहते हैं । यह संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें विख्यात है । इससे २० प्रकारके प्रमेहके रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलबद्धता, पेटका फूलना, शूल, प्रमेह, पिडिका, जिस करके अंडकोश बढ जावे वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अंत्रवृद्धि, कमरकी पीडा, श्वास, खांसी, विचर्चिका, कोढ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगंदर, दांतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्म संबंधी रोग, पुरुषोंके वीर्यके

विकार, मंदाग्नि, अरुचि, वात पित्त और कफ इनका प्रकोप ये संपूर्ण रोग दूर होवें तथा यह चंद्रप्रभावटी बल देनेवाली, स्त्रीगमनकी इच्छा करनेवाली तथा रसायन है ॥

कांकायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर ।

यवानी जीरकं धान्यं मरीचं गिरिकर्णिका ॥ अजमोदोपकुंची च चतुःशाणा पृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ हिंगु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपंचकम् ॥ त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥ ॥ ५२ ॥ दंती शठी पौष्करं च विडंगं दाडिमं शिवा ॥ चित्रोम्लवेतसः शुंठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥ ५३ ॥ बीजपूररसेनैषां गुटिकाः कारयेद्बुधः ॥ घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा ॥ ५४ ॥ पिबेत्कांकायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम् ॥ मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥५५॥ मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् ॥ उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥ हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—१ अजमायन २ जीरा ३ धनिया ४ काली मिरच ५ विष्णुक्रांता (कोयल) ६ अजमोदा और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे । भूनी हींग छः शाण लेवे । १ जवाखार २ सज्जीखार ३ सैंधानमक ४ संचर नमक ५ बिडनोन ६ समुद्रका नमक ७ सांगरका नमक ८ निसोथ ये आठ औषधि आठ २ शाण लेवे । तथा १ दंती २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ वायविडंग ५ अनारकी छाल ६ जंगी हरड ७ चीतेकी छाल ८ अमलवेत ९ सोंठ ये नौ औषध कूटी हुई सोलह २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे । इस चूर्णको बिजोरेके रसमें खरल कर गोली बनाय लेवे । इसको (कांकायन गुटिका) कहते हैं । यह गुटिका घी गौका दूध, खट्टा मद्य अथवा गरम पानी इनमेंसे किसी एकके साथ अनुपान माफिक गोला दूर होनेके वास्ते देवे । यह गोली मद्यके साथ लेनेसे वायगोला दूर होय । गौके दूधसे सेवन करे तो पित्तका गोला नष्ट होवे । गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफगुल्म दूर होवे । दशमूलके काढेके साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपातका गोला दूर होवे । ऊंटनीके दूधके साथ खानेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म दूर हो । तथा यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे ॥

योगराज गूगल वातादिरोगोंपर।

नागरं पिप्पली चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥ भ्रष्टं हिंग्वजमोदं च सर्षपा जीरकद्वयम् ॥ रेणुकेंद्रयवा पाठा विडंगं गजपिप्पली ॥ ५८ ॥ कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वेति भागतः ॥ प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥ ५९ ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् ॥ एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः ॥ ६० ॥ वंगं रोप्यं च नागं च लोहसारं तथाभ्रकम् ॥ मंडूरं रससिंदूरं प्रत्येकं पलसंमितम् ॥ ६१ ॥ गुडपाकसमं कृत्वा इमं दद्याद्यथोचितम् ॥ एकपिंडं ततः कृत्वा धारयेद्घृतभाजने ॥ ६२ ॥ गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः ॥ गुग्गुलुर्योगराजोयं त्रिदोषघ्नो रसायनम् ॥ ६३ ॥ मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते ॥ सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥ प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगंदरम् ॥ उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥ मंदाग्निश्वासकासांश्च नाशयेदरुचिस्तथा ॥ रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥ ६६ ॥ पुंसामपत्यजनको वंध्यानां गर्भदस्तथा ॥ रास्नादिकाथसंयुक्तो विविधं हंति मारुतम् ॥६७॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ॥ दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेणैव पांडुताम् ॥ ६८ ॥ मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठे निंबशृतेन वा ॥ छिन्नाकाथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाशृतात् ॥ ६९ ॥ पाटलाकाथसहितो विषं मूषकजं जयेत् ॥ त्रिफलाकाथसहितो नेत्रार्तिं हंति दारुणाम् ॥ पुनर्नवादेः काथेन हन्यात्सर्वोदराण्यपि ॥ ७० ॥

अर्थ–१ सोंठ २ पीपल ३ चव्य ४ पीपरामूल ५ चीतेकी छाल ६ भूनी हुई हींग ७ अजमोद ८ सरसों ९ जीरा १० काला जीरा ११ रेणुका १२ इन्द्रजौ १३ पाढ १४ वायविडंग १५ गजपीपल १६ कुटकी १७ अतीस १८ भारंगी १९ वच और

२०मूर्वा ये बीस औषध एक२ शाण लेवे। इन औषधोंका दुगुना त्रिफला लेवे। फिर इन सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करके इस चूर्णके समानभाग शुद्ध गूगल लेकर खरलमें डालके खूब बारीक पीसके गुडके पाक समान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलाय देवे। पश्चात् वंग, रूपरस, नागेश्वर, सार, अभ्रक, मंडूर और रससिंदूर इन सातोंकी भस्म चार २ तोले लेकर उस गूगलमें मिलाय देवे। सबका एक गोला बनावे। फिर इसमेंसे चार २ मासेकी गोलियां बनावे। इनको घीके चिकने बासनमें भरके धर रक्खे। इसको योगराजगूगल कहते हैं। यह गूगल सेवन करनेसे त्रिदोषको दूर करे तथा रसायन है। इसके ऊपर मैथुन करना खाना पीना इनका निषेध नहीं है। विना पथ्यकेभी गुण करता है। इससे संपूर्ण बादीके रोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गोलेका रोग, भृगीरोग, उरोग्रह, मंदाग्नि, खांसी, श्वास और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह योगराजगूगल पुरुषोंके धातुविकारको दूर करता है और स्त्रियोंके रजोदर्शन संबंधी रोगोंको दूर करता है। पुरुषोंके धातुकी वृद्धि करके पुत्र देता है वांझ स्त्रियोंको गर्भ देता है। रास्नादि काढेके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारके वायु दूर होंय। काकोल्यादि काढेसे सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवे। आरग्वधादि काढेके साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो। दारुहलदीके काढेसे सेवन करे तो प्रमेहको दूर करे। गोमूत्रसे सेवन करे तो पांडुरोगको नष्ट करे। जो प्राणी मेदाके बढनेसे अधिक मुटा गया हो वह सहतके साथ इसे सेवन करे। कुष्ठरोगमें नीमकी छालके काढेसे सेवन करे। वातरक्तरोगमें गिलोयके काढेसे खाय। शूल और सूजन इनमें पीपलके काढेसे सेवन करे। मूसेके विषपर पाडलके काढेसे सेवन करे। नेत्ररोगमें त्रिफलाके काढेसे साधन करे। और पुनर्नवादि काढेके साथ संपूर्ण उदरके रोगोंपर सेवन करना चाहिये। इस प्रकार इस योगराजगूगलके अनुपान हैं। बाकी अपनी बुद्धिसे वैद्य कल्पना करे॥

कैशोरगूगल वातरक्तादिकोंपर।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत्॥ ७१॥ संकुट्य लोहपात्रेषु सार्धद्रोणांबुना पचेत्॥ जलमर्धशृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम्॥ ७२॥ क्काथे क्षिपेत्तु शुद्धं च गुग्गुलुं प्रस्थसंमितम्॥ पुनः पचेदयःपात्रे दर्व्या संघट्टयेन्मुहुः॥७३॥ सांद्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम्॥ चूर्णीकृत्य ततस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत्॥७४॥ त्रिफलार्द्धपला ज्ञेया गुडूची

पलिका मता ॥ षडस्त्रं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडंगानां पलार्धकम् ॥ ॥ ७५ ॥ दंती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता ॥ ततः पिंडीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ ७६ ॥ गुटिका शाणिका कार्या युंज्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपाने भिषग्दद्यात् कोष्णनीरं पयोथ वा ॥ ७७ ॥ मंजिष्ठादिशृतं वापि युक्तियुक्तमतः परम् ॥ जयेत्सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम् ॥७८॥ सर्वव्रणांश्च गुल्मांश्च प्रमेहपिडिकास्तथा ॥ प्रमेहोदरमंदाग्निकासश्वयथुपांडुजान् ॥ ७९ ॥ हंति सर्वामयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनम् ॥ कैशोरकाभिधानोयं गुग्गुलुः कांतिकारकः ॥ ८० ॥ वासादिना नेत्रगदान् गुल्मादीन् वरुणादिना ॥ क्काथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ८१ ॥ अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम् ॥ मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः ८२

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ गिलोय ये चारों औषध एक एक प्रस्थ लेवे। इनको कुछ कूटकर लोहेकी कढाईमें डेढ द्रोण पानी डालके उसमें इन औषधोंको डालके आधा पानी रहने पर्यंत औटावे फिर इसको दूसरे पात्रमें कपडेमें छानके इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण लेकर बारीक कूटके मिलाय देवे। फिर इस गूगलयुक्त काढेको अग्निपर लोहेकी कढाईमें चढायके लोहेकी कलछीसे वारंवार चलाता जावे। इस प्रकार गुडके पाक समान होने पर्यंत गाढा करे। फिर इसमें आगे लिखी हुई औषधोंका चूर्ण करके डाले। उन औषधोंको कहते हैं। १ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ गिलोय ये चार औषध आधे २ पल लेय, १ सोंठ १ काली मिरच और ३ पीपल ये तीन औषध दो दो अक्ष लेवे, वायविडंग अर्ध पल लेय, दंती एक कर्ष, निसोथ १ कर्ष, इन सब औषधोंका चूर्ण कर उस गूगलके पाकमें मिलायके कूट डाले। जब एक जीव हो जावे तब एक एक शाणकी गोली बनाय लेवे। इनको घीके चिकने बासनमें रख देवे। इसको कैशोर गूगल कहते हैं इस गूगलको गरम जलके साथ अथवा दूधके साथ अथवा मंजिष्ठादि काढेसे सेवन करे। यह गोली रोगीकी शक्तिका तथा रोगका तारतम्य देखके अनुपानके साथ देवे तो संपूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदोषसे उत्पन्न हुए वातरक्त तथा संपूर्ण व्रण, गोला, प्रमेह, उदर, मंदाग्नि, खांसी, श्वास और पांडुरोग ये दूर होवें। यह कैशोर गूगल कांतिको देता है वासकादि काढेके साथ सेवन करनेसे नेत्रके रोग दूर हों तथा वरुणादि काढेके

साथ सेवन करनेसे गुल्मादिक रोग दूर हों। खादिरादि काढेके साथ सेवन करनेसे व्रण और कुष्ठरोग दूर होवें। अब गूगल सेवनकर्ता प्राणीको इसका पथ्य कहते हैं। जैसे कि खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, अजीर्ण, स्त्रीसे मैथुन करना, परिश्रम करना, धूपमें रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना ये सब वस्तु गूगल सेवनकर्त्ता जिस प्राणीको गुणकी इच्छा हो उसको त्याज्य है। जो अपथ्यको त्याग पथ्यके साथ गूगल सेवन करता है उसकोही गुण होता है अन्यथा गुणके बदले अवगुण होता है॥

त्रिफलागूगल भगंदररोगादिकोंपर।

त्रिफलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम्॥ गुग्गुलुः पंचपलिकः क्षोदयेत्सर्वमेकतः॥ ८३॥ ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुंज्याद्वह्न्यपेक्षया॥ भगंदरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत्॥८४॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आंवला और ४ पीपल ये चार औषध एक २ पल लेकर चूर्ण करे। फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले इन सबको बारीक कूट पीसके गोली बनावे। रोगीके जठराग्निका बलाबल विचारके इसे देवे तो भगंदररोग, गोलेका रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे॥

गोक्षुरादिगूगल प्रमेहादिरोगोंपर।

अष्टाविंशतिसंख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात्॥ विपचेत्षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः॥ ८५॥ ततः पुनः पचेत्तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत्॥ गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिःक्षिपेत्॥ ॥८६॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पलसप्तकम्॥ ततः पिंडीकृतं चास्य गुटिकामुपयोजयेत्॥ ८७॥ हन्यात्प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम्॥वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाश्मरीम्॥८८॥

अर्थ-अट्ठाईस पल (११२ तोले) गोखरू लेकर जवकूट करके छः गुने पानीमें चढायके जबतक आधा न जले तबतक औटावे। जब आधा जल रहे तब शुद्ध किया गूगल ७ पल प्रमाण लेकर उत्तम रीतिसे कूट पीसके उस काढेमें मिलाय देवे। फिर उस काढेका गुडके समान पाक करे। जब गाडा हो जावे तब आगे लिखी हुई औषधोंको मिलावे। जैसे १ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल ४ हरडा ५ बहेडा ६ आंवला ७ नागरमोथा ये सात औषध एक एक पल प्रमाण लेवे। सबका चूर्ण करके उस पाककी चासनीमें मिलायके एक गोला बनाय ले। फिर इसकी गोली बनाय ले।

इसके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, मूत्राघात, वातरक्त, वादीके रोग, धातुके विकार अर्थात् वीर्यसंबंधी रोग और पथरी इन सब रोगोंको दूर करे॥

चंद्रकलावटिका प्रमेहपर।

एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक्॥
सूतेंद्रवंगायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च॥ ८९॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रा मधुना ततश्च॥
बद्धा गुटी चंद्रकलेति नाम्ना मेहेषु सर्वेषु च योजनीया॥ ९०॥

अर्थ-१ इलायचीके दाने २ कपूर शुद्ध ३ मिश्री ४ जायफल ५ गोखरू ६ कांटेदार सेमरकी छाल ७ रससिंदूर ८ वंगभस्म और ९ लोहभस्म ये नौ औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमरके काढेकी भावना देकर दो दो मासेकी गोली बनावे। इनको सहतमें मिलायके खावे तो सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होवें॥

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिरोगोंपर।

त्रिफला त्रिपला कार्या भल्लातानां चतुःपलम्॥ बाकुची पंचपलिका विडंगानां चतुःपलम्॥ ९१॥ हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु॥ एकैकं पलमात्रं स्यात्पलार्धं पौष्करं भवेत्॥ ९२॥ चित्रकस्य पलार्धं स्यात्त्रिशाणं मरिचं भवेत्॥ नागरं पिप्पली मुस्ता त्वगेला पत्रकुंकुमम्॥ ९३॥ शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः॥ ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखंडे च तत्समे॥ ९४॥ मोदकान् पलिकान् कृत्वा प्रयुंजीत यथोचितम्॥ हन्युः सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान्॥ ९५॥ भगंदरप्लीहगुल्मांश्चिह्वातालुगलामयान्॥ शिरोक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि॥ ९६॥ प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे॥ भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते॥ भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च॥ ९७॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ये तीन औषध आठ पल लेय। भिलाये चार पल, बावची पांच पल, वायविडंग चार पल प्रमाण और १ लोहभस्म २ निसोथ ३ गूगल ४ शिलाजीत ये चार औषध एक २ पल प्रमाण लेनी चाहिये। गांठदार

पुहकरमूल आधा पल, चीतेकी छाल आधा पल, काली मिरच दो शाण, एवं १ सोंठ २ पीपल ३ नागरमोथा ४ दालचीनी ५ इलायची ६ तमालपत्र और ७ नागकेशर ये सात औषधि एक २ शाण लेवे। सबको कूट पीस चूर्ण करे। इस चूर्णके समान मिश्री लेके पाक करे। उसमें इस चूर्णको डालके सबको एक जीव करके एक एक पलके मोदक बनावे। इस मोदकके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर हों, त्रिदोषसे उत्पन्न भगंदर रोग, नेत्रोंके रोग, प्लीहरोग, गोलेका रोग, जीव तालु गला शिर नेत्र भौंह इनके रोग, गरदन पीठ इनके रोग इत्यादिक सब दूर होवें। कमरसे लेकर नीचे पैरोंको रोग होवे तो प्रातःकाल औषध सेवन करे। यदि पेटके रोग होवे तो भोजनके समय ग्रास (गस्सा) के साथ सेवन करे। छातीसे लेकर माथे पर्यंतके रोगोंमें भोजन करनेके पश्चात् इस त्रिफलादि मोदकको सेवन करना चाहिये॥

कांचनारगूगल गंडमालादिकोंपर।

कांचनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधैः॥ ९८॥ त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात्पलत्रयम्॥ पलैकं वरुणं कुर्यादेला त्वक्पत्रकं तथा॥ ९९॥ एकैकं कर्षमात्रं स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्॥ यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः॥ १००॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिंडं कृत्वा च धारयेत्॥ गुटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचिताः॥ १०१॥ गंडमालां जयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च॥ ग्रंथीन् व्रणांश्च गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगंदरम्॥ १०२॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुंडानिकाभवः॥ क्वाथः खदिरसारस्य पथ्या क्वाथोष्णकं जलम्॥ १०३॥

अर्थ–कचनार वृक्षकी छाल १० पल लेवे तथा १ हरड २ बहेडा ३ आंवला ये तीन औषध दो दो पल प्रमाण अर्थात् सब छः पल ले। और १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ये तीनों औषध एक २ पल प्रमाण लेनी। तथा बरना एक पल १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ये तीन औषध एक २ कर्ष लेनी चाहिये। फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इस चूर्णके समान भाग शुद्ध किए हुए गूगलको कूट पीसके उस चूर्णमें मिलाय देवे। फिर कूटके एक गोला करके एक २ शाणकी गोलियां बनावे। प्रातःकाल मुंडी[1] अथवा खैरसार अथवा हरडके काढेसे या गरम

---

१ इसको गोरखमुंडी कहते हैं।

जलके साथ एक एक गोली सेवन करे तो घोर दुर्धर गंडमालाका रोग तथा गंड-मालाका भेद अपचि रोग, अर्बुद, गांठ, व्रण, गोला, कोढ, भगंदर ये सब रोग दूर होवें ॥

माषादि मोदक धातुपुष्टिपर ।

निस्तुषं माषचूर्णं स्यात्तथा गोधूमसंभवम् ॥ निस्तुषं यवचूर्णं च शालितंदुलजं तथा ॥ १०४ ॥ सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद्गोघृतेन च॥१०५॥ अर्धमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खंडं समं क्षिपेत् ॥ जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेच्च शनैः शनैः ॥ १०६ ॥ ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान् कुर्वीत मोदकान् ॥ भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ १०७ ॥ वर्जनीयौ विशेषेण क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि ॥ कृत्वैवं रमयेन्नारीर्वह्निर्न क्षीयते नरः ॥ १०८ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–उडदकी दालका चून, गेंहूका चून, तुषरहित जौका चून, चांवलोंका चून और पीपलका चूर्ण ये सब औषधि एक एक पल लेवे । सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौका घी काडाहीमें डालके उन सबको मंद २ अग्निसे भूने । फिर सबकी बराबर खांडकी चासनी दूना जल डालके करे । उसमें पूर्वोक्त भूने हुए चूनको मिलायके एक एक पल अर्थात् चार २ या पांच २ तोलेके लड्डू बनाय लेवे । इसको रात्रिके समय खायकर ऊपरसे पाव भर दूध पीवे तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय । इस प्रकार करनेसे मनुष्य बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेपरभी क्षीणबल नहीं होता ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

अवलेहोंकी योजना ।

क्वाथादीनां पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया ॥ सोवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥ सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ॥ द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः॥

॥ २ ॥ सुपक्के तंतुमत्त्वं स्यादवलेहोप्सु मज्जति ॥ खरत्वं पीडिते मुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥ दुग्धमिक्षुरसं यूषं पंचमूलकषायजम् ॥ वासाक्काथं तथा योग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–औषधोंके कषाय और फांट आदिकोंको पुनः औटायके गाढा करनेसे जो रसकर्म होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं। उस अवलेहकी मात्रा १ पल अर्थात् ४ चार तोले भरकी है। उसमें खांड डालनी होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे चौगुनी डालनी और गुड डालना होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे दुगुना डालना दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हों तो जितना चूर्ण हो उसे चौगुने डालना। ऐसा सर्व अवलेह प्रकरणमें निश्चय है सो जानना। वह अवलेह अच्छा पकाया नहीं इसकी परीक्षा कहते हैं। उस अवलेहका अच्छी रीतिसे पाक हो जानेसे तांत छूटती है और पानीमें वह अवलेह डालनेसे डूब जाता है। और अंगुलियों करिके दबानेसे करडा और चिकना होता है, तथा उसमें दूसरेही किसी एक प्रकारका अपूर्व गंध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं। इन लक्षणोंसे अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना। दूध, ईखका रस, पंचमूलके काढेका यूष और अडूसेका काढा इस अवलेहके अनुपान है। तिनमेंसे रोगकी योग्यता विचारके जो अनुपान देनेका होवे सो देना चाहिये ॥

कंटकारीअवलेह हिचकी श्वासकासोंके ऊपर।

कंटकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ॥ पादशेषं गृहित्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥ ५ ॥ पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः ॥ मुस्तं कर्कटशृंगी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ६ ॥ भार्ङ्गी रास्ना शठी चैव शर्करापलविंशतिः ॥ प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥ ७ ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम् ॥ चतुःपलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुःपलम् ॥ ८ ॥ क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे ॥ लेहोऽयं हंति हिक्कार्तिश्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

अर्थ–भटकटैया ४०० तोले प्रमाण लेके थोडी २ कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४ तोले) पानी डालके चवथाई पानी शेष रहे तबतक कषाय करके फिर उस काढेको छानना। और उसमें इन औषधोंका चूर्ण मिलाना। गिलोय, चाव, चीता,

नागरमोथा, काकरासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, भारंगी, रासना, कचूर ये बारह औषध चार २ तोले लेके इनका चूर्ण कर उस काढेमें डाले खांड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना। ये सब औषध डालके औटायके अवलेह करके ठंडा करना फिर उसमें बत्तीस तोले सहत और सोलह तोले वंशलोचन, तथा पीपलियोंका चूर्ण उस अवलेहमें मिलायके दृढ मिट्टीके पात्रमें डालके अच्छी रीतिसे रखना यह अवलेह नित्य सेवन करनेसे हिचकीकी पीडा, श्वास और कास इन सब रोगोंको नष्ट कर देता है॥

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह।

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः॥ पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृंगी द्राक्षामृताभयाः॥१०॥ बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवंतिका शठी॥ जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका॥ ११॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा॥काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागरुचंदनम्॥ १२॥एकैकं पलसंमानं स्थूलचूर्णितमौषधम्॥ एकीकृत्य बृहत्पात्रे पंचामलशतानि च॥॥ १३॥ पचेद्द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशेषितम्॥ ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा॥१४॥ दृढहस्तेन संमर्द्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम्॥ पलसप्तमितं तानि किंचिद्भृष्टानि लपवह्निना॥ १५॥ ततस्तत्र क्षिपेत्क्वाथं खंडं चार्धतुलोन्मितम्॥ लेहवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत्॥ १६॥ पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुःपला॥ प्रत्येकं च त्रिशाणाः स्युस्त्वगेलापत्रकेसराः॥ १७॥ ततस्त्वेकीकृते तस्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रं च षट्पलम्॥ इत्येवं च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञकम्॥ १८॥ लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा खादेत्क्षीणो रसायनम्॥ बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणाश्च शोषिणः॥ १९॥ हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते॥ कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसो ग्रहम्॥२०॥ वातं पित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत्॥ मेधां स्मृतिं स्त्रीषु

हर्षं कान्तिं वर्णं प्रसन्नताम् ॥ अस्य प्रयोगादाप्नोति नरोऽजीर्णविवर्जितः ॥ २१ ॥

अर्थ–सिरस, अरनी, काश्मर्य, बेलवृक्षकी जड, स्योनापाठा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली, तीनों पीपल, काकडासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरैंटी, भूमिआंवला, वांस्य, ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौवाठोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, सांठी, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, चंदन ये सब औषध चार २ तोले लेकर थोडा २ कूट इकट्ठा करे । फिर बडे २ आंवले ५०० लेकर बडे मटकेमें डाल तिसमें १०२४ तोले पानी डालके पकावे । जब उसका आठवां हिस्सा शेष रहे तब उन औषधोंमेंसे ५०० सौ आंवलोंको निकाल लेवे । पीछे उन आंवलोंको छीलकर कलई किये हुए पात्रके ऊपर वस्त्रको दृढ बांधिके उसके ऊपर धरके करडे हाथसे अत्यंत मर्दन करे । तिस पीछे नीचे उतरे हुए आंवलोंके मगजमें २८ तोले भर घृत डालके मंद अग्निके ऊपर थोडासा भूनकर पीछे तिसमें पूर्व किया हुआ क्वाथ और अर्धतुला परिमाण खांड डालना । जबतक वह कठिन होवे तबतक उसे पकाना । ऐसे इसको लेहकी रीतिसे सिद्ध करे। पीछे ये औषध डाले, पीपल ८ तोलेभर, वंशलोचन १६ तोला भर, और दालचीनी इलायची और तेजपात ये औषध ३ शाण परिमाण । तब अवलेहको इकट्ठा करके उसमें २४ तोले सहत मिलावे । यह च्यवनऋषिका कहा हुआ च्यवनप्राशसंज्ञ अवलेह है । क्षीण हुए पुरुषको रसायनरूप लेहको अग्निका बलाबल देखिके खाना चाहिये । यह च्यवनप्राशावलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोषरोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण इन पुरुषोंमें युक्त है । और यह श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्यके दोष, मूत्रके दोष इतने रोगोंका नाश करता है । इस अवलेहके प्रयोगसे पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति, स्त्रीके साथ संग करनेकी इच्छा, शरीरकी कांति और वर्ण, अंतःकरणके संतोषको प्राप्त होता है और अजीर्ण करिके रहित होता है ॥

कूष्मांडकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर ।

निष्कुलीकृतकूष्मांडखंडान्पलशतं पचेत् ॥ २२ ॥ निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते ॥ तानि कूष्मांडखंडानि पीडयेद्दृढवाससा ॥ २३ ॥ आतपे शोषयेत्किचिच्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत् ॥ क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं घृतम् ॥ २४ ॥ तेन किंचिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं च जलं क्षिपेत् ॥ खंडं पलशतं दत्त्वा

सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ २५ ॥ सुपक्के पिप्पलीशुंठीजीराणां द्विपलं पृथक् ॥ पृथक् पलार्धं धान्याकं पत्रैला मरिचं त्वचम् ॥ ॥ २६ ॥ चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावपेत् ॥ खादेदग्नि-बलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयी ज्वरी ॥ २७ ॥ शोषतृष्णातमश्छर्दि-कासश्वासक्षतातुरः ॥ कूष्मांडकावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते ॥ उरःसंधानकृद् वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः ॥ २८ ॥

अर्थ-उत्तम पके हुए पेठेके ऊपरका छीलका कतरके तथा भीतरके बीजोंको नि-कालके छोटे २ टुकडे कर १०० पल लेवे। उनमें दो तुला जल डालके औटावे जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतार ले । उस जलको छानके एक जगह रख देवे । फिर उन पेठेके टुकडोंको कपडेमें बांधके निचोड लेवे । पश्चात् उनको कुछ गरम वाफ देकर सूएसे अत्यंत छेदे । तब तामेके पात्रमें ८ पल घी डाल उन टुकडोंको धीमी आंचपर भूने । पश्चात् पूर्वोक्त पेठेके निचुडे हुए पानीमें इस भुने पेठेको डाले तथा १०० पल मिश्री मिलायके पाक करे । जब पाक सिद्ध होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले । जैसे-१ पीपल २ सोंठ ३ जीरा ये तीन औ-षध दो दो पल, तथा १ धनिया २ पत्रज ३ इलायचीके दाने ४ काली मिरच ५ दा-लचीनी ये पांच औषध आधा २ पल लेवे । फिर सबका चूर्ण करके पाकमें मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे । इसको कूष्मांडावलेह कहते हैं । यह अवलेह रोगीको अपना बलाबल विचारके सेवन करना चाहिये । इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रोंके आगे अंधेरीका आना, वमन, खांसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें । यह अवलेह बालक और बूढोंके उपयोगी है छातीमें अन्नका रस आता है उसको साधक होता है । स्त्रीप्रसंगकी इच्छा प्रगट करे धातुवृद्धि करे तथा बल बढावे ॥

कूष्मांडखंडलेह बवासीरपर ।

युक्त्या कूष्मांडखंडं च सूरणं विपचेत्सुधीः ॥
अर्शसां मूढवातानां मंदाग्नीनां च युज्यते ॥ २९ ॥

अर्थ-पेठेके बारीक २ टुकडे तथा सूरण (जमीकंद) का सीरा इन दोनोंको मिलायके घीमें भून दुगनी मिश्री मिलायके पाक करे अर्थात् अवलेह बनावे । इससे बवासीर, मूढवादी (अधो वायुका नीचे न उतरना) ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो ॥

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर ।

हरितकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा ॥ ३० ॥ पलानि दश-

मूलस्य विंशतिश्च नियोजयेत् ॥ चित्रकः पिप्पलीमूलमपामार्गः शठी तथा ॥ ३१ ॥ कपिकच्छूः शंखपुष्पी भार्ङ्गी च गज-पिप्पली ॥ बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥ ३२ ॥ पचेत्पंचाढके नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत् ॥ तच्चाभयाशतं दद्यात्काथे तस्मिन्विचक्षणः ॥ ३३ ॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षि-पेद्गुडतुलां तथा ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धशीते पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥ क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया ॥ हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥ ३५ ॥ क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्कार्शोऽरुचिपीनसान् ॥ ग्रहणीं नाशयत्येष वलीपलि-तनाशनः ॥ ३६ ॥ बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् ॥ वि-हितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ आढक जव ले उनको जवकूट करके चौगुना जल मिलायके औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतार छानके धर रक्खे और उन औटे हुए जवोंको फेंक देवे। फिर दश मूलकी औषध बीस पल लेय, १ चित्रक २ पीपरामूल ३ ओंगा ४ कचूर ५ कौंचके बीज ६ शंखपुष्पी ७ भारंगी ८ गजपीपल ९ खरेटीकी जड और १० गांठदार पुहकरमूल ये दश औषध दो दो पल लेय। इस प्रकार बीसों औषधोंको एकत्र करके जवकूट कर लेवे। इनमें ५ आढक जल मिलायके औटावे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको पूर्वोक्त जौके काढेमें मिलाय देवे पीछे इसमें बडी २ हरड १०० नग डाले। घी और तिलोंका तेल आठ २ पल लेवे, गुड १ तुलाभर ले, सबको काढेमें मिलाय पाक करे। जब गाढा होय तब उतारले। फिर शीतल होनेपर पीपलका चूर्ण और सहत ये दोनों कुडव २ अर्थात् पाव पाव भर लेकर उस पाकमें मिलाय देवे। इस प्रकार अगस्त्य ऋषिके कहे हुए अवलेहको अगस्त्यहरीतकी कहते हैं। इसमेंसे दो हरड अवलेहके साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि (बवासीर), अरुचि, पीनसरोग जो नाकमें होता है वह तथा संग्रहणी ये रोग दूर होंय। तथा देहमें गुजलट पडे वह दूर हो सपेद बाल काले होंय बल और कांति आवे यह अवलेह रसायन है इससे संपूर्ण रोग दूर होंय॥

कुटजावलेह अर्शादिकपर।

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः ॥ कषायं पादशेषं

च गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८ ॥ त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र दत्त्वा च विपचेत्पुनः ॥ सांद्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ॥ ३९ ॥ रसांजनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा ॥ लज्जालुं चित्रकं पाठां बिल्वमिंद्रयवं वचाम् ॥ ४० ॥ भल्लातकं प्रतिविषां विडंगानि च वालकम् ॥ प्रत्येकं पलसंमानं घृतस्य कुडवं तथा ॥ ४१ ॥ सिद्धशीते ततो दद्यान्मधुनः कुडवं तथा ॥ जयेदेषोवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः ॥ ४२ ॥ दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम् ॥ ग्रहणीं पांडुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम् ॥ ४३ ॥ अम्लपित्तं तथा शोषं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम् ॥ अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयो दधि ॥ घृतं जलं वाजीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः ॥ ४४ ॥

अर्थ–कूडाकी छाल एक तुला (४०० तोले) लेवे । उसको जवकूट कर एक द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसमें गुड ३० पल डालके फिर औटावे । जब गाढा होनेपर आवे तब आगे लिखी औषध मिलावे । जैसे १ रसोत २ मोचरस ३ सोंठ ४ मिरच ५ पीपल ६ हरड ७ बहेडा ८ आंवला ९ लजालू १० चीतेकी छाल ११ पाढ १२ कच्चा बेलफल १३ इन्द्रजौ १४ वच १५ भिलाए १६ अतीस १७ वायविडंग १८ नेत्रवाला । ये अठारह औषध एक २ पल लेवे । सबका चूर्ण करके पाकमें मिलावे । घी एक कुडव डाले । जब पाक शीतल हो जावे तब सहत एक कुडव मिलावे पश्चात् इस अवलेहको बकरीके दूध छांछ दही घी अथवा जलमें मिलायके लेवे तथा औषध पचनेपर उत्तम भोजन करे तो संपूर्ण बवासीर तथा बवासीरके कारणसे होनेवाले दूसरे भगंदरादि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रोंमें कामला रोग होता है वह, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और प्रवाहिका रोग अतिसारका भेद ये सब रोग दूर होवें ॥

दूसरा कुटजावलेह अतिसार आदि रोगोंपर ।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥ पादशेषं शृतं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत् ॥ लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥ मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात्पलं

पलम् ॥ ततस्तु विपचेद्भूयो यावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ ४७ ॥ जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मंडेन वा जयेत् ॥ सर्वातिसारान्घोरांस्तु नानावर्णान्सवेदनान् ॥ असृग्दरं समस्तं च सर्वार्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–कूडाकी गीली छाल १ तुला प्रमाण लेय उसको जवकूट करके एक द्रोण जल मिलाय काढा करे । जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके उसके जलको कपडेमें छान लेवे । इसमें डालनेकी औषध इस प्रकार हैं–१ लजालु २ धायके फूल ३ कोमल बेलगिरी ४ पाढ ५ मोचरस ६ नागरमोथा ७ अतीस ये सात औषध एक एक पल प्रमाण लेय सबका चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर उस काढेको लोहेकी कढाईमें चढायके पाक करे अवलेह कलछीमें लिपटने लगे इतना गाढा करे फिर यह अवलेह जल अथवा बकरीके दूधसे किंवा मंडके[1] साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नील पीतादिक अनेक प्रकारके रंगका घोर अतीसार रोग संपूर्ण दूर होवे । स्त्रियोंके सर्व प्रकारके असृग्दरादि रोग संपूर्ण मूलव्याधि (बवासीर) और प्रवाहिका रोग जो अतिसारका भेद है ये सब दूर होवें ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

घृत तैल आदि स्नेहोंका साधनप्रकार ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा ॥ चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्य क्राथयेत्तोयं क्राथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ ॥ २ ॥ चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् ॥ तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥ ३ ॥ अत्यंतकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् ॥ कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं

१ चांवलोंमें चौदह गुना जल डालके औटावे । जब चांवल गल जावे तब उसके मांडको निकास लेवे इसको मंड कहते हैं ।

जलम् ॥ ४ ॥ तदूर्ध्वं कुडवं यावत्क्षिपेदष्टगुणं पयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥ अंबुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् ॥ कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थषष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥ दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः ॥ कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ७ ॥ द्रव्याणि यत्र स्नेहेषु पंचादीनि भवंति हि ॥ तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथा पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८ ॥ द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि ॥ तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ९ ॥ क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित् ॥ क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ १० ॥ कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवलद्रवे ॥ पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥ स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते ॥ वर्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदांगुल्या विमर्दितः ॥ १२ ॥ शब्दहीनोग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ यदा फेनोद्भवस्तैलफेनशांतिश्च सर्पिषि ॥ ॥ १३ ॥ गंधवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ॥ स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥ १४ ॥ ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ॥ मध्यपाकस्यासिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले ॥ १५ ॥ ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ १६ ॥ आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमांद्यकरो गुरुः ॥ नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ १७ ॥ अभ्यंगार्थं खरः प्रोक्तो युंज्यादेवं यथोचितम् ॥ घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे ॥ प्रकुर्वंत्युषिता ह्येते विशेषाद्गुणसंचयम् ॥ १८ ॥

अर्थ–कल्ककी औषधोंसे चौगुना घृत अथवा तेल लेवे, तथा उस घृत तेलका चौगुना दूध गौ आदिका मूत्र इत्यादिक द्रवपदार्थ ले सबको एकत्र कर अग्निके संयोगसे उस द्रवपदार्थको जलायके घृत तथा तेल शेष रक्खे । उसी प्रकार सिद्ध हुए घृत

और तेलकी भक्षण करनेकी मात्रा वातादि रोगोंपर १ पलकी जाननी । काढेकी औष-धोंमें चौगुना पानी डालके औटावे । जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार लेय । उसमें घृत अथवा तेल डालके औटावे । जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे तब सिद्ध हुआ जानना यदि नरम गुडूच्यादि औषध हों तो उनमें चौगुना पानी डाले । अमलतास आदि कठिन औषधेंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम औषध हैं उनमें काढेके वास्ते आठ गुना जल मिलावे । पद्माख आदि जो अत्यंत कठोर औषधि है उनमें जल सोलह गुना डालना चाहिये । कर्षसे लेकर पल पर्यंत मान कही हुई औषधोंका यदि काढा करना होय तो जल सोलह गुना डाले । पलसे लेकर कुडवमान पर्यंत औषधोंका काढा कर-ना होय तो पानी आठ गुना मिलावे । प्रस्थसे लेकर खारीमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो चौगुना जल डाले । केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले । काढेमें स्नेह सिद्ध करना होह तो उसमें स्नेहका षष्ठांश कल्क मिलावे । मांसके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क डाले । दूध, दही अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्ट-मांश कल्क मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते स्नेहका चौगुणा जल डाले । स्नेहमें दूध गोमूत्र इत्यादि पांच द्रवपदार्थोंसे अधिक द्रवपदार्थ डालने हों तो दूध और गोमूत्रादिक स्नेहके समान भाग लेवे । यदि द्रवपदार्थ पांचसे न्यून होवें तो स्नेहके चौगुने लेवे । जिस ठिकाने केवल एकही द्रव्यसे स्नेहपाक साधन लिखा होय वहां कल्कको पानीमें पीसके उसका चौगुना पानी डाले । यदि काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो कल्क द्रव्यको पानीमें पीस कल्क कर स्नेहमें डाल उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले । अथवा किसी प्रयोगमें काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो काढेकी औषधोंका कल्क करके स्नेहमें मिलाय उसमें पानी चौगुना डाले । जिस स्नेहमें कल्क डालना नहीं लिखा उसे गोमूत्रादि द्रव पदार्थोंमें डालके औटावे । जब द्रवपदार्थ जल जावे और स्नेहमात्र शेष रहे तब उतार ले । जिस स्नेहमें फूलोंका कल्क डालना लिखा है उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले । फूलोंका कल्क स्नेहका अष्टमांश डालना । अब इसके उपरांत उत्तम सिद्ध हुए स्नेहके लक्षणोंको लिखते हैं । जो स्नेह उंगलीके पोरु-ओंके लगानेसे और भीडनेसे बत्तीसा हो जावे तथा उस कल्कको अग्निपर गेरनेसे चट-चटाहट शब्द न करे, तेलके पाकमें झाग आनेसे तथा घृतके पाकमें झाग आकर शांत हो जानेसे; तथा उस पाकके सुगंध करके, रक्तादिवर्ण करके, मधुरादि रसोंकरके युक्त होनेसे स्नेह सिद्ध हो गया इस प्रकार वैद्य जाने । स्नेहका पाक तीन प्रकारका है । जैसे–नम्र मध्यम और कठिन । उनके लक्षण कहते हैं कि जिस स्नेहमें कल्ककी कुछ २ आर्द्रता बनी रहे अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना । जिस स्नेहमें कल्ककी मृदुता होनेसे जलका अंश सर्वथा न रहे उस पाकको मध्यम

पाक जानना। और जिस स्नेहका पाक किंचित् तीव्र हो गया हो अर्थात् कल्क सर्वथा जलकरभी कुछ तेल जल गया हो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ कामका नहीं है। कच्चा पाक रहनेसे उसमें पराक्रम नहीं रहता, अग्निको मंद करता है तथा भारी होता है। स्नेहका पाक नरम होनेसे वह स्नेह नाकमें नस्य देनेके विषयमें योग्य होता है। मध्यम पाक होनेसे वो स्नेह सर्व कर्ममें वर्तना चाहिये। कठिन पाक होनेसे उस स्नेहको देहमें मालिश करनेमें लेवे। घृत तेल गुडादि ये बनाने होंय तो एक दिनमेंही सिद्ध न करे। इनके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र कर एक रात्रि भिगो देवे दूसरे दिन सिद्ध करे। इस प्रकार स्नेहके साधनकी क्रिया जाननी। इसमेंभी प्रथम घृत और पश्चात् तेल बनाना इस अध्यायमें कहा जावेगा॥

घृतका साधन प्रकार तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः॥ ससैंधवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ १९॥ क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तत्सिद्धं प्लीहनाशनम्॥ विषमज्वरमंदाग्निहरं रुचिकरं परम्॥ २०॥

अर्थ–१ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चित्रक ५ सोंठ ६ सैंधानमक ये छः औषध एक २ पल ले कल्क करके एक प्रस्थ गौके घीमें मिलावे। और घीसे चौगुना जल मिलाय फिर गौका दूध उसमें मिलावे। कल्कका पाक उत्तम होनेके वास्ते घृतसे चौगुना पानी डालके पाक करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके सेवन करनेसे पेटमें बाई तरफ जो प्लीहा (तिल्ली) का रोग होता है वह और विषमज्वर मंदाग्नि ये रोग दूर होवें मुखमें उत्तम रुचि आवे॥

चांगेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली॥ श्वदंष्ट्रा नागरं धान्यं पाठा बिल्वं यवानिका॥ द्रव्यैश्च पलिकैरेतैश्चतुःषष्टिपलं घृतम्॥ २१॥ घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चांगेरीस्वरसं बुधः॥ तथा चतुर्गुणं दत्त्वा दधिसर्पिर्विपाचयेत्॥ २२॥ शनैः शनैर्विपक्वं च चांगेरीघृतमुत्तमम्॥ तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत्॥ हंत्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्॥ २३॥

---

१ वैद्यको उचित है कि जब तेल घृत आदि कोईसी वस्तु बनानी होय तो इस स्नेह साधनके अनुसार कल्क काढा दूध गोमूत्रादिक डाले तो ठीक बनेगा अन्यथा बिगड जावेगा।

अर्थ—१ पीपल २ पीपरामूल ३ चित्रक ४ गजपीपर ५ गोखरू ६ सोंठ ७ धानिया ८ पाढ ९ बेलगिरी १० अजमोद ये दश औषध एक २ पल लेवे। कल्क करके चौसठ पल घी लेवे। उसमें इस कल्कको मिलाय तथा घृतसे चौगुना चूकेका रस और दहीकी छाछ डालके मंदाग्निसे परिपक्व करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छानके धर रखे। इसको चांगेरी घृत कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कफवायु, संग्रहणी, मूलव्याधि (बवासीर), मलबद्धता, कांचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होते हैं॥

मसूरादि घृत अतिसारआदिपर।

मसूराणां पलशतं नीरद्रोणे विपाचयेत्॥ पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम्॥ २४॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन सर्वातीसारनाशनम्॥ ग्रहणीं भिन्नविट्कां च नाशयेच्च प्रवाहिकाम्॥ २५॥

अर्थ—मसूर सौ पलमें एक द्रोण जल डालके औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतारके जलको छान लेवे। इसमें आठ पल बेलगिरीका बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाय पाक करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके घीको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके रख देवे इस घृतके सेवन करनेसे संपूर्ण अतिसार संग्रहणी, मलके चीथडा और टुकडे २ गिरे वह और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर हों॥

कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर।

अश्वगंधा तुलैका स्यात्तदर्धो गोक्षुरः स्मृतः॥ २६॥ बलामृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी॥ पुनर्नवाश्वत्थशुंठीकाश्मर्यास्तु फलान्यपि॥ २७॥ पद्मबीजं माषबीजं दद्याद्दशपलं पृथक्॥ चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत्॥ २८॥ जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचंदनम्॥ पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा॥ २९॥ नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा॥ पृथक् कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम्॥३०॥ रसश्च पौंड्रकेक्षूणामाढकैकं समाहरेत्॥ घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाग्निना॥ ३१॥ घृतमेतन्निहंत्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम्॥ हलीमकं पांडुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम्॥३२॥ वातरक्तं

मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम् ॥ शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजःक्षयं तथा ॥ ३३ ॥ स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम् ॥ कामदेवघृतं नाम हृद्यं बल्यं रसायनम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–असगंध १ तुला, गोखरू दक्षिणी अर्द्ध तुला और १ चीतेकी छाल २ गिलोय ३ शालपर्णी ४ विदारीकंद ५ सतावर ६ पुनर्नवा (सांठ) ७ पीपरामूल ८ सोंठ ९ कंभारीके फल १० कमलगट्टा और ११ उडद ये ग्यारह औषध दश २ पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करे। जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके इसको छान लेवे। फिर १० जीवनीयगणकी औषधि ११ कूट १२ पद्माख १३ लालचंदन १४ तमालपत्र १५ पीपल १६ दाख १७ कौंचके बीज १८ नीला कमल १९ नागकेशर २० काली सारिवा २१ सपेद सारिवा २२ बला २३ नागबला ये तेईस औषध एक २ कर्ष ले। कल्क करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय देवे। खांड दो पल डाले। सपेद ईखका रस और घृत ये दोनों एक एक आढक लेके उस काढेमें मिलाय देवे। फिर भट्टीपर चढाय मंदाग्निसे घृतका पाक करे। जब सब पदार्थ जलके घृतमात्र रहे तब उतारके इसको छान लेवे। सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत रोग पांडुरोगका भेद, हलीमक रोग, स्वरभंग, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पीठका दर्द, नेत्रोंका पीला होना, धातुक्षय, उर (छाती) का दाह, शरीरकी कृशता, शरीरके तेजका क्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह घृत जिस स्त्रीके संतान न होती हो उसके वास्ते देनेसे पुत्र देवे पुरुषोंके, वीर्य प्रगट करे, हृदयको हितकारी, बल देवे तथा यह घृत रसायन है इसको कामदेवघृत ऐसा कहते हैं ॥

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर।

त्रिफला द्वे निशे कौंती सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥ शालिपर्णी पृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ॥ ३५ ॥ नतं विशाला दंती च दाडिमं नागकेशरम् ॥ नीलोत्पलैला मंजिष्ठा विडंगं कुष्ठपद्मकम् ॥ ३६ ॥ जातीपुष्पं चंदनं च तालीसं बृहती तथा ॥ एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ घृतप्रस्थं पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये ॥ उन्मादे वातरक्ते च कासे मंदानले तथा ॥ ३८ ॥ प्रतिश्याये कटीशूले तृतीयकचतुर्थके ॥ मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कंड्वां पांड्वामये तथा ॥ ३९ ॥ विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते ॥ वंध्यानां पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ हलदी ५ दारुहलदी ६ रेणुकबीज ७ काली सारिवा ८ सफेद सारिवा ९ फूलप्रियंगु १० शालपर्णी ११ पृष्ठपर्णी १२ देवदारु १३ एलवालुक १४ तगर १५ इन्द्रायनकी जड १६ अनारकी छाल १७ दंती १८ नागकेशर १९ नीले कमल २० इलायची २१ मजीठ २२ वायविडंग २३ कूठ २४ पद्माख २५ चमेलीके फूल २६ चंदन २७ तालीसपत्र और २८ कटेरी ये अट्ठाईस औषध एक एक कर्ष लेवे। कल्क कर इसमें कल्कका चौगुना जल मिलाय दे। फिर १ प्रस्थ घी मिलायके मंदाग्निसे पचन करावे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे। इसके सेवन करनेसे मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खांसी, मंदाग्नि, पीनस, कमरका शूल, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिकज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग जो पैरोंमें होता है, खुजली, पांडुरोग, सर्पादिकोंके विषविकार, वच्छनागादि स्थावर विषोंके विकार, तथा प्रमेह ये सब रोग दूर होवें। यह घृत वंध्या स्त्रियोंको पुत्र देता है। इस घृतके सेवन करनेसे भूतबाधाभी दूर होती है॥

अमृतघृत वातरक्तपर।

अमृताक्काथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचेद् घृतम्॥
वातरक्तं जयत्याशु कुष्टं जयति दुस्तरम्॥ ४१॥

अर्थ—गिलोयको जवकूट कर उसमें चौगुना पानी डालके औटावे। जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे। फिर इस काढेमें इस काढेका चतुर्थांश घी मिलावे और घीका चतुर्थांश गिलोयका कल्क डाले। दूध घृतसे चौगुना डाले। फिर अग्निपर चढायके सिद्ध करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके सेवन करनेसे वातरक्त और कुष्ठ ये रोग बहुत जल्दी दूर होवें॥

महातिक्तकघृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर।

सप्तच्छदः प्रतिविषा शम्याकः कटुरोहिणी॥ पाठा मुस्तमुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा॥४२॥ पटोलनिंबमंजिष्ठाःपिप्पली पद्मकं शठी॥ चंदनं धन्वयासश्च विशाला द्वे निशे तथा॥ ४३॥ गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी॥ त्रायंतींद्रयवा यष्टी भूनिंबश्चाक्षभागिकाः॥ ४४॥ घृतं चतुर्गुणं दद्याद् घृतादामलकीरसः॥ द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जलमष्टगुणं भवेत्॥ ४५॥ तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा॥ कुष्ठानि रक्तपित्तं च

रक्तार्शांसि च पांडुताम् ॥ ४६ ॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान् गंड-
मालिकाम् ॥ क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ–१ सतोना २ अतीस ३ अमलतासका गूदा ४ कुटकी ५ पाढ ६ नागरमोथा ७ खस ८ हरड ९ बहेडा १० आंवला ११ पित्तपापडा १२ पटोलपत्र १३ नीमकी छाल १४ मजीठ १५ पीपल १६ पद्माख १७ कचूर १८ सपेद चंदन १९ धमासे २० इन्द्रायनकी जड २१ हलदी २२ दारुहलदी २३ गिलोय २४ काली सारिवा २५ सपेद सारिवा २६ मूर्वा २७ अडूसा २८ सतावर २९ त्रायमाण ३० इन्द्रजौ ३१ मुलहटी और ३२ चिरायता ये बत्तीस औषध एक २ कर्ष लेवे। कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घीसे दुगुना आवलोंका रस एवं आठगुना जल डालके मंदाग्निपर परिपक्व करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे। इसके सेवन करनेसे वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्त मूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडु-रोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गंडमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों ॥

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रूपामा इत्यादिकोंपर।

काशीसं द्वे निशे मुस्तं हरतालं मनःशिलाम् ॥ कपिल्लकं गं-
धकं च विडंगं गुग्गुलुं तथा ॥४८ सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं
गौरसर्षपान् ॥ रसांजनं च सिंदूरं श्रीवासं रक्तचंदनम् ॥ ४९ ॥
अरिमेदं निंबपत्रं करंजं सारिवां वचाम् ॥ मंजिष्ठां मधुकं मांसीं
शिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥ ५० ॥ हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत्कार्षि-
कान् पृथक् ॥ ततश्च चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥५१॥
स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घर्मे सप्त दिनानि च ॥ अस्याभ्यंगेन कुष्ठा-
नि दद्रूपामाविचर्चिकाः ॥ ५२ ॥ शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फो-
टा वातरक्तजाः ॥ शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥
॥ ५३ ॥ शोथो भगंदरश्चैव लूताः शाम्यंति देहिनाम् ॥ शो-
धनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं घृतम् ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ हीराकसीस २ हलदी ३ दारुहलदी ४ नागरमोथा ५ हरताल ६ मन-सिल ७ कपीला ८ गंधक ९ वायविडंग १० गूगल ११ मोम १२ काली मिरच

१३ कूठ १४ सपेद सरसों १५ रसांजन १६ सिंदूर १७ गंधापिरोजा १८ लाल चंदन १९ खैरकी छाल २० नीमके पत्ते २१ कंजाके बीज २२ सारिवा २३ वच २४ मजीठ २५ मुलहटी २६ जटामांसी २७ सिरसकी छाल २८ लोध २९ पद्माख ३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये इकतीस औषध एक एक कर्ष लेवे । सबका चूर्ण कर तीस पल घी तांबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाय सात दिन धूपमें धरा रहने देवे । फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ, दाह, खाज जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेन्द्रियका सुकसंज्ञक रोग, विसर्परोग, वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह, मस्तकके फोडे, उपदंश (गर्मीका रोग), नाडी व्रण (नासूरका घाव), दुष्ट व्रण, सूजन, भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें । यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भर लाता है तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता है ॥

जात्यादि घृत व्रणपर ।

जातिर्निंबपटोलाश्च द्वे निशे कटुकी तथा ॥ मंजिष्ठा मधुकं सिक्थं करजोशीरसारिवाः ॥ ५५ ॥ तुत्थं च विपचेत्सम्यक् कल्कैरेभिर्घृतं बुधः ॥ अस्य लेपात्प्ररोहंति सूक्ष्मनाडीव्रणा अपि ॥ मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गंभीराः सरुजो व्रणाः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ चमेलीके पत्ते २ नीमके पत्ते ३ पटोलपत्र ४ हलदी ५ दारुहलदी ६ कुटकी ७ मजीठ ८ मुलहटी ९ मोम १० कंजा ११ खस १२ सारिवा और १३ लीलाथोथा ये तेरह औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेनी । इनका कल्क करके उस कल्कका चौगुना घी ले उसमें कल्कको मिलाय धूपमें एक दिन धरा रहने दे । फिर अग्निपर धरके घृतको सिद्ध करे । इस घृतका नाडीव्रण कहिये नासूरके घावमें लेप करे तथा मर्मस्थलमें होय और राध आदि करके गीले गंभीर और पीडायुक्त ऐसे व्रणोंमें इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय ॥

बिंदुघृत उदरादिकोंपर ।

चित्रकः शंखिनी पथ्या कंपिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥ ५७ ॥ वृद्धदारश्च शम्याको दंती दंतीफलं तथा ॥ कोशातकी देवदाली नीलिनी गिरिकर्णिका ॥ ५८ ॥ सातला पिप्पलीमूलं विडंगं कटुकी तथा ॥ हेमक्षीरी च विपचेत् कल्कैरेतैः पिचून्मितैः ॥ ॥५९॥ घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरे षट्पले तु पलद्वये ॥ अर्कक्षीरस्य

मतिमांस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥ हंति शूलमुदावर्तं शोथाध्मानं भगंदरम् ॥ शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिंदुसंख्यया ॥ ६१ ॥ गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कौलत्थेन शृतेन वा ॥ उष्णोदकेन वा पीत्वा बिंदुवेगैर्विरिच्यते ॥ एतद्बिंदुघृतं नाम नाभिलेपाद्विरेचयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ शंखपुष्पी (संखाहूली) ३ हरड ४ कपीला ५ सपेद निसोथ ६ काली निसोथ ७ विधायरा ८ अमलतासका गूदा ९ दंतीकी जड १० जमाल गोटा ११ कडुई तोरई १२ बंदाल १३ नील १४ विष्णुक्रांता (कोयल) १५ पीले रंगकी थूहर १६ पीपरामुल १७ वायविडंग १८ कुटकी १९ चूक ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे । सबका कल्क कर एक प्रस्थ घीमें उसको मिलाय थूहरका दूध छः पल और आकका दूध दो पल मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते उस घीका चौगुना जल डालके मंदाग्निसे घृत शेष रक्खे इस प्रकार जब घृत सिद्ध हो जावे तब इसको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे । इसको (बिंदु घृत) कहते हैं। इसके सेवन करनेसे गोला,कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकारके उदर रोग ये संपूर्ण रोग दूर होवें । इसका अनुपान गौका अथवा ऊंटनीका दूध, कुलथीका काढा, अथवा गरम जल इतने अनुपानोंमेंसे जैसा रोगका तारतम्य देखे उसी प्रकार देवे । इस घृतके जितने बिंदु (बूंद) डालके पीवे उतनेही दस्त होते हैं । इस घृतका नाभिपर लेप करनेसेभी दस्त होते हैं ॥

त्रिफलाघृत नेत्ररोगपर ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम् ॥ ६३ ॥ भृंगराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम् ॥ दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ६४ ॥ त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चंदनं सैंधवं बला ॥ काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम् ॥ ६५ ॥ शर्करा पुंडरीकं च कमलं च पुनर्नवा ॥ निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत् ॥ ६६ ॥ नक्तांध्यं नकुलांध्यं च कंडूं पिल्लं तथैव च ॥ नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं चाजकं जयेत् ॥ ६७ ॥ अन्येपि प्रशमं यांति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ॥ त्रैफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादिसूचितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला इन तीनोंका स्वरस पृथक् २ एक एक प्रस्थ लेवे। यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठ गुने जलमें डालके चतुर्थांश शेष काढा लेवे। इसकी स्वरस संज्ञा है। यह एक २ प्रस्थ लेवे। अडूसेका स्वरस १ प्रस्थ भांगरेका स्वरस १ प्रस्थ बकरीका दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूधको एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डाले। फिर कल्क करके डालनेकी जो औषधि हैं उनको कहता हूं। जैसे–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ पीपल ५ दाख ६ सपेद चंदन ७ सैंधानिमक ८ गंगेरन ९ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगंध लेवे) १० मेदाके अभावमें मुलहटी ११ काली मिरच १२ सोंठ १३ खांड १४ सपेद कमल १५ कमल १६ पुनर्नवा (सांठ) १७ हलदी १८ दारु हलदी और १९ मुलहटी ये उन्नीस औषध प्रत्येक कर्ष २ लेवे। कल्क करके इसको १ प्रस्थ घीमें मिलाय मंदाग्निपर घीको सिद्ध करे। जब तयार हो जावे तब उतारके छान लेवे। इसको त्रिफला घृत कहते हैं। इस घृतके सेवन करनेसे रतोंध, तथा नौलाकेसे नेत्र चमकें उसको नकुलांध्य कहते हैं, नेत्रोंकी खुजली, पिल्लरोग, नेत्रोंके जलका गिरना, नेत्रोंके पटलमें तिमिर रोग होता है वह, मोतियाबिंदु, नेत्र रोगका भेद अजक रोग ये संपूर्ण दूर होवें। इसके सिवाय और जो छोटे बडे नेत्रोंके रोग वेभी दूर हों। यह घृत नाकमें डालनेकेभी उपयोगी है। मतांतरसे लिखते हैं कि त्रिफलाका रस १ प्रस्थ और भांगरेका रस १ प्रस्थ अडूसेका रस १ प्रस्थ सतावरका रस १ प्रस्थ बकरीका दूध १ प्रस्थ गिलोयका रस १ प्रस्थ आंवलोंका रस १ प्रस्थ इन सब रसोंको एकत्र कर घी १ प्रस्थ डालके पक्व करे। यह वंगसेन ग्रंथमें लिखा है। यहभी पूर्वोक्त नेत्र रोगोंपर देवे॥

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर।

द्वे हरिद्रे स्थिरे मूर्वा सारिवा चंदनद्वयैः॥ मधुपर्णी च मधुकं पद्मकेसरपद्मकैः॥ ६९॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफला पंचवल्कलैः॥ कल्कैः कर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ७०॥ विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम्॥ गौर्याद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम्॥ ७१॥

अर्थ–१ हलदी २ दारुहलदी ३ सालपर्णी ४ मूर्वा ५ सारिवा ६ सपेद चंदन ७ लाल चंदन ८ माषपर्णी ९ मुलहटी १० कमलके भीतरकी केशर ११ पद्माख १२ कमल १३ खस १४ मेदाके अभावमें मुलहटी १५ हरड १६ बहेडा १७ आमला १८ वडकी छाल १९ गूलरकी छाल २० पीपलकी छाल २१ पापरीकी छाल

और २२ बेत ये बाईस औषध प्रत्येक एक २ कर्ष लेवे सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे । फिर इसमें १ प्रस्थ घी डालके घी शेष रहने पर्यंत पचन करे । जब सिद्ध हो जावे तब उतारके घीको छान लेय । इस घृतके सेवन करनेसे विसर्प रोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, छुद्र कुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें । इस घृतके सेवनसे प्रायः विषबाधा दूर होती है ॥

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर ।

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ॥ पृथग् द्विपलिकैरेभि-र्द्रोणनीरेण पाचयेत् ॥ ७२ ॥ मयूरं पक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्य-वर्जितम् ॥ पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीरं दत्त्वा च तत्समम् ॥ ७३ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्सम्यग् जीवनीयैः पिचून्मितैः॥ तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्याग्रीवाग्रहं तथा ॥ ७४ ॥ अर्दितं कर्णनासाक्षिजिह्वा-गलरुजो जयेत् ॥ पाने नस्ये तथाभ्यंगे कर्णपूरेषु युज्यते ॥ हेमंतकालशिशिरवसंतेषु च शस्यते ॥ ७५ ॥

अर्थ–१ गंगेरणकी छाल २ मुलहटी ३ रास्ना १० दशमूलोंकी जड ३ त्रिफला इस प्रकार सब मिलायके १६ औषध दो दो पल लेकर जवकूट करके एक द्रोण जलमें डाल देवे । फिर एक मोरको मारके उसके पंख दूर करके कलेजेमें पित्त होता है वह आंतडे और दहनी तरफ जो यकृत् (कलेजा) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोरका शुद्ध मांस लेवे । तथा दूध काढेके समान ले घी १ प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क करके उसमें डाल देय । फिर घृतमात्र शेष रहे इस प्रकार मंदाग्नि पर पचन कर उतारके छान लेवे । पीनेमें, नाकमें डालनेके विषयमें, देहमें लगाने और कानमें डालनेमें इनमें रोगका तारतम्य देखकर इसकी योजना करे इसका सेवन हेमंत कालमें शिशिर कालमें तथा वसंत कालमें करे तो मस्तककी पीडा दूर होय । गरदन और गला इनका स्तंभ तथा मुख टेढा हो जावे ऐसी अर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीडाको दूर करे । इसे मयूरघृत कहते हैं ॥

फलघृत वंध्यारोगपर ।

त्रिफला मधुकं कुष्टं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ७६ ॥ विडंगं पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा ॥ द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥७७॥ शतपुष्पा हिंगु रास्ना चंदनं रक्तचंदनम् ॥

जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा ॥ ७८ ॥ अजमोदा च दंती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतप्रस्थं च गोः क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः ॥ सुतिथौ पुण्यनक्षत्रे मृद्भांडे ताम्रजे तथा ॥ ८० ॥ ततः पिबेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोथ वा ॥ एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ ८१ ॥ पुत्रानुत्पादयेद्धीमान् वंध्यापि लभते सुतम् ॥ अनायुषं या जनयेद्या च सूता पुनः स्थिता ॥ ॥ ८२ ॥ पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमंतं शतायुषम् ॥ एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम् ॥ अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपेत्तत्र चिकित्सकः ॥ ८३ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ मुलहटी ५ कूठ ६ हलदी ७ दारुहलदी ८ कुटकी ९ वायविडंग १० पीपल ११ नागरमोथा १२ इन्द्रायनकी जड १३ कायफल १४ वच १५ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी) १६ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगंध) १७ सपेद सारिवा १८ काली सारिवा १९ फूलप्रियंगू २० सोंफ २१ भूनी हींग २२ रास्ना २३ सपेद चंदन २४ लाल चंदन २५ जावित्री २६ वंशलोचन २७ कमल २८ खांड २९ अजमोद ३० दंती ये तीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे । सबका कल्क कर जिसके बछडा होवे तथा एक वर्णवाली गौका घी एक प्रस्थ लेवे, उसमें उस कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना गौका दूध डाले । फिर सबको एक तामेके पात्रमें भरके अथवा मिट्टीके बासनमें भरके जिस दिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभ दिन होय उस दिन आरने उपलोंकी मंद २ अग्नि देवे । जब घृत शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको फलघृत कहते हैं यह घृत भारद्वाजऋषिने कहा है इसको उत्तम दिनमें पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको देवे पुरुषोंको देनेसे उनका काम बढकर स्त्रीके साथ नित्य रमण करे उसके पुत्र बुद्धिमान् होवे वांझ स्त्री इसका सेवन करे तो पुत्र प्रगट करे जिस स्त्रीके बालक हो होकर मर जावे ऐसी स्त्रीका इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे तथा बुद्धिमान् होय इस घृतमें जो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है इस वास्ते इसकोभी डाले (सपेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते हैं) ॥

पंचतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर।

वृषनिंबामृताव्याघ्रीपटोलानां शृतेन च॥ ८४॥
कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान्॥
पांडुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत्॥ ८५॥

अर्थ-१ अडूसा २ नीमके पत्ते ३ गिलोय ४ कटेरी और ५ पटोलपत्र ये पांच औषधोंका कल्क कर उस कल्कका चौगुना घी लेवे उसमें उस कल्कको मिलावे तथा कल्कके उत्तम पाक होनेके वास्ते घृतसे चौगुना जल मिलावे फिर भट्टीपर चढायके मंदमंद अग्निसे घृत सिद्ध करे फिर इसको छानके धर लेवे इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पांडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवें॥

लघुफलघृत योनिरोगपर।

सहाचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्॥ शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥ ८६॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे॥ तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम्॥ ॥ ८७॥ पीडिता चलिता या च निःसृता विवृता च या॥ पित्तयोनिश्च विभ्रांता षंढयोनिश्च या स्मृता॥ ८८॥ प्रपद्यंते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णंति चासकृत्॥ एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्॥ ८९॥

अर्थ-१ पियावांसा २ काले फूलका पियावांसा ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ गिलोय ७ पुनर्नवा ८ टेंटू ९ हलदी १० दारुहलदी ११ रास्ना १२ मेदाके अभावमें मुलहटी तथा १३ सतावर इन तेरह औषधोंका कल्क कर एक प्रस्थ प्रमाण घी लेवे। उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे। गौका दूध घीसे चौगुना लेय तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जल मिलावे। फिर चूल्हेपर चढाय मंद २ अग्नि देवे। जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस स्त्रीके योनिशूल है उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थान भ्रष्ट हुई, तथा योनिका मुख बडा हो गया हो उसको देवे। पित्तयोनि, विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भ धारण न करे) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर योनि ठिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे। इस घृतको लघुफल घृत कहते हैं। यह घृत योनिके दोष हरण करनेमें श्रेष्ठ है॥

तैलसाधनप्रकारो लिख्यते।

लाक्षादितैल।

लाक्षाढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः॥ चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थं विनिक्षिपेत्॥ ९०॥ मस्त्वाढकं च गोदध्न-स्तत्रैव विनियोजयेत्॥ शतपुष्पामश्वगंधां हरिद्रां देवदारु च॥ ॥ ९१॥ कटुकीं रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम्॥ चंदनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः॥ ९२॥ चूर्णयेत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना॥ अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यंति सर्वेऽपि विषम-ज्वराः॥ ९३॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा॥ वातं पित्तमपस्मारमुन्मादं यक्षराक्षसान्॥ ९४॥ कंडूं शूलं च दौ-र्गंध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत्॥ पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यं-गतो भृशम्॥ ९५॥

अर्थ–बेरकी अथवा कूडाकी लाख १ आढक लेके उसमें जल चार आढक डा-लके औटावे। जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेवे इसमें तिल्लीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड एक आढक मिलावे। फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार डाले। १ सौंफ २ असगंध ३ हलदी ४ देवदारु ५ कुटकी ६ रेणु-का बीज ७ मूर्वा ८ कूठ ९ मुलहटी १० सपेद चंदन ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह औषध एक एक कर्ष लेवे। सबका चूर्ण करके उस तेलमें डालके मंदाग्निसे पचन करावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे। इसकी देहमें मालिस करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खांसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पीठका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय॥

अंगारतैल सर्वज्वरपर।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा सेंद्रवारुणी॥ बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी॥ ९६॥ आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम्॥ ९७॥

अर्थ–१ मूर्वा २ लाख ३ हलदी ४ दारुहलदी ५ मजीठ ६ इन्द्रायनकी जड

७ कटेरी ८ सैंधानमक ९ कूठ १० रास्ना ११ जटामांसी और १२ शतावर ये बारह औषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष लेवे सबका चूर्ण करे चार सेर कांजी तथा एक प्रस्थ तिलका तेल इनमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलायके औटावे जब तेल मात्र शेष रहे तब उतार ले इस तेलको अंगार तैल कहते हैं इसको मालिश करनेसे सर्व ज्वर दूर होवें ॥

नारायणतैल सर्ववातपर ।

अश्वगंधा बला बिल्वं पाटला बृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबले निंबं स्योनाकं च पुनर्नवाम् ॥९८॥ प्रसारिणीमग्निमंथं कुर्याद्दशपलं पृथक् ॥ चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ ९९ ॥ तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम् ॥ क्षिपेत्तत्र च गोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ १०० ॥ शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ कुष्ठैला चंदनं मूर्वा वचा मांसी ससैंधवैः ॥ ॥ १०१ ॥ अश्वगंधा बला रास्ना शतपुष्पेंद्रदारुभिः ॥ पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेणैव साधयेत् ॥ १०२ ॥ तत्तैलं नावनेऽभ्यंगे पाने बस्तौ च योजयेत् ॥ पक्षाघातं हनुस्तंभं मन्यास्तंभं कटिग्रहम् ॥ १०३ ॥ खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभंगं गलग्रहम् ॥ गात्रशोषेंद्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् ॥ १०४ ॥ अंडवृद्धिं कुरंडं च दंतरोगं शिरोग्रहम् ॥ पार्श्वशूलं च पांगुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम् ॥ १०५ ॥ अन्यांश्च विषमान्वाताञ्जयेत्सर्वांगसंश्रयान् ॥ अस्य प्रभावाद्वंध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ॥ १०६ ॥ मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलाभ्यंगात्सुखी भवेत् ॥ यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ॥ तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ १०७ ॥

अर्थ–१ असगंध २ गंगेरनकी छाल ३ बेलगिरी ४ पाठ ५ कटेरी ६ बडी कटेरी ७ गोखरू ८ अतिबल ९ नीमकी छाल १० टेंटू ११ पुनर्नवा १२ प्रसारणी और १३ अरनी ये तेरह औषध दश २ पल लेवे । इनका जवकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब चतुर्थांश रहे तब उतारके काढेको छान लेवे । इसमें

तिल्लीका तेल १ आढक डाले। शतावरीका रस १ आढक तथा गौका दूध ४ आढक ले उस तेलमें मिलाय देवे। आगे कल्क करके डालनेकी औषध लिखते हैं जैसे १ कूठ २ इलायची ३ सफेद चंदन ४ मूर्वा ५ बच ६ जटामांसी ७ सैंधानमक ८ असगंध ९ गंगेरनकी छाल १० रास्ना ११ सौंफ १२ देवदारु १३ सालपर्णी १४ पृष्ठपर्णी १५ माषपर्णी १६ मुद्गपर्णी और तगर ये सब सतरह औषध दो दो पल लेय। सबका कल्क करके उस तेलमें मिलाय देवे। फिर इस तेलको चूल्हेपर चढाय मंद मंद अग्निपर रखके परिपाक करे। जब तेल मात्र आय रहे तब उतारके छान लेवे। इस तेलको नारायण तेल कहते हैं इस तेलको नाकमें डालना, देहमें लगाना, पीना तथा बस्तिकर्म विषयमें योजना करे। इस तेलसे पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, गलग्रहवायु, खलंत्व, बहरापन, पैरोंकी वायु, गलग्रह, कमरकी वायु, हाथ पैर आदि गात्रोंका शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादि इन्द्रियोंका नाश करता वायु, रुधिरविकार, धातुक्षयरोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड (जिससे अंडकोश बढ जावे), दंतरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल जिससे पांगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमरसे लेकर पैर पर्यंत गृध्रसी इस नामकी वायु होती है वह ये संपूर्ण वादीके विकार दूर हों। तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बडे सर्वांगमें अथवा अर्द्धांगमें जो हों वेभी दूर होंय। इस तेलके प्रभावसे वंध्या स्त्रियोंके पुत्र होय। यह तेल अंगमें लगानेसे मनुष्योंको सुख होता है, हाथीके तथा घोडोंके अंगमें लगानेसे उनकेभी वादीके रोग दूर होते हैं। इसमें दृष्टांत है कि जैसे नारायण दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायणतैल संपूर्ण वातरोगोंका नाश करता है॥

वारुण्यादितैल कंपवायुपर।

वारुण्या औत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम्॥ पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम्॥१०८॥ निष्कत्रयं भक्तयुतं सेवेतास्माद्विनश्यति॥ हस्तकंपः शिरःकंपः कंपो मन्याशिराभवः॥१०९॥

अर्थ-इन्द्रायणकी उत्तर दिशाके तरफ होनेवाली जड ३ पल ले जवकूट करके कल्क कर ले फिर बारह पल तिलोंके तेलमें इस कल्कको मिलाय औटावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल (बलाबल विचारके) तोले तोले भातके साथ खाय तो हस्तकंप शिरःकंप गरदनका हिलना इत्यादिक वातरोग दूर हों॥

बलातैल वातादिकोंपर।

बलामूलकषायेण दशमूलशृतेन च॥ ११०॥ कुलत्थयवको-

---

१ जिस वातमें पैर पिंडरी जांघ और पहुंचा मुर जावे उसको खल्लीवात कहते हैं।

लानां क्वाथेन पयसा तथा ॥ अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम् ॥ १११ ॥ गणेन जीवनीयेन शतावर्यैंद्रवारुणा ॥ मंजिष्ठाकुष्ठशैलेयतगरागरुसैंधवैः ॥ ११२ ॥ वचा पुनर्नवा मांसी सारिवाद्वयपत्रकैः॥ शतपुष्पाश्वगंधाभ्यामेलया च विपाचयेत् ॥ ॥ ११३ ॥ गर्भार्थिनीनां नारीणां पुंसां च क्षीणरेतसाम् ॥ व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते ॥ ११४ ॥ राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः ॥ बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥ ११५ ॥

अर्थ—खरेंटीकी जड ८ प्रस्थ ले उसमें जल बत्तीस प्रस्थ डाले । फिर चूल्हेपर चढाके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढा करे । इसको छानके धर देवे । तथा दशमूलकी दश औषधोंको मिलायके आठ प्रस्थ लेय उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढा करे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे तथा १ कुलथी २ जौ और ३ वेरके भीतरका बीज ये तीन औषध पृथक् २ आठ प्रस्थ लेके बत्तीस २ प्रस्थ जल डालके चतुर्थावशेष काढा करे और पृथक् २ छानके धर लेवे फिर इन पाचों काढोंको मिलाय इसमें गौका दूध आठ प्रस्थ डाले और तिलीका तेल एक प्रस्थ मिलावे । फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार ले । जैसे ७ जीवनीय गणकी औषध सात, ८ सतावर ९ देवदारु १० मजीठ ११ कूठ १२ पत्थरका फूल १३ तगर १४ अगर १५ सैंधानमक १६ वच १७ पुनर्नवा १८ जटामांसी १९ सपेद सारिवा २० काली सारिवा २१ पत्रज २२ सोंफ २३ असगंध और २४ इलायची ये चौवीस औषध तेलके चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेलमें डाल देवे । फिर अग्निपर चढायके तेल शेष रहने पर्यंत औटावे । फिर इसको छान लेवे इसको बलातेल कहते हैं । यह तेल जिस स्त्रीके गर्भकी इच्छा है उसके देहमें लगावे । तथा जिस पुरुषकी धातु क्षीण है उसके तथा बहुत दूर जाने आनेके परिश्रम करके क्षीण है देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियोंके लगावे । यह तेल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठसाहूकारोंके योग्य है । इससे संपूर्ण वादीके विकार दूर होते हैं ॥

प्रसारणीतैल वातकफजन्यविकार तथा वादीपर ।

प्रसारिणीपलशतं जलद्रोणेन पाचयेत् ॥ पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम् ॥ ११६ ॥ कांजिकं च समं तैलात्क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ तैलात्तथाष्टमांशेन सर्वकल्कांश्च योजयेत् ॥

॥ ११७ ॥ मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकः सैंधवं वचा ॥ प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥ ११८ ॥ भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत् ॥ एतत्तैलं वरं पक्कं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥ ११९ ॥ कौब्जखंजत्वपंगुत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा ॥ हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तंभं च नाशयेत् ॥ अन्यांश्च विषमान्वातान्सर्वानाशु व्यपोहति ॥ १२० ॥

अर्थ–प्रसारणी औषध १०० पल ले उसमें १ द्रोण जल डालके काढा करे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तेल दही और कांजी ये काढेके समान पृथक् २ लेके मिलावे । फिर तेलसे चौगुना गौका दूध डाले तथा कल्क करके डालनेकी औषधि इस प्रकार लेनी जैसे १ मुलहटी २ पीपरामूल ३ चीतेकी छाल ४ सैंधानमक ५ वच ६ प्रसारणी ७ देवदारु ८ रास्ना ९ गजपीपल १० भिलाए ११ सौंफ और १२ जटामांसी ये बारह औषध तेलकी अष्टमांश ले कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर अग्निपर चढायके तेल मात्र शेष रक्खे इसको छानके धर ले इसको देहमें मालिश करे तो वात कफके विकार, जिससे मनुष्य कुबडा होता है वह वायु खंजवायु, जिससे मनुष्य पांगुला होय सो पंगुवायु, गृध्रसी वायु, अर्दितवायु, हनु (ठोडी), पृष्ठ (पीट), शिर, गरदन और कमर इनका जकडना ये सब वायु दूर होवें । इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे बडे हैं वे इस तेलके लगानेसे दूर होवे ॥

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोंपर ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरंटकः ॥१२१॥ गोकंटशुंटुकश्चैषां कुर्यात्सप्तपलं पृथक् ॥ चतुर्गुणांबुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ १२२॥ कार्पासास्थीनि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्द्रोणजले पचेत् ॥ चतुर्थांशावशिष्टं च गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम्॥ १२३ ॥ प्रस्थैकं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले ॥ निक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं रसं नयेत् ॥ १२४ ॥ तैलप्रस्थे ततः क्वाथान् सर्वानेतान् विनिक्षिपेत् ॥ कल्कैरेभिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥ १२५ ॥ रास्नापुनर्नवैरंडैः पिप्पल्या शतपुष्पया॥बलाप्रसारणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा॥१२६॥ पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवा-

स्तंभापबाहुकौ ॥ १२७ ॥ अर्धांगशोषमाक्षेपमूरुस्तंभापतानकौ ॥ शाखाकंपं शिरःकंपं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ माषादिकमिदं तैलं सर्ववातविकारनुत् ॥ १२८ ॥

अर्थ–१ उडद २ जव ३ अलसीके बीज ४ कटेरी ५ कौंचके बीज ६ पियावांसा ७ गोखरू और ८ टेंटू ये आठ औषध सात २ पल लेवे । सबको जवकूट कर सब औषधोंसे चौगुना जल डालके औटावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे । १ कपासके बिनोले २ बेरकी गुठली ३ सनके बीज ४ कुलथी ये चार औषध चौदह २ पल लेवे । इनमें चौगुना जल मिलायके चौथाई जल रहनेपर्यंत काढा करे, फिर छानके इसको धर लेवे । पश्चात् बकरेका मांस १ प्रस्थ ले उसमें चौसठ पल जल डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेय। फिर तिल्लीका तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त संपूर्ण काढेको एकत्र करके उसमें तेलको मिलाय देवे । इसमें कल्क करके डालनेकी औषध इस प्रकार लेनी । १ गिलोय २ कूठ ३ सोंठ ४ रास्ना ५ पुनर्नवा ६ अंडकी जड ७ पीपल ८ सोंफ ९ खरेंटीकी छाल १० प्रसारणी ११ जटामांसी १२ कुटकी ये बारह औषध आधे २ पल लेय सबका कल्क करके तेलमें मिलाय देवे फिर इसको चूल्हेपर चढाय मंदाग्निसे पचन करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको माषादितैल कहते हैं। यह तेल देहमें लगानेसे ग्रीवास्तंभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांग वायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तंभ वायु, अपतानक वायु, हस्तपादादि शाखाओंको कंपानेवाला वायु, मस्तक कंपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु ये संपूर्ण दूर होवें ॥

शतावरीतैल शूलादि वाय्वादिकोंपर ।

शतावरी बलायुग्मं पर्ण्यौ गंधर्वहस्तकः॥ अश्वगंधाश्वदंष्ट्रा च बिल्वः काशः कुरंटकः॥१२९॥ एषां सार्धपलान्भागान् कल्पयेच्च विपाचयेत् ॥ चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं शृतं नयेत् ॥ १३० ॥ नियोज्य तैलप्रस्थे च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत् ॥१३१॥ शतावरी देवदारु मांसी तगरचंदनम् ॥ शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शैलेयमुत्पलम् ॥१३२॥ ऋद्धिर्मेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा ॥ एषां कर्षसमैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना ॥१३३॥ पचेत्तेनैव तैलेन स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ नारी च लभते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति ॥१३४॥

अंगशूलं शिरःशूलं कामलां पांडुतां गरम् ॥ गृध्रसीं प्लीहशोषांश्च मेहान्दंडापतानकम् ॥ १३५ ॥ सदाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम् ॥ असृग्दरं तथाध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति ॥ शतावरीतैलमिदं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ १३६ ॥ नारायणाय स्वाहा ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा खनेत्खदिरशंकुना ॥ सर्वव्याधिनाशनीयै स्वाहा इति उत्पाटनमंत्रः ॥ कुमारजीवनीयै स्वाहा ॥ इति पाचनमंत्रः ॥

अर्थ—१ शतावर २ खरेंटीकी जड ३ गंगेरन ४ शालपर्णी ५ पृष्ठपर्णी ६ अंडकी जड ७ असगंध ८ गोखरू ९ बेलकी जड १० कासकी जड ११ पियावांसा ये ग्यारह औषध डेढ २ पल लेवे। उनमें चौगुना जल डालके औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तिलका तैल १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलायके एकत्र करे। इसमें कल्क करके डालनेकी औषधि लिखता हूं। १ शतावर २ देवदारु ३ जटामांसी ४ तगर ५ सपेद चंदन ६ सोंफ ७ खरेंटीकी जड ८ कूठ ९ इलायची १० पत्थरका फूल ११ कमल १२ ऋद्धिके अभावमें वाराहीकंद १३ मेदाके अभावमें मुलहटी १४ मुलहटी १५ काकोलीके अभावमें असगंध १६ जीवकके अभावमें विदारीकंद ये सोलह औषधि एक २ कर्ष ले सबका कल्क करके उस तेलमें डालके गौके आरने उपलोंकी मंदाग्निसे तेलको सिद्ध करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे इसको शतावरी तेल कहते हैं। यह तेल कृष्णात्रेय ऋषिने कहा है। इसको मालिश करनेसे पुरुष स्त्रियोंको नित्य अत्यंत प्रीतिके साथ भोगे तथा स्त्रियोंके देहमें लगानेसे पुत्रकी प्राप्ति होय, योनिशूल, अंगशूल, मस्तकशूल, कामला, पांडुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दंडापतानक वायु, दाहयुक्त वातरक्त तथा वातपित्तज्वर करके स्त्रियोंको प्रदर होता है सो, पेटका फूलना और रक्तपित्त ये संपूर्ण रोग दूर हों। अब वनमेंसे शतावर लानेका प्रकार कहते हैं कि—(नारायणाय स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तरकी तरफ मुखकरके खैरकी कीलके समान लकडीसे शतावरको खोद। तथा (सर्वव्याधिनाशनीयै स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उखाडे तथा (कुमारजीवनीयै स्वाहा) ऐसे कहके और नमस्कार करके इसका पाक करे ॥

काशीसादि तैल बवासीरपर ।

कासीसं लांगली कुष्ठं शुंठी कृष्णा च सैंधवम् ॥ मनःशिलाश्वमारश्च विडंगं चित्रको वृषः ॥ १३७ ॥ दंती कोशातकीबीजं

हेमाह्वा हरितालकः॥ कल्कैः कर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३८ ॥ सुधार्कपयसी दद्यात् पृथग्द्विपलसंमिते ॥ चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक्र प्रसाधयेत् ॥ १३९ ॥ कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम् ॥ क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यंगतो भृशम् ॥१४०॥ वलीर्न दूषयत्येतत्क्षारकर्मकरं स्मृतम् ॥१४१॥

अर्थ–१ हीराकसीस २ कलयारी ३ कूठ ४ सोंठ ५ पीपल ६ सैंधानमक ७ मनसिल ८ सपेद कनेर ९ वायविडंग १० चीतेकी छाल ११ अडूसा १२ दंती १३ कडुई तोरईके बीज १४ चौक और १५ हरताल ये पंद्रह औषध एक एक कर्षभर ले सबका कल्क करके तिलके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय देवे । थूहरका दूध तथा आकका दूध ये दोनों दो दो पल ले सबको तेलमें मिलाय देवे और तेलसे चौगुना गौका मूत्र ले इसकोभी तेलमें मिलाय अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल खरनाद ऋषिने कहा है । यह बवासीरके मस्सोंपर क्षार लगानेके समान लगावे । इसके लेपसे गुदाके भीतरके मस्से विना उपद्रवके जडसे उखडके गिर जावें और यह क्षारके समान गुदाकी वलियोंको नहीं बिगाडता ॥

पिंडतेल वातरक्तपर ।

मंजिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः ॥
पिंडाख्यं साधयेत्तैलमैरंडं वातरक्तनुत् ॥ १४२ ॥

अर्थ–१ मजीठ २ सारिवा ३ रार ४ मुलहटी इन चार औषधोंको एक २ पल ले कल्क करे चौगुना अंडीका तेल लेकर पूर्वोक्त कल्कको मिलाय दे और पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डाले । फिर अग्निपर रखके तेल सिद्ध करे तथा इसमें मोम डाले । जब केवल तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे । यह मल्हम जिस मनुष्यके वातरक्त रोग होय उसके लगाना चाहिये तो वातरक्त रोग दूर होवे ॥

अर्कतैल खुजली और फोडा आदिपर ।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ॥
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ १४३ ॥

अर्थ–हलदीका कल्क करके उस कल्कका चौगुना सरसोंका तेल लेवे । उसमें कल्कको मिलाय तथा तैलसे चौगुना आकके पत्तोंका रस डालके तेलको परिपक्व करे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसको देहमें लगानेसे खुजली फोडा पैर फूटकर दरा पड जावे वह और विचर्चिका रोग दूर होय ॥

मरिचादि तैल कुष्ठादिकोंपर ।

मरिचं हरितालं च त्रिवृतं रक्तचंदनम् ॥१४४॥ मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च ॥ विशाला करवीरं च कुष्ठमर्कपयस्तथा ॥१४५॥ तथैव गोमयरसं कुर्यात्कर्षमितान् पृथक् ॥ विषं चार्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतैलकम् ॥ १४६ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्जलं च द्विगुणं भवेत् ॥ मरिचाद्यमिदं तैलं सिध्मकुष्ठहरं परम् ॥ १४७ ॥ जयेत्कुष्ठानि सर्वाणि पुंडरीकं विचर्चिकाम् ॥ पामां सिध्मानि रक्तं च ॥ १४८ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ हरताल ३ निशोथ ४ लाल चंदन ५ नागरमोथा ६ मनसिल ७ जटामांसी ८ हलदी ९ दारुहलदी १० देवदारु ११ इन्द्रायनकी जड १२ कनेरकी जड १३ कूठ १४ आकका दूध १५ गौके गोबरका रस ये पंद्रह औषध एक एक कर्ष लेवे, तथा शुद्ध किया हुआ बच्छनागविष आधा पल लेवे । सबको एकत्र पीस कल्क करके सरसोंके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय दे । तथा तेलसे दुगुना गोमूत्र और पानी डालके औटावे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसकी देहमें मालिस करनेसे सिध्मकुष्ठ आदि संपूर्ण कुष्ठ दूर हों, पुंडरीक नामक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

त्रिफलातैल व्रणपर ।

त्रिफलारिष्टभूनिंबं द्वे निशे रक्तचंदनम् ॥
एतैः सिद्धमरूषीणां तैलमभ्यंजने हितम् ॥ १४९ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ नीमकी छाल ५ चिरायता ६ हलदी ७ दारुहलदी और ८ लाल चंदन इन आठ औषधोंका कल्क करके तथा कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेवे इसमें कल्कको डाले । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डालके औटावे । जब केवल तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय जिस मनुष्यके अंगपर बहुत व्रण (फोडे) हों तथा मुंडमें फोडा होवे उसके लगावे तो सर्व व्रण दूर हों ॥

निंबबीजतैल पलित रोगपर ।

भावयेन्निंबबीजानि भृंगराजरसेन हि ॥
तथासनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः ॥ १५० ॥
अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम् ॥ १५१ ॥

अर्थ-नीमके बीजोंमें भांगरेके रसकी पुट दे तथा विजैसारकी छालका रस निकालके पुट देवे फिर उनका यंत्रद्वारा तेल निकास लेवे। इस तेलकी नस्य लेय और पथ्यमें गौका दूध और भात देवे, तो जिस मनुष्यके अकालमें सपेद बाल हो गये हों वे तत्काल काले भौंराके समान हो जावे॥

मधुयष्टीतैल बाल आनेपर।

यष्टीमधुकक्षीराभ्यां नवधात्रीफलैः शृतम्॥
तैलं नस्यकृतं कुर्यात् केशाञ्छ्मश्रूणि सर्वशः॥ १५२॥

अर्थ-मुलहटी और नवीन गीले आंवले इन दोनोंका कल्क करे तथा कल्कसे चौगुना तिलोंका तेल लेवे। कल्कको मिलायके तेलसे चौगुना गौका दूध तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। सबको एकत्र कर अग्निपर चढायके पाक करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके तेलको छान ले। इसकी नस्य देनेसे इस प्राणीके मस्तकके तथा मूछ डाढोंके बाल जो उड गये हैं वे जम जावें॥

करंजादि तैल इन्द्रलुप्तपर।

करंजश्चित्रको जाती करवीरश्च पाचितम्॥
तैलमेभिर्द्रुतं हन्यादभ्यंगादिंद्रलुप्तकम्॥ १५३॥

अर्थ-१ कंजेकी छाल २ चीतेकी छाल ३ चमेलीके पत्ते ४ कनेरकी जड ये चार औषध ले कल्क करे। तथा कल्कका चौगुना तिल्लीका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डालके औटावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब छानके धर रखे। यह तेल जिस मनुष्यके मस्तकके अथवा डाढी मूंछके बाल जाते रहे (उस रोगको इन्द्रलुप्त कहते हैं) उसपर लगानेसे तत्काल बाल जम जावें॥

नीलिकादि तैल पलित दारुण आदि रोगोंपर।

नीलिका केतकीकंदं भृंगराजः कुरंटकः॥ तथार्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात्कुसुमान्यपि॥ १५४॥ कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा॥ अयोरजः प्रियंगुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका॥ ॥ १५५॥ त्रिफलापद्मपंकश्च कल्कैरेभिः पृथक् पृथक्॥ कर्षमात्रं पचेत्तैलं त्रिफलाक्काथसंयुतम्॥ १५६॥ भृंगराजरसेनैव सिद्धं केशस्थिरीकृतम्॥ अकालपलितं हंति दारुणं चोपजिह्विकम्॥ १५७॥

अर्थ-१ नीलके पत्ते २ केतकीका कंद ३ भांगरा ४ पियावांसा ५ कोहवृक्षके फूल ६ विजैसारके फूल ७ काले तिल ८ तगर ९ कंदसहित कमल १० लोहचूर्ण ११ फूल प्रियंगु १२ अनारकी छाल १३ गिलोय १४ हरड १५ बहेडा १६ आंवला और १७ कमल संबंधी कीच ये सतरह औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे। कल्क करके कल्कका चौगुना तिलका तेल लेवे। उसमें वो कल्क डालके तिलके चौगुना त्रिफलेका काढा तथा भांगरेका रस मिलायके औटावे जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको बालोंमें लगावे सो जमकर दृढ होवें। जिस प्राणीके बाल कुसमयमें सपेद हो गये हों वह इस तेलको लगावे तो काले हो जावें और मस्तकमें जो दारुण रोग होता है वह उपजिह्व रोग ये दूर होवें। यह बालोंमें लगानेसे कल्कके समान चमत्कार दिखाता है ॥

भृंगराजतैल पलितादिरोगोंपर ।

भृंगराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् ॥
सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम् ॥ १५८ ॥
अकालपलितं कंडूमिंद्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ-१ लोहेकी कीट अर्थात् मल २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला और ५ सारिवा इन पांच औषधोंका कल्क करे। इस कल्कसे चौगुना तिलका तेल ले उसमें कल्कको मिलाय भांगरेका रस डालके पकावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय। इस तेलको मस्तकमें लगानेसे दारुण रोग दूर हो। तथा जिस मनुष्यके छोटी अवस्थामें सफेद बाल हो गये हों वह इस तेलके लगानेसे काले होंय, कुंडरोग दूर हो, मस्तकके डाढीके और मूंछोंके बाल जो झड गये हों वह ठौर चिकनी हो गई हो उस जगहपरभी बाल जम जावें वही कल्प है ॥

अरिमेदादितैल मुखदंतादिरोगोंपर ।

अरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् ॥ जलद्रोणे ततः क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६० ॥ तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत् ॥ अरिमेदलवंगाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः ॥ १६१ ॥ मंजिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ॥ त्वग्जातिफलकर्पूरकंकोलकदरैस्तथा ॥ १६२ ॥ पतंगधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानामकेशरैः ॥ कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥ १६३ ॥ प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदंतं च सौषिरम् ॥ शीतादं

दंतहर्षं च विद्रधिं कृमिदंतकम् ॥ दंतस्फुटनदौर्गंध्ये जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम् ॥ १६४ ॥

अर्थ–१ काले खैरकी छाल १०० पलको जवकूट करके १ द्रोण जल डालके औटावे । जब चतुर्थांश रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तिलका तेल आधा आढक डाले । तथा इसमें चूर्ण करके डालनेकी औषधि इस प्रकार ले । १ काले खैरकी छाल २ लौंग ३ गेरू ४ अगर ५ पद्माख ६ मजीठ ७ लोध ८ मुलहटी ९ लाख १० नागरमोथा ११ वडकी छाल १२ दालचीनी १३ जायफल १४ कपूर १५ कंकोल १६ सपेद खैरकी छाल १७ पतंग १८ धायके फूल १९ इलायची २० नागकेशर और २१ कायफल ये इक्कीस औषध एक एक कर्ष लेवे । इनका कल्क करके उसको १ प्रस्थ तेलमें मिलायके औटावे । जब तेल मात्र शेष रहे उब उतारके छान लेवे । इसको मुखसंबंधी पीडापर, दांतोंका मांस दुष्ट होनेसे उसपर, दांतोंके हिलनेपर तथा दांतोंमें छिद्र पडके दूखते हों उसपर, दांतोंकी सूजन होनेसे लाल हो जावे उस पर, श्यावदंतरोग, दांतोंसे शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे ऐसा प्रहर्ष नामक दंतरोग है वह तथा दंतविद्रधिपर, दंतसंबंधी रक्त और कृमिरोग इनके दुष्ट होनेसे डाढोंमें काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना उसपर, कृमिदंतकरोगपर, दंतस्फुटन रोग, दांतोंमें दुर्गंधका आना तथा जीभ तालू होठ इनके रोगपरभी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होवे ॥

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर ।

जातिनिंबपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ॥ सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥१६५॥ मंजिष्ठा पद्मकं लोध्रमभयानीलमुत्पलम् ॥ तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥१६६॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ नाडिव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु ॥ १६७ ॥ सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि ॥ नखदंतक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते ॥ १६८ ॥

अर्थ–चमेली नीम परवल और कंजा इनके कोमल २ पत्ते और मोम मुलहटी कूठ हलदी दारुहलदी कुटकी मजीठ पद्माख लोध हरड नीले कमल सारिवा अमलतासके बीज ये सब एक २ तोला लेवे । सबका चूर्ण कर १ प्रस्थ तिल्लीके तेलमें इनको पूर्वोक्त विधिसे पचावे। इस तेलकी मालिससे नाडीव्रण (नासूर), फोडा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य घाव, दग्ध व्रण, नखदंतादिकसे हुआ व्रण इत्यादि सब नष्ट होवें ॥

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर ।

हिंगुतुंबरुशुंठीभिः कटुतैलं विपाचयेत् ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति ॥ १६९ ॥

अर्थ—१ हींग २ धनिया ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके उस कल्कसे चौगुना सरसोंका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले । सबको मिलायके पाक करे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होय ॥

बिल्वादितैल बधिरपनपर ।

बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥
साजक्षीरं च नीरं च बाधिर्यं हंति पूरणात् ॥ १७० ॥

अर्थ—कोमल २ बेलके फलोंको गोमूत्रमें पीस कल्क करे उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल ले उसमें बेलफलके कल्कको मिलावे । तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध एवं कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल डाले । फिर चूल्हेपर चढायके परिपाक करे । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय । इसको कानमें डाले तो बहरापन दूर होवे ॥

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर ।

बालमूलकशुंठीनां क्षारः क्षारयुतं तथा ॥ लवणानि च पंचैव हिंगु शिग्रु महौषधम् ॥१७१॥ देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पा रसांजनम् ॥ ग्रंथिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ॥१७२॥ तैलप्रस्थं च विपचेत् कदलीबीजपूरयोः ॥ रसाभ्यां मधुसूक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च ॥१७३॥ पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन् ॥ अन्यांश्च कर्णजान् रोगान् मुखरोगांश्च नाशयेत् ॥ १७४ ॥

अर्थ—१कोमल मूलियोंका खार २ सज्जीखार ३ जवाखार ४ सैंधानमक ५ संचरनिमक ६ समुद्रका निमक ७ बिडनोन ८ वांगरका खार ९ हींग १० सहजनेकी छाल ११ सोंठ १२ देवदारु १३ सौंफ १४ वच १५ रसोत १६ पीपरामूल १७ नागरमोथा ये सतरह औषध एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे । उस कल्कसे चौगुना तिलका तेल ले इसमें कल्कको मिलावे । और तेलसे चौगुना केलेके कंदका रस तथा विजोरेका रस एवं मधुसूक्त ये उस तेलमें मिलाय चूल्हेपर चढा-

१ कागदी नींबूका रस १ प्रस्थ तथा एक कुडव सहत उसमें डाले एवं पीपलका चूर्ण

यके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डालनेसे कानसे राधका बहना दूर होय तथा कर्णनाद कर्णशूल और बधिरता (बहरापन) दूर होय इसके सिवाय और जो अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होते हैं वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं॥

पाठादि तैल पीनसरोगपर।

पाठा द्वे च निशे मूर्वा पिप्पली जातिपल्लवैः॥
दंत्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद्दुष्टपीनसे॥ १७५॥

अर्थ-१ पाठकी जड २ हलदी ३ दारुहलदी ४ मूर्वा ५ पीपल ६ चमेलीके पत्ते ७ दंतीकी जड ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल लेके कल्क मिलाय देवे। तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे। फिर चूल्हेपर चढायके मंदाग्निसे पचावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसकी नस्य देय तो घोर दुर्धर पीनसका रोग दूर होवे॥

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर।

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैंधवैः॥
कल्कैश्च पाचितं तैलं पूतिनासागदापहम्॥ १७६॥

अर्थ-१ कटेरी २ दंतीकी जड ३ वच ४ सहजनेकी छाल ५ तुलसीके पत्ते ६ सोंठ ७ काली मिरच ८ पीपर और ९ सैंधानमक इन नौ औषधोंको समान भाग ले कल्क करे। कल्कसे चौगुना तिल्लीका तेल लेवे उसमें कल्कको मिलाय देवे। तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे। फिर इसको मंदाग्निपर पचन करे जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध बहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय॥

कुष्ठतैल छींक आनेपर।

कुष्ठं बिल्वकणा शुंठी द्राक्षा कल्ककषायवत्॥
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम्॥ १७७॥

अर्थ-१ कूठ २ कोमल बेलफल ३ पीपर ४ सोंठ ५ दाख ये पांच औषध समान भाग ले कल्क करके उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल अथवा घी ले उसमें कल्कको मिलाय दे। कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे।

एक पल डाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके उसका मुख बंद कर मिट्टीसे लहेस देवे। फिर एक महीने पर्यंत धानकी राशिमें धर रहने दे इसको मधुसूक्त कहते हैं।

फिर इसको मधुरी अग्निसे सिद्ध करे । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे । इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आती होय उसकी नाकमें डाले तो बहुत छींकोंका आना बंद होय ॥

गृहधूमादितैल नासार्शपर ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः ॥
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ १७८ ॥

अर्थ–१ चूल्हेके ऊपरका धूँआ २ पीपल ३ देवदारु ४ जवाखार ५ कंजेकी छाल ६ सैंधानमक और ७ ओंगाके बीज ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे। कल्कका चौगुना तिलका तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले । फिर मधुरी अग्निसे सिद्ध करे। जब केवल तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे । इसको जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिर जावे । इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं ॥

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोंपर ।

वज्रीक्षीरं रविक्षीरं द्रवं धत्तूरचित्रकम् ॥ महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम् ॥ १७९ ॥ पचेत्तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे ॥ तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम् ॥१८०॥ गंधकाग्निशिलातालं विडंगातिविषा विषम् ॥ तिक्तकोशातकी कुष्ठं वचा मांसी कटुत्रयम् ॥१८१॥ पीतदारु च यष्टयाह्वं सर्जिकाक्षारजीरकम् ॥ देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत् ॥ ॥ १८२ ॥ वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥

अर्थ–थूहरका दूध, आकका दूध, धत्तूरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस ये संपूर्ण रस समान भाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले । इसमें पूर्वोक्त रसों-को मिलायके मंदाग्निपर पचन करे । जब तेल मात्र रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय । फिर इसमें इतनी औषध मिलावे सो लिखते हैं । १ गंधक २ चीतेकी छाल ३ मनसिल ४ हरताल ५ वायविडंग ६ अतीस ७ शुद्ध किया हुआ सिंगियाविष ८ कडुई तोरई ९ कूठ १० वच ११ जटामांसी १२ सोंठ १३ काली मिरच १४ पीपल १५ दारुहलदी १६ मुलहटी १७ सज्जीखार १८ जीरा १९ देवदार ये उन्नीस औषध एक एक

कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवें ॥

करवीरादितैल लोमशातनपर ।

करवीरं शिफां दंतीं त्रिवृत्कोशातकीफलम् ॥
रंभाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ १८४ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ कनेरकी जड २ दंतीकी जड ३ निसोथ ४ कडुई तोरई इन चार औषधोंका कल्क करके उसमें चौगुना तिलोंका तेल मिलाय दे फिर केलाके कंदकी राख करके उसका क्षार निकाल लेवे । उस क्षारको तेलसे चौगुना जल डालके औटावे । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय । इस तेलको जिस जगहके बाल दूर करने हों उस जगह लगावे तो बाल उखडकर गिर जावें ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे माथुरीभाषायां नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् ॥ आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ १ ॥ यदपक्वौषधांबुभ्यां सिद्धं मद्यः स आसवः ॥ अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ २ ॥ अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुडम् ॥ क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ॥ सिद्धं पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ४ ॥ परिपक्वान्नसंधानसमुत्पन्नां सुरां जगुः॥सुरामंडः प्रसन्ना स्यात्ततः कादंबरी घना॥ ५ ॥ तदधोजगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्व घनः ॥ पुक्कसो हृतसारः स्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ॥ ६ ॥ यत्तालखर्जूररसैः संधिता सा हि वारुणी ॥ कंदमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ७ ॥ यत्र द्रवेऽभिपूर्यंते तत्सूक्तमभिधीयते ॥ विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः ॥ ८ ॥ विनष्टः संधितो यस्तु

तच्चुक्रमभिधीयते ॥ गुडांबुना सतैलेन कंदमूलफलैस्तथा ॥९॥ संधितं चाम्लतां यातं गुडसूक्तं तदुच्यते ॥ एवमेवेक्षुसूक्तं स्यान्मृद्वीकासंभवं तथा ॥ १० ॥ तुषांबुसंधितं ज्ञेयमामैर्विदलितयैवैः ॥ यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं संधितं भवेत् ॥ ११ ॥ कुल्माषधान्यमंडादिसंधितं कांजिकं विदुः ॥ शंडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ–जल आदि द्रव (पतले) पदार्थोंमें औषधको भिगो देवे । फिर उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर १ महीने वा १५ दिन तक उसी रीतिसे धरा रहने देवे तो यह उत्कृष्ट औषध हो वह आसव अरिष्ट इत्यादि भेदोंसे प्रसिद्ध है वे सब भेद इस प्रकार जानने, जल और औषधं इनका विना पाक करेही पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध करे उसको आसव कहते हैं । २ काढा करके उसमें औषधोंको डालके पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया जावे इसको अरिष्ट कहते हैं । इन दोनोंके मध्यमें डालनेकी मात्रा १ पल प्रमाण है । जिस अरिष्ट प्रयोगमें जलादिकोंका मान (तोले) नहीं कहा उसमें जलादिक द्रवपदार्थ एक द्रोण डालने चाहिये और उसमें गुड १ तुला (१०० पल) डाले । तथा सहत अर्धतुला (५० पल) डाले । एवं यदि औषधोंका चूर्ण डालना होय तो गुडके दशमांश डालके अरिष्टको सिद्ध करे । ३ अपक्व ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये हुये मद्यको शीतरस सीधु कहते हैं । ४ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकायके जो मद्य बनाते हैं उसको पक्व रससीधु कहते हैं । ५ तंदुल (चांवल) आदि धान्यको उबालके अग्नि संयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य बनाते हैं उसको शास्त्रमें सुरा (दारु) कहते हैं । ६ उस सुराके घन (संघट्ट) भागको कादंबरी कहते हैं । ७ और उस सुराके नीचे भागमें जो द्रव (पतला) पदार्थ है उसको जगल कहते हैं । ८ उस जगलमें जो घन (गाढा) भाग है उसको मेदक कहते हैं । ९ मेदकका सार (सत्त) निकले हुए भागको पुक्कस कहते हैं । १० सुराबीजको किण्वक कहते हैं । ११ ताड अथवा खजूरके रससे अग्नि संयोगसे यंत्रद्वारा जो रस खींचते हैं उसको मद्य और वारुणी कहते हैं । लौकिकमें इनको ताडी और खिजूरी दारू कहते हैं । १२ कंदमूल फलादिकको उबालके तैलादि स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदिमें डालते हैं उसको सूक्त कहते हैं । और लौकिकमें इसको आचारसधाना कहते हैं । १३ जो मद्य विना खटाईके आये अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्रमें भरके उनका मुख बंद कर उसपर मुद्रा देकर १ महीने अथवा पंद्रह दिन धरा रहनेसे सिद्ध हुए मद्यको चुक्र ऐसे कहते हैं । १४ गुड जल

तेल कंद मूल और फल इन सबको किसी पात्रमें भरके उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर महीने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे। जब खट्टा हो जाय तब अपने कार्यमें लावे उसे गुडसूक्त कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाखका सूक्त बनाना चाहिये। १५ कच्चे जवोंको भूनके किसी पात्रमें भरके उसमें पानी डालके उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको तुषाम्बु कहते हैं। १६ जवोंके तुष दूर करके उनको अग्निपर पकावे। फिर उनमें पानी डालके उस पात्रका मुख बंद कर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवे। उसको सौवीर कहते हैं। १७ कुलथी अथवा चांवलोंमें पानी डालके सिजाय उसका मंड (मांड) काढ उसमें सोंठ राई जीरा हींग सैंधा-नमक हलदी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूंदके मुद्रा कर तीन दिन या चार दिन धरा रहने दे उसको कांजी कहते हैं। १८ मूलीको कतरके उसमें पानी डालके हलदी हींग राई सैंधानमक जीरा सोंठ इत्यादिकोंका चूर्ण डाल पात्रका मुख बंद कर ३-४ दिन धरा रहने दे उसको संडाकी कहते हैं इस प्रकार आसव और अरिष्टादिकोंकी कल्पना जाननी ॥

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर ।

उशीरं वालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम् ॥ प्रियंगुं पद्मकं लोध्रं मंजिष्ठां धन्वयासकम् ॥ १३ ॥ पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुंबरं शठीम् ॥ पर्पटं पुंडरीकं च पटोलं कांचनार-कम् ॥ १४ ॥ जंबूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसंमितान् ॥ भागान् सुचूर्णितान् कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १५ ॥ धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥ शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ १६ ॥ मासं च स्थापयेद्भांडे मांसीमरिचधूपिते ॥ उशीरासव इत्येष रक्तपित्तनिवारणः ॥ पांडुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥ १७ ॥

अर्थ-१ खस २ नेत्रवाला ३ लाल कमल ४ कंभारी ५ नीले कमल ६ फूल-प्रियंगु ७ पद्माख ८ लोध ९ मजीठ १० धमासो ११ पाठ १२ चिरायता १३ कुट-की १४ बडकी छाल १५ गूलरकी छाल १६ कचूर १७ पित्तपापडा १८ सपेद कमल १९ पटोलपत्र २० कचनारकी छाल २१ जामुनकी छाल २२ सेमरका गोंद ये बाईस औषध एक एक पल दाख बीस पल और धायके फूल १६ पल इन सबको कूट चूर्ण कर दो द्रोण जलमें भिगो देवे और खांड १ तुला डाले । एवं सहत १

तुला डालके प्रथम उस पात्रमें जटामांसी और काली मिरचकी धूनी देकर सब वस्तु भरके मुखको खांम दे उसको एक महीने पर्यंत रहने देवे पश्चात् मुद्राको खोलके उस रसको छानके निकास लेवे । इसको उसीरासव कहते हैं । इसको पीवे तो रक्त, पित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और सूजन इन सब रोगोंको दूर करे ॥

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर ।

सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत् ॥ १८ ॥ यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये ॥ द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभांडे निधापयेत् ॥ १९ ॥ माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत् ॥ कटुत्रिकं लवंगं च चातुर्जातकमेव च ॥ २० ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं विडंगं गजपिप्पली ॥ चविकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी ॥ २१ ॥ मुस्ताफलत्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम् ॥ मूर्वा मधुरसा दंती मूलं पुष्करसंभवम् ॥ २२ ॥ बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकंटकम् ॥ शतपुष्पा हिंगुपत्री आकल्लकमुटिंगणम् ॥ २३ ॥ पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च ॥ एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम् ॥२४॥ पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम् ॥ वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम् ॥ २५ ॥ बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् ॥ अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रं च नाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः ॥२७॥

अर्थ–पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल ४ लौंग ५ दालचीनी ६ पत्रज ७ इलायचीके दाने ८ नागकेशर ९ चित्रक १० पीपरामूल ११ वायविडंग १२ गजपीपल १३ चव्य १४ ह्रीवेर (हाऊवेर) १५ धनिया १६ सुपारी १७ कुटकी १८ नागरमोथा १९ हरड २० बहेडा २१ आंवला २२ देवदारु २३ हलदी २४ दारुहलदी २५ मूर्वा २६ प्रसारणी २७ दंती २८ पुहकरमूल २९ खरेंटी ३० नागबला ३१ कौंचके बीज ३२ गोखरू ३३ सौंफ ३४ हिंगुपत्री

३५ अकरकरा ३६ उटंगनके बीज ३७ सपेद सांठ (विसखपरा) ३८ सोंठ ३९ सुवर्ण-माक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे । माक्षिक भस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे । फिर ऊपर कही हुई औषध तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके (१ महीने पर्यंत या पंद्रह दिन) धरी रहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तयार होवे । इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधा पल रोगीको देवे तो बल वर्ण और अग्निको बढावे, शरीर पुष्ट होवे, पक्ति (परिणाम) शूल, सर्व प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त ये सब दूर होवें ॥

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर ।

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ॥ २८ ॥ विडंगं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् ॥ उशीरं चंदनं कुष्ठं लवंगं तगरं तथा ॥ २९ ॥ मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियंगुर्नागकेशरम् ॥ एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥ ३० ॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् ॥ पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥ ३१ ॥ एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भांडे च विनिक्षिपेत् ॥ ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया ॥ ३२ ॥ क्षयं गुल्मोदरे कार्श्यं ग्रहणीं पांडुतां तथा ॥ अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—१ पीपल २ काली मिरच ३ चव्य ४ हलदी ५ चीतेकी छाल ६ नागरमोथा ७ वायविडंग ८ सुपारी ९ लोध १० पाढ ११ आंवले १२ एलवालुक १३ खस १४ सपेद चंदन १५ कूठ १६ लौंग १७ तगर १८ जटामांसी १९ दालचीनी २० इलायचीके दाने २१ पत्रज २२ फूल प्रियंगु और २३ नागकेशर ये तेईस औषध आधे २ पल लेवे । सबका बारीक चूर्ण करके दो द्रोण जलमें डाल देवे । और गुड तीन तुला डाले । तथा धायके फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनोंको बारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे । फिर उस पात्रके मुखको बंद करके एक महीने धरा रहने दे । जब जाने कि उन औषधोंका उत्तम रस तयार हो गया है तब उस मुद्राको खोलके रसको निकास लेवे । इसको पिप्पल्यासव कहते हैं । इस आसवको जठराग्निका बलाबल विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रहणी, पांडुरोग और बवासीर ये सब रोग तत्काल दूर हों ॥

लोहासव पांडुरोगादिकोंपर।

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम् ॥ विडंगं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यापलं पृथक् ॥ ३४॥ धातकीकुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् ॥ चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥ ॥३५॥ दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा ॥घृतभांडे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम् ॥ ३६ ॥ लोहासवममुं मर्त्यः पिबेदग्निकरं परम् ॥ पांडुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ॥ ॥ ३७ ॥ कुष्ठं प्लीहामयं कंडूं कासं श्वासं भगंदरम् ॥ अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ–१ लोहभस्म २ सोंठ ३ काली मिरच ४ पीपल ५ हरड ६ बहेडा ७ आंवला ८ अजमोदा ९ वायविडंग १० नागरमोथा और ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल वीस पल ले सबका चूर्ण करे। ६४ पल सहत तथा एक तुला (१०० पल) गुड इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त औषधोंके चूर्णको उसमें मिलायके दो द्रोण जलमें डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यंत रखा रहने दे। पश्चात् मुद्रा खोलके निकास लेवे। इसको लोहासव कहते हैं। इस आसवका सेवन करनेसे गुल्म (गोलेका रोग), बवासीर, कोढ तथा पेटमें बांई तरफ फीहारोग होता है वह, खुजली, खांसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग ये सब दूर होवें ॥

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर।

मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेंभसः पचेत्॥ द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन् प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥ तुले द्वे क्षौद्रखंडाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ॥ कंकोलकं लवंगं च फलं जात्यास्तथैव च ॥४०॥ पलांशकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसराः ॥ पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥ ४१ ॥ घृतभांडे विनिक्षिप्य चंदनागरुधूपिते ॥ कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्यां दीपनः परः ॥४२॥ अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्तस्य गुल्मनुत् ॥ जठरे कृमिकुष्ठानि व्रणानि विविधानि च ॥ अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥४३॥

अर्थ–१०० पल मुनक्का दाख ले चार द्रोण जलमें औटावे। जब १ द्रोण जल रहे तब उतार लेवे। जब शीतल हो जावे तब छान लेय। फिर आगे लिखी हुई औषध इसमें डाले। सहत और खांड प्रत्येक सौ सौ पल, धायके फूल १ प्रस्थ १ कंकोल २ लौंग ३ जायफल ४ काली मिरच ५ दालचीनी ६ इलायचीके बीज ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ पीपल १० चीतेकी छाल ११ चव्य १२ पीपरामूल १३ रेणुका ये तेरह औषध एक एक पल लेवे। सबका चूर्ण करके चंदनकी धूनी दिये हुए घीके चिकने बासनमें सबको भर देवे। मुखपर मुद्रा देकर (पंद्रह दिन) धरा रहने दे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो। इसको शुद्ध कपूर करके वासित करनेसे संग्रहणी रोगीकी अग्नि प्रदीप्त हो। उसी प्रकार बवासीर, उदावर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोठ, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गलेके रोग दूर होवें ॥

लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर ।

लोध्रं शठीपुष्करमूलमेला मूर्वा विडंगं त्रिफला यवानी ॥
चव्यं प्रियंगुं क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च ॥ ४४ ॥
भार्ङ्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां च पाठाम् ॥
कलिंगकं केसरमिंद्रसाह्वानंतासिपत्रं मरिचप्लवं च ॥ ४५ ॥
द्रोणेऽभसः कर्षसमांश्च पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ॥
रसार्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥४६॥
लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रं निहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ॥
पांड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं बलासं विविधं च कुष्ठम् ॥४७॥

अर्थ–१ लोध २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ इलायची ५ मूर्वा ६ वायविडंग ७ त्रिफला ८ अजमायन ९ चव्य १० फूलप्रियंगु ११ सुपारी १२ इन्द्रायन १३ चिरायता १४ कुटकी १५ भारंगी १६ तगर १७ चीतेकी छाल १८ पीपरामूल १९ कूठ २० अतीस २१ पाढ २२ इन्द्रजौ २३ नागकेशर २४ कोहकी छाल २५ धमासा २६ ईख २७ काली मिरच २८ क्षुद्रमोथा ये अट्ठाईस औषधि प्रत्येक एक एक तोले लेवे। सबका चूर्ण करके एक द्रोण जलमें डालके पकावे। फिर चतुर्थांश रहनेपर छानके शीतल होनेपर काढेका आधाभाग सहत मिलावे। पश्चात् घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा देकर १५ दिन पर्यंत धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे। इसको देहका बलाबल विचारके दो पल पर्यंत देवे तो कफ पित्तके विकार, प्रमेह, पांडुरोग, बवासीर, अरुचि, संग्रहणी, अनेक प्रकारके कफ और सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होवें ॥

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर ।

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा ॥ मधुकं पुष्पकाश्मयौं भागान्दशपलोन्मितान् ॥ ४८ ॥ चतुर्द्रोणेऽभसः पक्त्वा क्काथे द्रोणावशेषिते ॥ धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥ ४९ ॥ मासमात्रं स्थितो भांडे कुटजारिष्टसंज्ञितः ॥ ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णं धनंजयम् ॥ ५० ॥

अर्थ–कूडाकी जड १ तुला, दाख आधे तुला महुआके फूल और कंभारीकी जड दश दश पल लेवे । इस प्रमाणसे सब औषधोंको ले जवकूट करके ४ द्रोण जलमें डालके औटावे । जब १ द्रोण जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेय । उस जलमें धायके फूलोंका चूर्ण २० पल डाले तथा गुड एक तुला डालके सबको मिलाय चिकने पात्रमें भरके मुखको बंद कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर इसको निकाल लेवे । इसको कुटजारिष्ट कहते हैं । यह अरिष्ट पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होवे ॥

विडंगारिष्ट विद्रधिआदिपर ।

विडंगं ग्रंथिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च ॥ ५१ ॥ पाठैलवालुकं धात्री भागान्पंच पलान्पृथक् ॥ अष्टद्रोणेऽभसः पक्त्वा कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥ ५२ ॥ पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् ॥ धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा ॥ ५३ ॥ प्रियंगुकांचनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् ॥ व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥ ५४ ॥ घृतभांडे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् ॥ ततः पिबेद्यथार्हं तु जयेद्विद्रधिमूर्च्छितम् ॥ ५५ ॥ ऊरुस्तंभाश्मरीमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगंदरान् ॥ गंडमालां हनुस्तंभं विडंगारिष्टसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ वायविडंग २ पीपरामूल ३ रास्ना ४ कूडाकी छाल ५ इन्द्रजौ ६ पाढ ७ एलवालुक और ८ आमले ये आठ औषधी पांच २ पल लेवे जवकूट करके इसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे । जब एक द्रोण जल रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब ३०० तीनसौं पल सहत बीस पल धायके फूल १ दालचीनी २ छोटी इलायचीके दाने ३ पत्रज ये तीन औषध एक एक पल लेवे

तथा १ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल इन तीन औषधोंको मिलायके आठ पल लेवे इस प्रमाणसे सब औषधोंको लेकर चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय उसको घीके चिकने बरतनमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीना पर्यंत धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर निकाल लेवे । इसको विडंगारिष्ट कहते हैं । इस अरिष्टके पीनेसे विद्रधिरोग, ऊरुस्तंभ रोग, पथरीका रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, वादीका रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ (वादीका रोग) इन सबको यह दूर करता है ॥

देवदार्वारिष्ट प्रमेहादिकोंपर ।

तुलार्धं देवदारु स्याद्वासा च पलविंशतिः ॥ मंजिष्ठेंद्रयवा दंती तगरं रजनीद्वयम् ॥ ५७ ॥ रास्ना कृमिघ्नं मुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ ॥ भागान् दशपलान् दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च ॥ ॥ ५८ ॥ चंदनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च ॥ भागानष्टपलानेतानष्टद्रोणेंऽभसः पचेत् ॥ ५९ ॥ द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत् ॥ धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ६० ॥ व्योषस्य द्विपलं दद्यात्रिजातस्य चतुष्पलम् ॥ चतुःपलं प्रियंगुश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥ ६१ ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभांडे निधापयेत्॥ मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हंति दुर्जयम् ॥ ६२ ॥ वातरोगान् ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् ॥ देवदार्वादिकोरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ-देवदारु ५० पल अडूसा २० पल और १ मजीठ २ इन्द्रजौ ३ दंती ४ तगर ५ हलदी ६ दारुहलदी ७ रास्ना ८ वायविडंग ९ नागरमोथा १० सिरस ११ खैरकी छाल १२ कोहकी छाल ये बारह औषध दश दश पल लेवे । १ अजमोद २ कूडेकी छाल ३ सपेद चंदन ४ गिलोय ५ कुटकी ६ चीतेकी छाल ये छः औषध आठ आठ पल लेवे । फिर सब औषधोंको जवकूट करके उसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे । जब १ द्रोणमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी औषधोंको डाले । धायके फूल १६ पल, सहत तीन तुला और सोंठ मिरच पीपल ये तीनों औषध मिलाय ले दो पल लेय । दालचीनी, इलायचीके दाने, पत्रज ये तीन औषध चार पल लेवे । फूलप्रियंगू और नागकेशर दो दो पल लेवे सब औषधोंका चूर्ण करके उस काढेमें डाल देवे । फिर सहतको मिलायके एकत्र कर घीके चिकने बासनमें भर मुख बंद कर मुद्रा देके रख दे जब एक महिना

हो जावे तब मुद्राको दूर कर रस निकाल ले। इसको देवदार्वारिष्ट कहते हैं। इसको पीवे तो घोर प्रमेहका रोग दूर हो तथा यह वादीका रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढके रोगको नष्ट करे॥

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर।

खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम्॥ बाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः॥ ६४॥ त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्॥ कषाये द्रोणशेषे च पूतशीते विनिक्षिपेत्॥ ॥ ६५॥ तुलाद्वयं माक्षिकस्य पलैका शर्करा मता॥ धातक्या विंशतिपलं कंकोलं नागकेशरम्॥ ६६॥ जातीफलं लवंगैला त्वक्पत्राणि पृथक् पृथक्॥ पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम्॥ ६७॥ घृतभांडे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः॥ महाकुष्ठानि हृद्रोगं पांडुरोगार्बुदे तथा॥६८॥ गुल्मं ग्रंथिं कृमीन् श्वासं कासं प्लीहोदरं तथा॥ एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः॥ ६९॥

अर्थ—खैरकी छाल ५० पल देवदारु ५० पल बावची १२ पल दारुहलदी २० पल हरड बहेडा और आमला ये तीनों मिलायके २० पल इस प्रकार संपूर्ण औषध लेकर जवकूट करके उसको आठ द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेय। जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खांड १०० पल ले, धायके फूल २० पल, १ कंकोल २ नागकेशर ३ जायफल ४ लौंग ५ इलायची ६ दालचीनी ७ पत्रज से सात औषधि एक एक पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे १ महिने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महिनेके निकालके पीवे तो यह खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, पांडुरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथि (गांठ), कृमिरोग, श्वास, खांसी, पेटमें बांई तरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हों॥

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर।

तुलाद्वयं च बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत्॥ द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत्॥७०॥ धातकीं षोडशपलां कृष्णां च

द्विपलां तथा ॥ जातीफलानि कंकोलमेला त्वक्पत्रकेसरम् ॥ ॥ ७१ ॥ लवंगं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ मासं भांडे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत् ॥ क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहं श्वासकासनुत् ॥ ७२ ॥

अर्थ–बबूर (कीकर) की छाल दो तुला (२० पल) लेवे । उसको जवकूट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे । जब १ द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे जब शीतल हो जावे तब गुड ३०० तीनसौ पल मिलावे । धायके फूल सोलह पल डाले । पीपल २ पल १ जायफल २ कंकोल ३ इलायची दाने ४ दालचिनी ५ पत्रज ६ नागकेशर ७ लौंग ८ काली मिरच ये आठ औषध एक एक पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने वासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महिने पर्यंत धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर रसको छानके निकाल लेवे । इसको बब्बूलारिष्ट कहते हैं । इसको पीवे तो क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खांसी, श्वास इन सब रोगोंको दूर करे ॥

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर ।

द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः ॥ ७३ ॥ पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेला पत्रकेसरम् ॥७४॥ प्रियंगुर्मरिचं कृष्णां विडंगं चेति चूर्णयेत् ॥ पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भांडे निधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वा ततो मासं ततो जातरसं पिबेत् ॥ उरःक्षतं क्षयं हंति कासश्वासगलामयान् ॥ द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ॥ ७६ ॥

अर्थ–मुनक्कादाख ५० पल लेवे । उसमें दो द्रोण पानी डालके औटावे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब गुड दो तुला डाले । और १ दालचीनी २ इलायची दाने ३ पत्रज ४ नागकेशर ५ फूलप्रियंगु ६ काली मिरच ७ पीपल ८ वायविडंग ये आठ औषधि एक एक पल ले सबका चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे । फिर सबको एक चिकने पात्रमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देवे और उसको १ महिने अथवा एक पखवारे धरा रहने दे सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकास ले इसको द्राक्षारिष्ट कहते हैं । इस

अरिष्टके पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षयरोग, खांसी, श्वास, कंठका रोग ये संपूर्ण दूर होवें । यह बल बढाता और मलको साफ करता है ॥

रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर ।

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम् ॥ दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता ॥ ७८ ॥ पंचकोलं त्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत् ॥ चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भांडे निधापयेत् ॥ ७९ ॥ मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यांति संक्षयम् ॥ ग्रहणीपांडुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणि च ॥ कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसंज्ञकः ॥ ८० ॥

अर्थ-लाल रोहिडा १ तुला ले जवकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब इसमें गुड २०० पल मिलावे । धायके फूल १६ पल, १ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४चीतेकी छाल ५ सोंठ ६ दालचीनी ७ इलायचीके बीज ८ पत्रज ९ हरड १० बहेडा ११ आंवला ये ग्यारह औषध एक एक पल ले सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें डालके उसको किसी चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा देकर एक महिने पर्यंत धरा रहने दे पश्चात् मुद्राको दूर करे । इसको रोहितारिष्ट कहते हैं । इसके पीनेसे बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोलेका रोग, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब रोग दूर होय ॥

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर ।

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकंटो बिल्वोग्निमंथकोरलुः ॥ पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ॥ ८१ ॥ दशमूलानि कुर्वीत भागैः पंचपलैः पृथक् ॥ पंचविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा ॥ ८२ ॥ कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् ॥ पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ८३ ॥ खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक् पलैः ॥ अष्टभिर्गुणितं कुष्ठं मंजिष्ठा देवदारु च ॥ ॥ ८४ ॥ विडंगं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा ॥ चव्यं मांसी प्रियंगुश्च सारिवा कृष्णजीरकः ॥ ८५ ॥ त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी ॥ हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नाग-

केसरम् ॥ ८६ ॥ मुस्तमिंद्रयवाः शृंगी जीवकर्षभकौ तथा ॥ मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥ ८७ ॥ कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले ॥ चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भांडे सन्निधापयेत् ॥ ८८ ॥ चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे ॥ त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्राथे शृतं क्षिपेत् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद्गुडचतुःशतम् ॥ त्रिंशत्पलानि धातक्याः कंकोलं जलचंदनम् ॥ ९० ॥ जातीफलं लवंगं च त्वगेला पत्रकेसरम् ॥ पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥ ॥ ९१ ॥ शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निःक्षिपेत् ॥ भूमौ निखातयेद्भांडं ततो जातरसं पिबेत् ॥ ९२ ॥ कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत् ॥ ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगंदरम् ॥ ॥ ९३ ॥ वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पांडुरोगं च कामलाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मंदाग्निमुदराणि च ॥ ९४ ॥ शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत् ॥ कृशानां पुष्टिजननो वंध्यानां गर्भदः परः ॥ अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ॥ ९५ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखंडे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–दशमूल प्रत्येक आधे २ पल चीतेकी छाल २५ पल, पुहकरमूल २५ पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैरकी छाल ८ पल, विजैसार ८ पल और हरड ८ पल । १ कूठ २ मजीठ ३ देवदारु ४ वायविडंग ५ मूलहटी ६ भारंगी ७ कैथ ८ बहेडा ९ पुनर्नवा १० चव्य ११ जटामांसी १२ फूलप्रियंगू १३ सारिवा १४ काला जीरा १५ निसोथ १६ रेणुकबीज १७ रास्ना १८ पीपल १९ सुपारी २० कचूर २१ हलदी २२ सोंफ २३ पद्माख २४ नागकेशर २५ नागरमोथा २६ इन्द्रजौ २७ कांकडासिंगी और २८ जीवक ऋषभक्त (इन दोनोंके अभावमें विदारीकंद लेवे) २९ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेय) ३० काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगंध लेय) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभावमें वाराहीकंद लेवे) ये इकत्तीस औषध दो दो पल लेवे। फिर सबको जवकूट करके सब औषधोंका आठ गुना जल मिलायके काढा करे। जब चौथाई रहे तब उतारके छान और ले इसको किसी घीके चिकने पात्रमें भर देवे।

फिर दाख ६४ पल ले उनमें चौगुना पानी डालके औटावे । जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तब उतारके छान लेय। इसकोभी पहले काढेमें मिलाय देवे। पश्चात् ३२ पल सहत और ४०० चारसौ पल गुड एवं ३० तीस पल धायके फूल डालने चाहिये। १ कंकोल २ नेत्रवाला ३ सपेदचंदन ४ जायफल ५ लौंग ६ दालचीनी ७ इलायचीदाने ८ पत्रज ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषधी दो दो पल लेकर चूर्णकरके पूर्वोक्त काढेमें मिलावे। एवं १ शाण कस्तूरीका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय दे फिर उस पात्रका मुख बंदकर मुद्रा दे इसको १ महिने अथवा पंद्रह दिन पर्यंत पृथ्वीमें गडा रहने देवे । जब उन औषधोंका उत्तम रस हो जावे तब उसको बाहर निकालके मुद्रा दूर करे। फिर इसमें निर्मलीके बीजोंका चूर्ण कर थोडासा डाल देवे तो रस निर्मल हो जावे। इसको दशमूलारिष्ट कहते हैं। इस आरिष्टके पांडुरोग, नेत्रोंका कामलारोग,कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, मंदाग्नि, उदररोग, शर्करा (पथरीका भेद), मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवे। यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्यको पुष्ट करे और वंध्या स्त्रीको पुत्र देवे, तेज धातु (वीर्य) और बल देता है ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे माथुरीभाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः।

स्वर्णादि धातु और उनका शोधन ।

स्वर्णं तारं ताम्रमारं नागवंगौ च तीक्ष्णकम् ॥ धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्ताञ्छोधयेद् बुधः ॥१॥ स्वर्णताराराताम्राणां पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ॥ निषिंचेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥ २ ॥ गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा ॥ एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ ३ ॥ नागवंगौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् ॥ त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेन च त्रिधा॥४॥

अर्थ—१ सुवर्ण २ रूपा (चांदी) ३ तांबा ४ जस्त[1] अथवा पीपल ५ शीसा ६ रांगा और पोलाद आदि लोह इन सातोंको धातु[2] कहते हैं। ये सातों धातु पर्व-

---

[1] जस्तके स्थानमें कोई पीतल लेता है परंतु पीतल मिश्रित धातु है इसवास्ते हमको वह मत मंतव्य नहीं है। [2] वृद्धत्व (सपेद बालोंका होना) कृशत्व और बलहीनता इत्यादि रोगोंका निवारण कर ये देहको धारण करती हैं इसीसे सुवर्णादि धातु कहते हैं।

तसे उत्पन्न होती हैं इसवास्ते इनमें थोडा बहुत मैल रहता है इसवास्ते इनका बुद्धिवान् वैद्य शोधन इस प्रकार करे । सुवर्ण (सोना) रूपा जस्त ताम्र (तांबा) इनके बारीक कंटकवेधी पत्र कर अग्निमें वारंवार तपाय २ के तेल छाछ कांजी[1] गोमूत्र और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें तीन २ वार बुझावे । इस प्रकार सुवर्णादि सात धातुओंकी शुद्धि होती है । शीशा और रांगा ये दोनों धातु नम्र हैं इस वास्ते इनकी विशेष शुद्धि कहते हैं । शीशे और रांगेको अग्निमें तपावे । जब गल जावे तब तैलादिकोंमें तीन २ वार उडेल (गेर) देवे । तथा आकके दूधमें गलाय २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि होवे । विशेष शुद्धि देखना होय तो हमारे निर्माण किये हुए रसराजसुन्दर ग्रंथके प्रथम भागमें देखो ॥

सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि ।

स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् ॥ तद्गोलके समं गंधं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ ५ ॥ गोलकं च ततो रुध्याच्छरावदृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवं चतुर्दश ॥ निरुत्थं जायते भस्म गंधो देयः पुनः पुनः ॥ ६ ॥

अर्थ-सुवर्णका बारीक चूर्ण करके १ भाग तथा शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले दोनोंको खरलमें डालके कागदी नींबूके रसमें खरल करे । जब संपूर्ण पारा सुवर्णके बुरादे पर चढ जावे और उसका गोलासा बंध जावे तब गोलाके समान भाग शुद्ध की हुई आंवलासारगंधक ले बारीक चूर्ण करे । फिर मिट्टीके दो शराव ले प्रथम शरावमें आधी गंधकको बिछायके उसपर उस सुवर्ण और पारेके गोलेको रख देवे, फिर बाकी गंधक जो बची है उसको उस गोलेके ऊपर बुरकके दूसरे शरावसे बंद कर देवे और इसके ऊपर सात कपडमिट्टी करे । फिर ३० आरने उपलोंको आधे नीचे रक्खे और आधे ऊपर रक्खे, बीचमें संपुट रखके फूंक देवे । जब स्वांगशीतल हो जावे तब संपुटसे उसको निकालके फिर पारेमें घोटे और फिर इसी

---

१ कांजी बनानेकी क्रिया-मिट्टीकी मथानीको सरसोंके तेलसे पोत कर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १राई २ जीरा ३ सैंधानिमक ४ हींग ५ सोंठ और ६ हलदी इन छः औषधोंका चूर्ण कर चांवलोंका भात युक्त मांड तथा कुलथीका काढा थोडे वांसके पत्ते ये सब उस पात्रमें डाल दे तथा पानीके अनुमान माफिक दश पांच उडदके बडे बनाकर डालकर उसका मुख बंद करके तीन दिन धरा रहने दे जब खट्टी बास आनेलगे तब जाने कि कांजी बनाई यह कांजी बनानेकी विधि है । २ शीशा अथवा रांगेका रसकरके तैल कांजी आदिमें बुझाना चाहे तो प्रथम उस तेल कांजीके पात्रको बिली (छिद्रदार पात्र) से ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदिको गेरे अन्यथा वो रसरूप शीशा आदि उछट कर वैद्यके देहपर पडनेसे मार डालेगा ॥

प्रकार आंच देवे । इस प्रकार चौदह आंच देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होवे अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालनेसेभी नहीं जीवे ॥

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि ।

कांचने गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् ॥ ७ ॥ चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा च गोलकम् ॥ गोलकेन समं गंधं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥८॥ शरावसंपुटे धृत्वा पुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥ ९ ॥

अर्थ-सुवर्णका अग्निके संयोगसे रस करके उसमें सोलहवां हिस्सा शीशा डालके ढाल देवे । फिर उसका रेतीसे चूर्ण करके नींबूके रसमें खरल कर गोला बनावे । उस गोलेके समान भाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे । फिर मिट्टीके दो सरावे लेकर एक सरावेमें आधा गंधक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछाय बीचमें उस गोलेको रखके दूसरे सरावेसे मुख बंद करके कपरमिट्टी कर तीस आरने उपलोंकी आंचमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार वारंवार घोटे और वारंवार अग्नि देवे । ऐसे सात अग्नि देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होती है और यह मित्रपंचक मिलाकर जिवानेसेभी नहीं जीवे॥

सुवर्णभस्मकी तीसरी विधि ।

कांचनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगंधयोः॥ कज्जल्या हेमपत्राणि लेपयेत्सममात्रया ॥१०॥ कांचनारत्वचः कल्कं मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ धृत्वा तत्संपुटे गोलं मृण्मूषासंपुटे च तत् ॥११॥ निधाय संधिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोमयैः ॥ वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दद्यात्पुटत्रयम् ॥१२॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ कांचनारप्रकारेण लांगली हंति कांचनम् ॥ ज्वालामुखी तथा हन्यात्तथा हंति मनःशिला ॥ १३ ॥

अर्थ-पारा और गंधक दोनों समान भाग लेवे । दोनोंको खरलमें डाल कचनारके रससे खरल करके कजली करे । उस कजलीको समान भाग सुवर्णके पत्रोंपर लेप करे । फिर कचनारकी छालको पीस कल्क करके उसकी दो मूस बनावे । इस एक मूसमें सोनेके पत्र रखके उसपर दूसरी मूसको रख दोनोंकी संधि मिलाय एक गोला बनावे । उस गोलेको मिट्टीके सरावेमें रख दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टी कर देवे ।

१ (कोकिलैः) ऐसाभी पाठांतर है तहां कोकिल कहिये कोले ।

फिर धूपमें सुखाय तीव्र आरने उपलोंकी अग्नि देवे । इस प्रकार तीन अग्निके पुट देवे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म होय फिर किसी प्रकार नहीं जीवे यह भस्म संपूर्ण रोगोंपर देनी चाहिये । इसी प्रकार कलयारीके रसमें पारे गंधकको खरल कर कजली करे और सुवर्णके पत्रोंपर लेप कर कलयारीकी मूसमें रख सरावसंपुटमें धरके फूंक देवे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म होय । इसी प्रकार ज्वालामुखीके रसमें घोट पत्रोंपर लेप कर मूसमें रख सरावसंपुटमें फूंके तो भस्म होय। तथा मनसिलमें कजली कर लेप करे और मूसाद्वारा सरावसंपुटमें फूंक देय तोभी सुवर्णकी उत्तम भस्म हो ॥

सुवर्णभस्मकी अन्यविधि ।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः ॥ १४ ॥ सप्तैव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः ॥ ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोयं दीयते समः ॥ १५ ॥ पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते ॥ एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–मनसिल और सिंदूर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके आकके दूधमें खरल कर धूपमें सुखाय ले इस प्रकार सात पुट देवे । फिर सुवर्णको गलायके उस सुवर्णके समान ऊपर लिखा मनसिल और सिंदूरका चूर्ण डाले जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट हो जावे तबतक अग्निमें रख धौंकनीसे अत्यंत धमावे । फिर समान भाग मनसिलादिकोंका चूर्ण डाले और धमावे । इस प्रकार तीन वार करनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे ॥

सुवर्णभस्मका प्रकारांतर ।

पारावतमलैर्लिंपेदथवा कुक्कुटोद्भवैः ॥ हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ १७ ॥ गंधचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसंपुटे ॥ प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पंचभिर्गोमयोपलैः ॥१८॥ एवं नवपुटान्दद्याद्दशमं च महापुटम् ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्देयं जायते हेमभस्मकम् ॥ ॥१९॥ सुवर्णं च भवेत् स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु ॥ बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम् ॥ २० ॥

अर्थ–सुवर्णके पत्र करके उनपर कबूतर अथवा मुरगेकी वींटका लेप करके उन पत्रोंके समानभाग गंधकका चूर्ण करके मिट्टीके सरावेमें आधी बिछावे । उसपर सुवर्णके पत्र रखके फिर आधी गंधक ऊपरसे डाल देवे । फिर दूसरे सरावेसे बंद करके कपड मिट्टीकर धूपमें सुखाय ले । फिर इसको गौके गोबरके बडे २ पांच उपले लेके

अग्नि देवे। ऐसे नौ पुट देकर दशवां तीस उपलोंका महापुट देवे। इस प्रकार महापुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे। अब इस भस्मके गुण कहते हैं। यह मधुर (मीठी) तिक्त (कडवी) स्निग्ध (चिकनी) शीतल और भारी है। यह भस्म बुद्धिकर्त्ता, विद्याकर्त्ता, स्मरणशक्ति बढानेवाली तथा विषबाधाका नाश करनेवाली और रसायन है॥

रौप्य (चांदीकी भस्म)।

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित्॥ तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत्॥ २१॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेस्त्रिंशद्वनोपलैः॥ समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते॥ २२॥

अर्थ-एक भाग हरताल लेकर कागदी नींबूके रसमें १ प्रहर खरल करे। फिर हरतालके तीन भाग रूपेके पत्र लेकर उनपर उस हरतालके कल्कका लेप करे। फिर उनको एकके ऊपर एक रखके मिट्टीके सरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले फिर तीस आरने उपलोंके बीचमें उस सरावसंपुटको रखके फूंक देवे। इस प्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूपेकी उत्तम भस्म होवे॥

रूपेका भस्म करनेकी दूसरी विधि।

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत्॥ २३॥
तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान्॥
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते॥ २४॥

अर्थ-सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उसको थूहरके दूधमें १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिकसे तिगुने चांदीके पत्र ले उनपर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिकके कल्कका लेप मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर धूपमें सुखाय ले पश्चात् उसको आरने उपलोंकी बीचमें रखके अग्नि देवे। इस प्रकार चौदह पुट देवे तो रूपेकी भस्म होय॥

ताम्रभस्मकी विधि।

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद् बुधः॥ वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षिपेत्॥२५॥ पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत्॥ तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च॥ २६॥ गंधकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्॥ ततः पिष्ट्वा च

मीनाक्षीं चांगेरीं वा पुनर्नवाम् ॥ २७ ॥ तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदंगुलोन्मितम् ॥ धृत्वा तद्गोलकं भांडे शरावेण च रोधयेत् ॥२८॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणांबुभिः ॥ दत्त्वा भांडमुखे मुद्रां ततश्चुल्ह्यां विपाचयेत् ॥ २९ ॥ क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् ॥ स्वांगशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥ दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धं गंधेन लेपयेत् ॥ सघृतेन ततो मूषापुटे गजपुटे पचेत् ॥ ३१ ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत् ॥ वांतिं भ्रांतिं क्लमं मूर्छां न करोति कदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ–तामेके कंटकवेधी पत्रोंके बहुत बारीक नखके समान छोटे २ टुकडे कर उनको नींबूके रसमें डालके तीन वार थोडा २ स्वेदन करके पचावे। फिर उन पत्रोंको बाहर निकालके उन पत्रोंका चतुर्थांश पारा लेकर दोनोंको खरलमें डालके नींबूके रससे १ प्रहर घोटे। फिर उन तामेके पत्रोंको खरलसे निकालके उनकी दूनी गंधक लेके सबको नींबूके रससे खरल करके उन तामेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला बनावे। फिर मीनाक्षी (मछेली) अथवा चूका अथवा पुनर्नवा (सांठ) इन तीनों वनस्पतियोंमेंसे जो मिले उसको पीसके उस ताम्रगोलेके चारों तरफ एक २ अंगुल मोटा लेप करे। उस गोलेको किसी पात्रमें धरके उसपर मिट्टीका शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत वालू भर देवे। फिर राख और नमकको जलमें मिलायके उसकी उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर उस पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे मंद मध्य और तेज अग्नि चार प्रकार देय। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके सूरण (जमीकंद) के रससे १ दिन खरल करे। फिर इसका गोला बनाय उसकी आधी गंधकको घीमें पीसके उस गोलेके चारों तरफ लेप करे। फिर मिट्टीके दो सराव लेय गोलेको एक सरावेमें रखके दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टीकरके आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल हो जावे तब उस सरावसंपुटको बाहर निकाल उसमेंसे ताम्रभस्मको बुद्धिमानीसे निकाल लेवे। यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन, भ्रांति, अग्नि और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है ॥

---

१ मीनाक्षीको मत्स्याक्षी कहते हैं अर्थात् कुटकी जाननी ऐसा किसीका मत है।
२ सवा हाथ गहरा सवा हाथ चौडा और इतनेही लंबे गड्ढेमें आरने उपलोंको भरके बीचमें औषधिके संपुटको रखके अग्नि देनेको गजपुट कहते हैं। परंतु यह प्रमाण ठीक नहीं है देखो रसराजसुंदरके मध्यभागमें यंत्राध्यायमें क्या लिखा है।

जस्तकी भस्म ।

अर्कक्षीरेण संपिष्टो गंधकस्तेन लेपयेत् ॥ समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः॥३३॥ ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च॥ एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम् ॥ ३४ ॥ आरवत्कांस्य-मप्येवं भस्मतां याति निश्चितम् ॥ अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुंडी-क्षीरिका तथा ॥ ताम्ररीतिध्वनिवधे समगंधकयोगतः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जस्तेके अथवा पीतलके पतले पत्र करके अग्निमें तपाय सात वार अथवा तीन वार नींबूके रसमें बुझाके शुद्ध करे । फिर उन पत्रोंके समान भाग गंधक लेकर आकके दूधमें खरल कर उन तामेके पत्रोंपर लेप कर मिट्टीकी मूसामें रखके दूसरी मूसमें उसका मुख बंद कर देवे और कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देवे । इस प्रकार दो अग्निपुट देनेसे शीशेकी अथवा पीतलकी निश्चय भस्म होवे। इसी प्रकार कांसेकी भस्म होती है। तामा पीतल और कांसा इनके मारनेकी दूसरी विधि कहते हैं । तामा पीतल और कांसा इनमेंसे जिसकी भस्म करनी होय उसकी बरावर गंधक लेकर आकके अथवा वडके अथवा गौके दूधमें खरल करे । अथवा निर्गुंडीके रसमें खरल करके उन पत्रोंपर पृथक् २ लेप करे पृथक् आरने उपलोंके दो पुट देवे तो उक्त ताम्रआदि धातुओंकी भस्म होय ॥

शीशेकी भस्म ।

तांबूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ॥
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—नागरवेलके पानोंका रस निकालके उसमें मनसिलको पीसे इस मनसिलके समान भाग शीशेके पत्रोंपर उस (मनसिल) का लेप करे । मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उन शीशेके पत्रोंको रखके दूसरेसे उसको बंद करके कपडामिट्टीकर धूपमें सुखावे । फिर गड्ढा खोदके आरने उपलोंसे भरके गजपुटकी अग्नि देवे इस प्रकार बत्तीस अग्नि देवे तो शीशेकी भस्म होय फिर नहीं जीवे । इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं ॥

शीशे मारणका दूसरा प्रकार ।

अश्वत्थचिंचात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ३७ ॥ यामैकेन भवेद्भस्म तत्तु-

१ अर्कक्षीरवदाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुंडिका तथा । इति पाठांतरम् ।

ल्यां च मनःशिलाम् ॥ कांजिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्दृढपुटेन च ॥ ३८ ॥ स्वांगशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया कांजिकेन च ॥ पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ॥ ३९ ॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें शीशेको डालके पिघलावे (टघरावे) जब रसरूप हो जावे तब पीपलकी छाल, इमलीकी छाल इन दोनोंका चूर्ण शीशेसे चौथाई लेवे उसको उस तरह हुए शीशेके रसपर थोडा २ बुरकता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जावे। इस प्रकार १ प्रहर करनेसे शीशेकी भस्म होय। उस भस्मके समान मनसिल लेकर दोनोंको कांजीमें खरल करे। फिर मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उस भस्मको रखे और दूसरेसे उसका मुख बंदकर कपडमिट्टी कर ले गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीचमें शरावसंपुटको रखके ऊपरसे फिर आरने उपले भरे। इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल लेवे। फिर इसमें समान भाग मनसिल मिलायके दोनोंको कांजीमें खरल कर मिट्टीके सरावसंपुटमें डालके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय आरने उपलोंकी अग्नि देवे। इस प्रकार साठ पुट देनेसे शीशेकी उत्तम भस्म हो॥

रांगभस्म प्रकार।

मृत्पात्रे द्राविते वंगे चिंचाश्वत्थत्वचो रजः ॥ ४० ॥ क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते ॥४१॥ अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत् ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥४२॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटैः पक्वो वंगस्तु म्रियते ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें रांगेको डालके तपावे। जब रसरूप हो जाय तब इमलीकी छाल और पीपलकी छाल इन दोनोंका चूर्ण रांगेसे चतुर्थांश लेकर उस गले हुए रांगेपर थोडा २ डालता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जाय। इस प्रकार दो प्रहर करे तो रांगेकी भस्म होय। फिर इस भस्मके समान हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके मिट्टीके शरावेमें संपुट करके ऊपरसे कपडमिट्टी कर देवे। गड्ढा खोदकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब बाहर निकालके उस भस्मका दशवां हिस्सा हरताल ले नींबूके रसमें दोनोंको खरल कर सरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी करके

धूपमें सुखाय ले। फिर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देय । इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो रांगेकी निश्चय उत्तम भस्म होवे । इसको वंगभस्म कहते हैं और इसी रांगमें प्रथम गलायके पारा मिलावे फिर उसके पत्र करके भस्म करे तो वह वंगेश्वर कहाता है ॥

लोहभस्म प्रकार ।

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ॥ मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४४ ॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नकारसैः ॥ पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–पोलाद अथवा खेरी लोहका रेतीसे चूरा करके पातालगरुडी (छिलहिंटा) के रसमें खरल कर सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके संपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार तीन अग्निपुट देवे । तथा घीगुवारके रसकी तीन अग्निपुट देवे एवं वनतुलसीके रसकी (अथवा कसोंदी) के रसकी छः अग्निपुट देय । इस प्रकार बारह पुट देनेसे पोलाद आदि लोहोंकी उत्तम भस्म होय । इसमें जो बारह पुट कहे हैं उन्हें गजपुट जानना ॥

लोहभस्मका दूसरा प्रकार ।

क्षिपेद्वादशमांशेन पारदं तीक्ष्णलोहतः ॥ मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ ४६ ॥ एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ रसैः कुठारच्छिन्नायाः पातालगरुडीरसैः ॥ स्तन्येन चार्कदुग्धेन तीक्ष्णस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ–खेडीलोहको रेतीसे चूर्ण कर उस चूर्णका बारहवां हिस्सा हींगलू लेकर घीगुवारके रसमें दोनोंको दो प्रहर खरल करे तब मिट्टीके सराव संपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके बीचमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार सात पुट देय तो पोलाद और खेडी आदि लोहकी उत्तम भस्म होय। लोह भस्म करनेका दूसरा प्रकार और कहते हैं। छिलहिंटाके रसमें अथवा स्त्रीके दूधमें तथा गौके दूधमें अथवा पियावांसा अथवा आकके दूधमें सिंगरफ मिलाय पोलाद लोहेको घोटके पृथक् २ सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहकी उत्तम भस्म होय ॥

लोहभस्मका तीसरा प्रकार ।

सूतकद्विगुणं गंधं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ४८ ॥ द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मं ततः पिंडं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ४९ ॥ घर्मे धृत्वा रुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्

बुधः ॥ यामार्धेनोष्णता भूयाद्धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ ५० ॥ द्रव्योपरि शरावं तु त्रिदिनांते समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा च गालयेद्व-स्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ-पारा एक भाग और गंधक दो भाग लेके दोनोंकी कजली करे। फिर उस कजलीके समान भाग पोलादका चूरा लेवे। सबको घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यंत खरल करके गोला बनावे। उसको तामेके पात्रमें रखके उसके ऊपर अंडके पत्ते दो अथवा तीन ढकके चार घडी पर्यंत धूपमें रख देवे। जब वह गोला गरम हो जावे तब मिट्टीकी शरावेसे उस तामेके पात्रका मुख बंद करके धानकी राशि (अन्नकी खत्ती)-में तीन दिन पर्यंत गाड देवे। फिर चौथे दिन बाहर निकालके उस लोहकी भस्मको कपडछान करके इसको पानीमें डाले। यदि पानीमें तरने लगे तो उस भस्मको उत्तम हुई जाननी। इस प्रकार संपूर्ण लोहोंकी भस्म कपडेसे छानके पानीमें डालके देवे। यदि पानीमें तरने लगे तो उत्तम भस्म हुई जाननी ॥

अब दूसरे प्रकारसे संपूर्ण धातुओंकी भस्म करनेकी विधि।

एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि गालयेत् ॥
शिलागंधार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णं वा सर्वधातवः ॥
म्रियंते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ ५२ ॥

अर्थ-मनसिल और गंधक इन दोनोंको आकके दूधमें पीसके सुवर्ण आदि संपूर्ण धातुओंपर लेप करके आरने उपलोंकी बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातु-ओंकी भस्म होवे। इस विषयमें दृष्टांत है जैसे गुरुका वचन सत्य होता है इसी प्रकार इस प्रयोग करके संपूर्ण धातुओंकी निश्चय भस्म होवे ॥

सात उपधातु।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलांजनशिलालकाः ॥
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥ ५३ ॥

अर्थ-१ सुवर्णमाक्षिक (सोनामक्खी) २ लीला थोथा ३ अभ्रक ४ सुरमा ५ मन-सिल ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी ॥

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैंधवस्य च ॥ मातुलुंगद्रवैर्वाथ जंबीरोत्थद्रवैः पचेत् ॥ ५४ ॥ चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् ॥ भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥५५॥

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् ॥ तक्रेण वाज-
मूत्रेण म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सैंधानमक एक भाग दोनोंका चूर्ण कर दोनों-को लोहेकी कडाहीमें डालके चूल्हेपर चढायके नीचे अग्नि जलावे । फिर इसमें बिजोरेका रस अथवा जंभीरीका रस डालके लोहकी कलछीसे घोटे । जब कढाई लाल हो जावे तब नीचे उतार लेय । जब शीतल हो जावे तब सुवर्णमाक्षिककी भस्मको उसमेंसे निकाल लेवे । इस प्रकार शोधन करके उस सोनामक्खीको कुल-थीके काढेमें, तिलके तेलमें, छाछमें अथवा गोमूत्रमें खरल कर सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरनेउपलोंकी अग्निमें फूंक देय तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म होय ॥

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण ।

कर्कोटीमेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥
भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

अर्थ–रूपामाखीका चूर्ण कर ककोडा मेंढासिंगी और जंभीरी इन तीनोंके रसमें एक २ दिन खरल कर धूपमें धरनेसे रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) शुद्ध होय । इसका मारण सुवर्णमाक्षिकके समान जानना ॥

लीले थोथेका शोधन ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥ दशांशं टंकणं
दत्त्वा पचेन्मृदुपुटे ततः॥पुटं दध्नः पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये॥५९॥

अर्थ–बिल्ली और कबूतर (अथवा पिंडुकिया) इनकी विष्ठा लीले थोथेके समा-न तथा लीले थोथेका दशवां हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टीके शरावसंपुटमें भर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे । फिर बाहर निकालके दहीमें खरल कर इसी प्रकार अग्नि देवे । फिर सहतमें खरल करके अग्नि देय तो लीले थोथेकी शुद्धि होवे ॥

अभ्रकका शोधन और मारण ।

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रं तु त-
त्कृत्वा तंदुलीयाम्लयोर्द्रवैः॥६०॥ भावयेदष्टयामं तदेवं शुद्ध्य-
ति चाभ्रकम् ॥ कृत्वा धान्याभ्रकं तत्तु शोषयित्वाथ मर्दयेत्
॥ ६१ ॥ अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत् ॥ वेष्टयेद-
र्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ६२ ॥ पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं स-

सवारं प्रयत्नतः ॥ ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥६३॥ म्रियते नात्र संदेहः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ मृतं त्वभ्रं हरेन्मृत्युं जरापलितनाशनम् ॥ अनुपानैश्च संयुक्तं तत्तद्रोगहरं परम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रकको कोलेमें डालके धोंकनीसे अथवा फूंकनीसे फूंककर तपावे । जब लाल हो जावे तब निकालके दूधमें बुझाय दे । फिर उसके पृथक् २ पत्र करके चौलाईका रस और नींबूका रस दोनोंको एकत्र करके उसमें उन पत्रोंको आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध होय । फिर उस अभ्रकको उस रसमेंसे निकालके उसका धान्याभ्रक कर उसको आकके दूधमें एक प्रहर पर्यंत खरल कर गोल २ चक्रके आकार टिकियां बनावे । उनके चारों तरफ आकके पत्ते लपेटके मिट्टीके सरावसंपुटमें भर उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय लेवे । फिर उसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार आकके दूधमें १ दिन खरल करे और रात्रिमें पुट देवे ऐसे सात पुट देय । फिर बडकी जटाके काढेमें उस अभ्रकको एक २ दिन खरल करे और अग्नि देवे इस प्रकार तीन गजपुट देय । ऐसी अग्नि देय तो अभ्रककी उत्तम भस्म होय इसमें संशय नहीं है । इस अभ्रकसे संपूर्ण रोग दूर होवें तथा अकालमृत्युकाभी निवारण हो बुढापा दूर हो सपेद बालोंके काले बाल हों तथा इसको जैसे २ अनुपानके साथ जिस २ रोगमें देय तो यह वैसे २ गुणोंको करता है ॥

दूसरी विधि ।

शुद्धं धान्याभ्रकं मुस्तं शुंठीषड्भागयोजितम् ॥ मर्दयेत्कांजिकेनैव दिनं चित्रकजै रसैः ॥ ६५ ॥ ततो गजपुटं दद्यात्तस्मादुद्धृत्य मर्दयेत् ॥ त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः ॥ ॥६६॥ बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ॥ मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रित्रिवेलं व्रजेन्मृतिम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रथम विधिकी टिप्पणीमें धान्याभ्रक करनेकी विधि कह आये हैं

---

१ धान्याभ्रककी यह विधि है कि कतरी हुई अभ्रकको लेकर चतुर्थांश चांवलोंके धानको मिलायके उसको कंबलमें पोटली बांधके परातमें रक्खे । फिर उसपर जल डालता जाय और हाथोंसे उस पोटलीको मीडता जावे । इस प्रकार करनेसे उस कंबलमें जितना अभ्रक होगा वह बहकर उस परातके पानीमें आ जावेगा । जब जाने कि सब अभ्रक परातमें आ गया तब उस परातके पानीको नितारके पटक देवे और उस अभ्रकके चूरेको लेकर धूपमें सुखाय ले । इसे धान्याभ्रक कहते हैं ।

उस प्रकारसे शुद्ध किया हुआ धान्याभ्रक लेवे और उस धान्याभ्रकका छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमें मिलावे । फिर उसको कांजीमें १ दिन खरल करे । पश्चात् एक दिन चीतेकी रसमें खरल करके मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । जब शीतल हो जावे तब उसको बाहर निकालके त्रिफलेके काढेमें नित्य प्रति मर्दन करे इस प्रकार तीन दिन करे और तीनही गजपुटकी आंच देवे । पश्चात् खरेंटीका रस अथवा खरेंटीका काढा, गोमूत्र, मूसलीका काढा, तुलसीके पत्तोंका रस और जमींकंद इन पांचोंके रसमें अभ्रकको पृथक् खरल करावे । एक एकके तीन २ गजपुट देवे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देनेसे अभ्रककी परमोत्तम भस्म होय ॥

सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन ।

नीलांजनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ॥ दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत् ॥६८॥ एवं गैरिककासीसटंकणानि वराटिका ॥ तुवरीशंखकंकुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ६९ ॥

अर्थ–सुरमेका चूर्ण करके जंभीरीके रसमें खरल कर एक दिन धूपमें राखे तो सुरमा शुद्ध होय । फिर इसको रोगादिकोंपर देना चाहिये । इसी प्रकार गेरू हीरा-कसीस सुहागा कौडी फिटकरी शंख और मुरदासिंग इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये ॥

मनशिलका शोधन ।

पचेत् त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ॥
भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ॥ ७० ॥

अर्थ–मनशिलको दोला¹यंत्रमें डालके बकरीके मूत्रमें तीन दिन पचावे । फिर बाहर निकालके खरलमें डाल सात पुट बकरीके पित्तेकी देवे तो मनशिल शुद्ध होवे ॥

हरतालका शोधन ।

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं कांजिके क्षिपेत् ॥ दोलायंत्रेण यामैकं ततः कूष्मांडजैर्द्रवैः ॥ ७१ ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजलैः ॥ एवं यंत्रे चतुर्यामं पाच्यं शुद्ध्यति तालकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ–हरतालके छोटे २ बारीक टुकडे कर उनको कपडेकी पोटलीमें बांध दोला-

---

१ काढे आदि पतली वस्तुको किसी गगरे आदिमें भरके जो औषध शोधनी होवे उसीकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनाविधि करनेको दोलायंत्र कहते हैं ।

यंत्रद्वारा कांजीमें एक प्रहर, पेठेके रसमें एक प्रहर, तिलके तेलमें १ प्रहर, तथा त्रिफलाके काढेमें एक प्रहर पचावे। इस प्रकार दोलायंत्रमें हरतालको चार प्रहर पक्क करनेसे शुद्ध होती है॥

खपरियाका शोधन।

नृमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं क्षिपेत्॥
दोलायंत्रेण शुद्धिः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत्॥ ७३॥

अर्थ–खपरियाको दोलायंत्रमें डालके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन तथा गोमूत्रमें सात दिन इस प्रकार चौदह दिन भिगोने और पचानेसे खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधोंमें मिलावे॥

अभ्रक हरताल आदिसे सत्व निकालनेकी विधि।

लाक्षामीनपयश्छागं टंकणं मृगशृंगकम्॥ ७४॥ पिण्याकं सर्षपाः शिग्रुर्गुंजोर्णो गुडसैंधवाः॥ यवास्तिक्ता घृतं क्षौद्रं यथालाभं विचूर्णयेत्॥ ७५॥ एभिर्विमिश्रिताः सर्वे धातवो गाढवह्निना॥ मूषाध्माताः प्रजायंते मुक्तसत्वा न संशयः॥ ७६॥

अर्थ–१ लाख २ छोटी मछली ३ बकरीका दूध ४ सुहागा ५ हरिणका सींग ६ तिलोंकी खल ७ सरसों ८ सहजनेके बीज ९ घूंघची (चिरमिटी) १० मेंढाके बाल (ऊन) ११ गुड १२ सेंधानिमक १३ जौ १४ कुटकी १५ घी और १६ सहत ये सोलह वस्तु, हरताल आदि जिस वस्तुका सत्व निकालना होवे उस धातुका आठवां हिस्सा एक एक औषध लेकर सबका चूर्ण कर एकत्र गोलासे बनाय मूसमें रखके कोलोंकी आंचमें धोकनीसे खूब धमावे तो हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्व निकले। इस प्रकार जिस वस्तुका सत्व निकालना हो निकाल लेवे। धातुओंका द्रवीकरण आदि विधि रसराजसुंदर ग्रंथमें देखो॥

हीरेका शोधन और मारण।

कुलित्थकोद्रवक्काथैर्दोलायंत्रे विपाचयेत्॥ व्याघ्रीकंदगतं वज्रं त्रिदिनं शुद्धिमृच्छति॥ ७७॥ तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रे निषेचयेत्॥ पुनस्तप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्त्रिसप्तधा॥ ७८॥ मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा यावद्भवति गोलकम्॥ तद्गोले निहितं

---

१ संपूर्ण औषधोंकी अपेक्षा सुहागा सत्व निकालनेवाली धातुका चतुर्थांश लेवे ऐसा किसी आचार्यका मत है।

वज्रं तद्गोलं वह्निना धमेत् ॥ ७९ ॥ सेचयेदश्वमूत्रेण तद्गोले च क्षिपेत्पुनः ॥ रुद्ध्वा ध्मातं पुनः सेच्यमेवं कुर्याच्च सप्तधा ॥ एवं च म्रियते वज्रं चूर्णं सर्वत्र योजयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ–व्याघ्रीकंदको कूट पीस लुगदी कर उसमें हीरेको रखके उसकी वस्त्रसे पोटली बनाय दोलायंत्रमें डालके कुलथीके काढेमें तीन दिन तथा कोदों धान्यके काढेमें तीन दिन पचावे तो हीरा शुद्ध होय । फिर उस हीरेको अग्निमें तपाय २ के गधेके मूतमें बुझावे इस प्रकार इक्कीस वार बुझावे । फिर खटमलोंमें मिलायके हरतालको पीस उसका गोला करके उस गोलेके बीचमें हीरेको रखके उसको मूषमें रखके कोलोंकी तीव्र अग्निसे धमावे । जब अत्यंत गरम हो जावे तब उसको घोडेके मूत्रसे बुझाय देवे । फिर उस हीरेको निकाल ले और पूर्वोक्त विधिसे हरतालको खटमलोंके रुधिरमें घोट गोला बनाय उसमें हीरेको रखके उसी प्रकार कोलेमें धमावे । जब अत्यंत गरम हो जाय तब घोडेके मूत्रमें बुझाय देवे । इस प्रकार सात वार करे तो हीरेकी उत्तम भस्म होय । फिर इस भस्मको संपूर्ण रोगोंमें देवे । व्याघ्रीकंदको दक्षिणमें गुहेरीकंद कहते हैं और कोई कटेरीकी जडकोही व्याघ्रीकंद कहते हैं ॥

हीरेके भस्मकी दूसरी विधि ।

हिंगुसैंधवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत् ॥
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ॥ ८१ ॥

अर्थ–हींग सैंधानमक और कुलथी इन तीनोंका काढा कर उसमें हीरेको तपाय २ के इक्कीस वार बुझावे तो हीरेकी भस्म होवे ॥

तीसरी विधि ।

मंडूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
स भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् ॥
तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ–मेडकको कांसेके पात्रमें रखे जब वह डरकेमारे मूते तब उस मूत्रमें हीरेको तपाय २ के अनेकवार बुझावे तो हीरेकी भस्म होय ॥

वैक्रांतका शोधन और मारण ।

वैक्रांतं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा॥ हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ ८४ ॥ ततस्तु मेषदध्युक्तपंचांगे गोलके

क्षिपेत् ॥ पुटेन्मूषापुटे रुद्धा कुर्यादेवं च सप्तधा ॥ वैक्रांतं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ-वैक्रांत[1] (कासुला) माणि नीलमणि तथा पद्मराग (लाल) मणि इनका शोधन हीरेके समान करे । फिर उस वैक्रांतमणिको तपाय २ के घोडेके मूत्रमें १४ चौदहवार बुझावे । पश्चात् मेंढासिंगीके पंचांगको कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें इस वैक्रांतमणिको रखके सरावसंपुटमें धरके कपडमिट्टीकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे । इस प्रकार सात अग्नि देवे तो वैक्रांत मणिकी भस्म होय यह भस्म हीरेके भस्मकी अभावमें देनी चाहिये ॥

संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे जयंत्याः स्वरसेन च ॥ ८६ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ॥ कुमार्या तंदुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ॥ ८७ ॥ प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ॥ मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ॥ ८८ ॥ क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियंते नात्र संशयः ॥ उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत् ॥ वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ ८९ ॥

अर्थ-सूर्यकांतमणि मोती और मूंगा इनको दोलायंत्रमें डालके अरना अथवा जाइके रसमें एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवें । फिर इनका मारण इस प्रकार करे । घीगुवारका रस चौलाईका रस तथा स्त्रीका दूध इन तीनोंमें उन मणि मोती और मूंगा तथा और अन्य प्रकारके रत्नोंको तपाय २ एक एकमें सात वार बुझावे तो क्षणमात्रमें सबकी भस्म होवे इस विषयमें संदेह नहीं है । तथा इनके मारणकी दूसरी विधि कहते हैं । सुवर्णमाक्षिकका जिस प्रकार मारण कहा है उसी प्रकार मोतियोंका और मूंगेका मारण करे । हीरेके शोधन और मारणके सदृश संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण करना चाहिये ॥

शिलाजीतका शोधन ।

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृंगद्रावैश्च मर्दयेत् ॥
आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥

---

१ उत्पन्न होते समय विकृतताको प्राप्त होनेसे उसी हीरेको वैक्रांत कहते हैं ।

अर्थ–ग्रीष्म ऋतुमें गरमी अधिक होती है इसीसे पर्वतमें जो बडी २ शिला होती हैं गरमीसे अत्यंत तपती हैं तब उनसे रस गलकर जम जाता है उसको शिलाजीत कहते हैं उस शिलाजीतको लायके गौके दूधमें, त्रिफलेके काढेमें तथा भांगरेके रसमें पृथक् २ एक एक दिन खरल कर धूपमें धरके सुखाय लेवे तो शिलाजीत शुद्ध होवे ॥

तथा दूसरा प्रकार ।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखंडप्रकल्पिताम् ॥ निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः॥ ९२ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ ९३ ॥ उपरिस्थं घनं च स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके ॥ धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ९४॥ एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु ॥ भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिंगोपमं भवेत् ॥ ९५ ॥ निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ अधः स्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ॥ विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत् ॥ ९६ ॥

अर्थ–जिस पाषाणसे शिलाजीत उत्पन्न होता है उस पाषाणको उत्तम देखके लेवे उस पाषाणके बारीक २ टुकडे करके खलबलाते हुए गरम पानीमें एक प्रहर पर्यंत भिगोवे । पश्चात् उन टुकडोंको उसी पानीमें बारीक पीसके कपडेमें छान उस पानीको मिट्टीकी नांदमें डालके धूपमें रख देवे । जब उस पानीपर मलाई आय जावे उसको उतारके दूसरे पात्रमें डालता जाय । इस प्रकार पृथक् २ पात्रमेंसे वारंवार सब मलाई उतारके दूसरे पात्रमें इकट्ठी करे । फिर उस दूसरे पात्रमेंभी गरम जल डालके उस शिलाजीतकी मलाईको मिलायके धूपमें धर देवे । जब उसपै मलाई पडे तब उतार २ के तीसरी नांदमें डाले और उसमेंभी गरम जल डालके धूपमें धर देवे । जब उसमें मलाई आवे तब फिर पहली शुद्ध की हुई नांदमें मलाईको इकट्ठी करे । इस क्रमसे बराबर एकमेंसे निकाल कर दूसरेमें एकत्र करे और पहिली नांदमें जो नीचे गाद बैठ जावे उसको जलमें पीसके छान लेवे और इसी क्रमसे उसको धूपमें रखके मलाई उतार लिया करे । इस प्रकार दो महिने पर्यंत करे तो शिलाजीतकी उत्तम शुद्धि होवे । इसकी परीक्षा इस प्रकार करे कि इसमेंसे थोडासा टुकडा तोडके अग्निमें डाले तो उसका पिंडीके समान धूमरहित आकार होता है उसको शुद्ध शिलाजीत जानना इसको सर्व कार्यमें देवे ॥

मंडूर बनानेकी विधि ।

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ॥ सेचयेत्तप्ततप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः ॥९७॥ चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥ आलोड्य भर्जयेद्वह्नौ मंडूरं जायते वरम् ॥ ९८ ॥

अर्थ—बहेडेकी लकडियोंके कौले करके उसमें पुराने लोहकी कीटी डालके धोंकै जब लाल हो जावे तब उस कीटीको गोमूत्रमें बुझाय देवे । इस प्रकार सात वार तपाय २ के गोमूत्रमें बुझावे । फिर उस कीटीका बारीक चूर्ण करके उसके दूना त्रिफलेका काढा हांडीमें भर उसमें उस कीटीके चूर्णको डालके अच्छी रीतिसे उस हांडीके मुखको ढक मुखपर कपडमिट्टी कर देवे । पश्चात् उसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देय । जब शीतल हो जावे तब उस हांडीको बाहर निकाल उसमें उस कीटका जो मंडूर बनके तैयार होवे उसको निकाल लेय तो परमोत्तम बने । इसे सब योगमें मिलावे ॥

क्षार बनानेकी विधि ।

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि शुष्काण्यग्नौ प्रदीपयेत् ॥ ९९ ॥ नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे चतुर्गुणे ॥ विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातरच्छजलं नयेत् ॥ १०० ॥ तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति ॥ ततः पात्रात्समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः ॥ ॥१०१॥ चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात्पेयः स्यात्क्वाथवत्स्थितः ॥ इति क्षारद्वयं धीमान्युक्तकार्येषु योजयेत् ॥ १०२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखंडे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिन वृक्षोंसे खार निकलता है उन वृक्षोंकी लकडी लाकर सुखायके जलाय लेवे । जब राख हो तब उस राखको मिट्टीके गगरेमें भर राखसे चौगुना जल डालके उस राखको उस पानीमें मिलायके रख देवे । इस प्रकार १ रात्रिभर धरी रहने दे प्रातःकाल उस घडेमेंसे ऊपर ऊपरका नितरा हुआ जल लोहेकी कढाईमें निकाल लेवे। फिर उस कढाईको अग्नि पर चढायके नीचे अग्नि जलायके उस पानीको जलाय देवे । इस प्रकार करनेसे पानी जल जावेगा उस कढाईमें चारों तरफ सपेद २ खार चूर्णके समान लगा हुआ रह जावेगा उसको निकाल लेवे । इस क्षारको प्रतिसार्य कहते हैं । इसको श्वासादि रोगोंपर देवे तथा काढेके समान पतला जो क्षार रहता है

१ ओंगा इमली केला पलास थूहर चीता कटेरी मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने ।

उसको पेय कहते हैं। उस क्षारको गुल्मादिक रोगोंपर देवे। इस प्रकार पतला और चूर्णके समान ऐसे दो प्रकारका क्षार जानना ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखंडे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः।

पारदके नाम तथा सूर्यादि नवग्रहोंके नाम करके ताम्रादि नवधातुओंकी संज्ञा।

पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः ॥ सुज्ञेन साधितः कुर्यात्संसिद्धिं देहलोहयोः ॥ १ ॥ रसेंद्रः पारदः सूतो हरजः सूतको रसः ॥ मुकुंदश्चेति नामानि ज्ञेयानि रसकर्मसु ॥ २ ॥ ताम्रतारारनागाश्च हेमवंगौ च तीक्ष्णकम् ॥ कांस्यकं कांतलोहं च धातवो नव ये स्मृताः ॥ सूर्यादीनां ग्रहाणां ते कथिता नामभिः क्रमात् ॥ ३ ॥

अर्थ-पारा संपूर्ण रोगोंका जीतनेवाला और देहको पुष्ट करनेवाला है वह चतुर मनुष्य करके बनाया हुआ देहकी और लोहकी तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खानेसे देहको अजर अमर करे और लोह तांबा रांगा आदिमें डालनेसे सुवर्ण करता है। पारदके नाम। १ रसेन्द्र २ पारद ३ सूत ४ हरज ५ सूतक ६ रस और ७ मुकुंद ये सात नाम रसकर्ममें जहां २ आवे तहां पारदके जानने। १ ताम्र २ रूपा ३ जस्त ४ शीशा ५ सुवर्ण ६ रांगा ७ पोलाद ८ कांसा और ९ कांतलोह ये नौ धातु क्रमसे सूर्यादिक नवग्रहोंके नाम करके जानने। जैसे-जितने सूर्यके नाम हैं वे सब तामेके जानने, जितने चंद्रमाके नाम हैं वे सब रूपेके जानने, जितने मंगलके नाम हैं वे सब जस्तके अथवा पीतलके जानने। इसी क्रमसे नव ग्रहोंके नाम हैं वे नौ धातुओंके जानना ॥

पारेका शोधन।

राजीरसोनमूषायां रसं क्षिप्त्वा विबंधयेत् ॥ ४ ॥ वस्त्रेण दोलिकायंत्रे स्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ दिनैकं मर्दयेत्सूतं कुमारीसंभवैर्द्रवैः ॥ ५ ॥ तथा चित्रकजैः क्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम् ॥ का-

---

१ 'पारदः सर्वरोगाणां नेता' इति पाठांतरम्। २ 'सुदिने साधितः' इति पाठांतरम्। ३ 'बुधैस्तस्येति नामानि' इति पाठांतरम्। ४ सूर्यचन्द्रमसौ भौमः शशिजो जीवभार्गवौ। सूर्यसूनुः सैंहिकेयः केतुश्चेति नवग्रहाः ॥

कमाचीरसैस्तद्वद्दिनमेकं च मर्दयेत् ॥ ६ ॥ त्रिफलायास्ततः क्वाथे रसो मर्द्यः प्रयत्नतः ॥ ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात्सूतं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥ ७ ॥ ततः क्षिप्त्वा रसं खल्वे रसादर्धं च सैंधवम् ॥ मर्दयेन्निंबुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥८॥ ततो राजी रसोनश्च मुख्यश्च नवसादरः ॥ एतै रससमैस्तद्वत्सूतो मर्द्यस्तुषांबुना ॥९॥ ततः संशोष्य चक्राभं कृत्वा क्षिप्त्वा च हिंगुना ॥ द्विस्थालीसंपुटे धृत्वा पूरयेल्लवणेन च ॥ १० ॥ अथ स्थाल्यां ततो मुद्रां दद्याद्दृढतरां बुधः ॥ विशोष्याग्निं विधायाधो निषिंचेदंबु चोपरि ॥ ११ ॥ ततस्तु कुर्यात्तीव्राग्निं तदधः प्रहरत्रयम् ॥ एवं निपातयेदूर्ध्वं रसो दोषविवर्जितः ॥ अथार्धपिठरीमध्ये लग्नो ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ १२ ॥

अर्थ–राई और लहसन दोनोंको एकत्र पीसके उसकी मूस बनावे । उसमें पारा डालके उसकी कपडेमें पोटली बांध दोलायंत्र करके कांजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारके रसमें एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और कांगनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक एक दिन खरल करे । फिर कांजीमें इस पारेको धोयके उस औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमें डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलायके दोनोंको नींबूके रसमें १ दिन खरल करे। फिह राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमें पारेको मिलाय धानके तुषोंके काढेमें सबको खरल करे । जब शुष्क हो जावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमें नमक डालके घडेके मुखपर घडा उलटा जोडके कपडमिट्टी कर दृढ करके धूपमें सुखाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पुचारा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे। अथवा उसपर शीतल जल भर देवे। फिर उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरले लगे हुए पारेको निकाल लेवे। यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ॥

गंधकका शोधन।

लोहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥ तप्ते घृते तत्स-

मानं क्षिपेद्गंधकजं रजः ॥१३॥ विद्रुतं गंधकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ एवं गंधकशुद्धिः स्यात्सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ १४ ॥

अर्थ–लोहेके कडछुलेमें घी डालके मंदाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलाखार गंधकका बारीक चूर्ण करके उस घीमें डाल देवे । फिर गंधक घीमें तपकर जब रसरूप हो जावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बांधके उसमें उस गंधकको उडेल देवे । जब शीतल हो जावे तब उस गंधकको निकाल ले । यह शुद्ध गंधक सर्व कार्योंमें लावे ॥

हींगलूसे पारा काढनेकी विधि ।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ॥ १५ ॥
पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वं च पातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥
ततः शुद्धरसं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–नींबूके रसमें अथवा नीमके पत्तोंके रसमें हींगलूको १ प्रहर खरल कर डमरू यंत्रमें भर नीचे अग्नि जलावे उसमेंसे पारा उडके ऊपरकी हांडीमें जायके जम जावे उसे शुद्ध जानना इसको सर्व कार्यमें लेय ॥

हींगलूका शोधन ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ॥
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ–हींगलूको खरलमें डालके भेडके दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट, ऐसे चौदह पुट देय तो हींगलू निश्चय शुद्ध होवे ॥

शुद्ध हुए पारेके मुख करनेकी विधि ।

कालकूटो वत्सनाभः शृंगकश्च प्रदीपकः ॥ हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥ १८ ॥ सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥१९॥ गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षः प्रजायते ॥ मुखं च जायते तस्य धातूंश्च ग्रसते क्षणात् ॥ २० ॥

अर्थ–१ कालकूट २ वत्सनाभ (बचछेनाग) ३ शृंगक (सिंगिया) ४ प्रतीपक ५ हलाहल ६ ब्रह्मपुत्र ७ हारिद्र ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं । १ आक २ थूहर ३ धतूरा ४ कलयारी ५ कनेर ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात

उपविष हैं ऐसे सब मिलके १६ हुए इनमेंसे एक एक विषमें पारेको सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमें इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोय लेवे पारेके पक्ष (पर) कट जावें अर्थात् उडे नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खाय जावे । इस वास्ते इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रंथान्तरमें जो लिखे हैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखता है ॥

१ कालकूट विष सपेद वर्णका होता है तथा उसपर लाल २ बिंदु बहुत होते हैं कीचडके समान नम्र होता है । यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मलिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ है । यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होता है उसका गोंद है इसकी उत्पत्ति अहिछत्र मलय कोंकण और शृंगवेर इन पर्वतोंपर अत्यंत होती है ।

२ वत्सनाभ विषकी निर्गुंडीके पत्तोंके समान पत्र होते हैं और आकृति (स्वरूप)-में बचनागके समान होता है । इसके आसपास वृक्ष वेल घास ये बढते नहीं हैं । यह विष द्रोणाचल पर्वतपर अत्यंत उत्पन्न होता है ।

३ शृंगकविष गौके सींगके समान होकर उसके दो भाग होते हैं । इस विषको गौके सींगसे बांधे तो गौका दूध रुधिरके समान होता है । इसके पत्ते अदरखके पत्तेके समान होते हैं । यह नदीके किनारे जिस जगहपर कीचड होती है उस जगह बहुधा प्रगट होता है ।

४ प्रदीपक विष चकचकाता हुआ अंगारेके समान लाल रंगकी कांतिवाला होता है और इसके पत्ते खजूरके समान होते हैं । इसके सूंघनेसे प्राणीके देहमें दाह प्रगट होकर तत्काल मर जावे । यह समुद्रके किनारे बहुत होता है ।

५ हलाहल विष ताडके पत्तेके समान होता है । इसके पत्ते नीले रंगके होते हैं और फल इसके गौके स्तनके समान लंबे और सपेद होते हैं । तथा इसका कंदभी गौके थनके समान होता है । इसके आस पास वृक्षादिक नहीं होते । इसकी वास सूंघतेही मनुष्य तत्काल मर जाता है ।

६ ब्रह्मपुत्र विष ब्रह्मपुत्र नामक नदीके किनारे बहुत होता है । इसके पत्ते पला-सके समान होते हैं और फलभी पलास (ढाक) के समान होते हैं कंद इसका बडा तथा पराक्रम बडा होता है । यह विष रोगहरणमें और रसायन क्रियामें अत्युपयोगी है ।

७ हारिद्र विष हलदीके खेतोंमें उत्पन्न होता है । उसके पत्ते हलदीके समान होते हैं और गांठभी हलदीके समान होती है । यह विष रसायन विषयमें समर्थ है ।

८ सक्तुक विष जौके समान आकृतिमें होता है और भीतरसे सपेद होता है । यह लोकपर्वतमें बहुत उत्पन्न होता है ।

९ सौराष्ट्रिक विष सोरठ (गुजराथ) देशमें उत्पन्न होता है । इसका कंद कछु-

एके मस्तक समान मोटा होता है। तथा कृष्णागरुके समान कालावर्ण होता है और इसके पत्ते पलासके समान होते हैं इसका पराक्रमभी बडा उत्कट है।

मुख और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार।

अथवा त्रिकटुक्षारौ राजी लवणपंचकम् ॥ २१॥ रसोनो नवसाराश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः ॥ समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण द्रवेण वा ॥ २२ ॥ निंबुतोयैः कांजिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत् ॥ अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुचरं मुखम् ॥ २३ ॥ अथवा बिंदुलीकीटै रसो मर्द्यस्त्रिवासरम् ॥ लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम् ॥ २४ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल ४ जवाखार ५ सज्जीखार ६ सैंधानमक ७ संचरनमक ८ बिडखार ९ समुद्रनमक १० रेहका खार ११ लहसन १२ नौसादर और १३ सहजनेकी छाल ये तेरह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारेके समान भाग ले सबको उसमें डालके जंभीरी अथवा नींबूके रससे अथवा कांजीमें तीन दिनरात्र खरल करे तौ स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारेके मुख होय। अथवा वीरबहूटी जिसको इन्द्रवधूभी कहते हैं इस नामका कीडा चातुर्मास्यमें होता है उसको लायके उसके साथ पारेको तीन दिन खरल करे। फिर नींबूका रस और सैंधानमक दोनोंको एकत्र करके पारा डाल तीनों खरल करे तो स्वर्णादि धातुओंको खानेवाला पारेके मुख होवे ॥

कच्छपयंत्रकरके गंधकजारण।

मृत्कुंडे निक्षिपेन्नीरं तन्मध्ये च शरावकम् ॥ महत्कुंडपिधानाभं मध्ये मेखलया युतम् ॥ २५ ॥ लिप्त्वा च मेखलामध्यं चूर्णेनात्र रसं क्षिपेत् ॥ रसस्योपरि गंधस्य रजो दद्यात्समांशकम् ॥ २६ ॥ दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत् ॥ तत्रोपरि पुटं दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ २७॥ एवं पुनः पुनर्गंधं षड्गुणं जारयेद्बुधः॥ गंधे जीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मकृत् ॥२८॥

अर्थ-मिट्टीका एक पात्र कूंडेके समान ऊंचे मुखका लेकर उसमें जल भरके उसपर ढकनेकी ऐसी कूंडी लेवे जो उस पात्रके मुखपर आय जावे। उसको लेकर पानीसे न लगे इस प्रकार अलग रखे। फिर उस कूंडीमें मिट्टीका गोल एक अंगुल ऊंचा गढेला करके उसमें चूना बिछायके पारा भर देवे। फिर पारेके समान भाग

गंधकका चूर्ण उस पारेपर डाले । फिर मिट्टीकी दूसरी कूंडी उलटी ढकके उसकी संधियोंको नमक मिली हुई राखसे बंदकर मुद्रा दे देवे । उसके ऊपर गौके गोबरके ४ उपले रखके अग्नि देवे । इस प्रकार उस पारेपर छः बार गंधक डाल २ के अग्नि देकर गंधक जारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्निके समान होकर सर्व कार्यकर्त्ता होवे ॥

पारा मारणकी विधि ।

धूमसारं रसं तोरीं गंधकं नवसादरम् ॥ यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम् ॥ २९ ॥ काचकुप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रया ॥ विलिप्य परितो वक्त्रे मुद्रां दत्त्वा च शोषयेत् ॥ ३० ॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् ॥ पिठरीवालुकापूरैर्भृत्वा चाकुपिकागलम् ॥ ३१ ॥ निवेश्य चुल्ल्यां तदधः कुर्याद्वह्निं शनैः शनैः ॥ तस्मादप्यधिकं किंचित्पावकं ज्वालयेत् क्रमात् ॥ ३२ ॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते सूतकोत्तमः ॥ स्फोटयेत् स्वांगशीतं च ऊर्ध्वगं गंधकं त्यजेत् ॥ अधस्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ–१ घरका धूंआ २ पारा ३ फिटकरी ४ गंधक ५ नौसादर ये पांच औषध समान भाग लेकर नींबूके रसमें १ प्रहर खरल कर कांचकी शीशीमें भरके उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले । फिर मुखपर डाट देकर बंद कर देवे । फिर एक मिट्टीका बडा पात्र लेके उसकी पेंदिमें छेद करके उसके बीचमें एक ठीकरी रखके उसके ऊपर कांचकी शीशीको रखके ऊपरसे शीशीको गले पर्यंत वालू भर देवे । शीशीकी नलीको खाली राखे । इस यंत्रको वालुकायंत्र कहते हैं । फिर उस पात्रको चूल्हेपर रखके नीचे प्रथम हलकी फिर मध्य और अंतमें तेज इस प्रकार बारह प्रहर पर्यंत अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब शीशीको बाहर निकाल युक्तिसे फोडके उसके मुखपर जो गंधक लगी हुई है उसको दूर करके नीचे पारेकी भस्म जो रहती है उसको निकालके कार्यमें लावे ॥

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार ।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तत्संपुटे न्यसेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडंगमिरिमेदकः ॥ ३५ ॥ एतच्चूर्णमधोर्ध्वं च दत्त्वा मुद्रा प्रदीयताम् ॥

तं गोलं संधयेत्सम्यङ् मृन्मूषासंपुटे सुधीः ॥ ३६ ॥ मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत् ॥ एवमेकपुटेनैव जायते भस्म सूतकम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-ओंगा (चिरचिटा) के बीजोंको बारीक पीसके दो मूष बनावे। फिर द्रोणपुष्पी (गोमा) के फूल वायविडंग और खैरकी छाल इन औषधोंका चूर्ण करके आधा चूर्ण एक मूषमें भरे उसके ऊपर पारा रक्खे। उस पारेके ऊपर कठूमरका दूध भरके ऊपर आधे चूर्णको रख देवे। फिर दूसरी मूषको उस पहली मूषपर रखके संधिको लेप कर अच्छी तरह बंद कर देवे। फिर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपरभी कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें फूंक देवे तो एकही पुट करके पारदकी भस्म होवे ॥

तीसरा प्रकार।

काकोदुंबरिकादुग्धे रसं किंचिद्विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धघृष्टहिंगोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥ धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥ पचेन्मृदुपुटेनैव सूतको याति भस्मताम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-कठूमरके दूधमें पारेको थोडी देर खरल करे। फिर कठूमरके दूधमें हींगको खरल करके दो मूष बनावे। एक मूषमें पारेको रखके दूसरी मूषसे उसका मुख बंद करके अच्छे प्रकार संधियोंको बंद कर देवे। फिर ऊपरसे पोतकर गोला बनाय ले, इस गोलेको मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकीसी अग्निमें रखके फूंक देवे तो पारेकी भस्म होय ॥

चौथा प्रकार।

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकंदगर्भितः ॥
मृन्मूषासंपुटे पक्त्वा सूतो यात्येव भस्मताम् ॥ ४० ॥

अर्थ-नागरवेलके पानोंके रसमें पारेको खरल कर ककोडेके कंदमें पारेको रखके उसकेही टुकडेसे बंद करके संधि मिलायके कपडमिट्टी करे फिर उसको धूपमें सुखाय मिट्टीके सराव संपुटमें रख उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंमें रखके हलकी अग्नि देवे तो पारेकी अवश्य भस्म होय। इसको कार्यमें लावे ॥

ज्वरांकुशरस।

खंडितं मृगशृंगं च ज्वालामुख्या रसैः समम् ॥ ४१ ॥ रुद्ध्वा

भांडे पचेच्चुल्ल्यां यामयुग्मं ततो नयेत् ॥ अष्टांशं त्रिकटुं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत् ॥ ४२ ॥ नागवल्ल्या रसैः सार्धं वातपित्तज्वरापहम् ॥ अयं ज्वरांकुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ-हरिणके सींगके बारीक टुकडे करके पात्रमें रख उसमें ज्वालामुखीका रस डालके उसके मुखपर सराव ढकके कपडमिट्टी करे । उसको चूल्हेपर रखके नीचे दो प्रहर पर्यंत अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब उन टुकडोंकी भस्मको बाहर निकालके उस भस्मका आठवां भाग सोंठ मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्ममें मिलाय दे । फिर इसमेंसे ४ मासेके अनुमान पानके रसमें मिलायके पीवे इसको ज्वरांकुश कहते हैं । यह संपूर्ण ज्वरोंको दूर करे ॥

ज्वरारिरस ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगंधके ॥ सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्या रसैर्दिनम् ॥४४॥ मर्दयेल्लेपयेत्तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक् ॥ अंगुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम् ॥ ४५ ॥ पचेत्तं वालुकायंत्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे ॥ यदा स्फुटंति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥४६॥ ततो नयेत् स्वांगशीतं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ रसं ज्वरारिनामानं विचूर्ण्य मरिचैः समम् ॥४७॥ माषैकं पर्णखंडेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-१ पारा २ खपरिया ३ हरताल ४ लीलाथोथा ५ सुहागा और ६ गंधक इन छः औषधोंको शोधकर समान भाग लेवे । सबको खरलमें डाल करेलेके पत्तोंके रससे १ दिन खरल कर फिर तांबेकी डिब्बीमें अर्द्ध अंगुल लेप करके उसपर ढकना देकर उसे वालुकायंत्रमें डालके चूल्हेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्रके मुखपर धान रख देवे। जब वह भुनके खील हो जावे तब जाने कि औषध सिद्ध हो गई। फिर अग्निको बंद करे । जब शीतल हो जावे तब बाहर काढके उस डिब्बीसे औषधको निकाल लेवे । इसको ज्वरारिरस कहते हैं । फिर इसके समान काली मिरच मिलाय बारीक पीस लेवे । इसमेंसे १ मासे पानमें रखके खाय तो यह ज्वरारिरस एकाहिक[1] द्व्याहिक[2] त्र्याहिक[3] और चातुर्थिक[4] विषमज्वर दारुणभी दूर होवें ॥

---

१ दिनरात्रिमें एक वार आवे । २ दिनरात्रिमें दो बार आवे । ३ तीसरे दिन आवे जिसको तिजारी कहते हैं । ४ चतुर्थ दिन आवे ।

शीतज्वरारिरस।

तालकं तुत्थकं ताम्रं रसं गंधं मनःशिलाम् ॥ कर्षं कर्षं प्रयोक्तव्यं मर्दयेत्त्रिफलांबुभिः ॥ ४९ ॥ गोलं न्यसेत्संपुटके पुटं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ततो नीत्वार्कदुग्धेन वज्रीदुग्धेन सप्तधा ॥५०॥ क्राथेन दंत्या श्यामाया भावयेत्सप्तधा पुनः ॥ माषमात्रं रसं दिव्यं पंचाशन्मरिचैर्युतम् ॥ ५१ ॥ गुडगद्याणकं चैव तुलसीदलयुग्मकम् ॥ भक्षयेत्त्रिदिनं शक्त्या शीतारिर्दुर्लभः परः ॥ ५२ ॥ पथ्यं दुग्धौदनं देयं विषमं शीतपूर्वकम् ॥ दाहपूर्वं हरत्याशु तृतीयकचतुर्थकौ ॥ द्वयाहिकं संततं चैव वैवर्ण्यं च नियच्छति ॥ ५३ ॥

अर्थ-१ हरताल २ लीलाथोथा ३ ताम्रभस्म ४ पारा ५ गंधक ६ मैनसिल ये छः औषधि एक एक कर्ष लेय। सबको त्रिफलेके काढेमें खरल कर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले। फिर इसको आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल हो जाय तब बाहर निकाल लेवे। फिर खरलमें डालके आकके दूधकी सात पुट देवे तथा थूहरके दूधकी सात पुट देय एवं दंतीके काढेकी सात पुट और निसोथके काढेकी सात पुट देकर मासे मासेकी गोली बनावे। पचास मिरच, गुड छः मासे और तुलसीके पत्ते दो इन सबको एकत्र करके उसमें एक एक गोली बलाबल विचारके तीन दिन सेवन करे और पथ्यमें दूध भात खानेको देय तो शीतपूर्वक विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रमें दो वार आनेवाला द्वयाहिक ज्वर तथा देहमें एकसा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हों॥

ज्वरघ्नी गुटिका।

भागैकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलायाः पिप्पली शिवा ॥ आकारकरभो गंधः कटुतैलेन शोधितः ॥ ५४ ॥ फलानि चेंद्रवारुण्या चतुर्भागमिता अमी ॥ एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे ॥ ॥ ५५ ॥ माषोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात्सर्वज्वरे बुधः ॥ छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता ॥ ५६ ॥

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग और १ एलुआ २ पीपल ३ जंगी हरड

४ अकरकरा ५ सरसोंके तेलमें सोधी हुई गंधक और ६ इन्द्रायनके फल ये छः औषध चार २ भाग लेवे। सबका चूर्ण करके पारे सुद्धा खरलमें डालके इन्द्रायनके फलके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे। एक गोली गिलोयके रससे सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हों ॥

लोकनाथरस क्षयादि रोगोंपर।

शुद्धो बुभुक्षितः सूतो भागद्वयमितो भवेत् ॥ ५७ ॥ तथा गंधस्य भागौ द्वौ कुर्यात्कज्जलिकां तयोः ॥ सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषु विनिक्षिपेत् ॥५८॥ भागैकं टंकणं दत्त्वा गोक्षीरेण विमर्दयेत् ॥ तथा शंखस्य खंडानां भागानष्टौ प्रकल्पयेत् ॥५९॥ क्षिपेत्सर्वं पुटस्यांतश्चूर्णं लिप्तशरावयोः ॥ गर्तै हस्तोन्मिते धृत्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ ६० ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य पिष्ट्वा तत्सर्वमेकतः ॥ षड्गुंजासंमितं चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ६१ ॥ घृतेन वातजे दद्यान्नवनीतेन पित्तजे ॥ क्षौद्रेण श्लेष्मजे दद्याद्तीसारे क्षये तथा ॥ ६२ ॥ अरुचौ ग्रहणीरोगे कार्श्ये मंदानले तथा ॥ कासे श्वासेषु गुल्मेषु लोकनाथो रसो हितः ॥६३॥ तस्योपरि घृतान्नं च भुंजीत कवलत्रयम् ॥ मंचे क्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके ॥ ६४ ॥ अनम्लमन्नं सघृतं भुंजीत मधुरं दधि ॥ प्रायेण जांगलं मांसं प्रदेयं घृतपाचितम् ॥ ६५ ॥ सुदुग्धभक्तं दद्याच्च जातेऽग्नौ सांध्यभोजने ॥ सघृतान्मुद्गवटकान् व्यंजनेष्ववचारयेत् ॥ ६६ ॥ तिलामलककल्केन स्नापयेत्सर्पिषाथ वा ॥ अभ्यंजयेत्सर्पिषा च स्नानं कोष्णोदकेन च ॥६७॥ कचित्तैलं न गृह्णीयान्न बिल्वं कारवेल्लकम् ॥ वार्ताकं शफरीं चिंचां त्यजेद्व्यायाममैथुनम् ॥ ६८ ॥ मद्यं संधानकं हिंगु शुंठीं माषान् मसूरकान् ॥ कूष्मांडं राजिकां कोपं कांजिकं चैव वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ त्यजेदयुक्तनिद्रां च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥

१ पारे और गंधक इनको प्रथम खरल कर पश्चात् उसमें चूर्ण मिलाय गोली बनाय ले।

ककारादियुतं सर्वं त्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥ पथ्योयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवासरे ॥ पूर्वा तिथौ शुक्लपक्षे जाते चंद्रबले तथा ॥७१॥ पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेत्ततः ॥ दानं दद्याद्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ ७२ ॥ रसात्संजायते तापस्तदा शर्करया युतम् ॥ सत्त्वं गुडूच्या गृह्णीयाद्वंशरोचनया युतम् ॥ ७३ ॥ खर्जूरं दाडिमं द्राक्षामिक्षुखंडानि चारयेत् ॥ अरुचौ निस्तुषं धान्यं घृतभृष्टं सशर्करम् ॥ ७४ ॥ दद्यात्तथा ज्वरे धान्यं गुडूचीक्वाथमाहरेत् ॥ उशीरवासकक्काथं दद्यात्समधुशर्करम् ॥७५॥ रक्तपित्ते कफे श्वासे कासे च स्वरसंक्षये ॥ अग्निभृष्टजयाचूर्णं मधुना निशि दीयते ॥७६॥ निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां मंदपावके ॥ सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैः पिबेत् ॥ ७७ ॥ शूलेऽजीर्णे तथा कृष्णा मधुयुक्ता ज्वरे हिता ॥ प्लीहोदरे वातरक्ते छर्द्यां चैव गुदांकुरे ॥ ७८ ॥ नासिकादिषु रक्तेषु रसं दाडिमपुष्पजम् ॥ दूर्वायाः स्वरसं नस्ये प्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥ कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्म सशर्करम् ॥ मधुना लेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्य शांतये ॥ ८० ॥ विधिरेष प्रयोज्यस्तु सर्वस्मिन् पोटलीरसे ॥ मृगांके हेमगर्भे च मौक्तिकाख्ये रसेषु च ॥ इत्ययं लोकनाथाख्यो रसः सर्वरुजो जयेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ–शुद्ध और बुभुक्षित[1] ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गंधक दो भाग इन दोनोंकी एक जगह कजली करके पारेसे चौगुनी कौडीनमें उस कजलीको भरे। फिर सुहागा एक भाग लेकर गौके दूधमें खरल कर उससे कौडियोंके मुखको मूंद देवे। पश्चात् शंखके टुकडे आठ भाग लेकर मिट्टीके दो शराव लेकर एकमें चूना पोतकर उसमें शंखके टुकडे आधे धरे और उनके ऊपर इन कौडियोंको रक्खे। फिर बाकी रहे हुए आधे शंखके टुकडोंको रख देवे। फिर इसके ऊपर दूसरा

१ गंधकादिकोंका जारण करके सुवर्णादि धातु ग्रसनेके विषयमें योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते हैं।

शराव ढकके कपडमिट्टी कर एक हाथ गड्ढा खोदके आरने उपलोंके गजपुटमें रखके अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल उस शरावमेंसे औषधोंको निकाल लेवे । फिर इसको खरल करके धर रक्खे । इसे लोकनाथरस कहते हैं । यह लोकनाथ रस छः रत्ती उनतीस काली मिरचके चूर्णमें मिलायके जिसके वादीका रोग होय उसको घीके साथ देवे । पित्तरोग होय तो मक्खनके साथ देवे । कफरोग होय तो सहतसे देवे और अतिसार क्षय अरुचि संग्रहणी कृशता मंदाग्नि खांसी श्वास और गोलेका रोग ये सब दूर होनेमें यह लोकनाथ रस परम प्रशस्त है। इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर घी और भातके तीन ग्रास देने चाहिये । फिर शय्यापर विना बिछैयाके एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदार्थोंको त्यागके घृतके साथ भोजन करे । उत्तम मीठा दही भोजनमें सेवन करे जंगली जीवोंमें हरिणादिकोंका मांस घीमें तलके खाय । संध्याके समय भूक लगे तो दूधभात खाय तथा मूंगके बडे घीमें तलके खाय । तिल और आमलोंका कल्क कर देहमें मालिश करे अथवा घीकी मालिश करके स्नान करे । स्नानके सिवाय अंगमें लगाना होय तो घीकाही मालिश करे । स्नानका जल कुछ २ गरम होना चाहिये । बेलफल, करेले, बैंगन, छोटी मछली, इमली, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान (सधाने), हींग, सोंठ, उडद, मसूर, पेठा, राई, कांजी और कोप इनको लोकनाथ रसका सेवन करनेवाला त्याग देवे । दिनमें न सोवे । कांसेके पात्रमें भोजन न करे । ककार जिनके आदिमें है ऐसे शाक (जैसे करेला ककडी आदि) को तथा फलोंको त्याग देय । इस प्रकार लोकनाथरसका पथ्य कहा है । उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि पंचमी दशमी और पूर्णिमा शुक्लपक्ष तथा उत्तम चंद्रमाका बल विचारके लोकनाथ रसका पूजन कर फिर कुमारी कन्याओंको भोजन कराय तथा यथाशक्ति सुवर्णादिका दान देकर इस रसका सेवन करे । इस रसके सेवन करनेसे दो घडी देहमें संताप होता है, उसके शांति करनेको मिश्री गिलोयका सत्व और वंशलोचन इन तीनोंको एकत्र करके सेवन करे तो संताप दूर होवे । खजूर (छुहारे) विलायती अनार दाख (अंगूर) और ईखके टुकडे ये पदार्थ थोडे २ खाय तो इसका संताप और अरुचि दूर हो । धनियेको कूट उसके तुषोंको दूर करके घीमें भूनके उसमें मिश्री मिलायके इसके साथ लोकनाथरसको भक्षण करे तो अरुचि दूर होय । धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे । नेत्रवाला और अडूसा इन दोनोंका काढा करके सहत और मिश्री मिलाय इसके साथ लोकनाथ रस खाय तो रक्तपित्त कफ श्वास खांसी स्वरभंग ये रोग दूर होवें । थोडी भांगको भून चूर्ण कर उसमें इस रसको मिलाय उसको सहतमें मिलाय रात्रिके समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और

संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय । काला नमक जंगी हरड और पीपल इन तीन औषधोंका चूर्ण करके इसमें लोकनाथरस मिलायके गरम पानीसे सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हों । सहत पीपलके साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेटमें बाँई तरफ फियाका रोग होता है वह तथा वातरक्त वमन मूलव्याधि और नाकके रास्ते रुधिरका गिरना ये संपूर्ण रोग दूर होंय । दूबके रसमें मिश्री मिलायके लोकनाथरस डाल नाकमें नस्य देवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बंद होय । बेरकी गुठली पीपल और मोरपांखकी भस्म इन तीन औषधोंको एकत्र करके उसमें मिश्री और सहत मिलाय लोकनाथरसको एकत्र कर सेवन करे तो ओकारी तथा हिचकी ये दूर होवें । इस प्रमाण संपूर्ण पोटलीरस हैं उनमें और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन इनमेंभी यही विधि करनी चाहिये । इस प्रकार लोकनाथरस कहा है यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगोंको दूर करता है ॥

लघुलोकनाथरस क्षयपर ।

वराटभस्ममंडूरं चूर्णयित्वा घृते पचेत् ॥ ८२ ॥ तत्समं मारिचं चूर्णं नागवल्ल्या विभावितम् ॥ तच्चूर्णं मधुना लेह्यमथवा नवनीतकैः ॥८३॥ माषमात्रं क्षयं हंति यामे यामे च भक्षितम् ॥ लोकनाथरसो ह्येष मंडलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–कौडियोंकी भस्म १ भाग, मंडूर एक भाग, काली मिरच दो भाग ले, इन तीनों औषधोंको एकत्र करके घीमें खरल करे । जब घी करडा हो जावे तब नागरवेलके पानोंके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । इसको लघुलोकनाथरस कहते हैं । इसे सहतके साथ अथवा मक्खनके साथ एक एक प्रहरके अंतरसे खाय तो सामान्य क्षयरोग दूर होय । इस प्रकार १ मंडल[1]पर्यंत सेवन करे तो राजयक्ष्माकोभी दूर करता है ॥

मृगांकपोटलीरस क्षयादि रोगोंपर ।

भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत् ॥ तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥ ८५ ॥ कांचनाररसेनैव ज्वालामुख्या रसेन वा ॥ लांगल्या वा रसैस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका ॥ ८६ ॥ ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टंकणं तत्र निक्षिपेत् ॥ पिष्टमो-

---

१ मंडल चालीस दिवसका होता है ।

क्तिकचूर्णं च हेमद्विगुणमावपेत् ॥ ८७॥ तेषु सर्वसमं गंधं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत् ॥ तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥८८॥ पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत् ॥ शरावसंपुटस्यांते तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥८९॥ लवणापूरिते भांडे धारयेत्तं च संपुटम् ॥ मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥ ९० ॥ ततः शीते समाहृत्य गंधं सूतसमं क्षिपेत् ॥ घृष्ट्वा च पूर्ववत्खल्वे पुटेद्गजपुटेन च ॥ ९१ ॥ स्वांगशीतं ततो नीत्वा गुंजायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ अष्टभिर्मरिचैर्युक्तः कृष्णात्रययुतोऽथ वा ॥९२॥ विलोक्य देयो दोषादीनेकैका रसरक्तिका ॥ सर्पिषा मधुना वापि दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥९३॥ लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ॥ श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ॥ मृगांकोऽयं रसो हन्यात्कृशत्वं बलहीनताम् ॥९४॥

अर्थ—सोनेके भोजपत्रके समान पतले पत्र करके उसके समान भाग शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एक जगह कचनारके रससे अथवा ज्वालामुखीके रससे जबतक मिलकर पिट्ठीके समान न होवे तबतक खरल करे। पश्चात् सोनेका चतुर्थांश सुहागा तथा सोनेके दूना मोतियोंका चूरा और सबकी बराबर गंधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे। उसके चारों तरफ कपडा लपेटकर ऊपरसे मिट्टी ल्हेस देवे। फिर इसको धूपमें सुखाय ले। और मिट्टीके दो सरावे ले एकमें इस गोलेको रखके दूसरा उसके मुखपर रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर एक हांडी लेवे। उसको पिसे हुए नमकसे आधी भरके बीचमें इस संपुटको रखके उसको नमकसेही फिर भरके बंद कर देवे और उसके मुखको परियासे बंद करके मुखपरभी कपडमिट्टी कर देय। इसको गजपुटकी अग्निसे कुछ अधिक अग्नि आरने उपलोंकी देवे। जब स्वांग शीतल हो जावे तब बाहर निकाल औषधको खरलमें डालके फिर पारेके समान गंधक लेके कचनार अथवा ज्वालामुखीके रसमें खरल करे। पूर्वोक्त विधिसे गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकास लेय इस रसको मृगांकपोटली रस कहते हैं। यह पोटलीरस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचोंके साथ अथवा तीन पीपलोंके साथ देवे। दोषोंका तारतम्य देखकर एक रत्ती देय। दोषोंकी अपेक्षानुसार घी और सहतसे देवे। इस रसका सेवन करनेवाला प्राणी अंतःकरणको स्वस्थ करके पवित्र हो। लोकनाथ रसके समान पथ्य करे। इस प्रकार आच-

रण करनेसे इस रसायनसे कफके रोग, संग्रहणी, खांसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीरकी कृशता और बलहानि ये संपूर्ण रोग दूर होवें ॥

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोंपर ।

सुतात्पादप्रमाणेन हेम्नः पिष्टं प्रकल्पयेत् ॥९५॥ तयोः स्याद्द्विगुणो गंधो मर्दयेत्कांचनारिणा ॥ कृत्वा गोलं क्षिपेन्मूषासंपुटे मुद्रयेत्ततः ॥ ९६ ॥ पचेद्भूधरयंत्रेण वासरत्रितयं बुधः ॥ तत उद्धृत्य तत्सर्वं दद्याद्गंधं च तत्समम् ॥ ९७ ॥ मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकस्वरसेन च ॥ स्थूलपीतवराटांश्च पूरयेत्तेन युक्तितः॥९८॥ एतस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेन टंकणम् ॥ टंकणार्धं विषं दत्त्वा पिष्ट्वा सेहुंडदुग्धकैः ॥ ९९ ॥ मुद्रयेत्तेन कल्केन वराटानां मुखानि च ॥ भांडे चूर्णप्रलिप्तेथ धृत्वा मुद्रां प्रदापयेत् ॥१००॥ गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ॥ स्वांगशीतं रसं ज्ञात्वा प्रदद्याल्लोकनाथवत् ॥ १०१ ॥ पथ्यं मृगांकवज्ज्ञेयं त्रिदिनं लवणं त्यजेत् ॥ यदा च्छर्दिर्भवेत्तस्य दद्याच्छिन्नाशृतं तदा ॥ १०२ ॥ मधुयुक्तं तथा श्लेष्मकोपे दद्याद्गुडार्द्रकम् ॥ विरेके भार्जिता भंगा प्रदेया दधिसंयुता ॥१०३॥ जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमरुचिं तथा ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं कफवातं नियच्छति ॥ हेमगर्भः परो ज्ञेयो रसः पोटलिकाभिधः ॥ १०४ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग ले उसका चतुर्थांश खरल किया हुआ सुवर्णका चूरा अथवा सोनेके वर्क लेवे । एवं पारे और सुवर्ण दोनोंसे दूनी शुद्ध करी हुई गंधक लेवे। तीनोंको कचनारके रसमें खरल कर उसका गोला करके मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी कर देवे । फिर एक हाथका गड्ढा खोद उसमें दूसरा गड्ढा छोटासा खोदके उसमें पूर्वोक्त शरावसंपुटको रखके उसके ऊपर मिट्टी बिछायके दाब देवे। फिर उसके चारों तरफ आरने उपलोंके बारीक २ टुकडे डालके तीन दिन अग्नि देवे । (इस क्रियाको भूधर यंत्र कहते हैं)। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल शरावेमें रसको ले समान भाग गंधक मिलाय दोनोंको अदरखके रसमें खरल करके फिर चीतेके रसमें खरल करे । पश्चात् बडी २ पीली कौडी लायके उनमें इस घुटी हुई दवाईको भर देवे । फिर सब औषधोंका आठवां भाग सुहागा और सुहागेका

आधा भाग विष ले दोनोंको थूहरके दूधमें खरल करके उन कौडियोंके मुखको बंद कर देवे । फिर एक हांडीमें चूना लेपकर इन कौडियोंको रख देवे । उस हांडीके मुखपर दूसरी हांडी जोडके उसकी संधियोंको कपडमिट्टी करके हाथ भरके गड्ढेमें आरने उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब निकाल लेय । इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं । हेमगर्भ पोटलीरस लोकनाथ रसकी विधिसे सेवन करे और मृगांकरसायनके समान पथ्य करे इसमेंभी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमकरहित भोजन करे । इस औषधके सेवनसे यदि उलटी आवे तो गिलोयका काढा करके उसमें सहत डालके पीवे तो ओकारियोंका आना दूर होय । कफके प्रकोपमें गुड और अदरखको एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होय । यदि इस रसके प्रभावसे दस्त होने लगे तो भांगको थोडी भूनके दहीमें मिलायके खाय तो दस्तोंका होना दूर होय । इस हेमगर्भ पोटली रससे खांसी क्षय श्वास संग्रहणी और अरुची ये रोग दूर हों। अग्नि प्रदीप्त होय तथा कफवायुका प्रकोप दूर हो॥

दूसरी विधि ।

रसस्य भागाश्चत्वारस्तावंतः कनकस्य च ॥ १०५ ॥ तयोश्च पिष्टिकां कृत्वा गंधो द्वादशभागिकः ॥ कुर्य्यात्कज्जलिकां तेषां मुक्ताभागाश्च षोडश ॥१०६॥ चतुर्विंशच्च शंखस्य भागैकं टंकणस्य च ॥ एकत्र मर्दयेत्सर्वं पक्वनिंबूकजै रसैः ॥१०७॥ कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषां संपुटके न्यसेत ॥ मुद्रां दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गर्ते च गोमयैः ॥ १०८ ॥ पुटेद्गजपुटेनैव स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा गुंजाचतुर्मानं दद्याद्गव्याज्यसंयुतम् ॥१०९॥ एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सह दीयताम् ॥ राजते मृन्मये पात्रे काचजे वावलेहयेत् ॥ ११० ॥ लोकनाथसमं पथ्यं कुर्याच्च स्वस्थमानसः ॥ कासे श्वासे क्षये वाते कफे ग्रहणिकागदे ॥ अतिसारे प्रयोक्तव्या पोटली हेमगर्भिका ॥ १११ ॥

अर्थ-पारा चार भाग तथा सुवर्णका बारीक चूर्ण चार भाग दोनोंको एक जगह उत्तम पिट्ठी होनेपर्यंत खरल करे । फिर बारह भाग गंधक लेके खरल कर कजली करे । पश्चात् सोलह भाग मोती, चौबीस भाग शंख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजलीमें मिलाय पके हुए नींबूके रसमें खरल करके उसका गोला बनाय मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे । फिर १ हाथका गहरा और

लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें गौके गोबरके उपले भर बीचमें शरावसंपुटको रखके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको ले खरल करके धर राखे। इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरचके चूर्णके साथ रूपेके अथवा मिट्टीके अथवा कांचके प्यालेमें गौका घी डालके स्वस्थ चित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथ रसायनके समान पथ्य करे तो खांसी श्वास क्षयरोग कफ संग्रहणी और आतसार ये संपूर्ण रोग दूर होवें॥

महाज्वरांकुश विषमज्वरपर।

शुद्धसूतो विषं गंधः प्रत्येकं शाणसंमितः॥११२॥ धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत्॥ हेमाह्वा कारयेदेषां सूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः॥११३॥ देयं जंबीरमज्जाभिश्चूर्णं गुंजाद्वयोन्मितम्॥ आर्द्रकस्वरसैर्वापि ज्वरं हंति त्रिदोषजम्॥११४॥ एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम्॥ विषमं च ज्वरं हन्याद्विख्यातोयं ज्वरांकुशः॥११५॥

अर्थ–शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विष तीन मासे, गंधक तीन मासे, धतूरेके बीज नौ मासे और चोक सबसे दूना लेवे। सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरीके रसमें अथवा अदरखके रसमें दो रत्ती देवे तो त्रिदोष ज्वर और नित्य आनेवाला दिनरात्रिमें दो बार आनेवाला एकतरा तिजारी और चातुर्थिक ज्वर ये सब ज्वर दूर हों। यह ज्वरांकुश विषमज्वर दूर करनेमें विख्यात है॥

आनंदभैरवरस अतिसारादिकोंपर।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा॥ चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानंदभैरवः॥११६॥ गुंजैकं वा द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत्॥ मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम्॥११७॥ चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारनुत्॥ दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं गोघृतं तक्रमेव च॥ पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि॥११८॥

अर्थ–१ हींगलू २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विष ३ काली मिरच ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषध समान भाग लेके सबका एकत्र चूर्ण करे। इसको

आनंदभैरव रस कहते हैं । यह आनंदभैरव रस इन्द्रजौ और कूडेकी छाल ये दोनों एक एक कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णके साथ रोगोंका बलाबल विचारके १ रत्ती प्रमाण अथवा दो रत्ती प्रमाण देय । सहतसे देय तो त्रिदोषसे प्रगट अतिसारका रोग दूर होवे । पथ्यमें गौका दही और भात, घी भात अथवा छाछ भात देवे । प्यास लगे तो शीतल जल पीवे । रात्रिमें थोडी भांग शुद्ध करके घोटके पीवे तो यह भांग अतिसार रोगपर हितकारी होती है ॥

लघुसूचकाभरणरस संनिपातपर ।

विषं पलमितं सूतः शाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम् ॥ ११९ ॥ तच्चूर्णं संपुटे क्षिप्त्वा काचलिप्तशरावयोः ॥ मुद्रां दत्त्वा च संशोष्य ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ॥ १२० ॥ वह्निं शनैः शनैः कुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया ॥ तत उद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थां शरावकात् ॥ १२१ ॥ संलग्नो यो भवेत्सूतस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः ॥ वायुस्पर्शो यथा न स्यात्तथा कुप्यां निवेशयेत् ॥ १२२ ॥ यावत्सूच्यामुखे लग्नः कूप्या निर्याति भेषजम् ॥ तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते संनिपातिनि ॥ १२३ ॥ क्षीरेण प्रस्थिते मूर्ध्नि तत्रांगुल्या च घर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोपि हि जीवति ॥ १२४ ॥ तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोपि जीवति ॥ यदा तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते ॥ १२५ ॥

अर्थ–बच्छनागविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा ३ मासे दोनोंको एकत्र खरल करके चूर्ण करे । फिर रेह (बांगरखार) करके पुते हुए दो मट्टीके सकोरे ले उसमें चूर्णको रख दोनोंको मिलाय मुख बंद कर ऊपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके दो प्रहरतक मंद २ अग्नि देवे । तब उसको नीचे उतारके मुद्रा दूर कर ऊपरके शरावेमें लगे हुए पारेको हलके हाथसे अचकसी युक्तिसे निकाल शीशीमें भरके धर रक्खे । पश्चात् उस शीशीमें सूई डालके जितना रस सुईके अग्र भागमें लगे इतना बाहर निकाले । जिस मनुष्यको संनिपातके होनेते मूर्च्छा आय रही हो उस मनुष्यके मस्तकमें तालुएके स्थानमें उस्तरेसे बालोंको मूंडके फिर उस जगहकी खालको छीलके उस घावमें इस औषधको लगाय उंगलीसे यहांतक मलता रहे कि जबतक कि वह औषध रुधिरसे न मिले । जब रुधिरमें यह औषध अच्छे प्रकार मिल जावेगी उसी समय उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होशमें

आय जावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणीको सांपके काटनेसे मूर्च्छा आ गई हो और मरा चाहता हो वहभी इस क्रियाके करनेसे बच जावे। इस उपायके करनेसे देहमें दाह विशेष होता है उसके दूर करनेकी गुलकंद दाख इत्यादि मधुर पदार्थ भक्षणको देवे तो दाह शांत होय॥

जलचूडामणिरस संनिपातपर।

सूतभस्मसमं गंधं गंधात्पादं मनःशिला॥ माक्षिकं पिप्पली व्योषं प्रत्येकं शिलया समम्॥ १२६॥ चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः॥ सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुंजाद्वयं हितम्॥ १२७॥ तालपर्णीरसश्चानु पंचकोलशृतोऽथ वा॥ जलचूडो रसो नाम सन्निपातं नियच्छति॥ जलयोगश्च कर्तव्यस्तेन वीर्यं भवेद्रसे॥ १२८॥

अर्थ–पारेकी भस्म १ भाग और गंधक १ भाग गंधकका चतुर्थांश मनशिल, १ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २ पीपल ३ सोंठ ४ काली मिरच और ५ पीपल ये पांच औषध मनासिलके समान लेके चूर्ण करे। फिर खरलमें डालके मछलीके कलेजेमें पित्त होता है उसकी सात पुट देवे। फिर मोरके पित्तकी सात पुट देकर सुखाय लेवे। इसको जलचूडामणिरस कहते हैं। यह जलचूडामणिरस दो रत्तीके अनुमान मूसलीके रसमें अथवा पंचकोलके काढेमें देवे। जब इसकी गरमी होय तब उस रोगीके मस्तकपर शीतल जलका तरडा देवे तो रसमें वीर्य बढे। इस प्रकार करनेसे संनिपात दूर होवे। कोई कहते हैं उस रोगीके पास शीतल जलकी परात रक्खे परंतु यह बात ठीक नहीं है॥

पंचवक्ररस सन्निपातपर।

शुद्धसूतं विषं गंधं मरिचं टंकणं कणा॥ १२९॥ मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत्॥ पंचवक्त्रो रसो नाम द्विगुंजः सन्निपातहा॥ १३०॥ अर्कमूलकषायं तु सत्र्यूषमनुपाययेत्॥ युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत्॥ १३१॥ रसेनानेन शाम्यंति सक्षौद्रेण कफादयः॥ मध्वार्द्रकरसं चानु पिबेदग्निविवृद्धये॥ यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः॥ १३२॥

अर्थ–१ शुद्ध किया हुआ पारा २ शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विष ३ गंधक ४ काली मिरच ५ सुहागा ६ पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रसमें एक दिन खरल कर

दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे और इनको धूपमें सुखाय ले। इसको पंचवक्ररस कहते हैं। इस रसको आककी जडका काढा कर उसमें सोंठ मिरच पीपलका चूर्ण मिलाय उसके साथ देवे और पथ्यमें दहीभात देवे । तथा रोगीके जब गरमी होय तब शीतल जलका तरडा देवे तो सन्निपात दूर होय। इस रसको सहतके साथ सेवन करनेसे कफादिक रोग दूर हों अदरखके रसमें सहत मिलायके सेवन करे तो जठराग्निकी वृद्धि होवे । घी और मांस यथेष्ट भोजन करनेसे पच जावे ॥

उन्मत्तरस सन्निपातपर ।

रसगंधौ समानांशौ धत्तूरफलजै रसैः ॥ १३३ ॥
मर्दयेद्दिनमेकं च तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत् ॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्निपातजित् ॥ १३४ ॥

अर्थ-शुद्ध किया पारा १ भाग, गंधक १ भाग, १ सोंठ २ काली मिरच ३ पीपल ये तीन औषधि पारेगंधक दोनोंके समान लेवे । सबका चूर्ण कर धतूरेके फलके रसमें एक दिन खरल करे । फिर सुखायके चूर्ण बनाय धूपमें सुखाय ले । इसको उन्मत्तरस कहते हैं । जिसको संनिपात होय उसकी नाकमें इसकी नस्य देय तो रोगीका संनिपात दूर होय ॥

सन्निपातपर अंजन ।

निस्त्वग्जेपालबीजं च दशनिष्कं विचूर्णयेत् ॥
मरिचं पिप्पलीं सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत् ॥ १३५ ॥
भाव्यो जंबीरजैर्द्रावैः सप्ताहं संप्रयत्नतः ॥
रसोयमंजने दत्तः सन्निपातं विनाशयेत् ॥ १३६ ॥

अर्थ-छिलके रहित जमालगोटेके बीज १० निष्क लेवे और काली मिरच पीपल और पारा ये औषध निष्क प्रमाण लेवे । इन चारोंको जंभीरीके रसमें सात दिन खरल कर उसकी गोलियां बनावे । संनिपातवाले रोगीके नेत्रमें इस गोलीको जलमें घिसके लगावे तो सन्निपात दूर होय ॥

नाराचरस शूलादिरोगोंपर ।

सूतटंकणके तुल्ये मरिचं सूततुल्यकम् ॥ गंधकं पिप्पलीं शुंठीं द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ १३७ ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दंतीबीजं निस्तुषितं भिषक् ॥ द्विगुंजं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ आध्मानं शूलविष्टंभानुदावर्तं च नाशयेत् ॥ १३८ ॥

अर्थ—पारा सुहागा और काली मिरच ये सम भाग ले। गंधक पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारेसे दूनी ले तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे। इसको नाराचरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते २ रत्ती देवे तो दस्त होवे और पेटका फूलना शूलरोग मलका अवरोध और वायुकी ऊर्ध्व गति ये सब रोग दूर होय। इस नाराचरसको गरम जलके साथ वा तुलसीके रससे वा सहत अदरखके रसके साथ देते हैं। और जब दस्त बंद करने हो तब शीतल जल पीवे तो दस्त बंद हो जावे॥

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर।

दरदं टंकणं शुंठी पिप्पली चेति कार्षिकाः॥ हेमाह्वा पलमात्रा स्याद्दंतीबीजं च तत्समम्॥१३९॥ विशोष्यैकत्र सर्वाणि गोदुग्धेनैव पाययेत्॥ त्रिगुंजं रेचनं दद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु॥१४०॥

अर्थ—हींगलू सुहागा सोंठ और पीपल ये चार औषधि एक एक तोला लेवे और चोक तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा चार २ तोले लेय। सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते गौके दूधमें तीन रत्ती देय तो दस्त होकर मलका अवरोध तथा पेटका फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह प्राणीको इच्छाके माफिक दस्त कराता है इससे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं॥

वसंतकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर।

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम्॥१४१॥ लोहभस्म त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मतः॥ वंगभस्म त्रिभागं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥ १४२॥ प्रवालं मौक्तिकं चैव रससात्म्येन दापयेत्॥ भावना गव्यदुग्धेन रसैर्घृष्वाटरूषकैः॥ १४३॥ हरिद्रावारिणा चैव मोचकंदरसेन च॥ शतपत्ररसेनापि मालत्याः स्वरसेन च॥ ॥ १४४॥ पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः॥ कुसुमाकर इत्येष वसंतपदपूर्वकः॥ १४५॥ गुंजाद्वयं ददीतास्य मधुना सर्वमेहनुत्॥ सिताचंदनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित्॥ १४६॥

अर्थ—सुवर्णकी भस्म २ भाग अभ्रककी भस्म २ भाग लोहभस्म ३ भाग पारेकी भस्म ४ भाग वंगभस्म ३ भाग मूंगा और मोतीकी भस्म ४ भाग इनको गौके दूधकी १ अडूसेके पत्तोंके रसकी १ हलदीके रसकी १ केलेके कंदके रसकी १ गुलाबजलकी

१ मालतीकी १ कस्तूरीकी १ भीमसेनीकपूरकी १ तुलसीके रसकी एक एक भावना देकर गोली बनाय सुखाय लेवे। इसको वसंतकुसुमाकर रस कहते हैं। इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहोंपर देवे। मिश्री और सपेद चंदनके चूरेके साथ देनेसे सर्व पित्तके रोग दूर होते हैं। (यह रस शार्ङ्गधरका नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है) ॥

राजमृगांकरस क्षयरोगपर।

सूतभस्म त्रिभागं स्याद्भागैकं हेमभस्मकम् ॥ मृताभ्रस्य[1] च भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥१४७॥ प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ वराटान् पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम्॥१४८॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे तन्निरोधयेत् ॥ शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १४९ ॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुंजः क्षयापहः ॥ दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥१५०॥

अर्थ–पारेकी भस्म ३ भाग सुवर्णकी तथा अभ्रककी भस्म एक एक भाग १ मनशिल २ गंधक और ३ हरताल ये तीनों शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे। फिर बडी २ पीली कौडी ले उनमें इस चूर्णको भरके मुखको बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे। फिर उन कौडियोंको हांडीमें रखके उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी हांडी रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे। धूपमें सुखायके आरंन उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देय जब शीतल हो जाय तब उस संपुटमेंसे रस निकालके धर राखे। इसको राजमृगांक कहते हैं। यह राजमृगांक चार रत्ती, दश पीपल और उन्तीस काली मिरच इन दोनोंके चूर्णमें[2] मिलाय सहतमें चाटे तो क्षयरोग दूर होवे ॥

स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं कुर्य्यात्खल्वेन कज्जलीम् ॥ तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः॥१५१॥ द्वियामांते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत्॥आच्छाद्येरंडपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत्॥ ॥ १५२ ॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् ॥ संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥१५३॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृंगजैस्तथा ॥ काकमाचीकुरंटोत्थद्रवैर्मुंडयाः पुन-

---

१ 'मृतताम्रस्य' इति पाठांतरम्। २ यदि यह चूर्ण एक वारमें न खाया जाय तो दो तीन बार मिलायके खाय।

र्नवैः ॥ १५४ ॥ सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुंडीचित्रजैस्तथा ॥ सप्तधा तु पृथग्द्रावैर्भाव्यं शोष्यं तथातपे ॥ १५५॥ सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः ॥ अनुभूतो मया सत्यं सर्वरोगगणापहः ॥ १५६ ॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत् ॥ त्रिफलामधुसंयुक्तः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १५७ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः ॥ नवभागोन्मितैरेतैः समः पूर्वरसो भवेत् ॥ १५८ ॥ संचूर्ण्यालोडयेत् क्षौद्रैर्भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ॥ स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृंतनः ॥ १५९ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोंकी कजली करके फिर इसमें समान भाग पोलाद लोहका चूर्ण मिलायके घीगुवारके रसमें दो प्रहर पर्यंत खरल करे। फिर इसका गोला बनाकर ताम्रके कटोरेमें उस गोलेको रखके उसके ऊपर अंडके पत्ते ढकके चार घडी पर्यंत रख देवे। जब गोला अत्यंत गरम हो जावे तब उसको धानकी रासमें गाड देवे। एक दिनरात्रिके पश्चात् उसको निकाल कर उसको कपडेमें छान लेय और पानीमें डाले तो यह भस्म निश्चय पानीमें तरने लगे। इस भस्मको खरलमें डालके आगे कही हुई औषधोंके रसकी भावना देवे। जैसे घीगुवार भांगरा मकोय पियावांसा मुंडी पुनर्नवा सहदेई गिलोय नीली निर्गुंडी और चित्रक इनकी पृथक् २ सात पुट देवे (ऊपर कही हुई औषधोंके रसमें खरल कर धूपमें सुखाय ले यह एक पुट हुई इस प्रकार सात २ पुट होवे) तो यह रसायन सिद्ध होंय। इसको स्वयमग्निरस कहते हैं। यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध बडे २ पुरुषोंने कहा है इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है। यह स्वयमग्नि रस संपूर्ण रोग दूर करनेको त्रिफलेका चूर्ण और सहत इस अनुपानके साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर होंय। १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ हरड ५ बहेडा ६ आंवला ७ इलायची ८ जायफल और ९ लौंग इन नौ औषधोंको समान भाग ले चूर्ण करे। इस चूर्णके समान यह स्वयमग्नि रस लेवे। दोनोंको एकत्र कर सहतमें मिलायके दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो क्षय रोग और खांसीका रोग ये नष्ट होंय। रसायनकी रीतिसे स्वर्णादिक धातुका लोहके समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकीभी भस्म होय ॥

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर।

सूतार्धो गंधको मर्द्यो यामैकं कन्यकाद्रवैः ॥
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥ १६० ॥

दिनैकं स्थालिकायंत्रे पक्त्वा चादाय चूर्णयेत् ॥
सूर्यावर्तो रसो ह्येष द्विगुंजः श्वासजिद्भवेत् ॥ १६१ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग और गंधक पारेसे आधी ले, दोनोंको एकत्र करके घीगुवारके रससे एक प्रहर खरल करके कल्क करावे। फिर दोनोंके समान तामेके पत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेप करके उन पत्रोंको मिट्टीके पात्रमें रखके उस पात्रके मुखपर दूसरा पात्र औंधा रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद कर देवे। फिर उसको धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके एक दिनकी अग्नि देवे। इसको स्थालिकायंत्र कहते हैं। फिर शीतल होनेपर उन पत्रोंको बाहर निकाल खरल करके बारीक चूर्ण कर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं यह रस दो रत्तीके अनुमान श्वासरोगवालेको देय तो उसकी श्वासको दूर करे॥

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर।

शुद्धसूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम् ॥ पथ्याग्निमंथनिर्गुंडी-त्र्यूषणं टंकणं विषम् ॥ १६२ ॥ तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ॥ मुंडीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुंजं वटकीकृतम् ॥ १६३ ॥ भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छंदभैरवः ॥ रास्नामृतादेवदारुशुंठीवातारिजं शृतम् ॥ सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानसुखावहम् १६४ ॥

अर्थ–१ शुद्ध पारा २ लोहभस्म ३ स्वर्णमाक्षिककी भस्म ४ गंधक ५ हरताल ६ जंगी हरड ७ अरनी ८ निर्गुंडी ९ सोंठ १० काली मिरच ११ पीपल १२ सुहागा १३ शुद्ध बच्छनाग विष ये तेरह औषधि समान भाग लेकर निर्गुंडीके रसमें एक दिन खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे। इसको स्वच्छंदभैरवरस कहते हैं यह रस और १ रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ ५ अंडकी जड इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके सेवन करे तो वादीका रोग दूर होय ॥

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर।

दग्धान् कपर्दिकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंकणं विषम् ॥ गंधकं शुद्धसूतं च तुल्यं जंबीरजैर्द्रवैः ॥ १६५ ॥ मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ॥ निहंति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ १६६ ॥

अर्थ–१ कौडीकी भस्म २ सोंठ ३ काली मिरच ४ पीपल ५ फूला हुआ सुहागा ६ शुद्ध बच्छनाग ७ गंधक और ८ शुद्ध किया हुआ पारा इन आठ औषधोंको कूट पीस

जंभीरीके रसमें खरल कर एक २ मासेकी गोली बनावे इसको हंसपोटलीरस कहते हैं। इसको काली मिरचके चूर्णसे सहत मिलायके भक्षण करे। इसपर छाछ और भातका खाना पथ्य है यह संग्रहणी रोगको दूर करता है ॥

त्रिविक्रमरस पथरीरोगपर।

मृतं ताम्रमजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये गतद्रवम् ॥ १६७ ॥ तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् ॥ निर्गुंडीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकं कृतम् ॥ १६८ ॥ यामैकं वालुकायंत्रे पाच्यं योज्यं द्विगुंजकम् ॥ बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् ॥ रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत् ॥ १६९ ॥

अर्थ–ताम्रभस्मके समान बकरीका दूध ले उसमें तामेकी भस्मको मिलायके औटायके गाढी करे। यह ताम्रभस्म, शुद्ध किया पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेके निर्गुंडीके रससे एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको वालुकायंत्रमें डालके एक प्रहर अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके उस संपुटसे औषधको निकाल लेवे। इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान बिजोरेकी जडके रससे अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथरीका रोग एक महीनेमें दूर होवे ॥

महातालेश्वर रस कुष्ठादिकोंपर।

तालं ताप्यं शिलां सूतं शुद्धं सैंधवटंकणे ॥ १७० ॥ समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगंधकम् ॥ गंधतुल्यं मृतं ताम्रं जंबीरैर्दिनपंचकम् ॥ १७१ ॥ मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे ॥ पुटे पुटेद्द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतच्च षट्पलम् ॥ १७२ ॥ द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुः पलम् ॥ जंबीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु ॥ १७३ ॥ त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ॥ माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत्सदा ॥ १७४ ॥ मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु ॥ सर्वकुष्ठान्निहंत्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ १७५ ॥

अर्थ–१ हरताल २ सुवर्णमाक्षिक ३ मनसिल ४ शुद्ध किया हुआ पारा ५ सेंधानमक और ६ सुहागा ये छः औषधि समान भाग तथा पारेसे दूनी गंधक लेवे। तथा

गंधकके समान ताम्रभस्म ले सबको खरल कर जंभीरीके रसमें ५ दिन पर्यंत घोटे। फिर इसका गोला बनाय उसको सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी करके भूधरयंत्रमें उस सरावसंपुटको धरके आरने उपलोंकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल फिर जंभीरीके रसमें पांच दिन खरल कर पूर्वरीतिसे मयूरयंत्रमें धरके अग्नि देवे। इस प्रकार छः वार भूधरयंत्रमें डालके अग्नि देय तो भस्म होय। इस प्रकार की हुई भस्म छः पल, ताम्र भस्म दो पल और लोह भस्म चार पल इन तीनों भस्मोंको एकत्र खरल कर जंभीरीके रसमें एक दिन खरल करे। मिट्टीके शरावसं-पुटमें डालके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्मका तीसवां हिस्सा शुद्ध किया बच्छनाग विष बारीक करके मिलावे। इसको महातालेश्वररस कहते हैं। यह तालेश्वररस अर्द्धनिष्क प्रमाण लेके भैंसके घीके साथ सेवन करे और उसी समय घी और सहत दोनों विषम भाग ले एक करे उसमें बावचीका चूर्ण एक कर्ष मिलायके इसके साथ सेवन करे तो यह संपूर्ण कुष्ठोंको तत्काल दूर करे॥

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर।

सूतभस्मसमो गंधो मृतायस्ताम्रगुग्गुलू॥ त्रिफला च महानिं-बश्चित्रकश्च शिलाजतु॥ १७६॥ इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं शाणषोडश॥ चतुःषष्टिकरंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत्॥१७७॥ चतुःषष्टि मृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्॥ स्निग्धभांडे घृतं खादेद्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत्॥ रसः कुष्ठकुठारोयं गलत्कुष्ठ-निवारणः॥ १७८॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ गंधक ३ लोहभस्म ४ ताम्रभस्म ५ गूगल ६ हरड ७ बहेडा ८ आंवला ९ बकायनकी छाल १० चीतेकी छाल और ११ शिलाजीत ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा कंजाके बीज ६४ शाण लेय सबका बारीक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाण लेके उस चूर्णमें मिलाय देवे। इसको कुष्ठकुठाररस कहते हैं। यह रस दो निष्क प्रमाण सेवन करे तो संपूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये दूर हों॥

उदयादित्यरस कुष्ठपर।

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम्॥ १७९॥ तद्गोलं

१ भूधरयंत्रका स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटलीमें कह आये हैं। २ एक विलस्त लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरके हलकी अग्नि देवे इसको कुक्कुटपुट कहते हैं।

पिठरीमध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत् ॥ सूतकाद्द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन च ॥ १८० ॥ पार्श्वे भस्म निधायाथ पात्रोर्ध्वे गोमयं जलम् ॥ किंचित्प्रदातव्यमग्निं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत् ॥१८१॥ चंडाग्निना तदुद्धृत्य स्वांगशीतं विचूर्णयेत् ॥ काष्ठोदुंबरिकावह्नि त्रिफलाराजवृक्षकम् ॥ १८२ ॥ विडंगबाकुचीबीजं क्वाथयेत्तेन भावयेत् ॥ दिनैकमुदयादित्यो रसो देयो द्विगुंजकः ॥ १८३ ॥ विचर्चिकां दद्रुकुष्ठं वातरक्तं च नाशयेत् ॥ अनुपानं च कर्तव्यं बाकुचीफलचूर्णकम् ॥ १८४ ॥ खादिरस्य कषायेण समेन परिपाचितम् ॥ त्रिशाणं तद्भवां क्षीरैः क्वाथैर्वा त्रिफलैः पिबेत् ॥ १८५ ॥ त्रिदिनांते भवेत्स्फोटः सताहाद्वा किलासके ॥ नीली गुंजाश्च काशीसं धत्तूरं हंसपादिकम् ॥१८६॥ सूर्यभक्ता च चांगेरी पिष्ट्वा मूलानि लेपयेत् ॥ स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥ १८७ ॥ श्वेतकुष्ठान्निहंत्याशु साध्यासाध्यं न संशयः॥ अपरः श्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेत्र भिषग्वरैः ॥ १८८ ॥ गुंजाफलाग्निचूर्णं च प्रलेपः श्वेतकुष्ठनुत् ॥ शिलापामार्गभस्मानि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत् ॥ १८९ ॥

अर्थ–शुद्ध किया पारा ४ पल और गंधक दो भाग लेके घीगुवारके रसमें दोनोंको खरल करके दोनोंका गोला बनावे। उस गोलेको घडेमें रखके पारेका तिगुना शुद्ध किया हुआ तामा लेकर उसकी कटोरी बनायके उस पूर्वोक्त गोलेके ऊपर ढक देवे और उसकी संधियोंको उपलोंकी राखसे बंद कर देय। गौका गोबर और जल दोनोंको मिलाय उस कटोरीके चारों तरफ लेप कर देवे । उस घडेको चूल्हेपर चढायके प्रचंड अग्नि दो प्रहर देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब संपुटमेंसे औषधको निकालके खरल कर आगे लिखे औषधोंके रसकी पुट देवे । जैसे १ कठूमर २ चित्रक ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ अमलतासका गूदा ७ वायविडंग और ८ बावची इन आठ औषधोंका काढा करके उक्त रसमें डालके एक दिन खरल करे । फिर इसको गाढी कर गोली बनाय ले इसे उदयादित्यरस कहते हैं। यह रस दो रत्ती लेकर खैरके छालके काढेमें बावचीका चूर्ण ३ शाण मिलायके उसके साथ लेवे। अथवा गौके दूधसे अथवा त्रिफलाके काढेसे सेवन करे तो विचर्चिका रोग दाद कुष्ठ

और वातरक्त ये रोग दूर होवें। इस उदयादित्यरसका तीन दिन सेवन करनेसे उस चित्रकुष्ठी मनुष्यके देहमें चौथे दिन वा सातवें दिन फोडे उत्पन्न होते हैं उनके दूर होनेका औषध कहते हैं। १ नीलपुष्पी २ घूंघची ३ हीराकसीस ४ धतूरा ५ हंसपदी ६ हुलहुल और ७ चूका इन सात औषधोंकी जड समान भाग लेके बारीक पीस लेवे फिर इनका उन फोडोंपर सात दिन नित्य लेप करे तो वे फोडा अच्छे होकर सपेद कुष्ठ साध्य अथवा असाध्य होय तोभी दूर होवे इसमें संशय नहीं है। दूसरा प्रकार यह है कि घूंघची (चिरमिठी) और चित्रक इनका बारीक चूर्ण करके पानीमें मिलाय देहमें मालिश करे। उसी प्रकार मनसिल और ओंगाकी राख इन दोनोंको खरल करके देहमें मालिश करे तो सपेद कुष्ठ दूर हो॥

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

शुद्धं सूतं चतुर्गंधं पलं यामं विचूर्णयेत्॥ मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं पलम्॥ १९०॥ सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दश-निष्ककम्॥ माषैकं मृतवज्रं च तालं शुद्धं पलद्वयम्॥१९१॥ जंबीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः॥ मर्द्यं हयारिजैर्द्रा-वैः प्रत्येकेन दिनं दिनम्॥ १९२॥ एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्॥ वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना॥१९३॥ आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम्॥ द्विपलं पिप्पली-चूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः॥ १९४॥ द्विगुंजो लिह्यते क्षौद्रैः सु-प्तिमंडलकुष्ठनुत्॥ बाकुचीदेवकाष्ठं च कर्षमात्रं विचूर्णयेत्॥ लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्॥ १९५॥

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा ४ पल गंधक १ पल दोनोंको एकत्र कर एक प्रहर पर्यंत खरल करे फिर तामेकी भस्म अभ्रकभस्म लोहभस्म और हिंगलू ये चार वस्तु चार २ पल ले, सुवर्णभस्म और रूपेकी भस्म दोनों दश २ निष्क लेवे, और हीरेकी भस्म १ मासे तथा हरतालका सत्व २ पल ये सब औषध उस पारेगंधककी कजलीमें मिलाय नींबू धतूरा अडूसा बकायन और कनेर इनकी जडके रसमें तथा थूहर और आक इनके दूधमें पृथक् २ एक एक दिन खरल करके गोला करे। उसके चारों तरफ कपडा लपेट वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढावे और उसके नीचे मंद २ अग्नि तीन दिन देवे। जब शीतल हो जावे तब उस संपुटमेंसे रसको निकालके उसमें शुद्ध किया हुआ बच्छनागविषका चूर्ण १ पल और पीपलका चूर्ण दो पल मिलाय देवे। इसे

सर्वेश्वररस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान सहतके साथ सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अंडीके तेलमें मिलायके सेवन करे तो सुतिकुष्ठ और मंडलकुष्ठ दूर हो॥

स्वर्णक्षीरीरस सुतिकुष्ठपर।

हेमाह्वां पंचपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत्॥ १९६॥ तक्रे जीर्णे समाहृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत्॥ क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्वा क्षालयित्वा विशेषतः॥१९७॥ तच्चूर्णं पंचपलिकं मरिचानां पलद्वयम्॥ पलैकं मूर्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत्॥ निष्कैकं सुतिकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीरीरसो ह्ययम्॥ १९८॥

अर्थ–चोक ५ पल लेकर एक घडामें छाछ भरके उसमें उस चोकको डालके औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोकको निकाल लेय फिर उसको दूधके घडेमें डालके औटावे जब दूधभी सूख जाय तब उसको निकाल कर धोय लेवे। फिर उसका चूर्ण करके दो पल लेय और पारकी भस्म १ पल प्रमाण लेके दोनोंको एकत्र पीस लेवे। इसे स्वर्णक्षीरी रस कहते हैं। यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुतिकुष्ठ दूर होय। किसी किसी वैद्यकी यह संमति है कि चौक नाम उसारे रेवनको कहते हैं॥

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर।

सूत भस्म मृतं कांतं मुंडभस्म शिलाजतु॥१९९॥ शुद्धं ताप्यं शिलां व्योषं त्रिफलां कोलबीजकम्॥ कपित्थं रजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत्॥ २००॥ विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा॥ निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धरसो महान्॥ २०१॥ महानिंबस्य बीजानि पिष्ट्वा षट् संमितानि च॥ पलं तंदुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च॥ एकीकृत्य पिबेच्चानु हंति मेहं चिरंतनम्॥ २०२॥

अर्थ–२ पारेकी भस्म २ कांतलोहकी भस्म ३ लोहभस्म ४ शुद्ध किया हुआ शिलाजीत ५ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ६ मनसिल ७ सोंठ ८ मिरची ९ पीपल १० हरड ११ बहेडा १२ आंवला १३ अंकोलके बीज १४ कैथका गूदा और १५ हलदी ये पंद्रह औषध समान भाग ले। इनमें भस्मके सिवाय जो औषधि हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मोंको मिलायके फिर भांगरेके रसकी २० पुट देवे। इसको मेह-

बद्ध रस कहते हैं । यह रस १ निष्क प्रमाण सहतके साथ सेवन करे तो घोर प्रमेहका रोग नष्ट होय । यही बकायनके छः बीजका चूर्ण करके चावलोंका धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायनके चूर्णको मिलावे और दो निष्क घी मिलाय इस अनुपानके साथ इस मेहबद्धरसको भक्षण करे तो बहुत दिनका पुराना प्रमेहभी दूर होय ॥

महावह्निरस सर्वउदररोगोंपर ।

चतुः सूतस्य गंधाष्टौ रजनी त्रिफला शिवा ॥२०३॥ प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकाः ॥ प्रत्येकं च त्रिभागं स्यात्र्यूषणं दंतिजीरकम् ॥२०४॥ प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ जयंतीस्नुक्पयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २०५ ॥ प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक् ॥ महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २०६ ॥ विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं सुसैंधवम् ॥ दिनांते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ॥ सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढवातहरः परः ॥ २०७ ॥

अर्थ–पारा चार भाग, गंधक ८ भाग, १ हलदी २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे । १ निशोथ २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये तीन औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ दंती और ५ जीरा ये पांच औषधी आठ २ भाग लेवे । सब औषधोंका चूर्ण करके अरणीका रस थूहरका दूध भांगरेका रस चित्रक और अंडीका तेल इन प्रत्येककी पृथक् २ सात २ भावना देवे । फिर एक २ निष्ककी गोलियां बांध लेवे । इसमेंसे १ गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो । जब दस्त हो चुके तब सायंकालको पथ्यमें छाछ और भात देना चाहिये और नमकोंमें सैंधा नमक खाय जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे । इस रसायनसे दस्त होकर संपूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवें ॥

विद्याधररस गुल्मादिरोगोंपर ।

गंधकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ॥ २०८ ॥
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥
पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ २०९ ॥
निष्कार्धं भक्षयेत् क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ॥
रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ २१० ॥

अर्थ–१ गंधक २ हरताल ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ४ ताम्रभस्म ५ मनसिल और ६ शुद्ध किया हुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दिन खरल करे। फिर १ दिन थूहरके दूधसे खरल करे। इसको विद्याधर रस कहते हैं। यह रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म (गोलेका) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवें॥

त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर।

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम्॥ दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ २११॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत्॥ सैंधवं जीरकं हिंगु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः॥ २१२॥

अर्थ–१ सुहागा २ हरिणका सींग ३ सुवर्णभस्म ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमें एक दिन खरल कर मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके गड्ढा खोद उसमें आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल ले। इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं। यह रस एक मासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोंको मिलायके इसके भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक २ जीरा ३ भूनी हींग इन तीन औषधोंका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलायके खाय तो पक्ति (परिणाम) शूल एक महीनेमें दूर होय॥

शूलगजकेसरी रस शूलादिकोंपर।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम्॥ २१३॥ द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत्॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक्॥ २१४॥ ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत्॥ संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजकम्॥ २१५॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगुशुंठीसजीरकम्॥ वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्॥ असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोयं गजकेसरी॥ २१६॥

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा १ भाग, गंधक २ भाग दोनोंको मिलायके १ प्रहर पर्यंत खरल करके दोनोंके समान शुद्ध किया तांबा लेवे। उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गंधककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हांडीको आधी

नमकसे भर बीचमें इस तामेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भर देवे फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टी करके सुखाय लेवे। फिर गढ्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे। इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं। जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमें दो रत्ती यह रखके खिलावे और इसके ऊपर तत्काल १ भूनी हींग २ सोंठ ३ जीरा ४ वच और ५ काली मिरच इन पांच औषधोंका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमें मिलायके पिलावे तो असाध्यभी शूल दूर होय ॥

सूतादिवटी मंदाग्निआदि रोगोंपर।

शुद्धसूतं विषं गंधमजमोदां फलत्रयम् ॥२१७॥ सर्जक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकौ ॥ सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ॥ ॥२१८॥ विषमुष्टिं सर्वतुल्यां जंवीराम्लेन मर्दयेत् ॥ मरिचाभां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २१९ ॥

अर्थ–१ शुद्ध किया पारा २ शुद्ध किया बच्छनाग विष ३ गंधक ४ अजमोद ५ हरड ६ बहेडा ७ आंवला ८ सज्जीखार ९ जवाखार १० चित्रक ११ सैंधानमक १२ जीरा १३ काला नमक १४ बिडनमक १५ सामुद्रनमक १६ सोंठ १७ मिरच १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले। और बकायनके बीज सब औषधोंके बराबर ले सबका चूर्ण कर जंभीरीके रसमें खरल कर मिरचके समान गोली बांधे। इसमेंसे एक २ गोली नित्य खाय तो सर्व प्रकारके अजीर्ण दूर होंय ॥

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर।

शुद्धसूतं विषं गंधं समं सर्वं विचूर्णयेत् ॥ मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ॥२२०॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् ॥ वटीं गुंजात्रयं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ अजीर्णकंटकश्चायं रसो हंति विषूचिकाम् ॥ २२१ ॥

अर्थ--१ शुद्ध किया पारा २ शुद्ध बच्छनागविष और ३ गंधक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनोंके समान काली मिरच लेवे। सबको खरल करके कटेरीके फलोंके रसमें पृथक् २ इक्कीस भावना देके तीन २ रत्तीकी गोली बनावे। इसको अजीर्णकंटकरस कहते हैं। इस रसकी एक एक गोली सेवन करनेसे सर्व प्रकारका अजीर्ण तथा विषूचिका (हैजा) दूर होवे ॥

मंथानभैरवरस कफरोगपर।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् ॥ सैंधवं गंधकं तालं कटुकीं चूर्णयेत्समम् ॥ २२२ ॥ पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंदुलीयकैः ॥ तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ २२३ ॥ माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसं मंथानुभैरवम् ॥ कफरोगप्रशांत्यर्थं निंबक्राथं पिबेदनु ॥ २२४ ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ तामेकी भस्म ३ हींग ४ पुहकरमूल ५ सैंधानमक ६ गंधक ७ हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्मके विना सब औषधोंका चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलायके पुनर्नवा (सांठ) के रससे एक दिन खरल करे। फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कड़वी तोरई इन एक एकके रसमें एक दिन खरल कर गोली बनावे। इसको मंथानभैरव रस कहते हैं। यह रस १ मासा सहतमें मिलायके सेवन करे और उसके ऊपर तत्काल कडुए नीमकी छालका काढा पीवे तो कफरोग दूर होय॥

वातनाशनरस वातविकारपर।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ॥ २२५ ॥ तालं नीलांजनं तुत्थमहिफेनं समांशकम् ॥ पंचानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ॥ २२६ ॥ वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाधो भूधरे पचेत् ॥ माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥ २२७ ॥ पिप्पलीमूलजक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ सर्वान्वातविकारांस्तु निहंत्याक्षेपकादिकान् ॥ २२८ ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ सुवर्णभस्म ३ हीरेकी भस्म ४ तामेकी भस्म ५ लोहेकी भस्म ६ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ७ हरतालकी भस्म ८ शुद्ध सुरमा ९ लीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले। १ सैंधानमक २ संचरनमक ३ बिड़नोन ४ खारी नोन और ५ समुद्रनमक ये पांच क्षार मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होय तो पांचों क्षार मिलायके १ तोला लेय। सबको एकत्र करके थूहरके दूधसे १ दिन खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर भूधरयंत्रमें रखके अग्नि देवे। जब स्वांग शीतल हो जावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल लेवे। इसको वातनाशन रस कहते हैं। यह रस एक

मासेके अनुमान अदरखके रससे सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूलका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो संपूर्ण आक्षेपकादिक वादी दूर होंय ॥

कनकसुंदररस ।

कनकस्याष्टशाणाः स्युः सूतो द्वादशभिर्मिताः ॥ गंधोपि द्वादशप्रोक्तस्ताम्रं शाणद्वयोन्मितम् ॥ २२९ ॥ अभ्रकस्य चतुःशाणं माक्षिकं च द्विशाणिकम् ॥ वंगो द्विशाणः सौवीरं त्रिशाणं लोहमष्टकम् ॥ २३० ॥ विषं त्रिशाणिकं कुर्याल्लांगली पलसंमिता ॥ मर्दयेद्दिनमेकं च रसैरम्लफलोद्भवैः ॥ २३१ ॥ दद्यान्मृदुपुटं वह्नौ ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ॥ माषमात्रो रसो देयः सन्निपाते सुदारुणे ॥ २३२ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैव रसोनस्य रसेन वा ॥ किलासं सर्वकुष्ठानि विसर्पं च भगंदरम् ॥ ज्वरं गरमजीर्णं च जयेद्रोगहरो रसः ॥ २३३ ॥

अर्थ–धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गंधक बारह शाण, तामेकी भस्म दो शाण, अभ्रकभस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध बच्छनाग विष तीन शाण, और कलयारी विषकी जड एक पल । इन सबको बारीक पीसके नींबूके रससे एक दिन पर्यंत खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रक्खे । इसको कनकसुंदर रस कहते हैं । इसको एक मासे लेके अदरखके रससे खाय अथवा लहसनके रसमें मिलायके खाय तो घोर दुर्घट सन्निपात दूर होय । किलासकुष्ठ और अन्य प्रकारके सर्व कुष्ठ विसर्प भगंदर ज्वर विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूर होंय ॥

सन्निपातभैरवरस ।

रसो गंधस्त्रित्रिकर्षौ कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥ २३४ ॥ ताराभ्रताम्रवंगाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः ॥ शिग्रुज्वालामुखीशुंठीबिल्वेभ्यस्तंदुलीयकात् ॥ २३५ ॥ प्रत्येकं स्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं विमर्दयेत् ॥ कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत् ॥ २३६ ॥ काचभांडे ततः स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत ॥

वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्नियामद्वयं भवेत् ॥ २३७ ॥ तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत् ॥ प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च ॥ २३८ ॥ कृष्णसर्पस्य गरलैर्दिवसं भावयेत्तथा ॥ तगरं मुसली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणा ॥ २३९॥ नीलिनीपत्रकं चैला चित्रकश्च कुठेरकः॥ शतपुष्पादेवदालीधत्तूरागस्त्यमुंडिकाः॥२४०॥ मधूकजातिमदनारसैरेषां विमर्दयेत् ॥ प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत् ॥२४१॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैः षोडशोन्मितैः ॥ रसो द्विगुंजाप्रमितः सन्निपातस्य दीयते ॥ प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः ॥२४२॥

अर्थ—शुद्ध पारा २ कर्ष और गंधक तीन कर्ष दोनोंको खरल करके कजली करे। फिर रूपेकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, नागभस्म और लोहभस्म ये छः भस्म एक एक कर्ष लेवे। सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमें मिलाय देवे। फिर सहजनेकी छालके रसमें १ प्रहर खरल करे पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें सोंठके काढेमें बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमें पृथक् २ एक २ प्रहर खरल करके गोला बनाय ले। उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको कांचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टी कर देवे। फिर एक हांडी ले उसमें पिसा हुआ नमक आधा भरके बीचमें उस संपुटको रख ऊपरसे फिर पिसा हुआ नमक उस हांडीके मुख पर्यंत भर देवे। फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढाय नीचे दो प्रहर पर्यंत अग्नि जलावे। फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेंसे औषधको काढ लेवे। तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूंगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनाग विषका चूर्ण १ शाण मिलाय काले सर्पका विष डालके एक दिन पर्यंत खरल करे। फिर इस रसको कांचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपड मिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईटकी डाट देकर कपडमिट्टी कर दे। इसको धूपमें सुखायके वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढाय दो प्रहर पर्यंत अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषधको बाहर निकाल खरल करके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवे। जैसे १ तगर २ मुसली ३ जटामांसी ४ चोक ५ वेत ६ पीपल ७ नीलपुष्पी ८ बेत्रज ९ इलायची १० चित्रक ११ वनतुलसी १२ सौंफ १३ बंदाल १४ धतूरा १५ अगस्तिया १६ मूंडी १७ महुआ १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमें घोटे। अर्थात् एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे, तब दूसरी

औषधका रस डालके खरल करे इस प्रकार पृथक् २ घोटे। जिस औषधमेंसे रस न निकलता होवे उसका काढा करके उस काढेमें खरल करे। जब सूख जाय तब गोली बांध लेवे। इस रसको सन्निपातभैरवरस कहते हैं इस रसको दो रत्ती प्रमाण बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिलाय तथा उसमें सोलह काली मिरचका चूर्ण डालके सन्निपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे सन्निपात दूर होय। यह सन्निपातभैरवरस प्रसिद्ध है॥

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः॥ २४३॥ द्विभागौ गंधकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान्॥ कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृंगे ततः क्षिपेत्॥ २४४॥ पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत्॥ बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा॥ २४५॥ लोध्रं प्रतिविषा मुस्तं धातकींद्रयवाः स्मृताः॥ प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा॥ २४६॥ माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा॥ हन्यात्सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि॥ कपाटो ग्रहणीरोगे रसोयं वह्निदीपनः॥ २४७॥

अर्थ–रूपेकी भस्म मोती सुवर्णभस्म और लोहभस्म ये चार औषध एक २ भाग लेवे। गंधक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कैथके रसमें घोटके हरिणके सींगमें खूब दाब २ के भरे। फिर उस सींगपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंकी मध्यमाग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके खरलमें डालके खरेंटीके रसकी ७ पुट देवे। फिर ओंगा लोध अतीस नागरमोथा धायके फूल इन्द्रजौ और गिलोय इनके पृथक् २ स्वरसको निकालके एक २ की न्यारी न्यारी तीन २ भावना देवे। जिस औषधका स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रसको घोटे। जब सूखनेपर आवे तब एक मासेकी गोलियां बनावे। इसको ग्रहणीकपाटरस कहते हैं। इस रसकी एक गोली काली मिरचके चूर्णके साथ सहतमें मिलायके सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा संपूर्ण संग्रहणीके रोग दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होती है॥

ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर।

मृतसूताभ्रके गंधं यवक्षारं सटंकणम्॥ २४८॥ अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यानिमान्सुधीः॥ ततो जयंतीजंबीरभृंगद्रा-

वैर्विमर्दयेत् ॥ २४९ ॥ त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ॥ लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत् ॥ २५० ॥ अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत् ॥ रसतुल्यां प्रतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ॥ २५१ ॥ कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ धातकींद्रयवामुस्ता लोध्रं बिल्वं गुडूचिका॥२५२॥ एतद्रसैर्भावयित्वा वेलैकैकं च शोषयेत् ॥ रसं वज्रकपाटाख्यं शाणैकं मधुना लिहेत् ॥ २५३ ॥ वह्निशुंठी बिडं बिल्वं लवणं चूर्णयेत्समम् ॥ पिबेदुष्णांबुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥२५४॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ अभ्रकभस्म ३ गंधक ४ जवाखार ५ सुहागा ६ अरनीकी जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे । सबको पीसके अरनीके रसमें एक दिन खरल करे । फिर जंभीरीके रसमें एक दिन तथा भांगरेके रसमें एक दिन इस प्रकार इन तीनोंके रसमें तीन दिन खरल करके गोला बनावे । उसको सुखायके लोहकी कडाहीमें रख उसके ऊपर मिट्टीका सरावा ढकके उसकी संधियोंको मिट्टीकी मुद्रा देके बंद कर देवे । फिर उस कढाईको चूल्हेपर चढायके नीचे मंद २ अग्नि चार घडी पर्यंत देवे । जब शीतल हो जावे तब गोलेको बाहर निकाल लेय फिर इसके समान भाग अतीसका चूर्ण और मोचरसका चूर्ण मिलायके खरलमें डाल कैथके रसकी सात पुट देवे तथा भांगके रसकी सात पुट देवे । पश्चात् धायके फूल इन्द्रजौ नागरमोथा लोध बेलफल और गिलोय इन औषधोंके पृथक् २ रसमें पृथक् २ घोटे । जब जाने कि कुछ थोडी गीली है तब एक २ शाणकी गोली बनावे । इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं । जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मधके साथ यह गोली देवे और इसके ऊपर तत्काल चित्रक सोंठ बिडनमक बेलगिरी और सैंधानमक इन पांच औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो सर्व प्रकारकी संग्रहणी दूर होवे ॥

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर ।

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं सूतकगंधकम् ॥ लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ २५५ ॥ विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ॥ विमुच्य पिठरीमध्ये धारयेत् सैंधवावृते ॥२५६॥ पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक् ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ॥ वह्निं शनैः शनैः

कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥ २५७ ॥ स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भा-
वयेदर्कदुग्धकैः ॥ अश्वगंधा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा ॥
॥ २५८ ॥ त्रित्रिवेलं रसैरेषां शतावर्याश्च भावयेत् ॥ पद्मकं-
दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत् ॥ २५९ ॥ कस्तूरीव्यो-
षकर्पूरकंकोलैलालवंगकम् ॥ पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमि-
श्रयेत् ॥ २६० ॥ सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं पि-
बेत् ॥ गोदुग्धाद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥ २६१ ॥ अस्य
प्रभावात्सौंदर्यं स लभेन्नात्र संशयः॥ तरुणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहा-
निर्न जायते ॥ २६२ ॥

अर्थ–रूपेकी भस्म १ भाग हीरेकी भस्म २ भाग सुवर्णकी भस्म ३ तीन भाग ताम्रभस्म ४ भाग शुद्ध पारा ५ भाग गंधक ६ भाग और लोहभस्म ७ भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे। सबको खरलमें डालके घीगुवारके रससे खरल करके कांचकी आतसी शीशीमें भर उसपर कपडमिट्टी करे और मुखपर मुद्रा करके सूखने पर उस शीशीको हांडीमें रखके शीशीके गले पर्यंत पिसा हुआ नमक भरके गला खुला रह-ने दे। फिर उस हांडीको परियासे ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीमें बंद कर देवे। फिर धूपमें सुखाय चूल्हेपर रखके नीचे मंद २ एक दिन तक अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषध निकालके खरलमें डाल आंकके दूधकी तीन पुट देय प-श्चात् १ असगंध २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ कौंचके बीज ४ मूसली ५ ताल-मखाने ६ शतावर ७ कमलगट्टा ८ कसेरू और ९ कसोंदी इन नौ औषधोंके पृथक् २ रस निकालके एक एककी तीन २ भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना। फिर १ कस्तूरी २ सोंठ ३ काली मिरच ४ पीपल ५ कपूर ६ कंकोल ७ इलायची और ८ लौंग इन आठ औषधोंका चूर्ण करके इस रसका आठवां भाग लेके मिलावे। फिर इसमेंसे १ शाण रस लेके उसकी बराबरकी मिश्री मिलाय दो पल (८ तोले) गौके दूधसे पीवे तो देह अत्यंत सुंदर होय, बलवान् तथा तेजस्वी होय, एवं अनेक तरु-णस्त्रियोंसे संभोग करनेसेभी वीर्यका क्षय नहीं हो। इस रसपर खटाई आदिका पथ्य करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे। इसे मदनकामदेव रस कहते हैं॥

---

१ आकके दूधकी तीन पुट देना जो कहा है सो घीगुवारका पुट देकर पश्चात् देना फिर उस औषधको शीशीमें भरके सिद्ध करे। जब सिद्ध हो जावे तब पश्चात् पुट देनेसे कदा-चित् वमन हो जावे इस वास्ते टीकाकारने पहले पुट देना कहा है। २ असगंध दो वार आई इस वास्ते इसकी पुट दूनी देवे।

कंदर्पसुंदररस वाजीकरणपर ।

सूतो वज्रमहिर्मुक्ता तारं हेम सिताभ्रकम् ॥ रसैः कर्षांशकाने- तान्मर्दयेदिरिमेदजैः ॥ २६३ ॥ प्रवालचूर्णं गंधश्च द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत् ॥ ततोऽश्वगंधास्वरसैर्विमर्द्य मृगशृंगके ॥ २६४ ॥ क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः ॥ काकोली मधुकं मांसी बलात्रयविशेंगुदम् ॥ २६५ ॥ द्राक्षापिप्पलिवंदाकं वरी- पर्णीचतुष्टयम् ॥ परूषकं कसेरुश्च मधूकं वानरी तथा॥२६६॥ भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत् ॥ एला त्वक्पत्रकं वं- शी लवंगागरुकेशरम् ॥२६७॥ मुस्तं मृगमदः कृष्णा जलं चंद्र- श्च मिश्रयेत् ॥ एतच्चूर्णैः शाणमितै रसं कंदर्पसुंदरम् ॥२६८॥ खादेच्छाणमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका ॥ एतेषां कर्षचूर्णे- न सर्पिःकर्षे सुसंयुतम् ॥ २६९॥ तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत् सुस्थितमानसः ॥ रमणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ॥२७०॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ हीरेकी भस्म ३ नागभस्म ४ मोती ५ रूपेकी भस्म ६ सुवर्ण भस्म और ७ सपेद अभ्रककी भस्म ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरलमें डालके खैरकी छालके रसमें खरल कर मूंगेका चूर्ण और गंधक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषधमें मिलायके असगंधके रससे खरल करे । फिर उसको हरणके सींगमें भरके उसपर कपडमिट्टी कर आरने उपलोंकी मंदाग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल खरलमें डालके आगे लिखी औषधोंकी पुट देवे । जैसे १ धायके फू- ल २ कंकोलके अभावमें असगंध ३ मुलहटी ४ जटामांसी ५ खरेंटीकी छाल ६ कं- गही ७ गंगेरण ८ भसीडा (कमलका कंद) ९ इंगुदी (हिंगोट) १० दाख ११ पीपल १२ वांदा १३ सतावर १४ माषपर्णी १५ मुद्गपर्णी १६ पृष्ठपर्णी १७ शाल- पर्णी १८ फालसे १९ कसेरू २० महुआ और २१ कौंचके बीज इन इक्कीस औषधोंका पृथक् २ रस निकालके इस रसमें न्यारी २ भावना देके सुखाय ले । इस रसको कंद- र्पसुंदररस कहते हैं । पश्चात् १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ४ वंशलोचन ५ लौंग ६ अगर ७ केशर ८ नागरमोथा ९ कस्तूरी १० पीपल ११ नेत्रवाला और १२ भीमसेनी कपूर इन बारह औषधोंके एक शाण चूर्णमें इस कंदर्पसुंदररसको एक शाण मिलायके एकत्र करे । इसको एक कर्ष घीमें मिलायके आंवला और विदारी-

कंद इनका चूर्ण तथा मिश्री ये एक एक कर्ष लेके उस घीमें मिलायके रात्रिमें पीवे। और उसी समय प्रसन्न चित्तसे दो पल गौका औटा हुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगनेपरभी धातु क्षीण नहीं होवे । अर्थात् अपार वीर्यवान् हो ॥

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर ।

शुद्धं रसेंद्रं भागैकं द्विभागं शुद्धगंधकम् ॥ क्षिपेत्कज्जलिकां कुर्यात्तत्र तीक्ष्णभवं रजः ॥ २७१ ॥ क्षिप्त्वा कज्जलिकातुल्यं प्रहरैकं विमर्दयेत् ॥ तत्र कन्याद्रवैः खल्वे त्रिदिनं परिमर्दयेत् ॥२७२॥ ततः संजायते तस्य सोष्णो धूमोद्गमो महान् ॥ अत्यंतं पिंडितं कृत्वा ताम्रपात्रे निधाय च ॥ २७३ ॥ मध्ये धान्यैकशूकस्य त्रिदिनं धारयेद्बुधः ॥ उद्धृत्य तस्मात्खल्वे च क्षिप्त्वा घर्मे निधाय च ॥२७४॥ रसैः कुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलं परिभावयेत् ॥ संशोष्य घर्मे क्वाथैश्च भावयेत्त्रिकटोस्त्रिधा ॥२७५॥ वासामृताचित्रकाणां रसैर्भाव्यं क्रमात्त्रिधा ॥ लोहपात्रे ततः क्षिप्त्वा भावयेत्त्रिफलाजलैः ॥ २७६ ॥ निर्गुंडीदाडिमत्वग्भिर्बिसभृंगकुरंटकैः ॥ पलाशकदलीद्रावैर्बीजकस्य शृतेन वा ॥ ॥ २७७ ॥ नीलिकालंबुषाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः ॥ त्रित्रिवेलं यथालाभं भावयेदेभिरौषधैः ॥ २७८ ॥ ततः प्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यां कोलमात्रकम् ॥ पलमात्रं वराक्वाथं पिबेदस्यानुपानकम् ॥ २७९ ॥ मासत्रयं शीलितं स्याद्वलीपलितनाशनम् ॥ मंदाग्निं श्वासकासौ च पांडुतां कफमारुतौ ॥२८०॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं हन्यादेतन्न संशयः ॥ वातास्रं मूत्रदोषांश्च ग्रहणीं तोयजां रुजम् ॥ २८१ ॥ अंडवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् ॥ बलवर्णकरं वृष्यमायुष्यं परमं स्मृतम् ॥ २८२ ॥ कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजिका तथा ॥ मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ २८३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां द्वितीयखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग दोनोंको खरलमें डालके कजली करे। फिर इसके समान पोलाद लोहका चूर्ण लेकर उस कजलीमें मिलाय एक प्रहर पर्यंत खरल करके घीगुवारके रसमें तीन दिन पर्यंत खरल करे। पश्चात् उस औषधमेंसे गरम २ अत्यंत धूआं निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबेके बासनमें रखके उसको धानकी रासमें गाड देवे। तीन दिनके बाद चौथे दिन उसको निकालके उस गोलेका चूर्ण कर धूपमें रखके वनतुलसीके रसकी ३ पुट देय। फिर सोंठ काली मिरच और पीपल इनका पृथक् २ काढा करके एक २ की तीन २ पुट देवे। पश्चात् अडूसा गिलोय और चित्रक इन तीनोंका पृथक् ३ रस निकाल क्रमसे तीन तीन पुट देय। पीछे इस रसायनको लोहकी कडाहीमें डालके आगे लिखी हुई औषधोंकी पुट देवे। जैसे १ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ निर्गुंडी ५ अनारकी छाल ६ भसीडा (कमलकंद) ७ भांगरा ८ पियावांसा ९ पलास १० केलेका कंद ११ विजैसार १२ नीलपुष्पी १३ मुंडी और १४ बबूलकी छाल इन चौदह औषधोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे एक एकके रसकी तीन २ पुट देवे पश्चात् इस रसायनको कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाय उसमें डालके सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफलाका काढा १ पल पीवे इस प्रकार इस रसायनको तीन महीने सेवन करे तो देहमें अत्यंत पुरुषार्थ हो सपेद बाल काले होवें सहत और पीपलके साथ लेवे तो मंदाग्नि श्वास खांसी पांडुरोग कफवायु ये दूर होवें। गिलोयसत्वके साथ मिलायके लेवे तो वातरक्त मूत्रदोष जलसे उत्पन्न हुई संग्रहणी अंडवृद्धि ये रोग दूर होवें। यह रसायन बलकर्त्ता कांतिकर्त्ता स्त्रीगमनविषयमें इच्छा देय है तथा आयुष्यकी वृद्धि करे इस रसायनके सेवन करनेवालेको पेठा तिल्लीका तेल उडद राई सहत खट्टे पदार्थ ये संपूर्ण वस्तु खाना मना है ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः।

क्षेपकश्लोकाः।

जैपालं रहितं त्वगंकुररसज्ञाभिर्मले माहिषे निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् ॥ लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसंनिभं निंबूकांबुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ–जमालगोटेके बीज लेकर उनके ऊपरकी छाल निकाल अंकुरके भीतरकी जिव्हाको दूर कर कपडेमें पोटली बांधके तीन दिन भैंसके गोबरमें रखे। चौथे दिन

निकालके उन जमालगोटोंको गरम जलसे धोय डाले । फिर उनको दूसरे उत्तम कपडेमें बांधके कपडेसहित खरल करे । जब बारीक चूर्ण हो जावे तब निकालके नये खिपडेपर उसको पोत देवे तो वे चिकनाईरहित होकर धूलके समान हो जावेंगे । फिर इनको नींबूके रसकी दो पुट देवे तो ये शुद्ध जमालगोटे विशेष गुण करनेवाले होते हैं ॥

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविषकी शुद्धि ।

विषं तु खंडशः कृत्वा वस्त्रखंडेन बंधयेत् ॥ गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥ २ ॥ गोमूत्रं च प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः ॥ त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् ॥ शुध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चार्तिजित् ॥ ३ ॥

अर्थ-बच्छनाग विषके टुकडे करके उनको कपडेमें पोटली बांधके एक घडेमें डूब जावे इस माफिक गोमूत्र भरके उसको तीन दिन धूपमें रखके धूप देवे और नित्य पुराने गोमूत्रको निकाल लिया कर उसमें नवीन गोमूत्र भर दिया करे । फिर चौथे दिन उस बच्छनागको बाहर निकालके धूपमें सुखाय लेवे । फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोगदूरकर्त्ता होय । बच्छनाग और सिंगिया विषमें केवल नाम भेद है ॥

विषशोधनका दूसरा प्रकार ।

खंडीकृत्य विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया ॥ ४ ॥
अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥
अजादुग्धैर्भावितस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अर्थ-बच्छनाग विषके टुकडे करके कपडेकी पोटलीमें बांधके दोलायंत्र करके बकरीके दूधमें एक प्रहर पर्यंत औटावे यदि बकरीका दूध न मिले तो गौके दूधमें औटावे तो शुद्ध होवे परंतु यह औरभी याद रहे कि १ तोले बच्छनागको सेरभर दूधमें औटावे और मंदाग्निसे पचन करावे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समाप्तमिदं द्वितीयं खण्डम् ।

---

१ सवस्त्र खरल करनेका यह प्रयोजन है कि वह कपडा उन जमालगोटोंकी चिकनाईको सोख लेवे ।

अथ

शार्ङ्गधरसंहितायां

तृतीयखण्डम् ।

प्रथमस्नेहपानविधिः ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ॥
मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किंचिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥

अर्थ-स्नेह चार प्रकारका है । जैसे घी तेल वसा (चरबी) मज्जा (हड्डीके भीतरका तेल) ये चार स्नेह यत्किंचित्सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ॥

स्थावरो जंगमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ॥
तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥ २ ॥

अर्थ-फिर स्नेह दो प्रकारका है १ एक स्थावर (जो वृक्षादिकसे उत्पन्न हो)और दूसरा जंगम (जो पशु मनुष्यादिकसे प्रगट होवे) स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं तिनमें तिलोंका तेल श्रेष्ठ है और जंगम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उन्होंमें घी श्रेष्ठ है । इस प्रकार स्नेहके दो भेद जानने ॥

स्नेहके भेद ।

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ॥

अर्थ-घी और तेल दोनोंको एकत्र करनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी तेल और वसा (मांसका तेल) ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहते हैं। और घी तेल मांस स्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं। इस प्रकार स्नेहके ये तीन भेद जानने चाहिये ॥

स्नेह पीनेका काल ।

पिबेत्त्र्यहं चतुरहं पंचाहं षडहं तथा ॥ ३ ॥

---

१ मांसकी अपेक्षा अष्टगुण घी है इस वास्ते प्रथम घृत कहा है । तथा घृतमें यह गुण अधिक है कि जिसके साथ रसका संयोग करो उसके गुणोंको करे और अपने गुणोंको-भी नहीं त्यागे इस वास्ते प्रथम घृतको धरा है ।

अर्थ-घी तीन दिन, तेल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और हड्डीका तेल छः दिन पीवे । इस प्रमाण क्रमसे घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना ॥

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होना ।

सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मीभवति सेवितः ॥

अर्थ-सात दिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य होता है फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता ॥

स्नेहकी स्थलविशेषमें योजना ।

दोषकालाग्निवयसां बलं दृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥
हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान्॥ ४ ॥

अर्थ-वातादिक दोष काल अग्नि अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन (दो कर्ष) मध्यम (तीन कर्ष) और ज्येष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य देखके योजना करनी चाहिये ॥

स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेह पीनेके दोष ।

अमात्रया तथा काले मिथ्याहारविहारतः ॥
स्नेहः करोति शोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञताः ॥ ५ ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेके कहे हुए परिणामको त्याग कर न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पीनेका काल त्यागके पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्या-हार[1] और मिथ्याविहार[2] करनेसे सूजन बवासीर तंद्रा निद्रा और संज्ञा नाश होते हैं । इस वास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे ॥

दीप्ताग्नि मध्यमाग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण ।

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसंमिता ॥
मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ॥ ६ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे । जिसकी मध्यमाग्नि है उस मनुष्यको तीन कर्ष प्रमाण देवे और जिसकी मंदाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्ष प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये ॥

---

१ अकालमें थोडा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृतिको जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देश विरुद्ध अथवा काल विरुद्ध पदार्थ तथा संयोग विरुद्ध पदार्थोंके भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है । २ जिस कर्मको करनेकी सामर्थ्य न होने-परभी बलात्कार करना उसको मिथ्या बिहार जानना ।

स्नेहकी मात्राओंका भेद ।

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोन्याः सर्वसंमताः ॥ ७ ॥
अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा ॥
जीर्यत्यल्पादिनार्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥ ८ ॥

अर्थ—संपूर्ण वैद्योंको मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा तीन हैं उनको कहते हैं जो मात्रा आठ प्रहरमें पचे उसको महती अर्थात् बडी मात्रा कहते हैं । इसे वह एक पलकी होती है । जो मात्रा एक दिनमें पचे उसको मध्यम कहते हैं, यह तीन कर्षकी जाननी । और जो मात्रा दो प्रहरमें पचे उसको अल्प अर्थात् छोटी मात्रा कहते हैं । यह दो कर्षकी मात्रा सुखकी देनेवाली है ॥

अल्पादि मात्राओंके गुण ।

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या वातदोषे सुपूजिता ॥
मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥
ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ॥ ९ ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेमें जो कर्षप्रमाणकी अल्प मात्रा है यह जठराग्निको प्रदीप्त करके स्त्रीसंगमें इच्छा प्रगट करती है तथा वातादिक दोषोंके अल्प प्रकोपका नाश करे । तीन कर्षकी जो मध्यम मात्रा है वह देहको पुष्ट करके धातुकी वृद्धि करे तथा भ्रमको दूर करे । और पल प्रमाणकी जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्ठरोग विषदोष उन्माद भूतादिक ग्रह तथा अपस्मार इन रोगोंको दूर करे ॥

दोषोंमें अनुपानविशेष ।

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ॥
पेयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमन्वितम् ॥ १० ॥

अर्थ—पित्तके कोपमें केवल घी पीनेको देवे । वादीका कोप होनेसे घीमें सैंधानमक मिलायके देवे । कफका कोप होय तो व्योष (सोंठ मिरच पीपल) और जवाखार इनका चूर्णकर घीमें मिलायके पिवावे ॥

घी पिलानेयोग्य प्राणी ।

रूक्षक्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ॥
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ ११ ॥

अर्थ—रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीडित है शरीर जिनका ऐसे

मनुष्योंको तथा जिन मनुष्योंके वातपित्तका विकार है उनको एवं हीन है धारणरूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहा है ॥

तैल पिलाने योग्य रोगी ।

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्याय तैलं दीप्ताग्नयस्तु ये ॥ १२ ॥

अर्थ–जिसके उदरमें कृमिविकार है, वादिकरके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यंत बढा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके ऐसे मनुष्योंको तेल पिलावे । एवं जिनकी प्रकृतिको तैल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये ॥

वसा (मांसस्नेह) पिलाने योग्य रोगी ।

व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्तमहारुजः ॥
महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः ॥ १३ ॥

अर्थ–मल्लादि युद्ध (दंड, कसरत, कुस्ती आदि) तथा धनुष आदिका खींचना इन करके पीडित है शरीर जिन्होंका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देहमें घोर है पीडा जिनके, तथा अग्नि और वायु ये प्रबल जिनके ऐसे मनुष्योंको वसा (मांसका स्नेह) पीने योग्य जानने चाहिये ॥

मज्जा पिलाने योग्य रोगी ।

क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः ॥
मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ॥ १४ ॥

अर्थ–दुष्ट है कोष्ठ जिनका, दुःख सहन करता तथा वादीसे पीडित है, एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी, ऐसे मनुष्योंको मज्जा (हड्डीका तेल) अथवा घी पिलानेसे देहको सुख देता है ॥

स्नेह पीनेमें कालनियम ।

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ॥
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ १५ ॥

---

१ जिस मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त है वायु शरीरमें जैसा वर्त्तना चाहिये ऐसा वर्त्तता हो अग्निके साथ हो अन्नका पचन करता है इसीसे आग्नि और वायु ये शक्तिके देनेवाले हैं यदि ये अनुकूल होवे तो मांसका स्नेह पचे अन्यथा नहीं पचे । २ आम अग्नि पक्क मूत्र यकृत् और प्लीहा छः स्थान तथा हृदय उंडुक और फुप्फुस इन नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ।

अर्थ-शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमें पीवे, गरमीकी ऋतुमें वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और वादी जिनके प्रबल हो वे घृतादि स्नेह दिनमेंही पीवे। इस प्रकार स्नेहपानका क्रम जानना॥

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना।

नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे॥
तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम्॥ १६॥

अर्थ-नस्य (नाकमें डालना) अभ्यंजन (देहमें मालिस करना) गंडूष (कुरले करना) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रोंके तर्पणमें वातादि दोषोंका बलाबल विचारके वैद्य तेल अथवा घीकी योजना करे॥

स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान।

घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते॥
वसामज्ज्ञोः पिबेन्मंडमनुपानं सुखावहम्॥ १७॥

अर्थ-घी पीकर उसपर गरम जल पीवे एवं तेल पीकर उसके ऊपर यूष[1] पीवे मांसस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मंड[2] पीवे तो सुखकारी होय। इस प्रकार स्नेहोंके अनुपान जानने॥

भातके साथ स्नेह पिलाने योग्य।

स्नेहद्विषःशिशून् वृद्धान् सुकुमारान्कृशानपि॥
तृष्णातुरानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत्॥ १८॥

अर्थ-घृतादिक स्नेहोंसे द्वेष है जिनको, तथा बालक वृद्ध और सुकुमार (नाजुक) मनुष्य तथा तृषाकरके पीडित ऐसे मनुष्योंको गरमीकी ऋतुमें भातके साथ घृतादिक स्नेह पिलावे॥

स्नेहके विना यवागूसे सद्यः स्नेहन होनेवाले।

सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतंदुला॥
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनकारिणी॥ १९॥

अर्थ-तिलोंको कूटकर उनमें थोडेसे चांवल मिलाय घी और पानी डालके चूल्हेपर चढायके औटावे। जब चांवल सीज जावे और लहपसीके समान पतली हो जावे उसको यवागू कहते हैं। इस यवागूको सुहाती २ गरम २ पीनेसे सद्यः स्नेहन करनेवाली जाननी॥

---

१ यूषका बनाना मध्य खंडमें लिख आये हैं सो देख लेना। २ भातके मांडको मंड कहते हैं। इसकी विधि द्वितीय खंडमें काढोंके प्रकरणमें लिखी है।

धारोष्ण दूधसे तत्काल धातु उत्पन्न होवे ।

शर्कराचूर्णसंभृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम् ॥
दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदुष्णं सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ-मिश्रीको पीसके घीमें मिलावे । फिर इस घीको चूल्हेपर थोडा गरम कर दूध औटानेके बरतनमें डाले । फिर उस बरतनमें गोका दूध औटावे और उसी समय गरमागरम पीवे तो सद्यः स्नेहन होवे ॥

मिथ्या आचारसे न पचे स्नेहका यत्न ।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ॥
विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ-घृतादि स्नेह पीकर उसपर व्यायामादिक परिश्रम होनेसे तथा कफकारी पदार्थ भोजनमें आनेसे वह स्नेह नहीं पचता है अथवा अत्यंत पीनेसे नहीं पचता अथवा मलका अवरोध करके पचे । ऐसे मनुष्योंको गरम जल पिलायके उलटी करावे तो स्नेहाजीर्णका दोष दूर होवे ॥

स्नेहजन्य अजीर्णका दूसरा यत्न ।

स्नेहस्याजीर्णशंकायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ॥ २२ ॥

अर्थ-घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होनेकी शंका होनेसे उसपर गरम जल पीवे तो शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नपर इच्छा जानेसे अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने ॥

स्नेहअजीर्णका द्वितीय यत्न ।

स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥
तदास्योदीरयेत्तृष्णां विषमां तस्य पाययेत् ॥
शीतं जलं वामयेच्च पिपासा तेन शाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी अद्धे पित्तकी प्रकृति होती है उस मनुष्यकी अग्नि घृतादिक स्नेह पीनेसे अत्यंत तीक्ष्ण होकर तृषाको अत्यंत बढाती है ॥

स्नेहसे पित्तका कोप होकर तृषा बढनेका उपाय ।

अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरी तरुणज्वरी ॥ दुर्बलो रोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥ २५ ॥ दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च वांतितृष्णाश्रमान्वितः ॥ अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-अजीर्णका विकार और उदररोग है जिसके, तथा तरुणज्वर दुर्बल अरुचि रोगी स्थूल मनुष्य, मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, बस्तिकर्म किया हुआ, तथा जिसको दस्त होते हों, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होनेके कालको छोडकर तत्काल प्रसूता स्त्री, इतने रोगियोंको दुर्दिनमें कोईसा घृतादि स्नेहपान नहीं करना चाहिये ॥

स्नेहपान अयोग्य मनुष्य ।

स्वेद्य संशोध्य मद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः ॥
वृद्धा बालाः कृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः ॥
वातार्तितिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥ २७ ॥

अर्थ-औषधादिक करके जिनका पसीना निकाला है ऐसे मनुष्य, रेचक औषध करके शोधन किये हुए मनुष्य, मद्य पीनेवाले, स्त्रीमें आसक्त, परिश्रम कर चुके हो, चिंता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण हैं रुधिर और धातु (वीर्य) जिन्होंके, वादीसे पीडित और तिमिर रोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके अयोग्य हैं ऐसा जानना ॥

स्नेह पीने योग्य मनुष्य ।

वातानुलोम्यं दीप्तोग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥ मृदुस्नि-ग्धांगताग्लानिः स्नेहोऽवेगोऽथ लाघवम् ॥ विमलेंद्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ २९ ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेसे अंगकी रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण-वायुका अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ होय, शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है । घृतादिस्नेहोंके सेवन न करने-से उनके उपद्रव नहीं होते, शरीर हलका होवे तथा इन्द्री निर्मल होवे इस प्रकार उत्तम स्नेहपान गुण करता है । एवं रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीरमें स्नेह करके स्नेह न होनेसे जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं ॥

अत्यंत स्नेहपानके उपद्रव ।

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ॥
तंद्रातिसारः पांडुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ३० ॥

अर्थ-जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है । उसके लक्षण-भोजनमें अप्रीति,

मुखसे लारका गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पड जावे ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने ॥

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना।

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ॥
श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ३१ ॥

अर्थ–रूक्ष मनुष्यको स्निग्ध पदार्थ जैसे तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिलका कल्क, चूर्ण करके स्निग्ध करे। एवं स्निग्ध मनुष्यको रूक्ष पदार्थ जैसे सामखिया और चने आदिसे रूक्ष करना चाहिये ॥

स्नेहादिक सेवनके गुण।

दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेंद्रियः ॥
निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ॥ ३२ ॥

अर्थ–घृतादिक स्नेहोंके सेवन करनेसे मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीरकी रसादिक धातु पुष्ट होती है। वह मनुष्य जितेन्द्रिय होवे तो वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इन करके युक्त होता है। ये गुण स्नेह सेवन करनेसे होते हैं ॥

स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ।

स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥
दिवास्वप्नमभिष्यंदि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

इति शार्ङ्गधरे तृतीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–स्नेह पीनेवाले मनुष्यको परिश्रम करना, अत्यंत शीतल पदार्थ, मलमूत्रादि वेगोंका धारण, जागना, दिनमें सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वर्जित हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां चिकित्सास्थाने उत्तरखंडे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

स्नेहपानानंतर पसीने काढनेकी विधि तथा उसके भेद कहते हैं।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मौ स्वेदसंज्ञितौ ॥
उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ॥ १ ॥

अर्थ–पसीने निकालनेकी विधि चार प्रकारकी है। जैसे–१ ताप[1] २ ऊष्म[2] ३ उपनाह[3] और ४ द्रव[4] ये चारों वादीकी पीडा दूर करनेवाले हैं॥

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ॥
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसंगे द्रवो हितः॥ २॥

अर्थ–ताप और ऊष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालनेके प्रकार हैं वे दोनों कफके नाशक हैं। उपनाह नामक जो स्वेद काढनेका प्रकार है वह वादीका नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालनेका जो प्रकार है वह पित्त और वादीको नष्ट करता है॥

वादीकी तारतम्यताके साथ न्यूनाधिक स्वेदकी योजना।

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान् स्मृतः॥
दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः॥ ३॥

अर्थ–जिस प्राणीके देहमें घोर वादीका रोग है उसके देहसे शीतकालमें बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोडा रोग होय तो देहसे थोडे पसीने निकाले। एवं देहमें मध्यम रोग होय तो वैद्य उस रोगीके देहसे मध्यम पसीने निकाले। इसमेंभी देश काल आदिका विचार वैद्यको करना मुख्य है॥

रोगविशेषकरके स्वेदविशेषकी योजना।

बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले॥ कफमेदोवृते वाते कोष्णगेहं रवेः करान्॥ ४॥ नियुद्धं मार्गगमनं गुरुप्रावरणं ध्रुवम्॥ चिंताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये॥ ५॥

अर्थ–कफका रोग होनेसे रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंगका पसीना निकाले। कफवायुके रोगमें स्निग्ध तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थोंकरके[5] पसीने निकाले। एवं कफ मेदोयुक्त वादीका रोग होय तो जिस घरमें गरमी होय उस जगह बैठकर अंगको सहन होय ऐसी थोडी २ गरमीको सहन करे, तथा सूर्यकी किरण (धूप) खाय, कुश्ती लडे, कुछ थोडा मार्ग चले, कंबल सौड रिजाई इत्यादि ओढे, चिंता करे, प्रातःकाल बैठा न रहे, परिश्रम करे, तथा किसी एक अंगपर बोझा धारण करे।

---

१ वालुकादिकोंकी पोटलीसे शरीरको तपायकर पसीने निकालनेको ताप कहते हैं। २ काढे आदिका वफारा देकर पसीने निकालनेको ऊष्म कहते हैं। ३ रोगके स्थानपर औषधादिकोंकी पिंडी बांधके पसीने निकालनेको उपनाह कहते हैं। ४ पतले द्रव्यके योग करके पसीने काढे उसको द्रव कहते हैं। ५ घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनोंकी एकत्र पोटली बनायके देहको सेके। ये संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीनेके जानने।

इतने उपाय पसीने निकालनेको करे तो कफ और मेदोयुक्त वादीका रोग दूर होय ॥

जिनके प्रथम पसीने काढना ।

येषां नस्यं विधातव्यं बस्तिश्चापि हि देहिनाम् ॥
शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य नस्यकर्म[1]के योग्य हैं तथा बस्तिकर्म[2]के योग्य हैं तथा दस्त देने योग्य हैं इतने मनुष्योंके अंगसे प्रथम पसीने काढकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये ॥

भगंदरादि रोगमें स्वेदनकी आज्ञा ।

स्वेद्याः पूर्वं त्रयोऽपीह भगंदर्यर्शसस्तथा ॥
अश्मर्याश्चातुरो जंतुः शमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके भगंदर रोग हो तथा बवासीरवाला और पथरी रोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकारके मनुष्योंके अंगका प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगोंको शमन करे । अर्थात् इन रोगोंमें स्वेदन करनेसे वह नम्र होकर शस्त्रकर्मके योग्य हो जाता है ॥

पश्चात् पसीने निकालने योग्य प्राणी ।

पश्चात्स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगदे तथा ॥
काले प्रजाताकाले वा पश्चात् स्वेद्या नितंबिनी ॥ ८ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके उदरमें गर्भका सल होवे उसका पतन होनेके पश्चात्, मूढगर्भका पतन होनेके पश्चात्, तथा नौ महीनेके पश्चात्, अथवा नौ महीनेके पूर्व प्रसूत होनेसे उस स्त्रीके देहसे पसीने निकाले ॥

पसीने निकालनेमें देश और काल ।

सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णाहारे च कारयेत् ॥

अर्थ-ये चारों प्रकारके पसीने मनुष्योंके आहार पचनेके पश्चात् जिस स्थानमें वायुका लेशमात्र न आता होय उस जगह करने चाहिये ॥

पसीने काढनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं ।

स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहस्निग्धस्य देहिनः ॥
द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठांतर्गता यांति विरेकताम् ॥ ९ ॥

---

१ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्यकर्म कहते हैं । २ गुदामें पिचकारी मारनेके कर्मको बस्ती कहते हैं ।

अर्थ-औषधादिकों करके मनुष्यके अंगसे पसीने निकालनेसे तथा किसी बडे बरतनमें तेल[1] भरके उसमें मनुष्य बैठनेसे उसके रसादिक धातुओंमें रहनेवाले वातादिक दोष कोष्ठमें जायकर पतले हो गुदाके द्वारा गिरते हैं ॥

पसीने निकालनेके पश्चात् दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा ।

स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ १० ॥

अर्थ-मनुष्यके पसीने निकालनेसे उस रोगीके दोष पेटमें पतले होकर गुदाके द्वारा निकल जावें तब उसकी छातीमें चंदनका लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ होय। तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा निकल जावें तब नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतल करनेको रखे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे ॥

अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ॥ अतिसारी रक्तपित्ती पांडुरोगी तथोदरी ॥ ११ ॥ मदार्तो गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या विजानता ॥ एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यंत तृषा अतिसार रक्तपित पांडुरोग उदर और मद इनमेंसे कोईसा विकार जिस मनुष्यके होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री ये रोगी पसीने काढनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् इनके देहसे पसीने न निकाले । यदि ये रोगी पसीने निकालनेसेही अच्छे होते दीखें तौ हलके उपाय करके थोडे पसीने निकाले ॥

अल्प पसीने निकालने योग्य रोगी ।

मृदुस्वेदं प्रयुंजीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १३ ॥

अर्थ-हृदय अंडकोश और नेत्र इनका पसीना होय तो थोडा निकाले ॥

अत्यंत पसीने निकालनेके उपद्रव ।

अतिस्वेदात् संधिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः ॥
पित्तासृक्पिटिका कोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ॥ १४ ॥

अर्थ-देहसे अत्यंत पसीने निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा हो, तृषा ग्लानि भ्रम और रक्तपित्त ये उपद्रव हैं । तथा देहपर फुंसी प्रगट होवे । इनके नष्ट करनेको शीतल उपाय करे तो स्वेदके उपद्रव दूर होवें ॥

---

१ नाभीके नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्रमें भरके बैठे ।

चार प्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञक पसीनेके लक्षण ।

तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः ॥
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यं प्रजायते ॥ १५ ॥

अर्थ-चार प्रकारके पसीने हैं उनमें ताप इस नाम करके पसीना है वो १ वालु[१] २ वस्त्र ३ हाथ ४ खीपडा ५ कपडेकी गेंद और ६ अंगार इन करके वालुकादिकमें जैसी २ शक्ति है उसी २ प्रकारका उत्पन्न होता है ॥

ऊष्मसंज्ञक पसीनेके लक्षण ।

ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिंडेष्टिकादिभिः ॥ प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते ॥ १६ ॥ अथ वा वातनिर्णाशिद्रव्याध्यायरसादिभिः ॥ उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च ॥ ॥ १७ ॥ विमृद्यास्यं त्रिखंडां च धातुजां काष्ठवंशजाम् ॥ षडंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युंज्याद्विहस्तिकाम् ॥ १८ ॥ सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् ॥ हस्तिशुंडिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १९ ॥ पुरुषायाममात्रां वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ ॥ २० ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ॥ एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥

अर्थ-ऊष्म इस नाम कर जो पसीना हैं उसकी क्रिया लोहेका गोला अथवा ईंटको तपाय उसपर थोडा खट्टा[२] पदार्थका छिडकाव करके रोगीको कंबल उढायके उस गोलासे अथवा ईटसे उस रोगीके अंगोंको सेके तो पसीने निकले । यह एक प्रकार है । अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढेसे अथवा उन औषधोंके रसको गरम कर मिट्टीकी गागरमें भरके उस गागरके मुखपर मुद्रा[३] देकर मुखको बंद कर देवे । फिर उस गागरके कूखमें छिद्रकर धांतुकी[४] अथवा लकडीकी अथवा बांसकी दो

---

१ ये छः प्रकार कहे हैं । इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकडीके धूंआरहित तथा दहकते हुए अंगारे करके उनपर वालूको तपावे फिर उस वालूको अंडके पत्तोंपर रखके उसकी पुडिया बांधके मनुष्यकी देहको सेके तो अंगोंसे पसीने निकलें । यह पसीने निकालनेका एक प्रकार है । २ छाछ कांजी इत्यादिक खट्टे पदाथ । ३ उस गागरके मुखपर डाट देके उसको दहकते हुए कोलोंपर धरे तो उस नलीके रास्ते वाफ उत्तम प्रकारसे बाहर निकले । ४ ताम्र लोह इत्यादि धातुओंकी नली बनावे ।

हाथकी नली बनावे उस नलीमें तीन संधि करे उसका मुख छः अंगुल लंबा और ऊंचा अथवा गौके पूंछके समान करे । इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके सदृश होनेसे इसको हस्तिशुंडिका नाडी कहते हैं । फिर इस नलीको गागरकी कूखमें उस छिद्रमें जडके फसाकर संधियोंको बंद कर देवे । फिर वादीसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करके सोड रजाई अथवा कंबल ओढा उस कपडेके भीतर उस नलीका मुख करके देहसे पसीने निकाले । अथवा मनुष्यके साडे तीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे । कोला हो जावे तब तत्काल उनको निकालके उस जमीनमें दूध धान्योदक छाछ अथवा कांजी इनसे छिडक कर तथा उस जमीनमें वादीहरण करता औषधोंके पत्ते बिछाय उसपर रोगीको सुलायके रोगीके देहके पसीने निकाले । इसी प्रकार उडदोंको ले उनको थोडेसे उबाल जब अधकच्चे हो जावें तब उनको तपी हुई पृथ्वीमें फैलायके उनके ऊपर अंडके पत्ते आदि वातहारक औषधोंके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलायके ऊपरसे कंबल उढाके अंगके पसीने निकाले । इस प्रकार ऊष्म संज्ञक पसीनेके लक्षण जानने ॥

उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण ।

अथोपनाहस्वेदं च कुर्याद्वातहरौषधीः ॥
प्रदिह्य देहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः ॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतः ॥ २२ ॥

अर्थ-उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया कहते हैं । दशमूलादि वायुहारक औषधोंको कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह ये दोनों मिलायके कुछ गरम करके वायुपीडित जो अंग, उस अंगको सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिकी पट्टीसे बांध अंगका पसीना निकाले । अथवा वातहारक औषधोंको कूट-कर चूर्ण करे । उसको छाछमें अथवा कांजीमें पीसके उसमें थोडा सैंधानमक और तिलका तेल मिलाय कुछ गरम करके वादीसे पीडित अंगपर सहता २ गाढा लेप करके वस्त्रादिकसे बांधकर अंगका पसीना निकाले। इस क्रियाको उपनाह संज्ञक कहते हैं ॥

---

१ अंडके पत्ते आकके पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्तोंको वातहर जानने । अथवा अंगारोंपर अपने हाथ गरम कर २ के रोगीके अंगोंको सेके तथा कपडेकी गेंद करके अंगारोंपर गरम कर उस गेंदसे रोगीके अंगोंको सेके । अथवा केवल कपडेकोही अंगारोंसे गरम करके उस कपडेसे अंगोंको सेके । अंगारोंको खिपडेमें भर उस खिपडेसे युक्तिके साथ रोगीके अंगमें सेक लगे इस प्रकार रक्खे । इतने उपायोंसे पसीना निकलता है ।

दूसरा प्रकार महाशाल्वण प्रयोग ।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २३ ॥ दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिना तथा ॥ कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ ॥ २४ ॥ शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥ एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥२५॥ मिशिकृष्णाकुटेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः॥ प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ॥२६॥ गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः ॥ क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ महाशाल्वणसंज्ञोयं योगः सर्वानिलार्तिजित् ॥ २७ ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस[1] अनूपमांस[2] जीवनीयगणकी[3] औषधि गौका दही सौवीर[4] सज्जीखार जवाखार रेहका खार वीरतर्वादिगणकी[5] औषधि कुलथी उडद गेंहू अलसी तिल सरसों सौंफ देवदारु निर्गुंडी कलौंजी अंडकी जड अंडके बीज रास्ना मूली सहजना हालो पीपल वनतुलसी पांचों नमक अनारदाना प्रसारणी असगंध गंगेरनकी छाल दशमूलकी सब औषधि गिलोय और कौंचके बीज इन संपूर्ण औषधियोंमेंसे जो मिले उन सबको लायके कूट डाले । फिर कुछ गरम करके कपडेकी पोटली बांधके उस पोटलीसे रोगीके अंगोंको सेके तो संपूर्ण वादीकी पीडा दूर होय । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं इस प्रकार उपनाह संज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ॥

द्रव्यसंज्ञक स्वेदके लक्षण ।

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यक्काथेन पूरिते ॥ कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोऽवगाहयेत् ॥ २८ ॥ सौवर्णे राजते वापि ताम्रआयसदारुजे ॥ कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षड्त्रिंशदंगुलम् ॥ २९ ॥ आयामेन तदेव स्याच्चतुष्कंटसृणं तथा ॥ नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नः क्काथस्य धारया ॥ ३० ॥ कोष्ठके स्कंधयोः सिक्ता तिष्ठे-

---

१ मुरगा बकरा भेड इत्यादिकोंके मांसको ग्राम्य मांस कहते हैं । २ जलमुरगाबी बतक चकवा और मछली आदि जलचरोंके मांसको अनूप मांस कहते हैं । ३ जीवनीयगणकी औषधें दूसरे खंडमें लिखी हैं । ४ कच्चे अथवा पके जवोंको कूट तुस निकाल पानी डालके तीन दिन धरा रहने दे उसको सौवीर कहते हैं । इसी प्रकार गेंहूकाभी जानना । ५ येभी वीरतर्वादि काढेमें देखे ।

त्स्निग्धतनुर्नरः ॥ एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ ॥ ३१ ॥ एकांतरे द्व्यंतरे वा स्नेहो युक्तोऽवगाहने ॥ शिरा-मुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ ३२ ॥ शरीरे बलमाधत्ते युक्तः स्नेहावगाहने ॥ जलसिक्तस्य वर्धंते यथामूलेंऽकुरास्तरोः ॥ ॥ ३३ ॥ तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः ॥ ३४ ॥

अर्थ–द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् काढनेकी विधि कहते हैं । दशमूलादि वातहारक औषधोंका काढा करके रोगीके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करे । उसको कढाईमें अथवा तांबेके बडे पात्रमें बैठायके पूर्वोक्त काढेकी गरमागरम सुहाते २ की धार उस मनुष्यके कंधोंपर डाले । यह धार टूडी (नाभि) पर छः अंगुल पर्यंत चढे तहांतक डालता रहे । इसी प्रकार तेलकी दूधकी अथवा घीकी धार डाले और उसको घर्मयुक्त करे । इस प्रकार एक दिनका बीच देकर अथवा दो दिन बीचमें देकर करे तो शिराओंके मुखद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोंमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यंतर प्रविष्ट होकर शरीरमें बल उत्पन्न करते हैं । इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वृक्षकी जडमें वारंवार जलसे-चन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तेलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और वादीका नाश होता है । इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नहीं है ॥

पसीने निकालनेकी अवधि ।

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ॥
दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३५ ॥

अर्थ–अंगसे सरदी और शूल (दर्द) इनकी शांति होनेपर अंगका स्तंभ तथा भारीपन ये दूर होनेसे तथा अग्नि प्रदीप्त होनेसे एवं अंगोंमें नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीने निकालना बंद करे ॥

स्वेद निकालके पश्चात् उपचार ।

सम्यक् स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ॥
भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च न कारयेत् ॥ ३६ ॥

इति शार्ङ्गधरे उत्तरखंडे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके अंगसे पसीने निकाले हैं उसको और जिसके देहमें तेलकी

मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे । कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे । इसप्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे उत्तरखंडे माथुरीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

वमनविरेचनकाल ।

शरत्काले वसंते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ॥
वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

अर्थ-शरद[1] कालमें वसंत[2] कालमें और प्रावृट्[3]कालमें कुशल वैद्य, मनुष्यको वमनकी औषध देकर रद्द करावे और दस्तकारी औषधि (जुल्लाब) देवे तो प्रकृती ठीक रहे कुशल वैद्यके कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे । क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करनेसे प्राणबाधाका भय रहता है ॥

वमन करानेयोग्य रोगी ।

बलवंतं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम् ॥ तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ २ ॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मंदेऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ॥ हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ३ ॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ॥ अपस्मारज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावे द्विजिह्वके ॥ गलशुंड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ॥ ५ ॥

अर्थ-बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार वहती हो जिसको वमन करना सह जाता हो धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गंडमालाका भेद, अपचीरोग, खांसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडी, अतिसार, पित्त श्ले-

---

१ तुला वृश्चिक संक्रांतसे शरत काल होता है । २ कुंभ मीनकी संक्रांतिका वसंत काल । ३ और वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट् काल कहते हैं । सो मिथुन कर्कसंक्रांतिका जानना ।

ष्मके रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमेंसे रोग जिसके होय उस रोगीको वैद्य वमन करावे ॥

वमनमें अयोग्य प्राणी ।

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥६॥ नातिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलः क्षतातुरः ॥ मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ ७ ॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिः केवलानिली ॥ पांडुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥ एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुक्काथप्रपानतः ॥ ९ ॥

अर्थ–तिमिर गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री बडे स्थूल पुरुष उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित (भूखा) निरूहित (गुदाद्वारा पिचकारी दीनी जिसके), जिसके उदावर्त रोग हो ऊर्ध्वरक्ती[१] जिसको वमन न सहती हो जिसके केवल वादिका रोग होय पांडुरोगी, कृमिरोगी, तथा वेदशास्त्रके अत्यंत उच्च स्वर पढनेसे जिसका कंठ बैठ गया हो इतने रोगियोंकी वमन नहीं कराना चाहिये, यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्याप्त होवें तो इनको मुलहटीका अथवा महुआकी छालका काढा पिलायके वमन करावे ॥

वमनके अयोग्य प्राणी ।

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) मनुष्य कृश[३] बालक वृद्ध डरपोक इन पांच मनुष्योंको वमनकर्त्ता औषधी नहीं देनी चाहिये ॥

वमनमें विहित पदार्थोंको कहते हैं ।

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरतक्रदधीनि च ॥
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्य देहिनः ॥
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको वमन कराना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू[४] दूध छाछ

---

१ ये संपूर्ण रोग प्रथम खंडकी सातवी अध्यायमें कहे हैं उनसे जान लेना । २ रक्तपित्तके कोप करके जिनके ऊर्ध्व (मुख नासिका आदि होकर) रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्व रक्तपित्ती जानना । ३ कृश बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे ऐसा प्रथमही लिख आये हैं परंतु निश्चयार्थ फिरभी लिखा है ऐसे जानना चाहिये । ४ चांवलोंको कूटके उसमें छः गुना जल मिलायके औटावे जब एक जीव हो जावे तब उतार लेवे । इसको यवागू कहते हैं।

अथवा दही पीनेको देवे । जो पदार्थ अपनी प्रकृतिको न भावते होवें वे पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्योंके दोषोंको उत्क्लेशित करे तो उस मनुष्यको भले प्रकार वमन होवे । जिस मनुष्यने घृतपान किया है उस मनुष्यको एक दिन बीचमें देकर वमन करना उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करनेसे उत्तम रद्द होती है ॥

वमनमें सहायकपदार्थ ।

वमनेषु च सर्वेषु सैंधवं मधु वा हितम् ॥
बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ–जितने वमनकारक प्रयोग हैं उन सबमें सैंधानमक अथवा सहत इनको मिलावे तो हितकारी है । वमन देवे तो बीभत्स[1] देवे और यदि जुल्लाब कराना होय तो घृतके विना देवे ॥

वमनप्रयोगमें काढे करनेका प्रमाण ।

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ॥
अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ–काढेकी औषधि १ कुडव[2] ले कुछ कूटके उसमें एक आढक[3] जल डालके औटावे । जब आधा जल रह जावे तब उतार छानके वमनके वास्ते पीनेको देवे ॥

वमनमें काढा पीनेका प्रमाण ।

क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ॥
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥

अर्थ--जिस मनुष्यको वमन कराना है उसको नौ प्रस्थ[4] काढा पीना बडी मात्रा जाननी । छः प्रस्थ काढा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढेकी लघु मात्रा जाननी चाहिये ॥

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण ।

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया ॥
मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ १५ ॥

---

१ वमन करानेवाली औषधोंमें घी मिलायके वमन देनेको बीभत्स वमन कहते हैं । २ चार पलोंका कुडव जानना उस कुडवके व्यावहारिक तोले १६ होते हैं । ३ चार प्रस्थका एक आढक जानना उस आढकके तोले २५६ होते हैं । ४ वमन विषयमें जो काढा लेना कहा है तहां साडे तेरह पलका एक प्रस्थ जानना इस हिसाबसे नौ प्रस्थ काढा लेवे ।

अर्थ–कल्क[1] चूर्ण और अवलेह ये तीन तीन पल लेना बडी मात्रा कहलाती है। दो पलकी मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पलकी छोटी मात्रा जाननी चाहिये ॥

वमनमें उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण।

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः ॥
षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरा मताः ॥ १६ ॥

अर्थ–इस प्राणीको वमनकारक औषधि देनेसे सात वेग पर्यंत संपूर्ण दोष निकल कर आठवें वेगमें पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने। उसी प्रकार पांच वेग पर्यंत दोष निकलके छटे वेगमें पित्त पडनेसे वे मध्यम वेग जानने। एवं तीन वेग पर्यंत दोष निकलकर चतुर्थ वेगमें पित्त निकले तो उस प्राणीको वमनके हीन वेग हुए ऐसे जानना ॥

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ॥
सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

अर्थ–वमन होनेके विषयमें तथा दस्त होनेमें जो औषध प्रस्थ प्रमाण लेनी कही है वहांपर साडे तेरह पलका प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलनेमेंभी १३॥ पलका प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है ॥

वमनमें औषध विशेषकरके कफादिकका जय।

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ॥
सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १८ ॥

अर्थ–कटु और तीक्ष्ण[2] औषधोंसे कफको जीत मधुर[3] और शीतल औषधोंसे पित्त तथा मधुर क्षार अम्ल और उष्ण औषधोंसे वातमिश्रित कफको जीते ॥

कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध।

कृष्णाराठफलैः सिंधुकफे कोष्णजलैः पिबेत् ॥
पटोलवासानिंबैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥ १९ ॥
सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् ॥
अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ २० ॥

---

१ सूखी औषधमें जल डालके चटणीके समान पीसे उसको कल्क कहते हैं। २ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती हैं। ३ अनार मुनक्का दाख मिश्रीआदि मधुर औषधि जाननी।

अर्थ–कफदोषमें पीपल मैनफल और सैंधानमक इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ कफ निकले । तथा पित्तदोषमें पटोलपत्र अडूसा और कटुनिंबके पत्तोंका चूर्ण करके शीतल जलमें मिलायके पीवे तो वमनमें पित्त निकले । तथा कफवायुकी पीडा होय तौ मैनफलके चूर्णको दूधमें डालके पीवे तो वमन करनेसे कफवायुकी पीडा दूर होवे । तथा अजीर्णमें गरम जलमें सैंधानामक डालके पीवे तो वमन होनेसे इस प्राणीका अजीर्ण दूर होवे ॥

वमन करनेमें बाह्योपचार ।

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम् ॥
कंठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्भिषक् ॥
ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–मनुष्यको वमनकारक औषधि देकर घोंटू २ ऊंचे आसनपर बैठावे । और अंडकी नालको लेकर उसको मुखमें डालके हलके हाथसे जैसे कफको स्पर्श करे इस प्रकार कंठको सिरावे इस प्रकार भीतर बाहरसे कंठको सिराय २ के वैद्य मनुष्यको रद्द करावे तथा उस रद्द करनेवालेके मस्तकको तथा उसकी दोनों कूख (पसलियों) को धीरे २ हाथसे सिराना चाहिये ॥

उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव ।

प्रसेको हृद्ग्रहः कोष्ठः कंडूर्दुश्छर्दितान्द्भवेत् ॥ २२ ॥

अर्थ–वमनका उत्तमयोग न होनेसे मुखसे लार गिरे हृदयमें पीडा होवे देहमें कोठे और खुजली होय ॥

अत्यंत वमन होनेके उपद्रव ।

अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञता ॥
जिह्वानिःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥
रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनं च कंठे पीडा च जायते ॥ २३ ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत तृषा लगे, हिचकी, डकार आना, अंगोंका जकडना, संज्ञाका नाश, जीभ मुखसे बाहर निकल पडे, नेत्र फटेसे होकर चंचल होवें, भ्रम, ठोडीका जकडना अथवा पीडाका होना, मुखसे रुधिरका गिरना, वारंवार थूकना तथा कंठमें पीडा ये उपद्रव अत्यंत वमन होनेसे होते हैं ॥

---

१ मोहारकी मक्खीके काटनेसे जैसे चकत्ता देहमें हो जाते हैं उसी प्रकारके चकत्ते उठें क्षणमात्रमें नष्ट हो जावें और उनमें खुजली होकर लालवर्ण हो जावें उसे कोठ कहते हैं ।

अत्यंत वमन होनेकी चिकित्सा ।

वमनस्यातियोगेन मृदु कुर्याद्विरेचनम् ॥ २४ ॥

अर्थ-यदि मनुष्यको अत्यंत रद्द होती होवे तो उसको हलकासा जुल्लाब करावे ॥

रद्द करते २ जीभ भीतर चली गई हो उसकी चिकित्सा ।

वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः ॥
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ॥
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येग्रतो नराः ॥ २५ ॥

अर्थ-अत्यंत उलटी करते २ यदि मनुष्यकी जीभ भीतर धस गई हो तो मनको प्रसन्न कारक खट्टे तीक्ष्ण मीठे नमकीन पदार्थ भातके साथ भोजनको देवे तथा घी और दूध ये भातके साथ देवे तथा उस रोगीके साह्मने दूसरा मनुष्य निंबू अथवा नारंगीको चूस २ कर खाय तो मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आकर प्रकृति स्वच्छ होय ॥

रद्द करते २ जीभ बाहर निकल पडी होय उसका उपाय ।

निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-मनुष्यकी जीभ रद्द करते २ यदि बाहर निकल आई हो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसका जीभपर वैद्य लेप करके जीभको भीतर प्रविष्ट करे ॥

वमनसे नेत्रोंमें विकार होनेका उपचार ।

व्यावृत्ताक्ष्णि घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके उलटी करते २ नेत्र फटेसे हो गये हों.उसके नेत्रोंमें हलके हाथसे घी लगायके ठिकानेपर करे ॥

उलटी करते २ ठोडी रह गई हो उसका उपचार ।

हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत् ॥ २७ ॥

अर्थ-मनुष्यकी उलटी करते २ ठोडी रह जावे उसके अंगोंका पसीना निकाले तथा कफवायुनाशक औषधी नाकमें डाले तों ठोडीका स्तंभ दूर होवे ॥

उलटी करते २ रुधिर गिरने लगे उसका उपाय ।

रक्तपित्तविधानेन रक्तछर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ-मनुष्यको अत्यंत रद्द होनेसे अंतमें रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्तरोग-पर उपाय कहे हैं उन उपायोंको करके रुधिरकी उलटीको शांत करे ॥

अत्यंत वमन होनेसे अधिक तृषा लगनेका यत्न ।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचंदनवारिभिः ॥ २८ ॥

मंथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २९ ॥

अर्थ-१ आंवले २ रसोत ३ नेत्रवाला ४ साली चांवलोंकी खील ५ लाल चंदन और ६ नेत्रवाला इन छः औषधोंका मंथ करके उसमें घी सहत और मिश्री डालके पीवे तो वमनके कारण जो तृषादिक उपद्रव होते हैं वे दूर होवें ॥

उत्तम वमन होनेके लक्षण ।

हृत्कंठशिरसां शुद्धिं दीप्ताग्नित्वं च लाघवम् ॥
कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वांतस्य चेष्टितम् ॥ ३० ॥

अर्थ-जो प्राणी उत्तम प्रकारकी उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि हृदय कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष उनको दूर कर उनकी शुद्धि होवे । अग्नि प्रदीप्त हो; अंग हलके हो तथा कफदोष और पित्तदोष ये दोनों दूर होवें ॥

ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ-जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीप्त होवे । ऐसे मूंग और साठी चांवल मनको प्रियकर्त्ता ऐसे वनके हरिणादिकोंके मांसका रस इन सबका यूंष बनायके उसके साथ भोजन करे ॥

उत्तम वमनका फल ।

तंद्रानिद्रास्यदौर्गंध्यं कंडूं च ग्रहणीं विषम् ॥
सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा निद्रा मुखकी दुर्गंधी खाज संग्रहणी रोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् नहीं होते ॥

---

१ दारुहलदीका काढा करके उसके समान बकरीका दूध उसमें मिलायके औटावे जब खोवा हो जावे तब सुखायके चूर्ण कर लेवे । इसको रसोत वा रसांजन कहते हैं । २ आंवले आदि छः औषधोंको एक पल ले जब कूटकर ४ पल जल हांडीमें डाल औषध मिलायके मथ डाले फिर नितारके पानी छान लेवे इसको मंथ कहते हैं । ३ जो धान साठ दिनमें पक जाते हैं उनके चांवलोंको साठी चावल कहते हैं । ४ मूग और साठी चांवल १ पल ले जल १ प्रस्थ डालके औटावे जब औटाके पेयाके समान हो जावे उसको यूष कहते हैं । इसी प्रकार हरिणादिकोंके मांसमें जल डालके यूष बनावे इसको मांसरस कहते हैं ।

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
स्नेहाभ्यंगं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अर्थ-अजीर्णकर्त्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड, कसरत, मैथुन, देहमें तेलकी मालिश करना, तथा क्रोध करना ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे उस दिन त्याग देय ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

वमनके पश्चात् विरेचन ।

स्निग्धस्विन्नस्य वांतस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ॥
अवांतस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ १ ॥
मंदाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ॥
अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥ २ ॥

अर्थ-प्रथम मनुष्यको स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे स्नेहपान करावे फिर उसके देहसे पसीने निकाले, पश्चात् वांति (उलटी) करावे । जब भले प्रकार वमन कर चुके तब उत्तम प्रकारसे विरेचन देवे। इसका कारण यह है कि विना वमन कराये दस्त करावे तो उसके अधोभागमें गया हुआ कफ वो ग्रहणी(छटवी पित्तधरा तथा अग्निधरा कला) का आच्छादन करता है कि जिससे मंदाग्नि गौरव (देहमें भारीपना) प्रवाहिका ये रोग उत्पन्न होते हैं । अथवा अधोगत कफ और आमको शुष्क एरंडमूलादिक करके पचावे ॥

दस्तकी दूसरी विधि ।

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम् ॥ ३ ॥

अर्थ-घृत दुग्धादिक स्नेह द्रव्य तिन करके स्निग्ध मनुष्य उसको और पिंडेष्टि-

१ वमनके पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसी शंका होनेसे भेड चरक सुश्रुत और वाग्भट्ट इत्यादि ग्रंथोंका अभिप्राय है कि वमन देकर छः दिन व्यतीत होनेपर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे । तीन दिन देहसे पसीने निकाले । फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचडी आदि) देकर सोलहवें दिन जुल्लाब कर्त्ता औषधी देवे । यह ग्रंथकारका अभिप्राय है इसलिये श्लोकमें सम्यक् पद धरा है । २ मिट्टीका गोला ईंट आदि ।

कादि करके देहका पसीना निकाले हुए मनुष्यको दस्त कराने चाहिये । यह वमनके विना विरेचन देनेका दूसरा प्रकार है ॥

दस्तोंका सामान्य काल ।

शरदृतौ वसंते च देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥
अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद् बुधः ॥ ४ ॥

अर्थ–शरद्[1] ऋतुमें तथा वसंत[2] ऋतुमें मनुष्योंकी शरीरशुद्धिके लिये जुलाब देवे तो देहकी शुद्धि होकर देह उत्तम होय । तथा उक्तकालके सिवाय दूसरे कालमें यदि रोग उत्पन्न हो तो उस कालमेंभी वैद्य रोगीका विचार करके दस्तकारी औषध देवे ॥

विरेचनयोग्य रोगी ।

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा ॥
उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ॥ ५ ॥

अर्थ–पित्तविकार आमवात उदर[3]रोग अफरा और बद्धकोष्ठ इन रोगोंमें वैद्य विशेष करके विरेचन देवे ॥

दोष दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता ।

दोषाः कदाचित्कुप्यंति जिता लंघनपाचनैः ॥
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ६ ॥

अर्थ–वातादिक दोषलंघन और पाचन करनेपर शमन होकर कदाचित् फिरभी कुपित हो जाते हैं परंतु जो संशोधन (वमन विरेचनादि) द्वारा शुद्ध हुए हैं उनका फिर उद्भव (उत्पत्ति) नहीं है ॥

दस्त कराने योग्य रोगी ।

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगंदरी ॥ अर्शःपांडूदरग्रंथि-हृद्रोगारुचिपीडिताः ॥ ७ ॥ योनिरोगप्रमेहार्ता गुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेण्ढ्रामयान्विताः ॥ ८ ॥ यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ॥ शूलिनो मूत्र-घातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ ९ ॥

---

१ शरद ऋतु क्वार कार्त्तिकके दिन । २ वसंत ऋतु चैत्र वैशाखके दिन । ३ उदर रोगीको दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं परंतु विशेष करके देना । इस वास्ते फिर उदररोगको कहा है ।

अर्थ–जीर्णज्वर सिंगिया आदि विषदोष वातरक्त भगंदर बवासीर पांडुरोग उदररोग गांठ हृदयरोग अरुचि प्रमेह योनिरोग गोला प्लीहा व्रण विद्रधि वमन विस्फोटक विषूचिका कोढ कर्णरोग नासारोग मस्तकरोग गुदाके रोग लिंगेन्द्रीके (उपदंशादि) रोग यकृत् सूजन नेत्ररोग कृमिरोग सोमल तथा क्षारजन्य विकार वादीके रोग शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगोंसे यदि प्राणी अत्यंत व्याप्त होवे तो उसको विरेचन (दस्त करानेकी औषध) देवे ॥

दस्त करानेमें अयोग्य।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः॥श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ १० ॥ नवप्रसूता नारी च मंदाग्निश्च मदात्ययी॥ शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥११॥

अर्थ–बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षतकरके क्षीण, भयकरके पीडित, थका हुआ, प्यासा, स्थूलपुरुष, गर्भिणी, नवज्वरकरके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्नि, मदात्ययरोग करके पीडित, शल्यकरके पीडित और रूक्ष इतने मनुष्योंको विद्वान् बैद्य दस्त न करावे ॥

दस्तोंमें मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठ।

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः ॥ बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥१२॥ मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा ॥ क्रूरे तीक्ष्णा मता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यका कोठा अत्यंत पित्त करके व्याप्त होय उसे मृदु कोष्ठ जानना। एवं जिसके कोठेमें अत्यंत कफ होय उसे मध्यम कोष्ठ एवं जिसके कोठेमें अत्यंत वादी है वो उसे क्रूर कोष्ठ जानना। जिस मनुष्यका क्रूर कोठा है ऐसे मनुष्यको दस्तकारी औषध देनेसे शीघ्र दस्त नहीं होते। जिस प्राणीका मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषधकी मृदु मात्रा देनी एवं जिन मनुष्योंका कोठा मध्यम है उनको मध्यम औषधकी मध्यम मात्रा देवे। तथा जिस प्राणीका अत्यंत क्रूर कोष्ठ है उसको तीक्ष्ण औषधकी तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

मृदु मध्यमादि कोष्ठोंमें मृदु मध्यादिक औषधी।

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपि विरिच्यते ॥

---

१ कांच अथवा नाखून अथवा बाल कांटा इत्यादिक शरीरमें रहनेसे पीडित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना।

मध्यमस्त्रिवृतातिक्ताराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥
क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदंतीफलादिभिः ॥ १४ ॥

अर्थ-जिनका मृदु (नरम) कोठा है उनको दाख दूध और अंडीका तेल इनसे-ही दस्त हो सकते हैं । मध्यम कोष्ठवाला निशोथ कुटकी और अमलतासका गूदा इनसे दस्त हो सकते हैं । तथा क्रूर कोठेवालेको थूहरका दूध तथा चौक जमालगोटेके बीज आदि शब्दसे इन्द्रायनकी जड इत्यादिक देनेसे रेचन होता है ॥

उत्तमादि भेद करके दस्तोंके प्रमाण ।

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ॥
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ॥ १५ ॥

अर्थ-तीस वार दस्त होकर अंतमें कफ (आम)गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी । और वीस वेग होकर कफ गिरने लगे तो उसे मध्यम मात्रा जाननी तथा दश वेगके अंतमें कफ गिरनेसे हीन मात्रा जाननी । वेगनाम दस्तोंका है ॥

दस्त होनेमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण ।

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ॥
पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ॥ १६ ॥

अर्थ-दस्त होनेसे दो पल प्रणाम कषाय (काढा) देनेसे जो दस्त होवे वे दस्त उत्तम जानने । एक पल प्रमाण काढा देनेसे दस्त होय तो मध्यम जानने । एवं अर्ध पलके प्रमाण काढेसे दस्त होना कनिष्ठ जानना ॥

दस्त होनेमें कल्कादिकोंके प्रमाण ।

कल्कमोदकचूर्णानां कर्षं मध्वाज्यलेहतः ॥
कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ॥ १७ ॥

अर्थ-कल्क मोदक और चूर्ण ये प्रत्येक सहत घीमें मिलाय दस्त होनेमें देवे । अथवा अवस्था और रोगका तारतम्य देखके दो कर्ष अथवा एक पल देवे ॥

दस्तोंमें निशोथ आदि औषध लेनेका प्रमाण ।

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्काथादिभिः पिबेत्॥ त्रिफलाक्काथगो-मूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः॥१८॥त्रिवृत्सैंधवशुंठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा ॥ १९ ॥

अर्थ-पित्तके आधिक्यमें निसोथका चूर्ण करके दाखके काढेमें मिलायके देवे । आदि शब्दकरके गुलकंद गुलाबके फूल और सोंफ इत्यादिकोंके काढेमें देवे । कफ-

का प्रकोप होनेसे त्रिफलाका काढा और गोमूत्र इन दोनोंको एकत्र करके उसमें त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) का चूर्ण मिलायके देवे । यदि मनुष्य वादीसे पीडित हो तो उसको दस्त करानेके वास्ते निसोथ सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके नींबूके रसमें देवे अथवा जंगली जीवोंके मांसरसमें[1] देवे तो दस्त होवे ॥

अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान ।

एरंडतैलं त्रिफलाक्काथेन द्विगुणेन च ॥
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ॥ २० ॥

अर्थ–अंडीके तेलसे दुगुना त्रिफलेका काढा कर उसमें अंडीका तेल डाल देवे अथवा अंडीका तेल दूध मिलायके देवे तो तत्काल दस्त हो ॥

ऋतुभेदकरके दस्त ।

त्रिवृता कौटबीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ॥
समृद्वीकारसः क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २१ ॥

अर्थ–निसोथ इन्द्रजौ पीपल सोंठ दाखोंका रस और सहत ये औषध दस्त होनेके वास्ते वर्षाकालमें देना ॥

शरदऋतुमें दस्त ।

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करा दिव्यचंदनम् ॥
द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ॥ २२ ॥

अर्थ–निसोथ धमासा नागरमोथा उत्तम सपेद चंदन और मुलहटी इन सब औषधोंका चूर्ण कर दाखके पानीमें मिलायके शरदऋतुमें देवे तो दस्त होवे । यह दस्तकी औषध शीतल है ॥

हेमंतऋतुमें दस्त ।

त्रिवृता चित्रकं पाठा ह्यजाजी सरला वचा ॥
हेमक्षीरी च हेमंते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ॥ २३ ॥

अर्थ–निसोथ चीता पाढ जीरा देवदारु वच और चोक इनका चूर्ण कर गरम जलमें मिलायके हेमंत ऋतुमें देवे तो दस्त होवे ॥

शिशिर वा वसंतऋतुमें दस्त ।

पिप्पली नागरं सिंधुश्यामा त्रिवृतया सह ॥

---

१ हरिण शशा आदिके मांसको पानीमें औटावे । जब सीजके पेयाके समान हो जावे तब उतार ले इसको मांसरस कहते हैं ।

लिहेत् क्षौद्रेण शिशिरे वसंते च विरेचनम् ॥ २४ ॥

अर्थ–पीपल सोंठ सैंधानमक और काली निसोथ इन औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय शिशिर तथा वसंत ऋतुमें चाटे तो दस्त होवे सही ॥

ग्रीष्मऋतुमें दस्त ।

त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ २५ ॥

अर्थ–निसोथका चूर्ण करके उसमें मिश्री मिलाय दस्त होनेके वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गरमियों) में देवे ॥

अभयादि मोदक ।

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानि च ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक् पत्रं मुस्तमेव च॥२६॥ एतानि समभागानि दंती च द्विगुणा भवेत् ॥ त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा॥२७॥ मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः ॥ एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिवेज्जलम् ॥ २८ ॥ तावद्विरिच्यते जंतुर्यावदुष्णं न सेवते ॥ पानाहारविहारेषु भवेन्नियंत्रणं सदा ॥ २९ ॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शों गलगंडव्रणोदरान् ॥ ३० ॥ विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयान् ॥ वातरोगं तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् ॥ ३१ ॥ पृष्ठपार्श्वोरुजघनकट्युदररुजं जयेत् ॥ सततं शीलनादेष पलितानि विनाशयेत् ॥ अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ॥ ३२ ॥

अर्थ–१ हरड २काली मिरच ३सोंठ ४वायविडंग ५आमले ६पीपल ७ पीपरामूल ८ दालचीनी ९ पत्रज १० नागरमोथा ये दश औषध समान भाग लेवे । तथा दंती ३ भाग निशोथ आठ भाग तथा खांड छः भाग इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर सहतमें मिलाय एक एक कर्षके मोदक (लड्डू) बनावे। इसमेंसे १ मोदक प्रातःकाल दस्त होनेके वास्ते भक्षण करे और ऊपरसे थोडा शीतल जल पीवे । फिर जब तक दस्त होते रहे तब तक गरम पदार्थका सेवन न करे तथा पान और अहार एवं विहार कहिये श्रमादिक इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषम ज्वर, मंदाग्नि, पांडुरोग, खांसी, भगंदर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वादीके रोग, पेटका फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग, पीठ पसली

कमर जांघ पिंडरी और उदर इनमें पीडाका होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवे। इस मोदकको अभयादि मोहक कहते हैं इस अभयादि मोदकका निरंतर सेवन करनेसे पलित कहिये मनुष्यके सपेद बालोंका हो जाना दूर हो अर्थात् सपेद बाल काले हो जावे तथा यह मोदक उत्तम रसायन है॥

दस्तोंको सहायकर्त्ता उपचार।

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी॥
सुगंधिं किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः॥ ३३॥

अर्थ–मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उस प्राणीके नेत्रमें शीतल जलके छींटे देवे और अत्तर पुष्प आदि सुगंधी वस्तु सुंघावे। तथा पानका बीडा बनायके खाय। ये योग करनेसे उत्तम प्रकारके दस्त होते हैं॥

दस्त होनेपर किस प्रकार रहना।

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा॥
शीतांबु न स्पृशेत्कापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः॥ ३४॥

अर्थ–दस्त होनेके उपरांत हवामें न बैठे, अधोवायु मूत्र इत्यादिकोंके वेग (हाजत) को रोके नहीं, सोवे नहीं, शीतल जलको छुए नहीं तथा दस्तोंमें गरम जल वारंवार पिया करे तो उत्तम जुल्लाब होवे॥

दस्तमें जो पदार्थ निकलते हैं।

बलादौषधपित्तानि वायुर्वांते यथा व्रजेत्॥
रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत्॥ ३५॥

अर्थ–वमन (ओकारी) की औषध पीनेसे कफ और पी हुई औषध, पित्त और वादी ये पदार्थ जैसे वमनके होनेसे बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीनेसे मल, पित्त, पी हुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्तके साथ गुदाके मार्ग होकर बाहर निकलते हैं॥

उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव।

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता॥ ३६॥
पुरीषवातसंगश्च कंडूमंडलगौरवाः॥
विदाहोरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते॥ ३७॥

अर्थ–दस्त उत्तम न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमें स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल और अधोवायुकी अप्रवृत्ति, शरीरमें खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हों और अंगका भारीपना, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते हैं॥

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार।

तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ॥
तेनास्योपद्रवा यांति दीप्तोऽग्निर्लघुता भवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको उत्तम दस्त न हुए हों उसको आरग्वधादि क्राथका पाचन देकर आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलायके उसके कोठेको स्निग्ध (चिकना) करके फिर जुलाब देवे तो उसके संपूर्ण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होय और देह हलका होवे ॥

अत्यंत दस्त होनेके उपद्रव।

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छाभ्रंशो गुदस्य च ॥
शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥
मेदोनिभं जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते ॥ ३९ ॥

अर्थ-मनुष्यको अत्यंत दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें पीडा, शूल, कफका अत्यंत गिरना, मांसके धोवनके जल समान, मेदके समान, तथा पानीके समान गुदाके रास्तेसे रुधिर गिरे ये उपद्रव होते हैं ॥

अत्यंत दस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न।

तस्य शीतांबुभिः सिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ॥
मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ॥ ४० ॥

अर्थ-अत्यंत दस्त होनेसे मनुष्यके देहपर शीतल जलको छिडके उसी प्रकार शीतल चांवलोंके धोवनमें सहत मिलायके पीनेको देवे अथवा हलकी वमन करावे ॥

दस्त बंद करनेकी औषधि।

सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ॥
पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-आमकी छालको गौके दहीमें अथवा सौवीरमें[1] पीसके कल्क करे उस कल्कको नाभिके ऊपर लेप करे तो दस्त होते हुए बंद होवें ॥

दस्त रोकनेके यत्न।

अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥ ४२ ॥

---

१ सौवीर करनेकी विधि मध्यखंडमें संधान और आसव बनानेके प्रकरणमें कह आये हैं। परंतु टीकाकर्त्ताओंने दस्त बंद करनेको सौवीर शब्द करके कांजी लेना ऐसा कहा है।

शालिभिः षष्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ॥
शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात् संग्रहणं भिषक् ॥ ४३ ॥

अर्थ–दस्त बंद होनेके वास्ते बकरीका दूध पीवे। अथवा विष्कर पक्षियोंका मांसरस तथा हरिणके मांसका रस सेवन करे। अथवा साठी चांवलोंका भात करके थोडा भोजन करे। अथवा मसूरको सिजाय कर खाय। और भी विलायती अनार आदि शब्दसे शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थोंका सेवन करे तो दस्तोंका होना बंद होय ॥

उत्तम दस्त होनेके लक्षण।

लाघवे मनसस्तुष्ट्यामनुलोमे गतेऽनिले ॥
सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

अर्थ–जिस प्राणीका देह दस्त होनेसे हलका हो गया हो, चित्तमें प्रसन्नता तथा वायुका स्वस्थानमें गमन, इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको उत्तम जुलाब हुवा जानना। इसके रात्रिके समय पाचन औषधि देनी चाहिये ॥

विरेचन करनेके गुण।

इंद्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तता ॥
धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ–जुल्लाब लेनेसे इस प्राणीकी इन्द्रियोंमें बल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होवे, एवं धातु और अवस्था इनमें स्थिरता आवे ॥

दस्तमें वर्जित पदार्थ।

प्रवातसेवा शीतांबु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥
व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥ ४६ ॥

अर्थ–इस प्राणीको दस्त होनेके बाद अत्यंत पवन नहीं खानी, शीतल जल, तेलकी मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ॥

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ॥
जांगलैर्विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥ ४७ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ–दस्त होनेके पश्चात् पथ्यमें साठी चांवल और मूंग आदि धान्योंकी यवागू

---

१ अंडकी जड सोंठ और धनिया इन तीन औषधोंका काढा करके पाचनार्थ देवे।
२ चांवल मूंग इत्यादि धान्यमेंसे जो अपनी प्रकृतिको हित हो उसको छः गुने जलमें औटायके पतली लेहीसी करे उसको यवागू कहते हैं।

करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवोंके मांसका रस अथवा विष्करपक्षी ओर मुरगा इत्यादिकोंके मांसका रस इस रसके साथ चांवलोंका भात खाय ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे माथुरीभाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

बस्तीकी विधि ।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ॥ बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः॥१॥ यः स्नेहैर्दीयते सः स्यादनुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥ २ ॥

अर्थ—अंडकोशादि करके गुदामें पिचकारी मारते हैं उस प्रयोगको बस्ती कहते हैं। वह बस्ती अनुवासन और निरूहण इन भेदों करके दो प्रकारकी है। जिनमें घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको उनुवासन बस्ती कहते हैं। और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूह बस्ती कहते हैं ॥

अनुवासनबस्ती ।

तत्रानुवासनाख्यो हि बस्तिर्यः सोत्र कथ्यते ॥ पूर्वमेव ततो बस्तिर्निरूहाख्यो भविष्यति ॥ ३ ॥ निरूहादुत्तरं चैव बस्तिः स्यादुत्तराभिधः ॥ अनुवासनभेदैश्च मात्रा बस्तिरुदीरितः ॥ पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्धापि वा भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—अनुवासन और निरूह इन दोनों बस्तियोंमें प्रथम अनुवासन नामक बस्तिको कहकर फिर निरूह बस्ती तथा उत्तर बस्तीको कहेंगे । तथा उस अनुवासन बस्तीका भेद मात्राबस्ती है उस मात्राबस्तीके स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पलकी जाननी इस प्रकार बस्तीके चार भेद हैं ॥

अनुवासनबस्तीके योग्य रोगी ।

अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ५ ॥

अर्थ—रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकारके मनुष्य अनुवासन बस्तीके योग्य जानने ॥

---

१ हरिणादि जंगली जीवोंके मांसको पानीमें सिजायके पेयाके समान पतली राखे उसको मांसरस कहते हैं ।

अनुवासनके अयोग्य।

नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी॥
अस्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः॥
शोकमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः॥ ६॥

अर्थ–कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी, ये अनुवासनके योग्य नहीं हैं। अजीर्ण उन्माद प्यास शोक मूर्च्छा अरुचि भय श्वास खांसी और क्षय इन रोगों करके पीडित जो मनुष्य वो अस्थाप्य कहिये निरूह बस्तीके योग्य है। अनुवासन बस्तीमें योजना न करे॥

बस्तीके मुख बनानेको सुवर्णादिकी नली।

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः॥
नलैर्दंतैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते॥ ७॥

अर्थ–नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेकी नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदांत सींगके अग्रभाग बिल्लोर अथवा सूर्यकांतादि मणिकी करानी चाहिये॥

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण।

एकवर्षात्तु षड्वर्षं यावन्मानं षडंगुलम्॥ ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतम्॥८॥ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता॥९॥

अर्थ–बस्तीकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्षपर्यंत छः अंगुल लंबी तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्ष पर्यंत आठ अंगुलकी नली बनावे एवं बारह वर्षसे उपरांत नली बारह अंगुलकी लंबी बनानी चाहिये॥

नलीके छिद्रका प्रमाण।

मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिसन्निभम्॥ यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम्॥ १०॥ आतुरांगुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते॥ कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम्॥ ११॥ तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात्॥ योजयेत्तत्र बस्तिं च बंधद्वयविधानतः॥ १२॥

अर्थ–छः अंगुलवाली नलीका छिद्र (छेद) मूंगके दानेके प्रमाण करे और जो आठ अंगुलकी नली है उसमें मटरके समान छिद्र करे। बारह अंगुलवाली नलीमें बेरकी गुठलीके समान छिद्र करना चाहिये। इस क्रम करके नलीके छिद्र करने चाहिये। वह नली चिकनी होकर गौकी पुच्छके समान अर्थात् ऊपर नीचेसे छोटी

और बीचमें मोटी बनावे। तथा उस नलीका मूल रोगीके अंगूठेके प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभागमें कनिष्ठिका (छोटी उंगली) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये। उस नलीके तीन भाग त्यागके चतुर्थ भागकी जडमें दो कर्णिका कमलपत्रके समान करके हरिणादिकोंके अंडकी बस्ती उस जगह लगायके उन कर्णिकाओंसे उस बस्तीको बांधके संधि मिलाय देवे॥

बस्ती किसके अंडकी होनी चाहिये।

मृगाजसूकरगवां माहिषस्यापि वा भवेत्॥
मूत्रकोशस्य बस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः॥
कषायरक्तः सुमृदुर्बस्तिः स्निग्धो दृढो हितः॥ १३॥

अर्थ–हरिण बकरा सूकर बैल अथवा भैंसा इनके अंडकी बस्तीकी योजना करे। यदि इनके अंडकोश न मिले तो हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे। और वो बस्ती बेर तथा आहुली (रग) इत्यादिकके छालके काढेमें रंगी हुई होकर नरम चिकनी तथा पुख्ता होनी चाहिये॥

व्रणबस्तीका प्रमाण।

व्रणबस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम्॥
मुद्गछिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च॥ १४॥

अर्थ–व्रण विषयमें जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अंगुल प्रमाण लंबी चिकनी तथा उसका छिद्र मूंगके समान तथा गीधके पांखकी जितनी नली होती है इतनी मोटी हो। इस प्रकार व्रणबस्तीकी नली जाननी॥

बस्तीके गुण।

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः॥
कुरुते परिवृद्धिं च बस्तिः सम्यगुपासितः॥ १५॥

अर्थ–बस्तीको उत्तम प्रकारसे सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि कांति बल आरोग्य तथा आयुष्यकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं॥

बस्तीके सेवनका काल।

दिवसांते वसंते च स्नेहबस्तिः प्रदीयते॥ ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम्॥ १६॥ न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत्॥ मदं मूर्च्छां च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः॥ १७॥ रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हीयते॥ १८॥

अर्थ–वसंत ऋतुमें स्नेहबस्ती सायंकालमें देवे, ग्रीष्म ऋतु वर्षाऋतु और शरद ऋतु इनमें रात्रिके समय देवे। रोगीको अत्यंत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासन बस्तीका प्रयोग न करे। यदि करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती हैं। एवं अत्यन्त रूक्ष भोजन करायके यदि बस्ती कर्म करे तो बल तथा कांति इनकी हानि होय इस प्रकार दोनों प्रकारकी बस्ती देनेसे ये उपद्रव होते हैं॥

बस्तीमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल।

हीनमात्रावुभौ बस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ॥
अतिमात्रौ तथानाहक्कमातीसारकारकौ॥ १९॥

अर्थ–अनुवासनबस्ती तथा निरूहनबस्ती इनमें अल्पमात्रा होनेसे उसके द्वारा अत्यंत कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूहकी अतिमात्रा हो जावे तो अनाह ग्लानि और अतीसार ये रोग उत्पन्न होते हैं॥

उत्तमादि मात्रा।

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः॥
पलाद्यर्धेन हीनस्य युक्ता मात्रानुवासने॥ २०॥

अर्थ–उत्तम बलवाले प्राणियोंको अनुवासन बस्तीमें छः पलकी मात्रा, मध्यमबली मनुष्य उनकी तीन पल और हीनबल जो मनुष्य है उनकी मात्रा डेढ पलकी जाननी॥

स्नेहादिकमें सैंधवादिकका मान।

शताह्वासैंधवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम्॥
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याः षट्चतुर्द्वयमाषकैः॥ २१॥

अर्थ–शतावर और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासन बस्तीमें देनेकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी। इस प्रकार मात्राका क्रम जानना॥

दस्त देनेके पश्चात् अनुवासनबस्ती देनेका प्रकार।

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च॥
भुक्तान्नायानुवास्याय बस्तिर्देयोऽनुवासनः॥ २२॥

अर्थ–मनुष्यको दस्त करायके जब सात दिन व्यतीत हो जावे, और देहमें पुरुषार्थ आय जावे तब उसको भोजन करायके अनुवासन नामक बस्तीके योग्य प्राणीको अनुवासन बस्ती देवे॥

बस्ती देनेकी विधि।

अथानुवासांस्त्वभ्यक्तमुष्णांबु स्वेदितं शनैः ॥ भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः॥२३॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहबस्तिना ॥ सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः॥२४॥ कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धगुदे न्यसेत् ॥ बध्द्वा बस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् ॥ २५ ॥ पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः ॥ जृंभाकासक्षयादींश्च बस्तिकाले न कारयेत् ॥२६॥

अर्थ—अनुवासन बस्तीके योग्य मनुष्यके देहमें तेल लगाय गरम जलसे देहसे हलके पसीने निकाल उसको यथाशास्त्र भोजन[1] कराय फिर उसको इधर उधर फिरायके तथा मल मूत्रकी इच्छा होय तो उससे निवृत्त करके, यदि अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होय तो उसको त्याग करायके बस्ती कर्म करे। उसको बांई करवट सुलायके बांयां पैर पसरवा देवे। दहने पैरको सकोडके फिर गुदाको स्निग्ध[2] कर बस्तीकी नली बस्तीके मुखपर डोरेसे बांध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नलीको वांये हाथमें रखके दहने हाथसे मध्यम वेग करके उसमें पिचकारी दाबे अर्थात् पिचकारी मारे तथा बस्तीके समय जंभाई खांसना तथा छींकना आदि ये रोगीको नहीं करने देवे॥

पिचकारी मारनेमें काल।

त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो बस्तेस्तु पीडने ॥
ततः प्राणिहितः स्नेह उत्तानोवाक्शतं भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—पिचकारी मारनेमें तीस मात्रा पर्यंत काल जानना। फिर स्नेह भीतर पहुँचने पर १०० अंक जितनी देरमें बोले जावे इतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटा रहने देवे। उस मात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें लिखा है॥

कितनी कालकी मात्रा होती है।

जानुमंडलमावेष्टय कुर्याच्छोटिकया युतम् ॥
एका मात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष विनिश्चयः॥ २८॥

अर्थ—घोंटूपर हाथकी चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा जाननी। ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना॥

---

१ चांवलकी पतली पेया। २ घी लगायके।

पिचकारी मारनेके अंतरक्रिया।

प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीर्यं प्रसर्पति॥ताडयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारां-श्च शनैः शनैः॥ २९॥ स्फिजश्चैवं ततः श्रोणे शय्यां चैवो-त्क्षिपेत्ततः॥ जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम्॥ ३०॥

अर्थ–पिचकारी मारनेपर रोगीके हाथ पेर संपूर्ण अंग ढीले छोडके लंबे करे ऐसा करनेसे रसादि धातु अपने २ स्थानपर जाती है। तथा रोगीके हाथ पैरोंके तलमें तीन वार हलकी हलकी ताली मारे। उसी प्रकार कूलेमें तथा कटिके पश्चात् भागमें ती॰ वार ताली मारके उस रोगीको पलंगपर बैठाय देवे। इस प्रकारकी विधि होनेके पश्चात् रोगीको स्वस्थतापूर्वक यथा सुख शयन करावे॥

उत्तम बस्तिकर्मके गुण।

**सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु॥
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः॥ ३१॥**

अर्थ–गुदाके भीतर गया हुआ तैल वायु और मलके साथ मिलाकर उपद्रवरहित तत्काल बाहर निकले तो उस मनुष्यको बस्तीकर्म उत्तम हुआ जानना॥

स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न।

**जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः॥
लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि॥ ३२॥
अनुवासिताय देयं स्यादितरेह्नि सुखोदकम्॥
धान्यशुंठीकषायो वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥ ३३॥**

अर्थ–गुदाके द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आ जानेसे उस मनुष्यकी अग्नि यदि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकालमें पुराने अंन्न नित्यके आहारकी अपेक्षा न्यून भोजनको देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देय अर्थात् गरम जल पीनेको देवे अथवा धानिया और सोंठ इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूर होवे॥

वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण।

**अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा॥
विधेया बस्तयस्तेषामंते चैव निरूहणम्॥ ३४॥**

अर्थ–पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोषोंमें छः वार सातवार आठवार अथवा नौ वार पिचकारी मारे।फिर उस पिचकारी मारनेके पश्चात् निरूहण बस्तीकी योजना करे॥

१ एक वर्षके पुराने चांवल अथवा सांठी चांवलांका भात पथ्यमें देवे।

बस्तीके क्रमसे गुण।

दत्तस्तु प्रथमो बस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणैः॥ सम्यग् दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत्॥ ३५॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः॥ चतुर्थपंचमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी॥३६॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च॥ अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम्॥ ३७॥ एवं शुक्रगतान् दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत्॥ अष्टादशाष्टादशकान् बस्तीनां यो निषेवते॥ स कुंजरबलोऽप्यश्वं जयेत्तुल्योऽमरप्रभः॥ ३८॥

अर्थ-प्रथम पिचकारी मारनेसे वह बस्ती और वंक्षण अर्थात् अंडोंकी संधि द्वारा शरीरमें स्नेहन करे अर्थात् धातु बढावे। दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो। तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल और कांति ये आवें। चौथी और पांचवी पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे। छटी और सातवी पिचकारी मारनेसे मांस और मेदामें चिकनाई आवे और आठवी और नौवी पिचकारी मारनेसे मज्जामें तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्रधातुमें स्निग्धता करे है इस प्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्र धातुगत जो दोष उनका नाश होय। एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथीके समान बल आनकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कांतिवाला होवे॥

अनुवासनबस्ती तथा निरूहणबस्ती ये किसको देवे।

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहबस्तिं दिने दिने॥
दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्याबाधामपाहरेत्॥ ३९॥
स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः॥
तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते॥ ४०॥

अर्थ-रूक्ष होकर जो अत्यंत वादी करके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन (नित्य) स्नेह बस्ती देवे दूसरोंको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योंको निरूहण बस्ती नित्य प्रति देवे तो वादीका रोग दूर हो। रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी परंतु रोगी बहुत दिन बचा हुआ होवे तो स्निग्ध मनुष्यके निरूहण बस्ती थोडी देवे॥

केवल तैल गुणके बाहर आवे उसका यत्न।

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः॥
तस्यान्योऽन्यतरो देयो न हि स्निग्धस्य तिष्ठति॥ ४१॥

अर्थ–स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरांत तत्कालही स्नेह बाहर निकले है ठहरे नहीं है। इस कारण स्नेहबस्ती देकर तत्काल निरूह बस्ती देवे इस प्रकार पलट कर दोनों प्रकारकी बस्ती देवे ॥

तैल बाहर निकले उसके उपद्रव और यत्न।

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते ॥ ४२ ॥ पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्तिर्हिता तथा ॥ ४३ ॥ यथानुलोमनं वायुर्मलं स्नेहश्च जायते ॥ तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ–वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्यकी शुद्धि नहीं करि उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशयमें भारीपना ये उपद्रव होते हैं। इनके दूर करनेको तीक्ष्ण निरूहण बस्ती देवे। इस प्रकार तीक्ष्ण औषधोंकरके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इस प्रकार देवे। तथा तीक्ष्ण जुल्लाब तथा तीक्ष्ण नस्य देनी चाहिये ॥

स्नेहबस्ती जिसको उपद्रव न करे उसका विधान।

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहबस्तिरनिःसृतः ॥
सर्वोऽल्पो वावृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ॥ ४५ ॥

अर्थ–स्नेहबस्ती कहिये स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका संपूर्ण भाग आवृत कहिये व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमें व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे उस पिचकारीको अर्थात् स्नेह भरी हुई पिचकारीके बहुतकाल पर्यंत उसी जगह धरी रहने देवे ॥

अहोरात्रिमेंभी जिसके तैल बारह न निकले उसका यत्न।

अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥
स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ॥ ४६ ॥

अर्थ–जो स्नेह दिनरात्रिमेंभी बाहर न आवे उसको जुल्लाब देकर बाहर निकाले। स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर न आवे उसके दो वार स्नेहकी पिचकारी मारके स्नेह बाहर आवे ऐसा यत्न करे ॥

अनुवासनतैल ।

गुडूच्यैरंडपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ शतावरीसहचरं काकनासापलोन्मितम् ॥ ४७ ॥ यवमाषातसीकोलकुलित्थान् प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥४८॥ पचेत्तैलाढके पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-१ गिलोय २ अंडकी जड ३ कंजेकी छाल ४ भारंगी ५ अडूसा ६ रोहिष तृण ७ शतावर ८ पियावांसा और ९ काकनासा (कौआडोडी) ये नौ औषध एक २ पल[1] प्रमाण लेवे १ जौ २ उडद ३ अलसी ४ बेरकी गुठली तथा ५ कुलथी ये पांच औषध दो दो पल लेय। इन सब औषधोंको जवकूट कर उसमें जल ४ द्रोण डालके औटावे । जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेय । फिर इसमें तिल्लीका तेल एक आढक डालके तथा जीवनीय गणकी औषध एक २ पलप्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उस तेलमें डालके फिर औटावे । जब काढा जलकर तेल मात्र शेष रहे तब उतारके तेलको किसी पात्रमें भरके धर रक्खे । इसको अनुवासन तेल कहते हैं यह तेल संपूर्ण वादीके रोगोंको दूर करता है ॥

अनुवासनबस्तीके विपरीत होनेसे जो रोग होवे ।

षट्सप्ततिर्व्यापदस्तु जायंते बस्तिकर्मणः ॥
दूषितात्समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ॥ ५० ॥

अर्थ-बस्तीकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसे छिहत्तर प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रंथमें कही है उस क्रमसे करे ॥

बस्तीकर्ममें पथ्य ।

पानाहारविहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः ॥
स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥ ५१ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अर्थ-अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपान प्रकरणमें कहे हैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहबस्तीमें करे इसमें विचार न करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१ पल और द्रोण आदिका मान प्रथम खंडके परिभाषा प्रकरणमें है ।

अथ षष्ठोऽध्यायः।

निरूहबस्तीका विधान।

निरूहबस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणांतरैः ॥
तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुंगवैः ॥ १ ॥

अर्थ-निरूहबस्ती कारण भेद करके अनेक प्रकारकी होती है और जैसे२ कारणों- के नाम हैं उसी २ प्रकारके उसके नाम होते हैं। उदाहरण जैसे उत्क्लेशन बस्ती दोषहर बस्ती दोषशमन बस्ती इत्यादिक ॥

निरूहबस्तीका दूसरा नाम।

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ॥
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ २ ॥

अर्थ-निरूहबस्तीका दूसरा नाम आस्थापन जानना। दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने स्थानपर वसाती है इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं। वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं ॥

निरूहबस्तीमें काढे आदिका प्रमाण।

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थः पादोत्तरं मतम् ॥
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

अर्थ-निरूहबस्ती देनेमें कषायादिकोंका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ इस प्रकार जानना ॥

निरूहबस्तीके अयोग्य मनुष्य।

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौ क्षतोरस्कः कृशस्तथा ॥
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ ४ ॥
गुदशोफातिसारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः ॥
गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ ५ ॥

अर्थ-अत्यंत स्निग्ध, ऊर्ध्वगामी है दोष जिसके वह, उरःक्षत करके पीडित, कृश, पेटका फूलना, ओकारी, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास इन करके पीडित; गुदामें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ठ इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, मधु प्रमेहवाला, जलंदरवाला इतने रोगी आस्थापन (निरूहबस्ती) के योग्य नहीं हैं ॥

निरूहबस्तीमें योग्य प्राणी।

वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे ॥ मूर्च्छातृष्णोदराना-हमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥ ६ ॥ वृद्धासृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरू-हणम् ॥ शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद् बुधः ॥ ७ ॥

अर्थ–वातरोग, उदावर्त्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उंदर[1], आनाह-रोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, बहुत दिनका रक्तप्रदर, मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहबस्तीके योग्य जानने चाहिये ॥

निरूहबस्ती देनेका प्रकार।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धं स्विन्नमभोजितम् ॥ मध्याह्ने गृहम-ध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ ८ ॥ स्नेहबस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्॥ जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः॥९॥ तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं च निरूहगमनेच्छया॥ अनायातं मुहूर्ते तु नि-रूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥

अर्थ–जो मलमूत्रादिक त्याग चुका हो, स्निग्ध, जिसका पसीना निकाल चुका हो, जिसने भोजन न किया हो ऐसे मनुष्यको दुपहरके समय घरके बीच योग्यता विचार निरूहणबस्ती देवे और निरूहणबस्तीके कर्म होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके लिये एक मुहूर्त (दो घडी) पर्यंत ऊकरू बैठा रक्खे। यदि एक मुहूर्त्तमेंभी निरूह बाहर नहीं निकले तो उसको शोधन करके बाहर निकालनेका यत्न करे ॥

निरूह बाहर न आनेपर उसके शोधनकी औषधि।

निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसैंधवैः॥ ११ ॥

अर्थ–निरूहबस्ती बाहर न निकलने पर वा जवाखार गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सैंधानमक इन चार औषधियोंको एकत्र करके गुदामें फिर निरूहबस्ती देवे तो निरूह बाहर निकले ॥

उत्तम निरूहबस्ती होनेके लक्षण।

यस्य क्रमेण गच्छंति विट्पित्तकफवायवः ॥
लाघवं चोपजायेत सुनिरूढं तमादिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको निरूहबस्ती दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रम करके गुदाके रास्तेसे बाहर आकर शरीरमें हलकापन आनेसे निरूहबस्तीका कर्म उत्तम हुआ जानना ॥

---

[1] जलोदरके सिवाय दूसरे उदररोगमें निरूह बस्ती देवे।

जिसको निरूहबस्ती उत्तम न हुई हो उसके लक्षण ।

यस्य स्याद्बस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः ॥
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहं तमादिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थ– जिसको निरूहबस्ती दी उस बस्तीके बाहर आनेका वेग अल्प होवे इसीसे मल और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवे और मूत्रके स्थानपर पीडा, शरीरका भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूह बस्ती उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना ॥

उत्तम निरूहबस्ती तथा स्नेहबस्तीके लक्षण ।

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ॥
आस्थापनस्नेहबस्त्योः सम्यग् दाने तु लक्षणम् ॥
अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं बस्तिदानवित् ॥ १४ ॥

अर्थ–रोगीके देहमें हलकापन, मनकी प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोगका नाश ये उत्तम आस्थापन तथा स्नेहनबस्तीके लक्षण जानने । इसी विधिसे बस्तीकर्मको जाननेवाले वैद्य निरूहबस्ती देवे ॥

निरूहणबस्ती कितनीवार देवे उसका प्रकार ।

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ॥ सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ॥ १५ ॥ कषायकटुरूक्षाद्याः कफे कोष्णास्त्रयो मताः ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ॥ निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ–दो वार तीन वार अथवा चार वार जैसा दोष होय उसके अनुसार वैद्य निरूहबस्ती देवे । वादीके रोगमें स्नेहयुक्त बस्ती एक वार देवे, पित्त रोग होय तो दुग्धयुक्त निरूह बस्ती दो वार देवे । तथा कफरोग होवे तो कषाय[1] कटु[2] और रूक्ष[3] इत्यादिक पदार्थ एकत्रकर कुछ गरम करके तीनवार निरूह बस्ती देवे अर्थात् इन औषधोंकी तीन वार पिचकारी मारे । अथवा पित्त और कफ वादी इन करके पीडित मनुष्य होय तो दूध यूंष[4] और मांसरस[5] इनकी क्रम करके

---

१ हरड आमले इत्यादि कषाय पदार्थ जानने । २ सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने। ३कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढा करके बस्ती देवे । ४ वमनाध्यायमें वमन करनेके पश्चात् पथ्य कहा है उस जगह टिप्पणीमें यूष कल्क बनानेकी विधि लिखी है सो जानना । ५ विरेचनाध्यायमें पथ्य कहा है उसी स्थानपर टिप्पणीमें मांसरसकी विधि कही है।

निरूह बस्ती देवे फिर अनुवासन बस्ती देय अर्थात् स्नेहकी पिचकारी मारे ॥

सुकुमारआदि मनुष्योंको निरूहबस्ती देना ।

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ॥
बस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ॥ १७ ॥

अर्थ-सुकुमार (नाजुक) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे । तथा इनके तीक्ष्ण बस्ती देनेसे इनके बलका और आयुका नाश होता है । इसीसे सुकुमार आदिके तीक्ष्ण बस्ती न देवे ॥

आदि मध्य और अंतमें बस्तीका देना ।

दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ॥
पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्बस्तिं विचक्षणः ॥ १८ ॥

अर्थ-प्रथम दोषोंको उत्क्लेशित की हुई औषधोंकी बस्ती देवे तथा मध्यमें दोषनाशक औषधोंकी बस्ती देय और अंतमें संशमनीय अर्थात् अपने २ स्वस्थानसे दोष बैठ जावे ऐसी बस्ती देय अर्थात् ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारे ॥

उत्क्लेशन बस्ती ।

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैंधवं वचा ॥
हपुषा फलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ १९ ॥

अर्थ-१ अंडीके बीज २ महुआके फल ३ पीपल ४ सैंधानमक ५ वच ६ हाऊबेरके पत्ते और ७ मैनफल ये औषध समान भाग ले कूटके कल्क करे फिर दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिये यह उत्क्लेशन बस्ती देवे ॥

दोषहर बस्ती ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ॥
सकांजिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ २० ॥

अर्थ-१ सोंठ २ मुलहटी ३ बेलगिरी और ४ इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें बारीक पीसे और इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे तो वातादिक दोषोंका शमन होवे । इसको दोषहर बस्ती कहते हैं ॥

शोधनबस्ती ।

शोधनद्रव्यनिक्वाथस्तत्कल्कैः स्नेहसैंधवैः ॥
युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥ २१ ॥

अर्थ-निशोथादिक शोधन द्रव्योंका काढा करके और उन्हीं शोधन द्रव्योंका कल्क करे तथा सैंधानमक उस काढेमें मिलाय युक्तिसे रई डालके मथ लेवे फिर दोषोंके शोधन करनेको इसकी बस्ती देवे ॥

दोषशमनबस्ती ।

प्रियंगुर्मधुको मुस्ता तथैव च रसांजनम् ॥
सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ॥ २२ ॥

अर्थ-१ फूलप्रियंगु २ महुआके फल ३ नागरमोथा और ४ रसोत इन चार औषधोंको समान भाग लेकर दूधमें बारीक पीस दोष शमन होनेके अर्थ बस्ती देवे अर्थात् पिचकारी मारे ॥

लेखनबस्ती ।

त्रिफलाकाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ २३ ॥

अर्थ-त्रिफलाके काढेमें गोमूत्र, सहत और जवाखार मिलावे तथा ऊषकादिक गणकी औषधोंका चूर्ण मिलायके बस्ती देनेको लेखन (कहिये मेदोरोगादिकोंका जो कृशीकरण) बस्ती कहते हैं ॥

बृंहणबस्ती ।

बृंहणद्रव्यनिक्काथः कल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥
सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणा मताः ॥ २४ ॥

अर्थ-मूसली गोखरू और कौंचके बीज इत्यादिक बृंहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्योंका काढा कर उसमें महुआके पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्योंका कल्क, घी और मांसरस इन सबको डालके बृंहण होनेके वास्ते बस्ती देवे ॥

पिच्छलबस्ती ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनागराः ॥ क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः ॥ २५ ॥ अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥ मात्रा पिच्छिलबस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥२६॥

अर्थ-१ बेरकी छाल २ नारंगी ३ गोंदीकी छाल ४ सेमरकी छाल ५ धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूधमें पीस उसमें बकरा मेंढा और हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोष पतले होनेके वास्ते इसकी बस्ती देवे। इस बस्तीको पिच्छिल बस्ती कहते हैं । इस बस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पल है ॥

निरूहणबस्ती ।

दत्त्वादौ सैंधवस्याक्षं मधुनः प्रसृतिद्वयम्॥ विनिर्मथ्य ततो दद्या-त्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥२७॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृ-तिं क्षिपेत् ॥ संमूर्च्छिते कषाये तु जतुः प्रसृतिसंमितम् ॥२८॥ क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥ वाते चतुःपलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्पलम् ॥२९॥ पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्य च पलत्रयम् ॥ कफे षट्पलिकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुःपलम्॥३०॥

अर्थ—प्रथम सैंधानमक एक अक्ष प्रमाण कहिये कर्ष प्रमाण तथा सहत दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनोंको एकत्र मर्दन करे । फिर उसमें घी अथवा तेल छः पल डालके एकत्र मिलाय दे । तब कल्ककी औषध कही हैं उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेहमें मिलावे अथवा उस कल्ककी औषधी संमूर्च्छित कहिये औटायके काढा कर उस स्नेहमें मिलावे । कुशल वैद्य इसकी निरूहबस्ती देवे । अर्थात् गुदामें पिच-कारी मारे । इसे निरूहबस्तीकी साधारण विधि जाननी । विशेष विधि यदि वादीका रोग होवे तो चार पल सहत और स्नेह छः पल लेके एकत्र कर वस्ती देवे । पित्त-रोग होय तो सहत चार पल और स्नेह तीन पल ले एकत्र कर बस्ती देवे । तथा कफरोग होय तो सहत छः पल तथा स्नेह चार पल इनको एकत्र करके बस्ती देवे ॥

मधुतैलक बस्ती ।

एरंडक्वाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् ॥ ३१ ॥ शतपुष्पाप-लार्धेन सैंधवार्धेन संयुतम् ॥ मधुतैलकसंज्ञोयं बस्तिः खजवि-लोडितः ॥ ३२ ॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः ॥ ब-लवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा ८ पल और सहत तथा तेल ये चार २ पल एवं सोंफ और सैंधानमक आधे २ पल ले सबको एकत्र कर रईसे मथ लेवे । इसको मधुतैल बस्ती कहते हैं । यह बस्ती देनेसे मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश होय । तथा यह बल कांति स्त्रीविषय प्रीति तथा धातुओंकी वृद्धि इनको देती है और अग्निको प्रदीप्त करती है ॥

दीपनबस्ती ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतिर्भवेत् ॥
हपुषा सैंधवाक्षांशौ बस्तिः स्याद्दीपनः परः ॥ ३४ ॥

अर्थ–सहत घी और दूध ये दो दो पल लेवे हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनों औषध कर्षमात्र ले बारीक पीसके उसे सहत घी और दूधमें भिगोयके जठराग्नि प्रदीप्त होनेके अर्थ बस्ती देवे ॥

युक्तरथबस्ती।

एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलं ससैंधवम् ॥
एष युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥ ३५ ॥

अर्थ–अंडकी जडका काढा करके उसमें सहत और तेल डाले। तथा सैंधानमक वच पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय गुदामें पिचकारी देवे। इसको युक्तरथ बस्ती कहते हैं। यह बस्ती सर्व रोगोंपर है ॥

सिद्धबस्ती।

पंचमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु ॥
ससैंधवः समधुकः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ–बृहत्पंचमूलका काढा कर तेल पीपलका चूर्ण सैंधानमक महुआकी लकडीके भीतरका गाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके बस्ती देवे। इसको सिद्ध बस्ती कहते हैं। इसे सर्व रोगोंपर देवे ॥

बस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य।

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ॥
वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहबस्तिवत् ॥ ३७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ–बस्तीकर्म किये हुए मनुष्यको गरम जलसे स्नान करावे, दिनमें सोवे नहीं, अजीर्ण न होने देवे और आचरण स्नेह बस्तीके समान करे यह पथ्य है ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

उत्तरबस्तीका क्रम।

अतः परं प्रवक्ष्यामि बस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ॥
द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥
मालतीपुष्पवृंताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १ ॥

अर्थ–अब इसके उपरांत उत्तरबस्तीका प्रमाण कहता हूं। बारह अंगुल लंबी नली हो उस नलीका मध्यभाग कमलपत्रकी कर्णिकाके समान होना चाहिये और वह नली मालतीके फूलके डठरेके समान मोटी हो उसके छिद्रमें एक सरसों चली जावे इतना बडा होना चाहिये॥

उत्तरबस्तीकी योजना कैसे करे।

पंचविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी॥
तदूर्ध्वं पलमानं च स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः॥ २॥

अर्थ–मनुष्यकी अवस्था पच्चीस वर्ष होने पर्यंत विचक्षण वैद्य बस्तीमें स्नेहकी मात्रा दो कर्ष योजना करे। पचीस वर्षके पश्चात् १ पल देवे॥

उत्तरबस्तीकी योजना करनेका प्रकार।

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः॥ स्थितस्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया॥ ३॥ स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत्॥ शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररंध्रेऽगुलानि षट्॥ ४॥ ततोऽवपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत्॥ ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः॥ ५॥

अर्थ–जो अस्थापन कहिये निरूहणबस्ती करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्यको आसनपर घोंटुओंके बल बिठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे। उस नलीपर घी लगाय शिश्नमार्गमें योजना करके बस्तीका पीडन करे अर्थात् पिचकारी मारे। फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे। फिर उस स्नेहके बाहर आनेसे उत्तम बस्ती कर्म होता है। इस प्रकार स्नेह बस्तीका क्रम जानना॥

स्त्रियोंके बस्ती देनेकी विधि।

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम्॥
मुद्गप्रवेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम्॥
द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत्॥ ६॥

अर्थ–स्त्रियोंके बस्ती देनेके वास्ते नेत्र कहिये बस्तीकी नली छोटी उंगलीके बराबर मोटी हो वह दश अंगुलकी लंबी तथा जिसमें मूंग चला जावे इतना छिद्र होना चाहिये। उस नलीको योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे। स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बहुत बारीक नली लगायके उस नलीको दो अंगुल मूत्रमार्गमें प्रवे करके पिचकारी मारे॥

बालकोंके बस्ती देनेका प्रमाण।

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम्॥
शनैर्निष्कंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रं विचक्षणैः॥ ७॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्र विकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकारसे बारीक नलीकी योजना करके धीरे धीरे उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे॥

स्त्रियोंके तथा बालकोंके बस्ती देनेमें स्नेहकी मात्रा।

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी॥ मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिका॥८॥ उत्तानायै स्त्रिये दद्यादूर्ध्वजान्वे विचक्षणः॥ अप्रत्यागच्छति भिषग्बस्तावुत्तरसंज्ञके॥ ९॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमार्गमें बस्ती देनेमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना। स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी। बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी। उत्तर संज्ञक बस्तीमें कुशल वैद्य उस स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके घोंटू ऊपरको धर पिचकारी मारे। यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे॥

शोधनद्रव्यकरके बस्तीका विधान।

भूयो बस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः॥ फलवर्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक्॥ १०॥ सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धशोधनद्रव्यसंयुताम्॥ दह्यमाने तथा बस्तौ दद्याद्बस्तिं विचक्षणः॥ ११॥ क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च॥ बस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः॥ हन्यादुत्तरबस्तिस्तु नोचितो मोहिनां क्वचित्॥ १२॥

अर्थ—पीछे कहा हुआ उपाय करे शोधन द्रव्य (एरंडादि तैल समुदाय) की योनिमार्गमें पिचकारी मारे अथवा एरंडबीजादिक जो औषधी है वे उनकी करडी बत्ती बनायके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीके अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। उस बत्तीके अधोभागमें बस्तीस्थान है उसके विकृत होनेसे गूलर वड (आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष) उनका काढा करके बस्ती देवे। अथवा शीतल दूधकी बस्ती देवे तो बस्तीस्थान शुद्ध होवे। यह बस्ती शुक्रधातुसंबंधी पीडा होती है उसको तथा स्त्रियोंके रजोदर्शन संबंधी पीडा होती है उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तर बस्ती कदाचित् लाभ नहीं होता॥

बस्तीकर्मके उत्तम होनेके लक्षण ।

सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च ॥
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहबस्तिना ॥ १३ ॥

अर्थ–उत्तरसंज्ञक बस्ती स्नेहबस्ती करके उत्तम रीतिसे देनेसे शुक्रधातुसंबंधी प्रमेहादिक पीडा दूर होय ॥

गुदामें फलवर्तीकी योजना ।

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसंनिभा ॥
मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता ॥ १४ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ–गुदामें घी लगायके रोगीके अंगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंडबीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे । इसको फलवर्ती कहते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

नस्यविधि ।

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ॥
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ १ ॥

अर्थ–नाकमें डालनेकी औषधोंको नस्य कहते हैं । उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं ॥

नस्यके भेद ।

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ॥
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ २ ॥

अर्थ–इस नस्यके भेद दो हैं एक रेचन और एक स्नेहन तिनमें रेचन नस्य वातादि दोषोंको छेदन करता है और जो स्नेहन है वो धातुवृद्धि करता है ॥

नस्यका काल ।

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ॥
दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ३ ॥

अर्थ–कफके नाश करनेको नस्य प्रातःकाल देवे पित्तके नाश करनेको दो प्रहर दिन चढे नस्य देवे तथा वायुके नाश करनेको सायंकालमें नस्य देना। यदि रोग अत्यंत प्रबलताके साथ होवे तो रात्रिके समय नस्य देवे ॥

नस्यका निषेध।

नस्यं त्यजेद्भोजनांते दुर्दिने चापतर्पणे ॥ तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ ४ ॥ अजीर्णी दत्तबस्तिश्च पित्तस्नेहोद-कासवः ॥ क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तौ वृद्धबालकौ ॥ वेगाव-रोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् नस्य न लेवे। जिस दिन आकाश बद्दलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले। लंघन करके, जिसको नवीन पीनसका रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, विषदोषकरके और अजीर्णकरके पीडित मनुष्य, जिसके बस्तिप्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेवन करनेवाला मनुष्य, क्रोध शोक तथा तृषाकरके पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र और मल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य, स्नान किया हुआ अथवा जिसको स्नान करना है वो, इतने मनुष्योंको नस्य नहीं देना चाहिये ॥

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी।

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ॥ ६ ॥

अर्थ–आठ वर्षके बालकके नस्य कर्म करे और अस्सी वर्षके उपरांत अवस्थावाले मनुष्यके नस्यकर्म नहीं करना ॥

अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ॥
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ॥ ७ ॥

अर्थ–विरेचन नस्य, अजमान राई आदिका तीक्ष्ण तेल काढके देना चाहिये। अथवा तीक्ष्ण औषधोंकेही साथ तैल सिद्धकरके अथवा तीक्ष्ण औषधोंका काढा करके अथवा रसमें स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे ॥

रेचक नस्यका प्रमाण।

नासिकारंध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिंदवः ॥
प्रत्येकं रेचने योज्या मुख्यमध्यांत्यमात्रया ॥ ८ ॥

अर्थ–रेचनमें नाकके दोनों छिद्रों (नथनों) में औषधके आठ बिंदु डालना

उत्तममात्रा । छः बिंदु (बूंद) डालना मध्यम मात्रा जाननी और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है ॥

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण ।

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥
हिंगु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैंधवं स्मृतम् ॥ ९ ॥
क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् ॥
कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–नस्यकर्ममें तीक्ष्ण औषध होय तो एक शाण डाले । हींग एक यवप्रमाण, सैंधानामक १ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष तथा खांड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य होय वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये । इस प्रकार औषधोंकी योजना करे ॥

विरेचननस्यके दूसरे दो भेद ।

अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥
शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ॥ ११ ॥

अर्थ–उस विरेचन नस्यके दो भेद हैं । एक अवपीड तथा एक प्रधमन । इन दोनोंकी मस्तकके रेचन करनेमें योजना करे ॥

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण ।

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥
सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ १२ ॥
षडंगुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत् ॥
तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हि तत् ॥ १३ ॥

अर्थ–तीक्ष्ण औषधको पीसके कल्ककरके निचोड लेवे उस निचुडे हुए रसको अवपीड कहते हैं । छः अंगुल लंबी और दो मुखकी नली बनाकर उसमें तीक्ष्णचूर्ण १ कोल डालके मुखकी पवनसे नाकमें फूंक देवे । इसको प्रधमन संज्ञक नस्य कहते हैं ॥

रेचन और स्नेहनयोग्य प्राणी ।

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये ॥ अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ १४ ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वै रेचनं हितम् ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहेन दीयते ॥ १५ ॥

---

१ सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधोंको जलमें पीसे ।

अर्थ-ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, कफसंबंधी स्वरका क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगोंमें रेचकनस्य हितकारी जानना डरा हुआ मनुष्य, स्त्री, कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे ॥

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी।

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ॥
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥ १६ ॥

अर्थ-गलरोग, सन्निपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देना चाहिये ॥

प्रधमननस्ययोग्य प्राणी।

अत्यंतोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च पीयते ॥
चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ १७ ॥

अर्थ-अत्यंत उत्कट दोष (मूर्च्छा अपस्मारादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यंत तीक्ष्ण ऐसी प्रधमनसंज्ञक चूर्ण नस्य देना चाहिये ॥

रेचकसंज्ञक नस्य।

नस्यं स्याद्गुडशुंठीभ्यां पिप्पल्या सैंधवेन च ॥ १८ ॥
जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥
हनुमन्यागलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥ १९ ॥

अर्थ-सोंठको गरम जलमें औटाय उसमें गुड मिलाय नासिकामें डाले तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जलमें औटाय नस्य देवे अर्थात् नाकमें डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोडी गरदन भुजा (हाथ) और पीठ इनकी पीडाको दूर करे ॥

रेचननस्यका दूसरा प्रकार।

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैंधवैः ॥
नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतंत्रके ॥ २० ॥

अर्थ-महुआकी लकडीके भीतरका गाभा पीपल वच कालीमिरच और सैंधानमक इन सब औषधोंको गरम जलमें पीस नस्य देवे तो मृगी उन्माद सन्निपात और अपतंत्रक वायु इनसे नष्ट हुई चेष्टा और ज्ञान दूर होके मनुष्य सावधान होय ॥

रेचननस्यका तीसरा प्रकार ।

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तंद्रानिवारणम् ॥ २१ ॥

अर्थ–सैंधानमक सपेद मिरच सपेद सरसों और कूठ ये औषध बकरेके मूत्रमें पीस नस्य देवे तो तंद्रा और पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग दूर होवे ॥

प्रधमनसंज्ञक नस्य ।

रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं सैंधवं वचा ॥
मरिचं पिप्पली शुंठी कंकोलं लशुनं पुरम् ॥ २२ ॥
कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ॥ २३ ॥

अर्थ–सैंधानमक वच काली मिरच पीपल सोंठ कंकोल लहसन गूगल और कायफल इनका चूर्ण कर रोहू मछलीके पित्तकी इस चूर्णमें पुट दे । जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमन नलीमें इस चूर्णको भरके नस्य देवे तो पूर्वोक्त तंद्रादिक दोष दूर होवे । इस चूर्णको प्रधमन कहते हैं ॥

बृंहणनस्यकी कल्पना ।

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ॥ २४ ॥ मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताष्टभिः ॥ मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता स्मृता ॥ २५ ॥ एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः ॥ मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ २६ ॥ एकांतरं द्व्यंतरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितम् ॥ २७ ॥

अर्थ–बृंहण (धातुको बढानेवाली) नस्यकी कल्पना कहता हूं बृंहणनस्यके दो भेद हैं मर्श प्रतिमर्श, ये स्नेहन विषयमें लेनी । तिनमें मर्श नस्यकी तर्पणी मात्रा जाननी । वह आठ शाणकी मुख्य मात्रा होती है । चार शाणकी मध्यम मात्रा तथा एक शाणकी हीन मात्रा जाननी । उस मात्राको दोषोंका बलाबल विचारकर देवे । मनुष्यको वस्त्रादिकसे लपेटके एक एक पुडिया नाकमें दो अथवा तीनवार एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन तीन दिनके बीच देकर पांचवे दिन अथवा सातवे दिन नस्य देवे ॥

---

१ धातुके बढानेके विषयमें । २ धात्वादिको तृप्ति करनेवाली मात्राको तर्पणी कहते हैं ।

नस्य अधिक होनेका यत्न ।

मर्शे शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ॥
दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ २८ ॥
दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युंज्याद्वमनशोधनम् ॥
अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं मतम् ॥ २९ ॥

अर्थ—मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकोंकी तृप्ति करनेवाली है उसका आधिक्य होकर दोषोंका कोप होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचन संज्ञक नस्यकी मात्राके आधिक्यके कारण मस्तकमेंसे भेदादिकोंका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है । तिनमें जिस दोषके उत्क्लेशनिमित्त पीडा हो उसके दूर करनेको वमनकर्त्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे और क्षयनिमित्तवाली पीडाको दूर करनेके लिये बृंहण औषध नाकमें अथवा पेटमें देवे ॥

बृंहणनस्ययोग्य प्राणी ।

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्धभेदके ॥ दंतरोगे बले हीने मन्याबाह्वंसजे गदे ॥ ३० ॥ मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ॥ अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ॥ युंज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ॥ ३१ ॥

अर्थ—मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग, अर्धावभेदक (आधाशीशी) दस्तोंका रोग, दुर्बल मनुष्यकी गरदन कंधा और बाहु इनमें जो पीडा होती है वह, मुखशोष, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय मनुष्यके सपेद बालोंके होनेको पलितरोग कहते हैं वह तथा मस्तकके बाल और डाढीमूंछोंके बाल झरकर गिर पडे वह इन्द्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगोंमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ तथा खांड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्यकी योजना करे ॥

बृंहण नस्य ।

सशर्करं पयःपिष्टं भ्रष्टमाज्येन कुंकुमम् ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ॥३२॥ भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ॥ नस्यं स्याद्बुबुतैलेन तथा नारायणेन वा॥३३॥ माषादिना वापि सर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा ॥३४॥ दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव चा॥३५॥

अर्थ–दूधमें खांड डालके नस्य देवे। अथवा घीमें केशर डालके नस्य देय। इससे वातरक्तकी पीडा दूर होय। अंडीके तेल करके अथवा नारायणतेल करके अथवा माषादि तेल करके अथवा उन २ औषधों करके सिद्ध किये हुए घृतकी नस्य देनेसे भृकुटी शंख (कनपटी) नेत्र मस्तक कान इनके संबंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवें। कफ रोगपर तेलकी नस्य दे वातरोगपर वसा (चरबी) की नस्य देवे। और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देवे॥

पक्षाघातादिक रोगोंपर नस्य।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः॥ कृतोऽश्वगंधया क्वाथो हिंगुसैंधवसंयुतः॥ ३६॥ कोष्णे नस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम्॥ जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापबाहुकौ॥ ३७॥

अर्थ–१ उड़द २ कौंचके बीज ३ रास्ना ४ गंगेरनकी जड ५ अंडकी जड ६ रोहिसतृण और ७ असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भूनी हुई हींग और सैंधानमक डाल उस गरम २ जलकी नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघातवायु, अर्दित (लकवा) वायु, गरदनकी नसका जकडना और अपबाहुक वायु ये सब दूर हों॥

प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूप मात्रा।

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विर्बिंदुमिता मता॥
प्रत्येकशो नयनयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम्॥ ३८॥

अर्थ–घृत आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उनके दो दो बिंदु एक एक नयनमें डालते हैं उसे प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूप मात्रा जाननी॥

बिंदुसंज्ञक मात्रा।

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः॥ तर्जनीयं स्रवेद्बिंदुं सा मात्रा बिंदुसंज्ञिता॥ ३९॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते॥ स देयो मर्शनस्ये तु प्रतिमर्शो द्विबिंदुकः॥ ४०॥

अर्थ–घृत तेल (आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उन) में दो पेरुआ बूडे इस प्रकार तर्जनी उंगलीको डबोयके बाहर काढे। उस पेरुएसे जो बिंदु टपके उसको बिंदुमात्रा कहते हैं। इस प्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंका एक शाण होता है। वह एक शाण मात्रा मर्शनस्यमें देवे और प्रतिमर्शनस्यमें दो बिंदु मात्रा देवे। इतनी मर्शनस्यमें विशेषता जाननी॥

प्रतिमर्शनस्यके समय।

समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ प्रभाते दंतकाष्ठांते गृहान्निर्गमने तथा ॥ ४१ ॥ व्यायामाध्वव्यवायांते विण्मूत्रांतेंऽजने कृते ॥ कवलांते भोजनांते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ॥ ४२ ॥

अर्थ–प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं। १ प्रातःकाल २ मुख धोनेपर ३ घरसे बाहर निकलते समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ मार्ग चलकर आनेपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मलत्यागके अंतमें ८ मूत्रत्यागके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन आंजनेके पश्चात् १० ग्रासके अंतमें ११ भोजनके अंतमें १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें। इतने समयोंमें प्रतिमर्श नस्य देवे ॥

प्रतिमर्शनस्यकरके तृप्तके लक्षण।

ईषदुच्छिंदनात्स्नेहो यदा वक्रं प्रदृश्यते ॥
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥ ४३ ॥
उच्छिंदं न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–नस्य देनेपर अल्प छींक आकर उस स्नेहके मुखमें उतरनेसे, वह मनुष्य प्रतिमर्शनस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना। वह मनुष्य मुखमें उतरे हुए स्नेहको निगले नहीं किंतु खकारके द्वारा बाहर थूक देवे ॥

प्रतिमर्शके योग्य रोगी।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्ते बाले वृद्धे च युज्यते ॥
प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥
वलीपलितनाशश्च बलमिंद्रियजं भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णाकरके तथा मुखशोषकरके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देवे। ऊर्ध्वजत्रुके रोग अर्थात् गरदनके ऊपरके रोग तथा त्वचाकी शिथिलता एवं अकालमें बालोंका सपेद होना अर्थात् पलितरोग ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होते हैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंमें बल आवे ॥

पलित होवेमें नस्य।

बिभीतनिंबगंभारीशिवाशेलुश्च काकिनी ॥
एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–बहेडा नीमकी छाल कंभारी हरड गोंदी और कौआडोडी इनके बीचमें भीतरकी मज्जाका तेल पृथक् २ निकालके एक एककी पृथक् पृथक् नस्य देय तो मनुष्यके अकालमें जो सफेद बाल हो जाते हैं सो तरुणावस्थाके समान काले होवें ॥

नस्यकी विधि ।

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे ॥ देशे वातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम् ॥ ४७ ॥ विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालं गलं तथा ॥ उत्तानशायिनं किंचित् प्रलंबशिरसं नरम् ॥ ४८ ॥ आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ समुन्नमितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ॥ ४९ ॥ कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमतारादिशुक्तिभिः ॥ शुक्त्या वा यत्र युक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् ॥ ५० ॥

अर्थ–नस्य देनेमें नस्यकी विधि कहते हैं । जिस स्थानमें पवन तथा धूर न होय उसमें मनुष्यको दांतन और धूमपान कराके कपाल और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे । फिर चित्त लेटके मस्तकको कुछ थोडा लंबा कर हाथपैरोंको लंबे पसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे । फिर वैद्य इस प्राणीकी नाकको कुछ ऊंची करके उसमें नस्यकी औषधको गरम गरम सुहाती धार एकसी लगा तार डाले । परंतु वह नस्य सोनेके पात्रमें अथवा चांदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और कौडी अथवा कपडेके टुकडा इत्यादि करके नाकमें डाले ॥

नस्य लेनेके पश्चात् नियम ।

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकंपयेत् ॥ न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छिदेन्न हसेत्तथा ॥ ५१ ॥ एतैर्हि विहितः स्नेहो नैवांतः संप्रपद्यते ॥ ततः कासप्रतिश्यायशिरोक्षिगदसंभवः ॥ ५२ ॥

अर्थ–मनुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके नहीं और हँसे नहीं । यदि इसप्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तक भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खांसी पीनस मस्तक तथा नेत्र इनमें पीडा इत्यादि उपद्रव होते हैं ॥

नस्यके संधारणका प्रकार ।

शृंगाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद्द्रवम् ॥
पंच सप्त दशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ॥ ५३ ॥

उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम् ॥
वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखेन हि ॥ ५४ ॥

अर्थ–मनुष्यको नस्य देकर शृंगाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पद है उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे। उसका कारण पांच मात्रा सात मात्रा अथवा दश मात्रा काल पर्यंत करे। पश्चात् बैठकर नाकसे मुखमें उतरे हुए द्रव्यको खकार कर बांई तरफ अथवा दहनी तरफ थूक देवे सन्मुख न थूके ॥

नस्यकर्ममें त्याज्य कर्म।

नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् ॥
शयीत निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानोवाक्शतं नरः ॥ ५५ ॥
तथा वैरेचनस्यांते धूमो वा कवलोहितः ॥ ५६ ॥

अर्थ–नस्यकर्म होनेके पश्चात् मनको संताप न आने देवे, जहां धूल उडती हो वहांपर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इस प्रकारसे सौ वाक्पर्यंत सीधा (चित्त) लेटे। विरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास नहीं देना ॥

नस्यमें शुद्धादिक भेद।

नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ॥
शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥ ५७ ॥

अर्थ–नस्यमें शुद्धिलक्षण हीनयोगलक्षण और अतियोगलक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्योंने कहे हैं वो वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहता हूं ॥

उत्तमशुद्धिके लक्षण।

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ॥
चित्तेंद्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ ५८ ॥

अर्थ–नस्यकरके मस्तककी उत्तम शुद्धि होनेसे शरीर हलका, मन्यानाडीकी शुद्धि मुख नाक कान और गुदा इत्यादि स्रोतस (बाहरके छिद्रोंका) शोधन हो, शिरोरोगादिक दूर हों, अंतःकरण तथा चक्षुरादि इन्द्री ये प्रसन्न रहें ॥

हीनशुद्धिके लक्षण।

कंडूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः ॥
मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

१ अनुवासन बस्तीके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जान लेना।

अर्थ-नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि होनेसे देहमें खुजली चले तथा देहका चिकट जाना ये लक्षण हों। एवं स्रोतें (मुख नासिका आदि बाहरके मार्ग) से कफका स्राव होय ॥

अतिशुद्धिके लक्षण ।

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिंद्रियविभ्रमः ॥
शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ ६० ॥

अर्थ-नस्यद्वारा मस्तककी अत्यंत शुद्धि होनेसे मस्तुलुंग (मस्तक भीतर मगज) का नासिका आदिके द्वारा स्राव होने लगे, वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंको विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आवे ॥

हीनशुद्ध्यादिकोंमें चिकित्सा ।

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ॥
सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्ये निषेचयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ-नस्यकरके मस्तककी अल्प शुद्धि तथा अत्यंत शुद्धि होनेसे कफवातनाशक नस्य देवे तथा उत्तम शुद्धि होनेसे उसके नाकमें घृतकी नस्य देय ॥

अतिस्निग्धके लक्षण ।

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेंद्रियविभ्रमः ॥
लक्षणं तदतिस्निग्धं रूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ-नस्यकरके मनुष्यका मस्तक अत्यंत स्निग्ध होनेसे कफका स्राव, मस्तकमें भारीपना और इन्द्रियोंमें भ्रांति ये लक्षण होते हैं। इसमें रूक्ष पदार्थकी नस्य देय ॥

नस्यमें पथ्य ।

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचारिकमादिशेत् ॥ ६३ ॥

अर्थ-अभिष्यंदी पदार्थ कहिये भैंसका दही आदिशब्दसे कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्यमें जैसे शिष्ट जन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगीको आचरण करने चाहिये ॥

पंचकर्मकी संख्या ।

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ॥
एतानि पंच कर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ॥ ६४ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–१ वमन २ रेचन ३ नस्य ४ निरूहबस्ती और ५ अनुवासनबस्ती इन पांचोंको पंचकर्म ऐसा कहते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखण्डे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

धूमपानविधि ।

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ॥
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ १ ॥

अर्थ–धूम छः प्रकारका है । १ शमन २ बृंहण ३ रेचन ४ कासहा ५ वामन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार छः प्रकारके धूम जानने ॥

शमनादि धूमोंके पर्याय ।

शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ॥
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ २ ॥

अर्थ–शमनधूमके पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने । बृंहण धूमके पर्यायशब्द स्नेहन और मृदु. जानने । तथा रेचनधूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ॥

धूमसेवन अयोग्य प्राणी ।

अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीरुश्च दुःखितः ॥ दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ॥ ३ ॥ पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥ ४ ॥ क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी च गर्भिणी ॥ रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ॥ ५ ॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ॥ ६ ॥

अर्थ–थका हुआ, डरनेवाला, दुःखकरके पीडित, जिसके बस्तिप्रयोग किया है जिसका कोठा दस्तोंकरके खाली हो, रात्रिमें जागरण करनेवाला, तृषाकरके पीडित, तथा दाहकरके पीडित, तालुशोषी, उदरी, शिरोभितापकरके पीडित, तिमिरि, वमन आध्मान (वादीसे पेट फूलता है वह रोग), उरःक्षत, प्रमेह और पांडुरोग इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूध[1] सहत घी आसव (मद्य) और अन्न दही तथा मछली इनको खाय चुका हो बालक वृद्ध और दुर्बल मनुष्य, इतने प्राणी धूमपानमें अयोग्य जानने अर्थात् इन सबको धूमपान करना वर्जित है एवं अकालमें और अत्यंत धूमपान करनेसे उपद्रव होते हैं॥

धूमपानके उपद्रवोंमें क्या देवे सो कहते हैं।

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनांजनतर्पणम् ॥
सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्करांबु वा ॥ ७ ॥
मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–धूमपानके उपद्रव होनेसे उस मनुष्यको घी पीनेको देवे। नाकमें नस्य देय, नेत्रोंमें अंजन लगावे, तथा तर्पण (देहमें तृप्तकरी द्राक्षादि मंड) देय। घी ईखका रस दाख दूध सरबत और खांड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करनेको देवे जिनसे धूमसंबंधी उपद्रव दूर हो॥

धूमपानका समय और गुण।

धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद्गृह्यते शीतिकान्नरः ॥
कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद्धूमः सुयोजितः ॥ ९ ॥

अर्थ–धूमपान बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था पर्यंत करे पश्चात् नहीं करना। तथा उस धूमकी योजना उत्तम होनेसे श्वास खांसी पीनस गरदन ठोडी और मस्तक इनमें पीडा होती है वह और वातकफसंबंधी विकार ये संपूर्ण दूर होवें॥

धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती है।

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः ॥
दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगंधवदनो भवेत् ॥ १० ॥

---

१ दूध सहत घी और अन्न इत्यादिक पदार्थ भक्षण करके तत्कालही धूमपान नहीं करना।

अर्थ–धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रिय वाणी और अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहे और केश दांत और श्मश्रु (मूछ) तथा डाढी इनमें बल आवे ॥

धूममें नलीका विकार ।

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखंडा च त्रिपर्विका ॥ कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमांतरा ॥११॥ धूमनाडी भवेत् दीर्घा शमने रोगिणोऽगुलैः॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता ॥१२॥ तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः ॥ दशांगुलैर्वामनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका ॥ १३ ॥ कलायमंडलं स्थूला कुलित्थागमरंध्रिका ॥ १४ ॥

अर्थ–धूमसेवनमें नली तीन खंड और तीन ग्रंथि (गांठ) करके युक्त तथा कनिष्ठिका उंगलीके बराबर मोटी तथा उसके छिद्रमें चौंराका दाना भीतर चला जावे ऐसी पोली हो । इस प्रकारकी धूमसेवनकी नली रोगीको चालीस अंगुल लंबी लेनीं चाहिये । मृदु संज्ञक धूमके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी लेय । तीक्ष्णसंज्ञक धूमसेवनमें चौवीस अंगुलकी, काससंज्ञक धूमसेवनमें सोलह अंगुलकी, वामनीयसंज्ञक धूमके सेवनमें दश अंगुलकी लंबी नली लेनी । इसी प्रकार व्रणके धूनी देनेको नली दश अंगुलकी लंबी होनी चाहिये । तथा वह नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकारकी नलीसे व्रणकी धूनीको वैद्य लेवे ॥

धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान ।

अथेषिकां प्रलिंपेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम् ॥ धूमद्रव्यस्य कल्केन लेपश्चांष्टांगुलः स्मृतः ॥ १५ ॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् ॥ ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात् ॥ १६ ॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके ॥ वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ १७ ॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः ॥ शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–ईषिका(तै) बारह अंगुल लम्बी लेवे और धूमसेवनकी औषधियां हैं उनका क-

---

१ वमन होनेके वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते हैं ।

ल्क करके उस कल्कको एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नैपर आठ अंगुल पर्यंत लेप करे । फिर उसको सुखायके उसके सूखने पर उस ईषिकाको अलग निकास लेवे । फिर उस कल्कके छिद्रमें दूसरी स्नेहयुक्त बत्तीको रख उसके ऊपर अंगार रख जलायके नलीके छिद्रमें धरे । पश्चात् उस नलीकरके मुखसे धूंएको खींच कर मुखद्वाराही त्याग देवे । फिर नाकके रास्तेसे धूंएको खींचके मुखके द्वारा छोडे । तथा शरावसंपुटके ऊपरकी तरफ छिद्रकर उसमें अंगारे रखके उनके ऊपर व्रणकी धूनीकी औषधोंका कल्क किया हुआ डालके उस शरावेके छिद्रपर नलीके छिद्रको रखके व्रणमें धूनी देवे ॥

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे ।

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ ॥ रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोषणम् ॥ १९ ॥ वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ॥ व्रणे निंबवचाद्यं च धूपनं संप्रचक्षते ॥ २० ॥

अर्थ—शमनसंज्ञक धूममें एलादिक[1] औषधोंका गण है उसका कल्क करके देवे । मृदुसंज्ञक धूममें स्निग्ध (घृतादिक स्नेह) पदार्थोंमें शिलारस डालके कल्क करके देवे । रेचकसंज्ञक धूममें तीक्ष्ण औषधि (सरसों राई इत्यादिकों) का कल्क करके देवे । कासघ्न धूममें कटेरी काली मिरच इत्यादि औषधोंका कल्क करके देवे । वामनधूममें (वमन लानेवाले धूममें) स्नायु[2] और चर्मादिक इनका कल्क करके धूमपानार्थ देवे तथा व्रणमें नीम और वचका धूमपान करावे ॥

बालग्रहनाशक धूनी ।

अन्येऽपि धूमगेहेषु कर्तव्या रोगशांतये ॥ २१ ॥ मायूरपिच्छं निंबस्य पत्राणि बृहतीफलम् ॥ मरीचं हिंगु मांसी च बीजं कार्पाससंभवम् ॥ २२ ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा वैडालिकी तथा ॥ गजदंतश्च तच्चूर्णं किंचिद्घृतविमिश्रितम् ॥ २३ ॥ गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्बालग्रहाञ्जयेत् ॥ पिशाचान् राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ २४ ॥

---

१ वागभट्ट ग्रंथमें एलादिक गण है उसकी औषधि ये हैं । १ इलायची २ बडी इलायची ३ शिलारस ४ कूट ५ गंधप्रियंगु ६ जटामांसी ७ नेत्रवाला ८ रोहिसतृण ९ कपूरी (शाकविशेष) १० किरमानी अजमायन ११ मोटी दालचीनी १२ तमालपत्र १३ तगर १४ ग्रंथपर्णिका भेद दूर्वा १५ जाईका रस १६ नखद्रव्य १७ व्याघ्रनख १८ देवदार १९ अगर २० विशेषधूम २१ केशर २२ कौंचकी जड २३ गूगल २४ राल २५ कूंदरू और २६ नागचंपा । २ हरिणादिकोंके स्नायु नाडी और चर्म आदिशब्दसे खुर सींग हाड इत्यादि जानने ।

अर्थ–बालग्रह दूर होनेको दूसरे प्रकारका धूम होता है तिसमेंसे मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं । १ मोरकी चांद्रिका २ नीमके पत्ते ३ कटेरीके फल ४ मिरच ५ हींग ६ जटामांसी ७ कपासके बिनोले ८ बकरेके बाल ९ सांपकी कांचकी १० बिल्लीकी विष्ठा ११ हाथीका दांत इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर उसमें थोडासा घी मिलायके इस चूर्णकी घरमें धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह पिशाच और राक्षस इनके सर्व उपद्रव तथा संपूर्ण ज्वर दूर हों ॥

धूमपानमें परिहार ।

परिहारस्तु धूमेषु कार्यो रेचननस्यवत् ॥
नेत्राणि धातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २९ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ–रेचक संज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहार विषयमें जो उपाय कहा है सो इस धूमपानमें करना चाहिये । नलीका मुख सुवर्णादि धातुका अथवा नरसल अथवा वांस इत्यादिकोंका करे ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषः स्नैहिकः शमनस्तथा ॥
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥ १ ॥

अर्थ–गंडूष[1] चार प्रकारका है। १ स्नैहिक २ शमन ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवल[2]भी इन्हीं भेदोंकरके चार प्रकारका है ॥

स्नेहकादिक गंडूषोंकी दोष भेदकरके योजना ।

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादशीते प्रसादनः ॥ पित्ते कट्वम्ल-लवणैरुष्णैः संशोधनः कफे ॥ २ ॥ कषायतिक्तमधुरैः कटुष्णो रोपणव्रणे ॥ चतुःप्रकारो गंडूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥ ३ ॥

---

१ गंडूष कहिये द्रव पदार्थ करके कुलै करनेका प्रकार । २ कवल कहिये पदार्थको मुखमें गेरके चवानेका प्रकार ।

अर्थ–स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थोंकरके जो कुरला (कुल्ला) करना उसे स्नैहिक गंडूष जानना । यह वायुरोगमें करे । मधुर और शीतल पदार्थोंकरके प्रसादन कहिये शमनगंडूष जानना यह पित्तरोगमें देवे । तीक्ष्ण खट्टे खारी और उष्ण इन पदार्थोंकरके शोधनगंडूष जानना । यह कफरोगमें योजना करे । कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थों करके रोपण गंडूष जानना । यह गरम २ व्रणपर योजना करे । इसी प्रकार कवलभी चार प्रकारका जानना ॥

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ॥
तत्र द्रवेण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥ ४ ॥

अर्थ–काढे आदि जो द्रव पदार्थ हैं उनसे मुखको भरके जैसेका तैसाही रहने देवे। फिर थोडी देरके बाद मुखसे पटक देनेको गंडूष (कुल्ला) कहते हैं । एवं कल्का-दिक पदार्थको मुखमें इधर उधर फिरायके मुखमें रखनेको कवल कहते हैं ॥

गंडूष और कवलकी औषधोंका प्रमाण ।

दद्याद्द्रवेषु चूर्णं च गंडूषे कोलमात्रकम् ॥
कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवलो बुधैः ॥ ५ ॥

अर्थ–गंडूषमें काढे आदि द्रव द्रव्य हैं उनमें चूर्ण एक कोल डाले तथा कवलमें १ कर्षप्रमाण कल्ककी योजना करे ॥

कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करें ।

धार्यंते पंचमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ॥
गंडूषात्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥
मनुष्यस्त्रीस्तथा पंच सप्त वा दोषनाशनात् ॥ ६ ॥

अर्थ–पांच वर्षके पश्चात् अर्थात् पांच वर्षकी आयुके पीछे इस प्राणीको गंडूष और कवल ग्रहण करने चाहिये । मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे । फिर रोग दूर होनेको कपाल गला तथा आदिशब्दसे मुख इनमें थोडा पसीना आनेपर्यंत तीन अथवा पांच अथवा सात गंडूष करे । अथवा दोष दूर होनेपर्यंत करे ॥

गंडूष धारणमें दूसरा प्रमाण ।

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ॥
नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥ ७ ॥

अर्थ–कफसे मुख भर आवे तबतक अथवा दोषोंका छेदन होनेपर्यंत अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटनेपर्यंत गंडूष धारण करे ॥

वादीके रोगमें स्नैहिक गंडूष।

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः ॥ ८ ॥

अर्थ-तिलोंका कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनकी स्नैहिक गंडूषमें योजना करना चाहिये ॥

पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष।

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ॥
सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गंडूषो दाहनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ-तिल नीला कमल घी खांड और दूध ये सब पदार्थ एकत्र कर इसमें सहत डालके कुल्ले करे तो पित्तसंबंधी ठोडी और मुख इनमें जो दाह होय सो दूर होवे ॥

व्रणादि रोगोंमें मधुगंडूष।

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

अर्थ-सहतको जलमें मिलायके कुरले करे तो मुखके घाव और छाले पडें वो तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुखमें स्वच्छता आती है ॥

विषादिकोंपर गंडूष।

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोथ वा ॥ ११ ॥

अर्थ-विषदोष, क्षारादि जन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमेंभी अथवा दूधके कुल्ले करे ॥

दांतोंके हिलनेपर गंडूष।

तैलसैंधवगंडूषो दंतचाले प्रशस्यते ॥ १२ ॥

अर्थ-तिलोंका तेल और सैंधानमक इनको एकत्र करके कुल्ले करे तो हिलते हुए दांत जमकर मजबूत हो जावें ॥

मुखशोषपर गंडूष।

शोषं मुखस्य वैरस्यं गंडूषः कांजिको जयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ-मुखशोष तथा मुखकी विरसता इनमें कांजीके कुरले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो ॥

कफपर गंडूष।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥ १४ ॥

अर्थ-सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच और पीपल) तथा राई इनका चूर्ण कर अदरखके रसमें मिलायके कुरले करे तो कफका दोष दूर होवे ॥

कफ और रक्तपित्तपर गंडूष ।

त्रिफलामधुगंडूषः कफासृक्पित्तनाशनः ॥ १५ ॥

अर्थ-त्रिफलाके चूर्णको सहतमें मिलाय कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त दूर होवे ॥

मुखपाक (छालेपर) गंडूष ।

दार्वीगुडूचीत्रिफलाद्राक्षाजात्यश्च पल्लवः ॥
यवासश्चेति तत्काथः षष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः ॥
शीतो मुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥ १६ ॥

अर्थ-दारुहलदी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे । इस काढेका छठा भाग सहत मिलायके उस काढेको शीतल करके कुल्ले करे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक (मुखके छाले) दूर होवें ॥

गंडूषके सदृश सारण प्रतिसारण और कवल ।

यस्यौषधस्य गंडूषस्तथैव प्रतिसारणम् ॥
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः ॥ १७ ॥

अर्थ-जिस औषधिका गंडूष उसी औषधका प्रतिसारण (मंजन) जानना तथा उसी औषधका कवलभी कुशल वैद्य जाने ॥

कवलका प्रकार ।

केशरं मातुलिंगस्य सैंधवव्योषसंयुतम् ॥
हन्यात्कवलतो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥ १८ ॥

अर्थ-बिजोरेकी केशर सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करनेसे मुखकी जडता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूर हों ॥

प्रतिसारणके भेद ।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम् ॥
अंगुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥ १९ ॥

अर्थ-कल्क अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है । उसको मुखरोगी मनुष्यके जैसा दोष होय उसीके अनुसार उंगलीके आगेके पेरुआमें भरके जीभमें तथा संपूर्ण मुखमें लगावे ॥

प्रतिसारण चूर्ण ।

कुष्ठं दार्वी समंगा च पाठतिक्ता च पीतिका ॥

तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥
रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ– १ कूट २ दारुहलदी ३ लजालू ४ पाठ ५ कुटकी ६ मजीठ ७ हलदी ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभपर तथा संपूर्ण मुखमें उंगलीके पेरुआसे रगडे तो दांतोंके मसूढोंसे रुधिरका गिरना, दांतोंमें पीडाका होना, सूजन, दाह ये रोग दूर हों । इस चूर्णको अतिसारप्रतिसारण अर्थात् मंजन कहते हैं ॥

गंडूषादिक हीनयोगादि होनेके लक्षण ।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुची तथा ॥
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–गंडूषादिकोंका हीनयोग (अल्पयोग) होनेसे कफका आधिक्य होता है । मधुरादि पदार्थोंसे रसका ज्ञान नहीं रहता और अन्नादिकोंपर अरुचि होती है । गंडूषादिकोंका अत्यंत योग होनेसे मुखपाक अर्थात् मुखमें छाले हो जावें तथा शोष और प्यास ये लक्षण होते हैं ॥

शुद्धगंडूषके लक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ॥
इंद्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥ २२ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे दशमोध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–गंडूषादिकोंका उत्तम योग होनेसे व्याधिका नाश अंतःकरणमें संतोष मुखमें निर्मलपन हलकापन रसनादिक इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

लेपकी विधि ।

आलेपस्य च नामानि लिप्तो लेपश्च लेपनम् ॥
दोषघ्नो विषहा वर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधा मतः ॥ १ ॥
त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धांगुलोन्नतः ॥
आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति च्छविम् ॥ २ ॥

अर्थ-लिप्त लेप और लेपन ये तीन नाम लेपके हैं उसीको आलेप कहते हैं। वह लेप दोषघ्न[1] विषघ्न[2] और वर्ण्य[3] इन भेदोंकरके मुखलेप तीन प्रकारका है । उस लेपके प्रमाण तीन हैं जैसे एक अंगुल ऊंचेको दोषघ्न जानना, पौन अंगुलके प्रमाण ऊंचे लेपको विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊंचा होवे उसे वर्ण्य जानना । ऐसे तीन प्रमाण जानने । जो आर्द्र (गीला) लेप है उसे रोगहरणकर्त्ता जानना । जो शुष्क (करडा) लेप है उसे शरीरकी कांतिको दूषित करनेवाला जानना ॥

दोषघ्न लेप ।

पुनर्नवां दारु शुंठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च ॥
पिष्टां चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥

अर्थ-१ पुनर्नवा (सांठ) २ देवदारु ३ सोंठ ४ सपेद सरसों और ५ सहजनेकी छाल ये पांच औषधि समान भाग लेकर कांजीमें पीस सूजनपर लेप करे तो नौ प्रकारकी सूजन दूर होवे ॥

दाहशांतिका लेप ।

बिभीतफलमज्जाक्तलेपो दाहार्त्तिनाशनः ॥ ४ ॥

अर्थ-बहेडेके भीतरकी गिरीको बारीक पीस देहमें लेप करे तो दाहसंबंधी पीडा दूर हो ॥

दशांगलेप ।

शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचंदनम् ॥ एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं वालकमेव च ॥ इति संचूर्ण्य लेपोयं पंचमांशघृतप्लुतः ॥ ५ ॥ जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशांग इति संज्ञितः ॥ विसर्पान् विषविस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-१ सिरसकी छाल २ मुलहठी ३ तगर ४ लालचंदन ५ इलायची ६ जटामांसी ७ हलदी ८ दारुहलदी ९ कूट और १० नेत्रवाला इन दश औषधोंको समान भाग ले बारीक पीस चूर्ण करे फिर जलमें सानके रोगके स्थानपर लेप करे तो विसर्प रोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रण ये सर्व रोग दूर हों। इस लेपको दशांगलेप कहते हैं॥

विषघ्न लेप ।

अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ॥
शोथमारुष्करं हंति लेपो वा कृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥

---

१ सूजन खुजली इत्यादि रोगोंका दूरकर्त्ता जानना । २ भिलाए बचनाग इत्यादिकोंके विषको दूर करनेवाला । ३ मुख और त्वचाको कांति देनेवाला ।

अर्थ–बकरीके दूधमें तिलोंको पीसके उसमें मक्खन मिलाय लेप करे अथवा काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको एकत्र पीस इसमें मक्खन मिलाय लेप करे तो भिलाएकी सूजन दूर होवे॥

दूसरा प्रकार।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः॥
लेपो धान्यांबुसंपिष्टः कीटविस्फोटनाशनः॥ ८॥

अर्थ–१ कलियारी २ अतीस ३ कडुई तूंबीके बीज ४ कडुई तोरईके बीज ५ मूलीके बीज इन पांच औषधोंको समान भाग लेकर धान्यांबु (कांजी) में पीसके कीट विशेषके दंशपर लेप करे तथा विस्फोटकरोगपर लेप करे तो ये विकार दूर हों॥

मुखकांतिकारक लेप।

रक्तचंदनमंजिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः॥
वटांकुरमसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः॥ ९॥

अर्थ–१ लालचंदन २ मजीठ ३ लोध ४ कूठ ५ फूलप्रियंगु ६ वडके अंकुर ७ मसूर ये सात औषधी समभाग लेकर पानीसे पीस लेप करे तो वादीका रोग दूर हो और यह लेप मुखपर कांति करता है॥

दूसरा प्रकार।

मातुलुंगजटासर्पिः शिला गोशकृतो रसः॥
मुखकांतिकरो लेपः पिटिकाव्यंगकालजित्॥ १०॥

अर्थ–बिजोरेकी जड घी मनसिल और गौके गोबरका रस ये चार औषध एकत्र कर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुहांसे व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों॥

मुहांसेनाशक लेप।

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः॥
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरीचं मुखलेपनात्॥
सिद्धार्थकवचालोध्रसैंधवैश्च प्रलेपनम्॥ ११॥

अर्थ–लोध धनिया और वच ये तीन औषधि समान भाग ले जलमें पीस लेप करे अथवा गोरोचन और काली मिरच इन दोनोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। अथवा सपेद सरसों वच लोध और सैंधानमक इन चार औषधोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। इस प्रकार ये तीन प्रकारके लेप मुखके मुहांसे दूर करनेके वास्ते जानने॥

व्यंगरोगपर लेप।

व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठावासमाक्षिका: ॥
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ॥ १२ ॥

अर्थ-कोहवृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण अथवा सपेद घोडेके खुर-संबंधी हाडकी राख ये तीन औषध पृथक् २ सहत और मक्खनमें मिलायके पृथक् २ लेप करे तो व्यंगरोग दूर होवे ॥

मुखकी झांईपर लेप।

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात् ॥
मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ १३ ॥

अर्थ-आकके दूधमें हलदीको पीस लेप करे तो मुखकी बहुत दिनकी कालौंच (झांई) दूर होवे ॥

मुहांसे आदिपर लेप।

वटस्य पांडुपत्राणि मालती रक्तचंदनम् ॥
कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥
तारुण्यपिटिकाव्यंगनीलिकादिविनाशनम् ॥ १५ ॥

अर्थ-वडके पीले पत्ते चमेली लालचंदन कूठ दारुहलदी और लोध इन सब औषधोंको एकत्र पीसके लेप करे तो जवानीके मुहांसे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवें ॥

अरुंषिकारोगपर लेप।

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ॥
मूत्रपिष्टः प्रलेपोयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥

अर्थ-तिलोंकी पुरानी खल और मुरगेकी वींट इन दोनोंको गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका दूर होवे ॥

दूसरा प्रकार।

खदिरारिष्टजंबूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः ॥
कुटजत्वक्सैंधवं वा लेपो हन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥

अर्थ-खैर नीम और जामुन इन तीनोंकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रसे पीस लेप करे अथवा कूडाकी छाल और सैंधानमक ये दो औषध गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिकारोग दूर होवे ॥

दारुणरोगपर लेप।

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैंधवैः॥
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ १८ ॥

अर्थ–१ चिरोंजी २ मुलहटी ३ कूठ ४ उडद और ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान ले बारीक पीस सहतमें मिलायके मस्तकमें दारुण (कहिये दारुणरोग) दूर होनेके वास्ते लेप करे ॥

दूसरी विधि।

दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं जयेत् ॥
आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम् ॥
दुग्धपिष्टः प्रलेपोयं दारुणं हंति दारुणम् ॥ १९ ॥

अर्थ–खसखसको दूधमें पीस मस्तकपर लेप करे तथा आमकी गुठली गिरी और छोटी हरड इन दोनोंको समान भाग ले चूर्णकर दूधमें पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे ॥

इन्द्रलुप्तपर लेप।

रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात् ॥
इंद्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम् ॥ २० ॥

अर्थ–कडुए पटोलके पत्तोंका रस काढके उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर होवे ॥

दूसरी विधि।

इंद्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः ॥
गुंजामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा ॥ २१ ॥

अर्थ–कटेरीका रस निकाल उसमें सहत मिलायके लेप करे अथवा घूंघचीकी जडका अथवा घूंघची (चिरमिटी) के रसको सहतमें मिलायके लेप करे। अथवा भिलायेके पत्तोंका रस निकाल उसमें सहत मिलाय लेप करे तो इन्द्र-लुप्तरोग दूर हो ॥

केशवृद्धिपर लेप।

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी ॥
शिरःप्रलेपनं तेन केशसंवर्धनं परम् ॥ २२ ॥

अर्थ–गोखरू तिलके फूल इन दोनोंको समान भाग लेके चूर्ण करे और

सहत तथा घी ये दोनों बराबर लेके इसमें चूर्णको सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढें ॥

केश जमानेवाला लेप।

हस्तिदंतमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसांजनम् ॥
रोमाण्यनेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ २३ ॥

अर्थ-हाथीके दांतको जलायके उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीस जिस स्थानके बाल उड गये हों उस जगह लेप करे तो बाल ऊग आवें। यह लेप हाथोंकी हथेलीपर करनेसे हथेलीमें बाल अवश्य ऊगें ॥

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप।

यष्टींदीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥
इंद्रलुप्तः शमं याति केशाः स्युः सघना दृढाः ॥ २४ ॥

अर्थ-मुलहटी कमल और दाख इन तीन औषधोंको तिलोंका तेल गौका दूध और घी इनमें पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृढ और सघन होवें ॥

केश आनेपर दूसरा लेप।

चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ॥
तैलेन सह लेपोऽयं रोमसंजननः परः ॥ २५ ॥

अर्थ-बकरी आदि चौपाये जीवोंकी त्वचा (चाम) बाल नख सींग और हाड इनकी भस्म कर तिलकी तेलमें मिलायके लेप करे तो यह लेप नवीन केश (बाल) आनेमें अत्यंत उत्तम है ॥

केश काले करनेका लेप।

इंद्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यंगमाचरेत् ॥
प्रत्यहं तेन कालाग्निसन्निभाः कुंतला अलम् ॥ २६ ॥

अर्थ-इन्द्रायनके बीजोंका तेल पतलायंत्र करके निकास लेय फिर इसको सपेद बालोंपर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होवें ॥

दूसरी विधि।

अयोरजो भृंगराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ॥
स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात् पलितं जयेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-१ लोहका चूर्ण २ भांगरा ५ त्रिफला (हरड बहेडा आंवला) ६ काली मिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईखके रसमें डालके एक महिने पर्यंत

धरा रहने दे । फिर अकालमें जो सपेद बाल हुए हों उनपर यह लेप करे तो काले बाल होवें ॥

तीसरा प्रकार ।

धात्रीफलत्रयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम्॥ पंचाम्रमज्जा लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते ॥ २८॥ पिष्ट्वा लोहमये भांडे स्थापयेदुषितं निशि ॥ लेपोऽयं हंति नचिरादकालपलितं महत् ॥ २९ ॥

अर्थ–आमले तीन, हरड दो, बहेडेका फल एक, आमकी गुठलीके भीतरकी मींगी पांच, लोहचूर्ण एक कर्ष, इन संपूर्ण औषधोंको लोहकी कढाईमें बारीक पीसे सब रात्रिमें उसी प्रकार धरी रहने दे । दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्यके थोडी अवस्थामें सपेद बाल हो गये हों वे इस लेपसे तत्काल काले होवें ॥

चतुर्थ प्रकार ।

त्रिफला नीलिकापत्रं लोहं भृंगरजः समम् ॥
अजामूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं स्मृतम् ॥ ३० ॥

अर्थ–त्रिफला और नीलके पत्ते तथा लोहका चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधोंको समान भाग लेके बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो यह लेप सपेद बालोंके काले करनेमें परमोत्तम है ॥

पांचवां प्रकार ।

त्रिफला लोहचूर्णं च दाडिमत्वग्बिसं तथा ॥ प्रत्येकं पंचपलिकं चूर्णं कुर्याद्विचक्षणः ॥ ३१ ॥ भृंगराजरसस्यापि प्रस्थषट्कं प्रदापयेत् ॥ क्षिप्त्वा लोहमये पात्रे भूमिमध्ये निधापयेत् ॥ ३२ ॥ मासमेकं ततः कुर्याच्छागीदुग्धेन लेपनम् ॥ कूर्चे शिरसि रात्रौ च संवेष्ट्यैरंडपत्रकैः ॥ ३३ ॥ स्वपेत्प्रातस्ततः कुर्यात्स्नानं तेन च जायते ॥ पलितस्य विनाशश्च त्रिभिर्लेपैर्न संशयः ॥३४॥

अर्थ–त्रिफला लोहका चूरा अनारकी छाल और कमलका कंद ये प्रत्येक पांच २ पल लेवे । सबको बारीक पीस चूर्ण करे । फिर छः प्रस्थ भांगरेका रस निकालके एक लोहेकी कढाहीमें भरके और पूर्वोक्त त्रिफला आदिका चूर्ण डालके एक महीने पर्यंत जमीनमें गाड देवे । पश्चात् बाहर निकालके इसमें बकरीका दूध मिलायके मस्तकमें रात्रिके समय लेप करे और उस लेपपर अंडके पत्ते बांधके सोय जावे ।

प्रातःकाल उठके स्नान करे, इस प्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्यके युवावस्थामें सपेद बाल हो गये हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले हो जावें ॥

केशनाशन प्रयोग ।

शंखचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम् ॥ मनःशिला चार्धभागा स्वर्जिका चैकभागिका ॥ ३५ ॥ लेपोऽयं वारिपिष्टस्तु केशानुत्पाट्य दीयते ॥ अनया लेपयुक्त्या च सप्तवेलं प्रयुक्तया ॥३६॥ निर्मूलकेशस्थानं स्यात् क्षपणस्य शिरो यथा ॥३७॥

अर्थ—शंखचूर्ण दो भाग हरताल एक भाग मनसिल आधा भाग सज्जीखार एक भाग इन सबको जलमें पीसके जिस जगहके बाल निर्मूल करने हों उस जगह उस्तरासे बालोंको दूर करके इस औषधका लेप करे । इस प्रकार युक्तिसे सात लेप करे तो बालोंके आनेका स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवें । संन्यासीके मस्तक प्रमाण चिकना हो जाय ॥

दूसरी विधि ।

तालकं शाणयुग्मं स्यात् षट्शाणं शंखचूर्णकम् ॥ द्विशाणिकं पलाशस्य क्षारं दत्त्वा प्रमर्दयेत् ॥३८॥ कदलीदंडतोयेन रविपत्ररसेन वा ॥ अस्यापि सप्तभिर्लेपैर्लोम्नां शातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हरताल २ शाण और शंखका चूर्ण छः शाण तथा पलास (ढाक) का खार २ शाण इन सब औषधोंको केलाके दंडेके रसमें अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरल कर केश दूर करनेकी जगह सातवार लेप करे । यह लेप केश दूर करनेके विषयमें परमोत्तम है ॥

सफेद कोढ दूर होनेका औषध ।

सुवर्णपुष्पी कासीसं विडंगानि मनःशिला ॥
रोचना सैंधवं चैव लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—१ पीली चमेली २ हीराकसीस ३ वायविडंग ४ मनसिल ५ गोरोचन और ६ सैंधानमक ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ (सपेद कोढ) दूर हो ॥

दूसरी विधि ।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता ॥
बस्तमूत्रेण संपिष्टा प्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥

अर्थ–१ काकतुंडी २ पमारके बीज ३ कूट ४ पीपल ये औषध समान भाग लेकर बकरेके मूत्रसे पीसके लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होवे ॥

तीसरी विधि।

बाकुची वेतसो लाक्षा काकोदुंबरिका कणा ॥ रसांजनमयश्चूर्णं तिलाः कृष्णास्तदेकतः ॥४२॥ चूर्णयित्वा गवां पित्तैः पिष्ट्वा च गुटिका कृता॥अस्याः प्रलेपाच्छ्वित्राणि प्रणश्यंत्यतिवेगतः ॥४३॥

अर्थ–१ बावची २ अमलवेत ३ लाख ४ कठूमर ५ पीपल ६ सुरमा ७ लोहका चूर्ण ८ काले तिल ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर गौके पित्तसे इन सब औषधोंको खरल करके गोली करे। फिर लेप करे इस लेपके प्रभावसे श्वित्रकुष्ठ बहुत जल्दी दूर होवे ॥

विभूतपर लेपन।

धात्री सर्जरसश्चैव यवक्षारश्च चूर्णितैः ॥
सौवीरेण प्रलेपोऽयं प्रयोज्यः सिध्मनाशने ॥ ४४ ॥

अर्थ–१ आंवले २ राल ३ जवाखार इन तीन औषधोंको सौवीर[1]में अथवा कांजीमें पीसके विभूत (बनरफ) रोग दूर करनेको प्रयुक्त करे ॥

दूसरा प्रकार।

दार्वीमूलकबीजानि तालकं सुरदारु च ॥ तांबूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक् पृथक् ॥ ४५॥ शंखचूर्णं शाणमात्रं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ लेपोऽयं वारिणा पिष्टः सिध्मनां नाशनः परः ॥४६॥

अर्थ–१ दारुहलदी २ मूलीके बीज ३ हरताल ४ देवदारु ५ नागरवेलके पान ये पांच औषध एक २ कर्ष तथा शंखका चूर्ण १ शाण ले इन सब औषधोंका चूर्ण करके जलसे पीसके लेप करे तो विभूत रोग दूर हो ॥

नेत्ररोगपर लेप।

हरीतकी सैंधवं च गैरिकं च रसांजनम् ॥
बिडालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः ॥ ४७ ॥

अर्थ–१ हरड २ सैंधानमक ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जलसे पीसके बिडालक अर्थात् नेत्रोंके बाहर लेप करे। इसको बिडालक कहते हैं। इस लेप करके नेत्रके सर्व विकार दूर होवें ॥

---

१ सौवीर बनानेकी विधि मध्यखंडमें संधानप्रकरणमें लिखी है।

दूसरी विधि ।

रसांजनं व्योषयुतं संपिष्टं वटकीकृतम् ॥
कंडूपाकान्विता हंति लेपादंजननामिकाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-१ रसांजन, व्योष कहिये २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ये चार औषध समान भाग ले पानीसे पीस गोली करे। इसको जलमें घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका (गुहेरी) जो नेत्रोंके कोएनपर होती है उसके दूर करनेको लगावे तो गुहेरी दूर हो ॥

खुजली आदिपर लेप ।

प्रपुन्नाटस्य बीजानि बाकुची सर्षपास्तिलाः ॥
कुष्ठं निशाद्वयं मुस्तं पिष्ट्वा तक्रेण लेपतः ॥
प्रलेपादस्य नश्यंति कंडूदद्रूविचर्चिकाः ॥ ४९ ॥

अर्थ-१ पमारके बीज २ बावची ३ सरसों ४ तील ५ कूठ ६ हलदी ७ दारुहलदी ८ नागरमोथा ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे। छाछमें पीसके इसका लेप करे तो खुजली दाद और विचर्चिका (पैरोंका फटना) ये रोग दूर होवें ॥

दाद खुजली आदिपर लेप ।

हेमक्षीरी विडंगानि दरदं गंधकस्तथा॥ दद्रुघ्नः कुष्ठसिंदूरं सर्वाण्येकत्र मर्दयेत् ॥ ५० ॥ धत्तूरनिंबतांबूलीपत्राणां स्वरसैः पृथक् ॥ अस्य प्रलेपमात्रेण पामादद्रूविचर्चिकाः ॥ ५१ ॥ कंडूश्चरकसश्चैव प्रशमं यांति वेगतः ॥ ५२ ॥

अर्थ-१ चोक २ वायविडंग ३ हींगलू ४ गंधक ५ पमारके बीज ६ कूठ ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धतूरेके पत्ते तथा नीमके पत्ते और नागरवेलके पत्तोंका रस इनमें पृथक् २ खरल कर एक एकका लेप करे तो खाज दाद और विचर्चिका कंडू और चरकस रोग (कुष्ठ रोगका भेद) ये संपूर्ण दूर होवें ॥

दूसरा प्रकार ।

दूर्वाभया सैंधवं च चक्रमर्दः कुठेरकः ॥
एभिस्तक्रयुतो लेपः कंडूदद्रूविनाशनः ॥ ५३ ॥

अर्थ-१ दूब २ छोटी हरड ३ सैंधानमक ४ पमारके बीज ५ वनतुलसी ये पांच औषध समान भाग ले छाछमें पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हों ॥

रक्तपित्तादिकोंपर लेप।

चंदनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥
क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ लालचंदन २ नेत्रवाला ३ मुलहटी ४ गंगेरनकी जड ५ वाघके नख ६ कमल ये छः औषध समान भाग ले दूधमें पीस लेप करे तो रक्तपित्त संबंधी मस्तकपीडा दूर हो ॥

उदर्दरोगपर लेप।

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह ॥
कटुतैलेन संमिश्रमुदर्दघ्नं प्रलेपनम् ॥ ५५ ॥

अर्थ–१ सपेद सरसों २ हलदी ३ कूठ ४ पमारके बीज ५ तिल इन पांच औषधोंको समान भाग ले बारीक चूर्ण करके सरसोंके तेलमें मिलायके लेप करे तो शीतपित्तका भेद उदर्द रोग जो है वह दूर होवे ॥

वातविसर्परोगपर लेप।

रास्ना नीलोत्पलं दारु चंदनं मधुकं बला ॥
घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ रास्ना २ नीला कमल ३ देवदारु ४ लाल चंदन ५ मुलहटी ६ गंगेरनकी जड ये छः औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर दूधमें अथवा घीमें सानके लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हो ॥

पित्तविसर्परोगपर लेप।

मृणालं चंदनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम् ॥
सारिवामलकं पथ्या लेपः पित्तविसर्पनुत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–१ कमलका डांठरा २ लालचंदन ३ लोध ४ नेत्रवाला ५ कमल ६ छोटा कमल ७ सारिवा ८ आंवले ९ छोटी हरड ये नौ औषध समान भाग ले पानीसे पीस लेप करे तो पित्तविसर्प दूर होवे ॥

कफविसर्पपर लेप।

त्रिफला पद्मकोशीरसमंगाः करवीरकम् ॥
नलमूलमनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५८ ॥

अर्थ–त्रिफला कहिये १ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ पद्माख ५ नेत्रवाला ६ धायके फूल ७ कणेर ८ नरसलकी जड ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जलसे पीस लेप करे तो कफविसर्प दूर हो ॥

पित्तवातरक्तपर लेप ।

मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमैः सह ॥
प्रलेपः पित्तवातास्रे शतधौतघृतप्लुतः ॥ ५९ ॥

अर्थ–१ मूर्वा २ नीला कमल ३ पद्माख और ४ सिरसका फूल ये चार औषध समान भाग लेके चूर्ण करे तथा सौ वार धुले हुए घीमें इस चूर्णको मिलायके लेप करे तो पित्त वात रक्त दूर होवें ॥

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप ।

आमलं घृतभृष्टं तु पिष्टं कांजिकवारिभिः ॥
जयेन्मूर्ध्नि प्रलेपेन रक्तं नासिकया स्रुतम् ॥ ६० ॥

अर्थ–आंवलेको घीमें भून कांजीमें पीस मस्तकपर लेप करे तो नाकसे जो रुधिर गिरता है वो दूर होवे ॥

वातकी मस्तकपीडापर लेप ।

कुष्ठमैरंडतैलेन लेपात्कांजिकपेषितम् ॥
शिरोऽर्तिं वातजां हन्यात् पुष्पं वा मुचकंदजम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–कूठ अथवा मुचकुंदके फूलोंको कांजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके वातसंबंधी मस्तकपीडा दूर होनेको लेप करे ॥

दूसरा प्रकार ।

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ॥
सकांजिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोर्तिनुत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–१ देवदारु २ तगर ३ कूठ ४ नेत्रवाला और ५ सोंठ ये पांच औषध समान भाग ले कांजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो वातसंबंधी मस्तकपीडा दूर होय ॥

पित्तशिरोरोगपर लेप ।

धात्रीकसेरुह्रीवेरपद्मपद्मकचंदनैः॥ दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम् ॥ शिरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा॥६३॥

अर्थ–१ आंवला २ कचूर ३ नेत्रवाला ४ कमल ५ पद्माख ६ रक्तचंदन ७ दूबकी जड ८ नेत्रवाला ९ नरसलकी जड इन नौ औषधोंको जलमें पीसके लेप करे तो पित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर होवे ॥

कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप ।

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ॥
मांसीरास्नारुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् ॥ ६४ ॥

अर्थ–१ रेणुका २ तगर ३ पत्थरका फूल ४ नागरमोथा ५ इलायची ६ अगर ७ देवदारु ८ जटामांसी ९ रास्ना और १० अंडकी जड ये दश औषध समान भाग ले गरम जलमें पीसके कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप करे तो अच्छी होय ॥

दूसरा प्रकार ।

शुंठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः सरोहिषैः ॥
मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६५ ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कूठ ३ पमारके बीज ४ देवदारु ५ रोहिषतृण ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीस सुखोष्ण कहिये कुछ गरम करके लेप करे तो कफसंबंधी मस्तकपीडा दूर हो ॥

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेदकपर लेप ।

सारिवाकुष्ठमधुकवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥
लेपः सकांजिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ ६६ ॥

अर्थ–१ सारिवा २ कूठ ३ मुलहटी ४ वच ५ पीपल तथा ६ नीला कमल ये छः औषध समान भाग लेकर कांजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो सूर्यावर्त्तरोग और आधासीसी ये रोग दूर हों ॥

कनपटी अनंतवात तथा सर्व शिररोगोंपर लेप ।

वरी नीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा ॥
शंखकेनंतवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित् ॥ ६७ ॥

अर्थ–१ विदारीकंद २ नीला कमल ३ दूब ४ काले तिल और ५ पुनर्नवा ये पांच औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा अनंत वात और सर्व मस्तकके रोग दूर हों ॥

दूसरा प्रकार ।

अथ लेपविधिश्चान्यः प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ॥
द्वौ तस्य कथितौ भेदौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥ ६८ ॥

अर्थ–इसके अनंतर बुद्धिवानोंको मान्य ऐसे दूसरे लेपकी विधि है तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने ॥

उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण ।

चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोन्नतं समितिस्तयोः ॥
शीतस्तनुर्निर्विषी च प्रलेपः परिकीर्तितः ॥ ६९ ॥
आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा ॥ ७० ॥

अर्थ-वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंसकी गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये । तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य तथा तनु अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों (छिद्रों) में प्रवेश करनेवाला तथा निर्विषी ऐसा प्रलेपक जानना । आर्द्र कहिये द्रवयुक्त और जड तथा उष्ण कफवायुको दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना ॥

दोनों प्रकारके लेप किस जगह देने ।

रोमाभिमुखमादेयौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥
वीर्यं सम्यग् विशत्याशु रोमकूपैः शिरामुखैः ॥ ७१ ॥

अर्थ-प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सन्मुख करके देवे अर्थात् सब रोमोंको खडे करके लेप करे । इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा करके उस लेपका वीर्य उत्तम प्रकार करके शरीरमें प्रवेश करता है ॥

साधारण लेपविषयमें निषेध ।

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ॥
शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ ७२ ॥

अर्थ-रात्रिमें लेप न करे और उस लेपके सूखनेपर उसको धारण न करे । कारण यह है कि लेप सूखनेपर उसको लगा रहने देनेसे देहको अत्यंत पीडा होती है ॥

रात्रिमें निषेधका हेतु ।

तमसा पिहितो ह्युष्मा रोमकूपमुखे स्थितः ॥
विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेत्ततः ॥ ७३ ॥

अर्थ-रात्रिमें अंधकार करके शरीरसंबंधी उष्मा आच्छादित हो रोमरंध्र मुखोंमें आकर रहे है और विना लेपके वो बाहर निकले है इसीसे रात्रिमें लेप न करे ॥

रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी ।

रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः ॥
अपाकिशोथे गंभीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ७४ ॥

अर्थ–जिस सूजनका पाक नहीं हुआ हो उसपर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफसे उत्पन्न जो सूजन उसमें बुद्धिवान् वैद्य रात्रिमेंभी लेपादिकोंकी विधि करे अर्थात् लेप करे ॥

व्रण दूर होनेपर लेप ।

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः ॥ तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः ॥ ७५ ॥ पंचमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते ॥ सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमा मताः ॥ ७६ ॥

अर्थ–प्रथम व्रणसंबंधी जो सूजन होती है उसके दूर करनेको लेप करे । दूसरा लेप व्रणमें जो रुधिर जमा रहता है वो पिघल जावे ऐसा लेप करे । तीसरा लेप उपनाह कहिये पसीने निकालनेका प्रयोग है । चौथा लेप व्रण फूटे ऐसा करे । पांचवां लेप राध आदिका शोधन होय ऐसा करे । छठा लेप रोपण कहिये व्रण भर आवे ऐसा करे । सातवां लेप व्रणके स्थानपर कांति आवे ऐसा करे । इस प्रकार व्रण अच्छा होनेके विषयमें सात क्रम जानने । वे औषध आगे ग्रंथमें कहते हैं ॥

व्रणसंबंधी वायुकी सूजनपर लेप ।

बीजपूरं जटामांसी देवदारु महौषधम् ॥
रास्नाग्निमंथो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ ७७ ॥

अर्थ–१ बिजोरेकी जड २ जटामांसी ३ देवदारु ४ सोंठ ५ रास्ना ६ अरनीकी जड ये छः औषध समान भाग लेके पानीमें पीस व्रणसंबंधी जो वादीकी सूजन उसके दूर करनेको लेप करे ॥

पित्तकी सूजनपर लेप ।

मधुकं चंदनं मूर्वा नलमूलं च पद्मकम् ॥
उशीरं वालकं पद्मं पित्तशोथे प्रलेपनम् ॥ ७८ ॥

अर्थ–१ मुलहटी २ लाल चंदन ३ मूर्वा ४ नरसलकी जड ५ पद्माख ६ नेत्रवाला ७ खस ८ कमल ये आठ औषधि समान भाग ले जलसे पीस व्रणसंबंधी पित्तकी सूजनपर लेप करे ॥

कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप ।

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक् सिकता शिवा ॥
मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहृत् ॥ ७९ ॥

अर्थ–१ पीपल २ पुरानी खल ३ सहजनेकी छाल ४ खांड और ५ हरड ये

पांच औषधि समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके थोडा गरम करके कफसंबंधी सूजन दूर करनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे ॥

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजनपर लेप ।

द्वे निशे चंदने द्वे च शिवा दूर्वा पुनर्नवा ॥
उशीरं पद्मकं लोध्रं गैरिकं च रसांजनम् ॥
आगंतुके रक्तजे च शोथे कुर्यात्प्रलेपनम् ॥ ८० ॥

अर्थ–१ हलदी २ दारुहलदी ३ चंदन ४ लाल चंदन ५ हरड ६ दूब ७ पुनर्नवा (सांठ) ८ नेत्रवाला ९ पद्माख १० लोध ११ गेरू १२ रसोत ये बारह औषध समान भाग ले जलमें बारीक पीस आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजन दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ॥

व्रण पकनेका लेप ।

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ॥
सक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ८१ ॥

अर्थ–१ सनके बीज २ मूलीके बीज ३ सहजनेके बीज ४ तिल ५ सरसों ६ जव ७ लोहकी कीटी ८ अलसीके बीज ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे ॥

पके व्रणके फोडनेका लेप ।

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः ॥
भल्लातकश्च कासीसं सैंधवं दारणे स्मृतः ॥ ८२ ॥

अर्थ–१ दंतीकी जड २ चीतेकी छाल ३ थूहरका दूध ४ आकका दूध ५ गुड ६ भिलाए ७ हीराकसीस ८ सैंधानमक इन आठ औषधोंमेंसे छः औषधोंका चूर्ण करके उसको थूहरके दूध और आकके दूधमें सानके पके हुए व्रणपर लगावे तो वह फूट जावे ॥

दूसरा प्रकार ।

चिरबिल्वोग्निको दंती चित्रको हयमारकः ॥
कपोतकंकगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ॥ ८३ ॥

अर्थ–१ कंजेके बीज २ भिलाए ३ दंतीकी जड ४ चीतेकी छाल ५ कनेरकी जड इन पांच औषधोंका चूर्ण करे । फिर कपोत (कबूतर वा पिंडुकिया) कंक (सपेद चील) और गीध इन तीनोंकी वीट समान भाग लेके उस चूर्णमें मिलायके पके हुए फोडेपर लेप करे तो वह फोडा तत्काल फूट जावे ॥

तीसरा प्रकार।

सर्जिकायावशूकाढ्याः क्षारा लेपेन दारणाः ॥
हेमक्षीर्य्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥ ८४ ॥

अर्थ—सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोडा फोडनेको करे। उसी प्रकार हेमक्षीरी (चोक) का लेप फोडेके फोडनेको उत्तम कहा है ॥

व्रणशोधन लेप।

तिलसैंधवयष्ट्याह्वनिंबपत्रनिशायुगैः ॥
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ ८५ ॥

अर्थ-१ तिल २ सैंधानमक ३ मुलहटी ४ नीमके पत्ते ५ हलदी ६ दारुहलदी ७ निसोथ ये सात औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण करके घीमें सानके लेप करे तो व्रणका शोधन होवे ॥

व्रणके शोधन और रोपणविषयक लेप।

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ॥
तिलैश्च सह संयुक्तो लेपः शोधनरोपणः ॥ ८६ ॥

अर्थ—१ नीमके पत्ते २ घी ३ सहत ४ मुलहटी ५ तिल इन पांच औषधोंमेंसे तीन औषधोंका चूर्ण करके उसमें घी सहत मिलायके व्रणका शोधन और रोपण करनेके वास्ते लेप करे ॥

व्रणसंबंधी कृमि दूर करनेपर लेप।

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपो हन्याद् व्रणकृमीन् ॥
लशुनस्याथ वा लेपो हिंगुनिंबभवोऽथ वा॥ ८७ ॥

अर्थ—१ करंज २ नीम ३ निर्गुंडी इन तीन औषधोंके पत्तोंको पीस व्रणसंबंधी कृमि दूर होनेको लेप करे। अथवा केवल लहसनको पीसके लेप करे अथवा हींग और नीमके पत्ते दोनोंको एकत्र पीसके लेप करे ॥

व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप।

निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ८८ ॥

अर्थ—१ नीमके पत्ते २ तिल ३ दंती ४ निसोथ ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहतमें सानके दुष्ट व्रणके शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये भरनेके वास्ते लेप करे ॥

उदरशूलमें नाभिपर लेप ।

मदनस्य फलं तिक्तां पिष्ट्वा कांजिकवारिणा ॥
कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशांतिर्भवेत्ततः ॥ ८९ ॥

अर्थ-१ मैनफल २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल (दर्द) दूर होय ॥

वातविद्रधिपर लेप ।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ९० ॥

अर्थ-१ सहजनेकी छाल २ निर्गुंडीके पत्ते ३ अंडकी जड ४ जौ ५ गेहूं ६ मूंग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस वातविद्रधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन होय ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे ॥

पित्तविद्रधिपर लेप ।

पैत्तिके सर्पिषा लाजमधुकैः शर्करान्वितैः ॥
प्रलिंपेत् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचंदनैः ॥ ९१ ॥

अर्थ-साली चांवलकी खील मुलहटी इन दोनोंका चूर्ण और खांड इन दोनोंको घीमें सानके लेप करे । अथवा पयस्या कहिये क्षीरकाकोली उसके अभावमें असगंध नेत्रवाला और लाल चंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर होय ॥

कफविद्रधिपर लेप ।

इष्टिका सिकता लोहकिट्टं गोशकृता सह ॥
सुखोष्णश्च प्रदेहोऽयं मूत्रैः स्याच्छ्लेमविद्रधौ ॥ ९२ ॥

अर्थ-१ ईट २ बालूरेत ३ लोहकी कीट ४ गौका गोवर ये चार औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके यह प्रदेह संज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो ॥

आगंतुक विद्रधिपर लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥
क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागंतुनिमित्तजे ॥ ९३ ॥

अर्थ-१ लाल चंदन २ मजीठ ३ हलदी ४ मुलहटी ५ गेरू ये पांच औषध समान भाग ले दूधमें पीस अभिघात निमित्त करके दुष्ट हुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे ॥

वातगलगंडपर लेप।

निचुलः शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा॥
प्रदेहो वातगंडेषु सुखोष्णः संप्रदीयते॥ ९४॥

अर्थ—१ जलवेतस २ सहजनेके बीज इन दोनोंको जलसे पीस वातगलगंड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेह संज्ञक लेप सहन होय ऐसा थोडा गरम करके करे अथवा दशमूलको पीसके लेप करे॥

कफके गलगंडपर लेप।

देवदारु विशाला च कफगंडे प्रदेहकः॥ ९५॥

अर्थ—१ देवदारु २ इन्द्रायणीकी जड इन दोनों औषधोंको जलसे पीस कफगलगंड दूर होनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे॥

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह॥
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम्॥ ९६॥

अर्थ—१ सरसों २ नीमके पत्ते ३ भिलाए ये तीन औषध समान भाग लेके जलाय डाले। जब राख हो जावे तब इस राखको बकरेके मूत्रसे सानके अपची रोग जो गंडमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे॥

गंडमाला अर्बुद तथा गलगंडपर लेप।

सर्षपाः शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान्॥
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत्॥
गंडमालार्बुदं गंडं लेपेनानेन शाम्यति॥ ९७॥

अर्थ—१ सरसों २ सहजनेके बीज ३ सनके बीज ४ अलसीके बीज ५ जौ ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग ले खट्टी छाछमें पीस गंडमाला अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको यह लेप करे॥

अपबाहुक वातरोगपर लेप।

तक्षयित्वा क्षुरेणांगं केवलानिलपीडितम्॥ तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्टं गुंजाफलैः कृतम्॥ ९८॥ तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा॥ अन्यापि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः॥९९॥

अर्थ—केवल वादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें जिस जगह वादीका कोप होवे उस स्थानको छुरासे मूंड बाल दूर करके उस स्थानपर घूंघचीको जलमें पीसके लेप करे

तो अपबाहुक वायु विश्वाची वायु (जो भुजामें होती है) तथा गृध्रसी वायु (जंघा-रोग विशेष) ये वायु दूर हो तथा और प्रकारके वायुसंबंधी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हों ॥

श्लीपदरोगपर लेप ।

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥
प्रलेपः श्लीपदं हंति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १००॥

अर्थ-१ धतूरेके पत्ते २ अंडके पत्ते ३ निर्गुंडीके पत्ते ४ पुनर्नवा जडसहित ५ सहजनेकी छाल ६ सरसों इन छः औषधोंको पीस, बहुत दिनका तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होनेके वास्ते यह लेप करे ॥

कुरंडरोगपर लेप ।

अजाजी हपुषा कुष्ठमेरंडबदरान्वितम् ॥
कांजिकेन तु संपिष्टं कुरंडघ्नं प्रलेपनम् ॥ १०१ ॥

अर्थ-१ जीरा २ हौबेर ३ कूठ ४ अंडकी जड ५ बेरकी छाल इन पांच औषधोंको समान भाग ले कांजीमें पीस कुरंड(अंडवृद्धि)रोग दूर होनेको यह लेप करे॥

उपदंशरोगपर लेप।

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा ॥
असाध्यापि जरत्याशु लिंगोत्था रुक् प्रलेपनात ॥ १०२ ॥

अर्थ-कनेरकी जडको जलमें पीसके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबंधी पीडा वो असाध्यभी तत्काल दूर होवे ॥

उपदंशपर दूसरा लेप ।

दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मषी मधुसंयुता ॥
उपदंशे प्रलेपोयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-त्रिफलेको कढाईमें जलायके उसकी राख सहतमें मिलायके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबंधी व्रण होता है उसका तत्काल रोपण होय अर्थात् वह घाव तत्काल भर आवे ॥

उपदंशपर तीसरा लेप ।

रसांजनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् ॥
सक्षौद्रं लेपनं योज्यमुपदंशगदापहम् ॥ १०४ ॥

अर्थ-१ रसोत २ सिरसकी छाल ३ हरड ये तीन औषध ले समान भागका

चूर्ण कर सहतमें मिलायके लिंगपर लेप करे तो उपदंशसंबंधी जो लिंगमें घाव आदि उपद्रव होते हैं वे तत्काल नष्ट हों ॥

अग्निदग्धपर लेप ।

अग्निदग्धे तु गोक्षीरीप्लक्षचंदनगैरिकैः ॥
सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ १०५ ॥
तंदुलीयकषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ–१ वंशलोचन २ पाखर ३ लाल चंदन ४ गेरू ५ गिलोय इन पांच औषधोंको समान भाग लेके चूर्ण करे । फिर घीमें मिलाय जिस मनुष्यकी देह अग्निसे जल गई हो उसपर लेप करे । अथवा चौलाईका काढा करके उसमें घी डालके उसका लेप करे ॥

दूसरा लेप ।

यवान् दग्ध्वा मषी कार्या तैलेन युतया तया ॥
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषु प्रलेपो व्रणरोपणः ॥ १०७ ॥

अर्थ–जवोंको जलाय राख करके तिलके तेलमें मिलाय मनुष्यके देहपर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करे तो जलनेसे जो घाव हुआ हो वह भरके शरीर जैसाका तैसा हो जावे । अग्निका जलना प्लुष्टादि भेदसे चार प्रकारका है सो माधवनिदानसे जान लेना ॥

योनि कठोर करनेका लेप ।

पलाशोदुंबरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ॥
मधुना योनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ॥ १०८ ॥

अर्थ–१ पलास (ढाक) के फूल २ गूलरके फल इन दोनोंका चूर्ण कर तिलके तेलमें मिलायके तथा उसमें सहत मिलायके योनिमें लेप करे तो शिथिल हुईभी योनि इस लेपसे कठोर अर्थात् तंग हो जावे ॥

दूसरा लेप ।

माकंदफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ॥
गतेपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढातिजायते ॥ १०९ ॥

अर्थ–आमका कोमल फल तथा कपूर इन दोनोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय योनिमें लेप करे तो वृद्धा (बुड्ढी) स्त्रीकीभी योनि सुकडके अत्यंत तंग हो जावे ॥

लिंग और स्तनादिक वृद्धि करनेका लेप।

मरीचं सैंधवं कृष्णा तगरं बृहतीफलम् ॥ अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं यवा माषाश्च सर्षपाः ॥ ११० ॥ अश्वगंधा च तच्चूर्णं मधुना सह योजयेत् ॥ अस्य संततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते ॥ लिंगवृद्धिस्तनोत्सेधः संहतिर्भुजकर्णयोः ॥ १११ ॥

अर्थ-१ काली मिरच २ सैंधानमक ३ पीपल ४ तगर ५ कटेरीके फल ६ ओंगाके बीज ७ काले तिल ८ कूठ ९ जौ १० उडद ११ सरसों १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग ले चूर्ण कर सहतमें मिलाय. लिंगपर निरंतर अर्थात् नित्य प्रति लेप कर मर्दन करे तो लिंग मोठा होय। इसी प्रकार स्त्रियोंके स्तनोंपर करे तथा भुजा और कर्ण (कान) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे॥

लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप।

सिताश्वगंधा सिंधूत्थश्छागक्षीरैर्घृतं पचेत् ॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिंगवृद्धिः संजायते परा ॥ ११२ ॥

अर्थ-सपेद फूलकी असगंध और सैंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्णसे चौगुना घी और घीसे चौगुना भेडका दूध ले सबको एकत्र करके चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे जब सब वस्तु जलकर केवल घी मात्र शेष रहे तब इस घीको लिंगपर लेप करके मर्दन करे तो लिंग अत्यंत स्थूल होवे॥

योनिद्रावणकारी लेप।

इंद्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत् ॥
रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन च मुहुर्मुहुः ॥ ११३ ॥
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ॥ ११४ ॥

अर्थ-इन्द्रायनके पत्तोंका रस निकालके उस रसमें पारा मिलायके लाल फूलके कनेरकी लकडीसे उसको खरल करे अर्थात् घोटे। इस प्रकार वारंवार अर्थात् जब २ रस सूख जावे तब २ और रस डालके पारेको घोटे। इस प्रकार पांच सात वार घोटके लिंगपर लेप करे पश्चात् शिश्न और योनिका संयोग होतेही पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीका वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य होवे॥

देहदुर्गंध दूर करनेका लेप।

तांबूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम् ॥
वारिणा लेपनं कुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ११५ ॥

अर्थ–१ पान २ कूठ ३ हरड इन तीनोंका चूर्ण कर जलमें मिलायके शरीरमें लेप करे तो देहसंबंधी दुर्गंध दूर होय ॥

दूसरा लेप ।

कुलित्थसक्तवः कुष्टं मांसी चंदनजं रजः ॥
सक्तवश्चणकस्यैव त्वक् चैवैकत्र कारयेत् ॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्च जायतेऽस्यावधूलनात् ॥ ११६ ॥

अर्थ–१ कुलथीका सत्तू २ कूठ ३ जटामांसी ४ सपेद चंदन ५ चनेका भुना हुआ चून इन सबका चूर्ण करके शरीरमें इस चूर्णका अवधूलन कहिये मालिश करे तो देहमें पसीनोंका आना और देहकी दुर्गंध दूर होवे ॥

वशीकरण लेप ।

वचा सौवर्चलं कुष्टं रजन्यो मरिचानि च ॥
एतल्लेपप्रभावेन वशीकरणमुत्तमम् ॥ ११७ ॥

अर्थ–१ वच २ संचरनमक ३ कूठ ४ हलदी ५ दारुहलदी ६ काली मिरच ये छः औषध समान भाग ले जलसे पीस शरीरमें लेप करे यह लेप वशीकरणकर्त्ता उत्तम प्रयोग है ॥

मस्तकमें तेल धारण करनेके चार प्रकार ।

अभ्यंगः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात् ॥
मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद्बलवच्च यथोत्तरम् ॥ ११८ ॥

अर्थ–अभ्यंग कहिये मस्तकमें तेलका मर्दन और परिषेक कहिये मस्तकमें तेलको चुपडना तथा पिचु कहिये रुईके गालेको अथवा कपडेके टुकडेको तेलमें भिगोयके मस्तकपर धारण करना । और बस्ति कहिये चमडेकी बस्ती बनायके मस्तकपर तेल धारण करनेका प्रयोग वह आगेके श्लोकमें कहा है । इस प्रकार, मूर्ध तैलके कहिये मस्तकमें तेल धारण करनेके चार भेद हैं सो क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरा बलवान् है ॥

शिरोबस्तीकी विधि ।

त्रयोऽभ्यंगादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः ॥
शिरोबस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ॥ ११९ ॥

अर्थ–पिछले श्लोकमें कहे हुए अभ्यंग परिषेकादिक तीन प्रकार ये सर्वत्र स्थलोंमें प्रसिद्ध हैं । तथा शिरोबस्तीकी विधि नहीं कही इसवास्ते बुद्धिवानोंको मान्य ऐसी शिरोबस्तीकी विधि कहता हूं ॥

शिरोबस्तीका प्रकार ।

शिरोबस्तिश्चर्मणः स्याद्द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥
शिरःप्रमाणं तं बध्वा मस्तके माषपिष्टकैः ॥ १२० ॥
संधिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ–मस्तकपर धारण करनेकी जो बस्ती उसको शिरोबस्ती कहते हैं वह हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे । उसका आकार बारह अंगुल ऊंची टोपीके समान बनायके दो मुख बनावे । तिसमें नीचेका मुख मस्तकपर आय जावे ऐसा करे और ऊपरका मुख छोटा करना चाहिये । उस टोपीको मनुष्यको पहनाय उसके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उडदके चूनको जलमें सानके संधियोंको बंद कर देवे । पश्चात् स्नेह सहन होय ऐसा थोडा गरम करके बस्तीके ऊपरके मुखसे मस्तकपर भर देवे ॥

शिरोबस्ती धारणमें प्रमाण ।

तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः ॥
वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥ १२२ ॥

अर्थ–नाक नेत्र और मुख इनमें जबतक स्राव न होय तबतक अथवा मस्तकसंबंधी पीडा दूर होय तबतक अथवा बस्तीके अध्यायमें अनुवासन बस्तीकी मात्रा काल प्रमाण १००० एक हजार मात्रा पूरण होनेपर्यंत मस्तकपर बस्तीको धारण करे ॥

शिरोबस्ती धारणमें काल ।

विना भोजनमेवात्र शिरोबस्तिः प्रशस्यते ॥
प्रयोज्यस्तु शिरोबस्तिः पंचसप्ताहमेव वा ॥ १२३ ॥

अर्थ–विना भोजन किये हुए मनुष्यको शिरोबस्ती कराना उत्तम है और यह शिरोबस्ती पांचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये ॥

शिरोबस्तीके कर्म होनेके उपरांत क्रिया ।

विमोच्य शिरसो बस्तिं गृह्णीयाच्च समंततः ॥
ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णनीरैः स्नानं समाचरेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ–मस्तकपर धारण की हुई बस्तीके चारों तरफ एकसा उचल कर पटक देवे अर्थात् ऐसा न करे कि कहीं तो बस्ती लगी हुई है और कहींसे उखाडी हुई । जब बस्तीको उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय कहिये मस्तकपर सुहाता २ गरम जल डालके स्नान करे ॥

शिरोबस्ति देनेसे रोग दूर हों उनका कथन।

अनेन दुर्जया रोगा वातजा यांति संक्षयम् ॥
शिरःकंपादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥ १२५ ॥

अर्थ–दुर्जय कहिये दूर करनेको अशक्य ऐसे शिरःकंपादिक जो वादीके रोग हैं वे इन बस्तीके देनेसे दूर होते हैं। इस वास्ते इनमें इन बस्तीकी सर्वकालमें योजना करनी चाहिये ॥

कानमें औषध डालनेकी विधि।

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किंचिन्नुः पार्श्वशायिनः ॥
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्ततः कर्णं प्रपूरयेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ–मनुष्यको कुछ करवटकी तरफ सुलायके कानके चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादिक तैलादिक तथा औषधोंका रस सहन होय इस प्रकार थोडा २ गरम करके कानमें डाले॥

कानमें औषध डालके कितनी देर ठहरे।

कर्णं तु पूरितं रक्षेच्छतं पंचशतानि वा ॥
सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकंठशिरोगदे ॥ १२७ ॥

अर्थ–कर्णरोग कंठरोग और मस्तकरोग ये दूर होनेके लिये कानमें जो औषध डाली हो वह सौ मात्रा अथवा पांच सौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यंत कानमें रखे। मात्राके लक्षण आगेके श्लोकमें कहे हैं सो जानना ॥

मात्राका प्रमाण।

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ॥
एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १२८ ॥

अर्थ–अपने घोंटूके चारों तरफ स्पर्श होय इस प्रकार हाथको फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र है ॥

रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल।

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात् प्राक्प्रशस्यते ॥
तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते॥ १२९ ॥

अर्थ–रस आदि करके जो औषध कानमें डालना हो सो भोजन करनेके पूर्व डाले तथा तैलादिक जो औषध कानमें डाले वो दिन मूंदनेके पश्चात् अर्थात् रात्रिमें डाले ॥

कर्णशूलपर औषध ।

पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तमग्नौ प्रतापयेत् ॥
तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः ॥ १३० ॥

अर्थ–आकके पके हुए पत्तोंमें घी लगाय अग्निपर तपाय उसका रस निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर हो ॥

कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग ।

कर्णशूलातुरे कोष्णं बस्तमूत्रं ससैंधवम् ॥
निक्षिपेत्तेन शाम्यंति शूलपाकादिका रुजः ॥ १३१ ॥

अर्थ–बकरेके मूत्रमें सैंधानमक डालके कुछ थोडा गरम कर कानमें डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबंधी पाकादिक उपद्रव दूर हों ॥

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग ।

शृंगवेरं च मधुकं मधु सैंधवमामलम् ॥
तिलपर्णीरसस्तैलं टंकणं निंबुकद्रवम् ॥
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ १३२ ॥

अर्थ–१ अदरखका रस २ मुलहटी ३ सहत ४ सैंधानमक ५ आंवले ६ तिलपर्णीका रस ७ सरसोंका तेल ८ सुहागा ९ नीमका रस ये नौ औषध एकत्र कर गरम करके कानमें डाले तो कर्णसंबंधी पीडा दूर हो ॥

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग ।

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशांतये ॥ १३३ ॥

अर्थ–१ कैथके फलका रस २ बिजोरेका रस ३ अमलवेतका[1] रस ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले ॥

कर्णशूलपर पांचवां प्रयोग ।

अर्कांकुरानाम्लपिष्टान् तैलाक्तॉंल्लवणान्वितान् ॥
संनिदध्यात् स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते ॥ १३४ ॥
पुटपाकक्रमं कृत्वा रसैस्तच्च प्रपूरयेत् ॥
सुखोष्णैस्तेन शाम्यंति कर्णपीडाः सुदारुणाः ॥ १३५ ॥

---

१ अमलवेतके अभावमें चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये ।

अर्थ–आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नींबूके रसमें खरल कर उसमें थोडासा तिलका तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे। फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमें उस गोलेको रखके उसके चारों तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बांध देवे। फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी विधिसे उस औषधका पाक होय ऐसी हलकी अग्नि देवे। पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे। फिर उस थूहरकी लकडीसहित निचोडके रस निकास लेवे। अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो बडी भारी दारुण पीडा होती हो वह दूर होय॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल।

महतः पंचमूलस्य कांडान्यष्टांगुलानि तु॥ क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः॥ १३६॥ यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत्॥ ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम्॥ १३७॥ एवं स्याद्दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा॥ १३८॥

अर्थ–बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधोंकी जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमें लपेट तेलमें भिगोकर अग्निसे जलावे। तथा उन जडोंको सीधी रखे कि जिससे तेल टपक कर नीचे गिरे। उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो। इसको दीपिका तैल कहते हैं। इसी प्रकार कूंठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होवे॥

कर्णशूलपर स्योनाकतैल।

तैलं स्योनाकमूलेन मंदेऽग्नौ परिपाचितम्॥
हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात्॥ १३९॥

अर्थ–टेंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंको एकत्र करे। तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मंद मंद आंचसे परिपक्क करे। जब जलआदि सब जलके केवल तेलमात्र आय रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशी आदि पात्रमें भरके रख देवे। इसको कानमें डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल तत्काल दूर होवे॥

---

१ पुटपाककी विधि मध्यमखंडमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देख लेना।

कर्णनादपर तैल ।

कल्कक्काथेन यष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः ॥
सूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४० ॥

अर्थ-१ मुलहटी २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ उडद ४ धनिया इन चार औषधोंका काढा करके उसमें इन्हीं औषधोंका कल्क करके डाल देवे। तथा सूअरकी बसा (अर्थात् मांसका स्नेह) उस काढेमें डालके चूल्हेपर चढाय अग्नि देकर स्नेह मात्र रहे तबतक पाक करे फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो ॥

कर्णनादादिकोंपर तैल ।

सर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगुकृष्णासमान्वितम् ॥
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तचतुर्गुणम् ॥
प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत् ॥ १४१ ॥

अर्थ-१ सज्जीखार २ सूखी मूली ३ हींग ४ पीपल ५ सोंफ ये पांच औषध समान भाग ले, पीस कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे। तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे। फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे। जब तेलका पाक हो चुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे। इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद कर्णशूल बहिरापना तथा कानसे पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर होंय ॥

बहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल ।

अपामार्गक्षारजले तत्क्षारं कल्कितं क्षिपेत् ॥
तेन पक्वं जयेत्तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम् ॥ १४२ ॥

अर्थ-ओंगाकी राख कर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिके चार प्रहर धरा रहने दे। प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कढाईमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके मंद २ अग्निसे पाक करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें भरके धर रखे। इस तेलको कानमें डाले तो कानका बहरापना तथा कर्णनाद दूर होय ॥

कर्णनाडीपर शंबूकतैल ।

शंबूकस्य तु मांसेन पचेत्तैलं तु सार्षपम् ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ १४३ ॥

अर्थ–शंबूक कहिये छोटा शंख अथवा शीपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोंका तेल लेवे। उस तेलमें मांस डालके पकावे। जब पक्क हो जावे तब मांसको निकालके दूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी कहिये कर्णसंबंधी फोडा दूर होय ॥

कर्णस्रावपर औषध।

चूर्णं पंचकषायाणां कपित्थरसमेव च ॥
कर्णस्रावे प्रशंसंति पूरणं मधुना सह ॥ १४४ ॥

अर्थ–पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध (कि जिनके नाम आगेके श्लोकमें कहे हैं) उनका चूर्ण करे। फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राध आदि स्राव दूर करनेको कानमें डाले ॥

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम।

तिंदुकान्यभया लोध्रः समंगा चामलक्यपि ॥
ज्ञेयाः पंचकषायास्तु कर्मण्यस्मिन् भिषग्वरैः ॥१४५॥

अर्थ–१ तेंदू २ हरड ३ लोध ४ मजीठ ५ आंवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथम खंडके परिभाषाध्यायमें कह आये हैं ॥

कर्णस्रावपर औषध।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ॥
कर्णस्रावरुजो दाहाः प्रणश्यंति न संशयः ॥ १४६ ॥

अर्थ–सज्जीखारके चूर्णको बिजोरेके रसमें मिलायके कानमें डाले तो कर्णसंबंधी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों ॥

कानसे राध वहे उसपर औषध।

आम्रजंबूप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च ॥
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥ १४७॥

अर्थ–आम जामुन महुआ और बड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमें तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालके अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेंसे जो राध वहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले ॥

कर्णकी कीडा दूर होनेपर तेल।

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ॥
अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम् ॥ १४८ ॥

अर्थ-हरतालको गोमूत्रमें औटायके कानमें डाले अथवा रससोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है ॥

कानकी कीडा दूर होनेका दूसरा प्रयोग ।

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा ॥
त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छुरसं तथा ॥ १४९ ॥
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम् ॥ १५० ॥

अर्थ-सहजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण (सोंठ मिरच पीपल) और कौंछकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकुटेका रस मिलायके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले ॥

तीसरा प्रयोग ।

सद्यो मद्यं निहंत्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥
सद्यो हिंगु निहंत्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥ १५१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे एकादशोध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ-हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मर जावें ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथद्वादशोऽध्यायः ।

रक्तस्रावकी विधि ।

शोणितं स्रावयेज्जंतोरामयं प्रसमीक्ष्य च ॥
प्रस्थं प्रस्थार्धकं वापि प्रस्थार्धार्धमथापि वा ॥ १ ॥

अर्थ-मनुष्यके देहमें आमय कहिये रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगोंको देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देहसे रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा आधेका आधा अर्थात् चौथाई प्रस्थ कहिये १ कुडव प्रमाण जानना ॥

रक्तस्रावका सामान्यकाल ।

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ॥
त्वग्दोषग्रंथिशोथाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥

अर्थ—देहसे रुधिर काढनेसे त्वचासंबंधी दोष व्रणादिक गांठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं । इसीसे शरत्कालमें स्वभाव करके मनुष्योंका रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले ॥

रक्तका स्वरूप ।

मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु ॥
शोणितं स्निग्धविस्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत् ॥ ३ ॥

अर्थ—रुधिर, रस करके मीठा है वर्णकरके लाल और गुणोंकरके अशीतोष्ण कहिये मंदोष्ण भारी चिकना तथा आमगंधी है । तथा उस रुधिरकी दाहशक्ति पित्तके समान है । इस प्रकार रुधिरके रस, वर्ण और गुण जानने ॥

रुधिरमें पृथिव्यादि भूतोंके गुण ।

विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ॥
भूम्यादिपंचभूतानामेते रक्तगुणाः स्मृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—विस्रता कहिये आमगंधता यह पृथ्वीका गुण है । द्रवता अर्थात् पतलापन जलका गुण है । राग कहिये लाली अग्निका गुण है । चलन वायुका गुण और लीनता आकाशका गुण है। इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतोंके पांच गुण रुधिरमें हैं इस प्रकार जानना॥

दुष्टरुधिरके लक्षण ।

रक्ते दुष्टे वेदना स्यात्पाको दाहश्च जायते ॥
रक्तमंडलता कंडूः शोथश्च पिटिकोद्गमः ॥ ५ ॥

अर्थ—मनुष्यका रुधिर दुष्ट होनेसे शरीरमें पीडा होय, अंग पकेके समान होकर दाह होय, तथा देहमें रुधिरके चकत्ते खुजली सूजन और फुंसी होय ॥

रुधिरवृद्धिके लक्षण ।

वृद्धे रक्तांगनेत्रत्वं शिराणां पूरणं तथा ॥
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ ६ ॥

अर्थ—रुधिरके बढनेसे शरीर और नेत्र ये लाल रंगके हों, धमन्यादि नाडी पूरित होवे अर्थात् फूल आवे । तथा देहका भारी होना, निद्रा, मद, दाह ये उपद्रव होते हैं ॥

क्षीणरुधिरके लक्षण ।

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ॥
शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ७ ॥

अर्थ—मनुष्यका रुधिर क्षीण होनेसे खटाई और मिष्ट पदार्थोंके भोजनकी इच्छा

होय, मूर्छा आवे, त्वचाका रूखापन, नाडियोंमें शिथिलता तथा वायु ऊर्ध्व मार्ग होकर गमन करती है ॥

वादीसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ॥
अस्कंदि सूचिनिस्तोदं रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वादीसे रुधिरके दूषित होनेसे वह लालरंगका, झागके समान, रूक्ष, कठोर और हलका, शीघ्र गमनकर्ता और पतला होता है। तथा सूईके चुभानेके समान पीडा होती है ॥

पित्तदूषित रुधिरके लक्षण।

पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम् ॥
अस्कंद्युष्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामनिष्टकम् ॥ ९ ॥

अर्थ–पित्तकरके रुधिरके दूषित होनेसे उसका रंग पीले रंगका हरे रंगका नीले रंग अथवा श्यामरंगका होता है। वह आमगंधी (कचाईद मारे) उष्ण और चंचलता रहित होता है तथा उसको मच्छली और मक्खी नहीं खाती ॥

कफदूषित रुधिरके लक्षण।

शीतं च बहलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम् ॥
मांसपेशीप्रभं स्कंदि मंदगं कफदूषितम् ॥ १० ॥

अर्थ–कफसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करनेसे अत्यंत शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरूके समान रंगवाला होता है, तथा मांसपेशी कहिये मांसके छोटे २ टुकडोंके समान हो, स्कंदि कहिये घन तथा मंदगमन करनेवाला होता है ॥

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

द्विदोषदुष्टं संसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगंधकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं च जायते ॥ ११ ॥

अर्थ–दो दोषसे दूषित हुआ रुधिर दोनों दोषोंके लक्षण करके युक्त होता है। एवं त्रिदोषसे दूषित हुए रुधिरमें सडी हुई बास आवे और वह तीनों दोषके लक्षण करके युक्त होकर कांजीके समान होता है ॥

विषदूषित रुधिरके लक्षण ।

विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा ॥
विस्रं कांजिकसंकाशं सर्वकुष्ठकरं बहु ॥ १२ ॥

अर्थ–विषसे दूषित हुआ रुधिर काले रंगका होता है। ऊपरके मार्ग होकर ना-

सिकासे गिरता है। आमगंधि होकर कांजीके समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्ठोंको उत्पन्न करता है॥

शुद्धरुधिरके लक्षण।

इंद्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम्॥ १३॥

अर्थ–जिस रुधिरमें कोईसा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृतिपर है वह इन्द्रगोप (बीरबहूटी इस नामका कीडा लाल रंगका जो वर्षाऋतुमें होता है उस) के समान रंगवाला और पतला होता है॥

रुधिरस्रावयोग्य रोगी।

शोथे दाहेंगपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले॥ १४॥ पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते॥ ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु॥ १५॥ विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्यं देहके॥ १६॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिटिकोद्गमे॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्राणां पाके दाहे शिरोरुजि॥ १७॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते॥ १८॥

अर्थ–दाह सूजन तथा जिसके अंगका पाक तथा शरीर लाल रंगका हो ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिकाद्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त कोढ तथा पीडायुक्त हो, जीतनेमें अशक्य ऐसा वादीका रोग, हाथोंका रोग, श्लीपद रोग तथा विषसे दूषित रुधिर, ग्रंथिरोग, अर्बुद, गंडमालाका भेद, अपची रोग, क्षुद्र रोग, रक्ताधिमंथ (नेत्रोंका रोग), विदारी रोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, तथा शरीरका भारी होना, रक्ताभिष्यंद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त है नाक मुख और देह जिसका, यकृत् कहिये कालखंड रोग, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगोंपर फुन्सीका होना, कान और होठ नाक तथा मुख इनका पाक, दाह, मस्तकपीडा, उपदंश, रक्तपित्त ये विकार जिन मनुष्योंके देहमें होंय उनका रुधिर वैद्यको निकालना चाहिये। ये रुधिर काढनेके योग्य हैं॥

रुधिर निकालनेके प्रकार।

एषु रोगेषु शृंगैर्वा जलौकालाबुकैरपि॥
अथवापि शिरामोक्षैः कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः॥ १९॥

१ अंग पके फोडेके समान होता है। २ ये कर्णादिक पकेके समान होकर प्रतीत हों।

अर्थ—पूर्वोक्त रोगोंमें वैद्य सींगी जोंक तूंबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले॥

फस्त खोलने अयोग्य रोगी ।

न कुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः ॥ क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतिकापांडुरोगिणः ॥ २० ॥ पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् ॥ सर्वांगशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम् ॥२१॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि ॥ ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥ २२ ॥ आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते॥एषां चात्ययिके योगे जलौकाभिस्तु निर्हरेत्॥ तथापि विषयुक्तानां शिरामोक्षोऽपि शस्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—कृश (लटा हुआ) मनुष्य, स्त्रीका संग करनेमें अत्यंत आसक्त, नपुंसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, पांडुरोगी, वमनादि पंच कर्मकरके शुद्ध हुआ मनुष्य, जिसने स्नेहपान किया हो, बबासीररोगी, जिसका सर्वांग सूज गया हो, उदररोग श्वास खांसी वमन और अतिसार इत्यादि रोगोंसे पीडित, तथा जिसके अंगोंका पसीना निकाला हो, जिस मनुष्यकी अवस्था सोलह वर्षसे न्यून (कम) हो, तथा जिसकी सत्तर वर्षसे ऊपर अवस्था (ऊमर) हो गई हो, चोट लगनेसे, नासिकादि द्वारा रुधिर गिरता हो, ऐसा मनुष्य इन सब रोगियोंकी फस्त नहीं खोलनी यदि रुधिर निकालनाही ठीक समझा जावे तो जोंख लगायके रुधिर निकाले । कदाचित् ये रोगी विषप्रयोगसे व्याप्त होवे तो उसकी फस्त खोलकरही रुधिर निकाले ॥

वातादिकसे दूषित रक्तके निकालनेका प्रकार ।

गोशृंगेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा ॥
वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः ॥ २४ ॥
द्विदोषाभ्यां तु संसृष्टं त्रिदोषैरपि दूषितम् ॥
शोणितं स्रावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥ २५ ॥

अर्थ—वादीसे दूषित हुआ जो रुधिर उसको गौके सींगसे अर्थात् सींगी देकर निकाले । पित्तसे दूषित रुधिरको जोख लगायके निकाले । कफसे दूषित रुधिरको तुमडी लगायके निकाले । और जो दो दोषोंकरके अथवा तीन दोषोंकरके दूषित रुधिर है उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोलके अथवा उस्तरेसे निकालना चाहिये ॥

शिंगी आदिको रुधिरग्रहणमें प्रमाण।

गृह्णाति शोणितं शृंगं दशांगुलमितं बलात् ॥
जलौका हस्तमात्रं च तुंबी च द्वादशांगुलम् ॥
पदमंगुलमात्रेण शिरा सर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥

अर्थ–सिंगी लगानेसे सिंगी अपने बलसे दश अंगुलके रुधिरको खींच लेती है। जोख लगानेसे एक हाथके रुधिरको खींचे। तुंबी बारह अंगुलका तथा उस्तरा एक अंगुलके रुधिरको खींचके निकाले। एवं फस्त खोलनेसे सम्पूर्ण अंगका शोधन होता है॥

जिनके अंगसे रुधिर नहीं निकले उसका कारण।

शीते निरन्ने मूर्च्छातितंद्राभीतिमदश्रमैः ॥
युतानां न स्रवेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् ॥ २७ ॥

अर्थ–शीतकालमें जिस मनुष्यने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और काम इन करके युक्त हो, मल और मूत्र ये जिसने भले प्रकार न किये हों ऐसे मनुष्योंके देहसे रुधिर नहीं निकलता ॥

रुधिर न निकलनेमें औषधि।

अप्रवर्तिनि रक्ते च कुष्ठचित्रकसैंधवैः ॥
मर्दयेद्व्रणवक्त्रं च तेन सम्यक् प्रवर्तते ॥ २८ ॥

अर्थ–फस्त देनेसे यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ चित्रक और सैंधानिमक इन तीन औषधोंका चूर्ण करके व्रणके मुखपर चुपडे तो रुधिर उत्तम प्रकारसे निकलने लगे ॥

रुधिर निकालनेमें काल।

तस्मान्न शीते नात्युष्णे न स्विन्ने नातितापिते ॥
पीत्वा यवागूं तृप्तस्य शोणितं स्रावयेद् बुधः ॥ २९ ॥

अर्थ–शीतकाल तथा अत्यंत गरमी न हो ऐसे समयमें मनुष्यके अंगका पसीना बिना निकाले और शरीर अत्यंत तप्त न होनेपर जौकी यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्यका वैद्य रुधिर निकाले ॥

अत्यंत रुधिर निकलनेमें कारण।

अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ॥
अति प्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३० ॥

अर्थ–मनुष्यके अंगका अत्यंत पसीना निकालकर गरमीकी ऋतुमें रुधिर निका-

लनेसे तथा फस्त खोलते समय अधिक नसके कट जानेसे देहसे रुधिर अधिक निकलता है उसके बंद करनेका यत्न आगेके श्लोकोंमें कहा है ॥

अत्यंत रुधिर निकलनेपर उपाय ।

अतिप्रवृत्ते रक्ते च लोध्रसर्जरसांजनैः॥ यवगोधूमचूर्णैर्वा धयधन्वनगैरिकैः ॥३१॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः ॥ मुखं व्रणस्य बध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम्॥३२॥ विध्येदूर्ध्वं शिरांतां वा दहेत्क्षारेण वाग्निना ॥ व्रणं कषायः संधत्ते रक्तं स्कंदयते हिमम् ॥ व्रणास्यं पाचयेत्क्षारो दाहः संकोचयेच्छिराम् ॥३३॥

अर्थ—नसमेंसे रुधिर अत्यंत निकलने लगे तो उसके बंद करनेको लोध्र राल और रसोत इन तीनोंका चूर्ण अथवा जौ और गेहूं इनका चून अथवा धामिन जवासा और गेरू इन तीनोंका चूर्ण अथवा सांपकी कांचलीका चूर्ण अथवा रेशम और कपडेकी राख इन सब औषधोंमें जो समयपर मिल जावे उसको उस घावके मुखपर भरके दाब देवे फिर उस व्रणवर चंदनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिरका अत्यंत निकलना बंद होवे । यदि इतने उपाय करनेपरभी रुधिर बंद न होय तो उस नसके ऊपर फिर शस्त्रसे फस्त खोले । अथवा उस व्रणके मुखपर सुहागे आदि खार जो अग्निस्वरूप हैं उन खारोंका लेप करे । अथवा उस व्रणके मुखको अग्निसे दाग देवे । इत्यादि उपायोंकरके रुधिर बंद होता है इसमें हेतु कहते हैं कि कषाय कहिये लोध्रादिक चूर्ण व्रणके मुखको पकडता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है । क्षारकरके व्रणका पाचन होता है । तथा अग्न्यादि दाहकरके शिरा (नस) का संकोच होता है ॥

दाग देनेसे जो रोग दूर हो उनके नाम ।

वामांडशोथे दक्षस्य करस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥ दहेच्छिरां व्यत्यये तु वामांगुष्ठशिरां दहेत् ॥ ३४ ॥ शिरादाहप्रभावेन मुष्कशोथः प्रशाम्यति ॥ विषूच्यां पाददाहेन जायतेऽग्नेः प्रदीपनम् ॥ ॥ ३५ ॥ संकुचंति यतस्तेन रसश्लेष्मवहाः शिराः ॥ यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोः शिशोः संजायतेऽसृजः ॥ ३६ ॥ तदा तत्स्थानदाहेन संकुचंत्यसृजः शिराः ॥ ३७॥

अर्थ-मनुष्यके बायें तरफके अंडकोशपर सूजन होवे तो दहने हाथके अंगूठेकी जडमें शिराको दाग देवे और दहने अंडकोशपर सूजन होय तो बांये हाथके अंगूठेकी जडमें दाग देवे तो अंडकोशकी सूजन दूर होवे। विषूचिका होनेसे लोहकी पत्ती अथवा कलछीको तपायकर पैरोंके तलवोंको तपावे ऐसा करनेसे रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा हैं उनका संकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा विषूचिका (हैजा) दूर होती है। जिस समय बालकके पेटमें बांई तरफ यकृत कहिये कलेजा और दहने तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि होय उस कालमें उस जगहपर दाग देवे तो यकृत और प्लीहा ये सुकड जाते हैं॥

दुष्टरुधिर निकालनेपर जो अवशिष्ट रहे उसके गुण।

रक्ते दुष्टेऽवशिष्टेपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति॥ अतः स्राव्यं सावशेषं रक्तेनातिक्रमो हितः॥ ३८॥ आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजम्॥ पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पांडुताम्॥ कुरुते विस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च॥ ३९॥

अर्थ-शरीरसे दुष्ट रुधिर निकलकर थोडा अवशिष्ट रहनेसे रोगोंका प्रकोप नहीं होता इसीसे जब २ रुधिर निकाले तभी २ थोडासा अवशिष्ट छोड देना चाहिये तो हितकारी होता है संपूर्ण रुधिर काढनेसे अंधापन, आक्षेपवायु, प्यास, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षाघातवायु, श्वास, खांसी, हिचकी, दाह और पांडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्थाको पहुँच जाता है। इसी वास्ते इस प्राणीका संपूर्ण रुधिर नहीं काढना चाहिये॥

रुधिरसे देहकी उत्पत्ति आदिका प्रकार।

**देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते॥
विना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः॥ ४०॥**

अर्थ-रुधिरसे देहकी उत्पत्ति है तथा रुधिरहीसे देहका धारण होता है और रुधिरके विना जीव रहताही नहीं है अतः बुद्धिवान् वैद्य रुधिरका रक्षण करे॥

रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उपाय।

**शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते॥
कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत्॥ ४१॥**

अर्थ-रुधिर काढनेपर व्रणस्थानमें पित्तका प्रकोप होनेसे चंदनादिक शीतल उपचार करे, वादीका प्रकोप होनेसे यदि उस व्रणके स्थानमें पीडायुक्त सूजन आय जावे तो उस स्थानमें थोडे घीको गरम करके लगावे॥

रुधिर निकालनेपर पथ्य ।

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥
रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिताः ॥ ४२ ॥

अर्थ-शरीरसे रुधिर काढनेसे जो मनुष्य क्षीण हो गया हो उसको हरिण ससा मेंढा काला हरिण तथा बकरा इनके मांसका रस सिद्ध करके पिलावे । तथा सांठी चांवलोंको गौके दूधमें डालके खीर करके भोजन करना अथवा गौका दूध पिलावे । सांठी चांवलका भात खानेको दे । इस प्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है ॥

उत्तम प्रकारसे रुधिर निकलनेके लक्षण ।

पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयः ॥
मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते सृजि ॥ ४३ ॥

अर्थ-पीडाका नाश देहमें हलकापन रोगोंके उत्कर्षका भले प्रकार नाश मनमें प्रसन्नता ये लक्षण उत्तम प्रकार रुधिर निकालनेसें होते हैं ॥

रुधिर निकालनेपर वर्जित वस्तु ।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकात् ॥ ४४ ॥
एकाशनं दिवा निद्रां क्षाराम्लकटुभोजनम् ॥
शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखंडे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ-परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान करना, बहुत हवा खाना, एकही धान्यका भोजन करना, दिनमें सोना, जवाखारादि खारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण इस प्रकार ये सर्व कारण शरीरमें जबतक पुरुषार्थ न आवे तबतक त्याग देना चाहिये ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखंडे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार ।

सेक आश्चोतनं पिंडी बिडालस्तर्पणं तथा ॥
पुटपाकोऽजनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ–१ सेक २ आश्चोतन ३ पिंडी ४ बिडाल ५ तर्पण ६ पुटपाक और ७ अंजन ये सात प्रकार नेत्ररोगमें कहे हैं। इनका कल्क करके जिस रीतिसे नेत्ररोगपर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे ॥

सेकके लक्षण।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ॥
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥

अर्थ–मनुष्यके नेत्र बन्द करायके दूध घी रस इत्यादिकोंकी संपूर्ण नेत्रपर चार अंगुलके अन्तरसे धार डालनेको सेक कहते हैं ॥

उस सेकके स्नेहनादिभेदकरके तीन प्रकार।

स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ॥
लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥

अर्थ–वातरोग होनेसे स्नेहन[1] सेक करे। रक्तपित्तका कोप होनेसे रोपण[2] सेक करे तथा कफरोग होनेसे लेखन[3] सेककी योजना करे। अब उसकी मात्रा कहते हैं ॥

सेककी मात्रा।

षड्वाक्छतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ॥
वाक्छतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥ ४ ॥

अर्थ–स्नेहनकर्ममें छः सौ अंक होनेपर्यंत नेत्रोंपर जिस औषधकी कही है उसकी धार दे। रोपण कर्म होय तो चारसौ अंक होय तबतक धार डाले तथा लेखनकर्म होनेसे तीनसौ अंक होय तबतक धार डाले ॥

सेक करनेका काल।

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ॥ ५ ॥

अर्थ–नेत्रोंपर सेक करना होय तो दिनमें करे। यदि रोगकी आधिक्यता होवे तो रात्रिके समय करे ॥

वाताभिष्यंदरोगपर।

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् ॥
सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम् ॥ ६ ॥

---

१ दूध घी इत्यादि स्नेहन द्रव्योंकरके नेत्रोंपर धार देना। २ लोध मुलहटी त्रिफला इत्यादिक जो औषध उनको दूधमें अथवा पानीमें पीस नेत्रोंपर धार देवे। ३ सौंठ मिरच इत्यादि लेखन औषधोंको जलमें पीसके अथवा काढा करके नेत्रोंपर धार देवे।

अर्थ–अंडकी छाल पत्ते और जड ये संपूर्ण बकरीके दूधमें औटावे । पश्चात् सुखोष्ण करके गरम २ की धार वाताभिष्यंदरोग दूर होनेके वास्ते नेत्रोंपर देवे ॥

वाताभिष्यंदपर दूसरा सेक ।

परिषेको हितो नेत्रे पयः कोष्णं ससैंधवम् ॥ रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेन समन्वितम् ॥ ७ ॥ वाताभिष्यंदशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ॥ ८ ॥

अर्थ–बकरीके दूधमें सैंधानमक डाल गरम करके सहन होय ऐसी गरम २ दूधकी धार नेत्रोंपर देय । अथवा हलदी देवदारु और सैंधानमक इनका चूर्ण कर उसको दूधमें डालके गरम २ नेत्रोंपर धार डाले तो वाताभिष्यंद रोग वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूर हों ॥

रक्तपित्त तथा अभिघातपर सेक ।

शाबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ॥
छागक्षीरघृतं सेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ॥ ९ ॥

अर्थ–लोध और मुलहटी ये दोनों औषध समान भाग ले घीमें भून चूर्ण करके बकरीके दूधमें डाल नेत्रोंपर सेक करे । अर्थात् उस दूधकी गरम २ नेत्रोंपर धार देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवे ॥

रक्ताभिष्यंदपर सेक ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ॥
पिष्टैः शीतांबुना सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥ १० ॥

अर्थ–त्रिफला कहिये हरड बहेडा आंवला, लोध मुलहटी खांड और नागरमोथेका भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतलजलमें पीस उस पानीका नेत्रोंपर सेक करे तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर हो । रक्ताभिष्यंद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकारसे दूखें ॥

रक्ताभिष्यंदपर दूसरा सेक ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठालोध्रकालानुसारिवाः ॥
पुंडरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यंदनाशनः ॥ ११ ॥

अर्थ–१ लाख २ मुलहटी ३ मजीठ ४ लोध ५ सारिवा ६ सपेद कमल इन छः औषधोंको जलमें पीसिके उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर होवे ॥

नेत्रशूलनाशक सेक ।

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम् ॥
उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमंबके ॥ १२ ॥

अर्थ—सपेद लोधको घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपडछानके गरम जलसे पीस उस जलकी नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रोंमें पीडा होना दूर होवे ॥

आश्च्योतनके लक्षण ।

अथ आश्च्योतनं कार्यं निशायां न कथंचन ॥
उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये बिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ॥ १३ ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिककी बूंद डालना इसको आश्च्योतन कहते हैं। यह आश्च्योतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे ॥

लेखनादि आश्च्योतनमें कितनी बिंदु डाले उसका प्रमाण ।

बिंदवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिंदवः ॥ १४ ॥
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १५ ॥

अर्थ—लेखन कर्म होय तो नेत्रमें आठ बूंद डाले। स्नेहकर्ममें दश बिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले। वे बिंदु शीतकाल होय तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु होय तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है ॥

वातादिकोंमें देनेकी योजना ।

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्च्योतनं हितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्च्योतन करे, पित्तरोग होय तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग होय तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्च्योतन करे। इस प्रकार आश्च्योतन योजन करनेसे हितकारी होता है ॥

आश्च्योतनकी मात्राके लक्षण ।

आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतं हितम् ॥
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथ वा ॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ १७ ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूंदना अथवा

चुटकी बजाना अथवा गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं। ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमें हितकारी होती है ॥

वाताभिष्यंदपर आश्चोतन ।

बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिग्रुभिः ॥
क्काथ आश्चोतने कोष्णो वाताभिष्यंदनाशनः ॥ १८ ॥

अर्थ-बिल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अंडकी जड तथा सहजनेकी छाल इन सब औषधोंका काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूंद डालें तो वाताभिष्यंदरोग दूर होवे ॥

वातजन्य तथा रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए अभिष्यंदपर आश्चोतन ।

अंबुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ॥
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यंदं विनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छालपर लेप कर देवे । फिर उस छालको अग्निपर तपायके पीस लेवे । तब उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूंद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य जो अभिष्यंद होता है वह दूर होवे ॥

सर्वप्रकारके अभिष्यंदोंपर आश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥ २० ॥

अर्थ-त्रिफलेके काढेकी गरम २ बूंद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यंदरोग दूर हों ॥

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यंदपर आश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥
क्षीरं सर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ-स्त्रीके दूधकी बूंद नेत्रोंमें डाले तो रक्तपित्त तथा वादीसे होनेवाली पीडा दूर होवे । उसी प्रकार दूध मलाई अथवा घी इनकी बिंदु नेत्रोंमें छोडे तो वातरक्त-संबंधी पीडा दूर होवे ॥

पिंडीके लक्षण ।

पिंडी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ॥
नेत्राभिष्यंदयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ॥ २२ ॥

अर्थ-औषधको पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बांधे इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं। यह पिंडी नेत्राभिष्यंद रोगपर हितकारी है तथा व्रणपरभी इसको बांधते हैं॥

नेत्राभिष्यंदपर शिरोविरेचन।

अभिष्यंदेऽधिमंथे च संजाते श्लेष्मसंभवे॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत्॥ २३॥

अर्थ-कफसंबन्धी अभिष्यंद तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्यके होवें उसके मस्तकमें तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तकके पसीने निकाले। फिर मस्तकके शोधन होनेके वास्ते तीक्ष्ण औषधकी नाकमें नस्य देवे॥

अधिमंथरोगपर दूसरा उपचार।

अधिमंथेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम्॥
अशांते सर्वथा मंथे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत्॥ २४॥

अर्थ-संपूर्ण अधिमंथोंमें ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तककी फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकारके अधिमंथ शांत होवें। यदि इस प्रकार करनेपरभी रोग शांत न होवे तो भ्रुकुटीमें दाग देवे॥

अभिष्यंदमें क्रिया।

अभिष्यंदेषु सर्वेषु बध्नीयात्पिंडिकां बुधः॥
वाताभिष्यंदशांत्यर्थं स्निग्धोष्णपिंडिका भवेत॥ २५॥

अर्थ-संपूर्ण अभिष्यंद.रोगोंमें नेत्रोंपर जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बांधे और वाताभिष्यंद शमन होनेको स्निग्ध कहिये चिकनी और गरम ऐसी टिकिया बांधे॥

वाताभिष्यंद तथा तिक्ताभिष्यंदपर पिंडी।

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी॥
पित्ताभिष्यंदनाशाय धात्रीपिंडी सुखावहा॥ २६॥

अर्थ-अंडके पत्ते जड और छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे इस टिकियाको वाताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बांधे। तथा पित्ताभिष्यंद दूर करनेको आंवलोंको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बांधे॥

पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी।

महानिंबफलोद्भूता पिंडी पित्तविनाशिनी॥ २७॥

अर्थ-बकायनके फलोंको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बांधे ॥

कफाभिष्यंदपर पिंडी ।

शिग्रुपत्रकृता पिंडी श्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ॥ २८ ॥

अर्थ-सहजनेके पत्तोंको पीस टिकिया बनाय कफाभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बांधे ॥

कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी ।

निंबपत्रकृता पिंडी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ॥
त्रिफलापिंडिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ॥ २९ ॥

अर्थ-कफपित्ताभिष्यंद दूर करनेको नीमके पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर बांधे अथवा त्रिफलाको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बांधे तो कफपित्ताभिष्यंद रोग दूर हो ॥

रक्ताभिष्यंदपर पिंडी ।

पिष्ट्वा कांजिकतोयेन घृतभृष्टा च पिंडिका ॥
लोध्रस्य हरति क्षिप्रमभिष्यंदमसृग्दरम् ॥ ३० ॥

अर्थ-लोधको कांजीमें पीस घीमें भूनके टिकिया बनावे । इसको नेत्रोंपर बांधे तो रक्ताभिष्यंद नेत्ररोग दूर हो ॥

सूजन खुजली इत्यादिकोंपर पिंडी ।

शुंठीनिंबदलैः पिंडी सुखोष्णा स्वल्पसैंधवा ॥
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकंडूव्यथापहा ॥ ३१ ॥

अर्थ-सोंठ और नीमके पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोडासा सेंधानमक डालके टिकिया बनावे। इसको सूजन और खुजली दूर होनेके वास्ते कुछ गरम करके नेत्रोंपर बांधे ॥

बिडालकके लक्षण ।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ-नेत्रोंको छोड पलकोंके बाहरके अंगमें नेत्रोंके चारों तरफ लेप करनेको बिडालक कहते हैं इसके लेपकी मात्रा मुखलेपका विधान कहा है उसी प्रकार जाननी ॥

सर्व नेत्ररोगोंपर लेप।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदार्वीताक्ष्यैः समांशकैः॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः॥ ३३॥

अर्थ-१ मुलहटी २ गेरू ३ सैंधानमक ४ दारुहलदी ५ खपरिया इन सबको समान भाग ले पानीमें पीस नेत्रोंके बाहरके भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यंद्र रोग दूर हो॥

सर्व नेत्ररोगपर दूसरा लेप।

रसांजनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलैरपि॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि॥
वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः॥ ३४॥

अर्थ-रसोतको जलमें पीस लेप करे अथवा हरड सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्ते दो औषध जलमें पीसके लेप करे। अथवा अनारकी पत्तियोंको पीस लेप करे। अथवा वच हलदी और सोंठ ये तीन औषध जलमें पीसके लेप करे। इसी प्रकार सोंठ और गेरू ये दो औषध जलसे पीसके लेप करे। ये छः प्रकारके लेप नेत्रके बाहरले भागमें चारों तरफ करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होवें॥

सर्व नेत्ररोगोंपर तीसरा लेप।

दग्ध्वाग्नौ सैंधवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते॥
पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम्॥ ३५॥

अर्थ-सैंधानमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें जलायके मोम और घीमें सान लेवे। फिर खूब बारीक करके नेत्रोंमें अंजन करे और बाहरके भागमें उन औषधोंका लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूर होवे॥

चौथा लेप।

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः॥
किंचिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति॥ ३६॥

अर्थ-लोहेके पात्रमें नीबूके रसको घोटे। जब कुछ गाढा हो जावे तब नेत्रोंके बाहरके भागमें लेप करे तो नेत्रसंबंधी पीडा तत्काल दूर होय॥

अर्मरोगपर लेप।

संचूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात्॥
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट्॥ ३७॥

अर्थ–काली मिरचोंको भांगरेके रसमें पीसके नेत्रोंपर लेप करे तो शुक्रार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगमें जो अर्मरोग है वह दूर होवे॥

अंजननामिका फुंसीपर लेप।

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीडच भिन्नामंजननामिकाम्॥
शिलैलानंतसिंधूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत्॥ ३८॥

अर्थ–नेत्रके कोयोंमें अंजननामिका फुंसी होती है उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् वफारेसे पसीने निकालके फोड डाले और चारों तरफसे दाबके मलवा निकाल डाले। फिर मनसिल इलायची तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय उस फुंसीमें प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषधको उस फुंसीके ऊपर चुपडे तो अंजननामिका फुंसी (गुहेरी) दूर होवे॥

नेत्ररोगपर तर्पण।

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्॥ यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्॥ ३९॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथकैः॥ ४०॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः॥ तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः॥ ४१॥

अर्थ–नेत्रोंको तृप्त करता ऐसा तर्पण कहता हूं। जिन नेत्रोंमें रूक्षता शुष्कता वा कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकारके नेत्ररोग तथा जिस पलकोंके बाल जाते रहे हों, शिरोत्पात, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, 'शुक्र कहिये फूला, अभिष्यंद,' अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगोंकरके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रोंको तृप्तिकारी औषध उनमें डाले॥

तर्पणअयोग्य प्राणी।

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासभ्रमेषु च॥
अशांतोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते॥ ४२॥

अर्थ–दुर्दिन कहिये मेघाच्छादित दिवस अत्यंत गरमी और शीतकाल होनेसे शरीरमें चिंता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंबंधी शूलादिक उपद्रव शांत न होनेसे यह तर्पणकी मात्रा योजना न करे॥

तर्पणका विधान।

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः॥ आधारामाषचूर्णेन

क्लिन्नेन परिमंडलौ ॥४३॥ समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद् घृतमंडेन विलीनेन सुखोदकैः॥ ४४ ॥ अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा ॥ निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥४५॥

अर्थ-पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवें उस स्थानमें मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रकोशमें अर्थात् नेत्रके चारों ओर भीगे हुए उडदोंके चूनका दृढ तथा उत्तम गोल और समान मंडल बनावे । फिर नेत्रोंको बंद करके उस मंडलमें पतला घी भर देवे । अथवा मंड कहिये मांढ अथवा सुखोष्ण जल अथवा सौवार धुला हुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबे तहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाले फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले ॥

तर्पणमात्राका प्रमाण ।

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ स्वच्छे कफे संधिरोगे मांत्रा पंचशतं हितम् ॥ ४६ ॥ शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ॥ ४७ ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-नेत्रसंबंधी पलकोंके रोग उनमें सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप औषध नेत्रोंमें धारण करे । केवल कफरोग होय तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांच सौ मात्रा धारण करे । नेत्रोंके सपेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली पुतलीमें रोग होनेसे सातसौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठसौ, अधिमंथरोग होनेसे एक हजार मात्रा तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारण करे इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना ॥

तर्पणद्वारा कफकी आधिक्यता होनेमें उपाय ।

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ॥
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत्॥ ४९ ॥

अर्थ-तर्पणके स्नेह वीर्यकरके उत्पन्न हुए कफको जौ भिगोकर पीस लेवे । इसको हुक्केमें धरके पीवे । इसप्रकार शोधन करना चाहिये ॥

तर्पण प्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा ।

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेष्यते परम् ॥ ५० ॥

अर्थ–नेत्रोंमें तर्पणप्रयोग करना होय तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पाँच दिन पर्यंत करे। यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना॥

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण।

तर्पणे तृप्तिलिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत्॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्॥
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च॥५१॥

अर्थ–सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेच्छ जागना, नेत्रोंकी कांति उत्तम होय, दृष्टि (नजर) स्वच्छ (साफ) हो, रोगोंका नाश और क्रियालाघव कहिये नेत्रोंका खुलना मूंदनारूप क्रियाका हलकापन होय। ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं॥

तर्पण अधिक होनेके लक्षण।

अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम्॥५२॥

अर्थ–तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे नेत्रोंसे जल आवे नेत्रोंका भारीपन तथा उनमें चिकनाहट होती है॥

हीनतर्पणके लक्षण।

रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम्॥५३॥

अर्थ–तर्पणकरके नेत्र तृप्त होनेसे नेत्र तेजरहित हों लाल रंगके हों दूखें तथा रोगोंकरके व्याप्त हों॥

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे यत्न।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया॥५४॥

अर्थ–तर्पणकरके अतिस्निग्ध नेत्र उनको रूक्ष उपायोंकरके अच्छा करे। हीन स्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारोंकरके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षोंको चिकने पदार्थों-करके और चिकनोंको रूक्ष पदार्थकरके अच्छा करना चाहिये॥

पुटपाक।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम्॥
द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ॥५५॥
द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः॥
तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम्॥५६॥

पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ॥
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ-इसके उपरान्त पुटपाकसाधनकी क्रिया कहते हैं। हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलायके बारीक पीस सूखी औषध जो कही है वो एक बिल्व ले। तथा दूध जल इत्यादिक द्रव पदार्थ एक कुडव ले। ये सब वस्तु उस मांसमें मिलायके उस मांसका गोला बनावे। फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस गोलेके चारों तरफ लपेटके उसपर मिट्टीका लेप करे। पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे। फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकास लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमें डाले (बिल्व नाम पलका है। मध्यखंडमें स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है) ॥

पुटपाकसंबंधी रस नेत्रोंमें डालनेका विधान।

दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥
स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ॥ ५८ ॥

अर्थ-वह पुटपाकसंबंधी रस स्नेहन लेखन और रोपण इन भेदोंकरके तीन प्रकारका है। उसे मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रोंमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डाले ॥

स्नेहनादि भेदकरके पुटपाककी योजना।

हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः ॥
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ५९ ॥

अर्थ-रूक्षनेत्रोंमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमें लेखन पुटपाक योजना करे। तथा दृष्टिमें बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसंबंधी दुष्ट हुए पित्त रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक् २ योजना आगेके श्लोकोंमें कही है ॥

स्नेहनपुटपाक।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैः कृतः ॥
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यौ द्वे वाक्छते दृशोः ॥ ६० ॥

अर्थ-घी हरिणादिकोंका मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमें मिलायके

---

१ तर्पण और पुटपाक दोनोंमें नेत्रके चारों तरफ उडदका घामला माथा बनाय करके रस डालते हैं परंतु तर्पणरूप औषध नेत्र मूंदके ऊपर गेरते हैं और पुटपाकसंबंधी रस नेत्रोंको खोलकर नेत्रोंके बीचाबीच डाला जाता है केवल इतनाही भेद है।

पीसें । तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण करके उस मांसादिकमें मिलायके गोला करे । उस गोलेके चारों तरफ जामुन आंब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगायके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । पश्चात् उस गोलेको बाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे । इस रसको नेत्रोंमें डाले और जबतक दोसौ मात्रा होवे तबतक इसको धारण करे। इसको स्नेहनपुटपाक कहते हैं ॥

लेखनपुटपाक ।

जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥ ६१ ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिमस्तुभिः ॥ लेखनो वाक्छतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ॥ ६२ ॥

अर्थ–हरिणादिकोंके कलेजेका मांस लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शंख मूंगा सेंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानना । इनका चूर्ण करके उसे मांसमें मिलाय दे । तथा उसमें दहीका तोड (दहीका जल) मिलायके गोला करे और इसको पुटपाककी विधि (जो पूर्व कह आये हैं उसी प्रकार) से सिद्ध करे । पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोडके रस निकाल लेवे । इसको नेत्रोंमें डालके सौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत धारण करे । इसको लेखन पुटपाक कहते हैं ॥

रोपणपुटपाक ।

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ॥
लेखनात्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ ६३ ॥
वितरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥ ६४ ॥

अर्थ–स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस सहत घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधोंको पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलायके गोला बनावे । तथा इसको पुटपाककी विधिसे परिपक्व करिके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे । इसको नेत्रोंमें डालके तीनसौ वाङ्मात्रा होनेपर्यंत धारण करे । इसको रोपणपुटपाक कहते हैं । यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमें जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करे ॥

संपक्वदोष होनेसे अंजन तथा साधारण अंजनका विधान ।

अथ संपक्वदोषस्य प्रातमंजनमाचरेत् ॥ हेमंते शिशिरे चैव

मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ६२ ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसंते च सदैव हि ॥ ६३ ॥

अर्थ–दोषोंका परिपाक[1] होनेपर अर्थात् पांच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे । तथा अंजनकी साधारण विधि कहते हैं कि हेमन्त ऋतु (मार्गशिर और पौष) तथा शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) इनमें मध्यान्हकालमें (दो प्रहर दिन चढनेपर) नेत्रोंमें अंजन करे । ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) और शरदऋतु (आश्विन कार्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे । वर्षाऋतु तथा अत्यंत गरमीमें अंजन न करे । एवं वसंतऋतुमें सर्वकाल अंजन आंजना चाहिये ॥

अंजनके भेद ।

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् ॥ लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ ६४ ॥ कषायतिक्तरसयुक् सस्नेहं रोपणं मतम् ॥ मधुरस्नेहसंपन्नमंजनं च प्रसादनम् ॥ ६५ ॥

अर्थ–लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदोंकरके अंजन तीन प्रकारका है । उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं वह लेखन अंजन कहाता है। कषाय कहिये कसैला, तिक्त कहिये कडुआ, इन दो रसोंकरके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त हो उसे रोपणांजन जानना, मधुररस करके युक्त और स्नेहयुक्त जो होय उस अंजनको प्रसादन कहिये स्नेहनांजन जानना ॥

गुटिकादि भेदकरके अंजनके तीन भेद ।

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ॥
कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–गुटिका कहिये गोली तथा रसरूप (द्रव पदार्थ युक्त) अंजन एवं चूर्ण इस प्रकार अंजन तीन प्रकारके जानने। गुटिकाकी अपेक्षा (वनिसवत्) रस गुणोंमें न्यून है तथा रसांजनकी अपेक्षा चूर्णांजन गुणोंमें न्यून है । इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणोंमें हलके हैं । तथा उन अंजनोंको शलाका कहिये सलाई करके अथवा उंगलियोंसे नेत्रोंमें लगावे ॥

अंजनविषयमें अयोग्य ।

श्रांते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते ॥ ६७ ॥

---

१ इस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवें उस दिनसे लेकर पांच दिनके पश्चात् दोष परिपक्व होते हैं ।

अर्थ–श्रमसे थका हुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरवाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकोंका अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्यको अंजन नहीं करना चाहिये ॥

अंजनवर्तीका प्रमाण।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णांजने भिषक् ॥
प्रमाणं मध्यमेध्यर्धा द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–तीक्ष्ण अंजन (जो नेत्रोंको अत्यंत पीडा करे) की हरेणु(मटर) के समान लम्बी बत्ती बनावे। उसी प्रकार मध्यम अंजनमें हरेणुके डेढ बीजके बराबर लम्बी गोली बनावे और मृदु अंजनमें मटरके दो बीजोंके बराबर गोली बत्तीके आकार करे ॥

अंजनमें रसका प्रमाण।

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडंगमिता हिता ॥
मध्यमा द्विविडंगा स्याद्धीना त्वेकविडंगका ॥ ६९ ॥

अर्थ–रसक्रिया कहिये द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें डालनेसे उत्तम रसक्रिया जाननी। दो वायविडंगके समान मात्रा नेत्रोंमें डालनेको मध्यम रसक्रिया जाननी। एक वायविडंगके प्रमाणकी मात्रा हीन रसक्रिया अर्थात् कनिष्ठ जाननी ॥

विरेचनअंजनमें चूर्णका प्रमाण।

वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते ॥
मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने ॥ ७० ॥

अर्थ–वैरेचनिक चूर्ण (जिस चूर्णसे नेत्रोंसे अधिक जल गिरे) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाईको दो वार चूर्णमें सानके दो बार नेत्रोंमें फेरके निकास लेवे मृदु अंजनमें औषधोंके चूर्णमें तीनवार सलाईको डुबोयके तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अंजनोंमें सलाईको चार बार डुबोयके सलाईको चार बार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय ॥

सलाईका प्रमाण और वह किसकी बनावे।

मुखयोः कुंठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ॥
अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमंडला ॥ ७१ ॥

अर्थ–पाषाण (पत्थर) की अथवा सुवर्णादि धातुओंकी ऐसी सलाई आठ अंगुलकी करके उसका मुख गोल करे परंतु बारीक न करे। तथा वह मटरके दानेके समान सुंदर गोल होनी चाहिये ॥

लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण।

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ॥
सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता ॥
अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ॥ ७२ ॥

अर्थ—लेखन अंजनमें तांबेकी अथवा लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाईकी योजना करे। स्नेहन अंजनमें सोनेकी अथवा रूपे (चांदी) की सलाईकी योजना करे तथा उंगलीमें नम्रता है इसीवास्ते रोपण अंजनमें उंगलीकी योजना करे अर्थात् उंगलीहीसे लगावे ॥

कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अंजन करे।

सायंप्रातश्चांजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ॥ ७३ ॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ॥
कृष्णभागादधः कुर्यादपांगं यावदंजनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकाल अंजन करे। सर्वकाल अंजन नहीं करे अत्यंत शीतकाल, अत्यंत उष्णकाल, वायु (अत्यंत हवा) चलनेके समय और जिस समय बद्दल होवे उस समय अंजन न करे। नेत्रके काले भागके नीचे पलकोंमें अंजन करे ॥

चंद्रोदयावर्ती।

शंखनाभिर्बिभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ॥ पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ७५ ॥ छागीक्षीरेण संपिष्य वर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् ॥ हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥ ७६ ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ॥ रात्र्यंधं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चंद्रोदया जयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ—१ शंखकी नाभी २ बहेडेके फलके भीतरकी गिरी ३ हरड ४ मनसिल ५ पीपल ६ काली मिरच ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषधि समान भाग ले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौके समान गोली बत्तीके सदृश लंबी बनावे। इसको चंद्रोदयावर्त्ती कहते हैं। पश्चात् एक गोलीको रेणकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, कांचबिंदु, पटलगत रोग, अर्बुद, रतौंध तथा एक वर्षका फूला ये सब रोग दूर हों ॥

फूले आदिपर बत्ती।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता ॥
करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ–कंजके बीजोंका चूर्ण करके पलासके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरलकर बत्तीके समान लंबी गोली बनावो । फिर इस गोली-को जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो शुक्र कहिये फूला आदि शब्दकरके मांसवृद्धि जड इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवें ॥

दूसरा प्रकार ।

समुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः ॥
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ–१ समुद्रफेन २ सैंधानमक ३ शंख ४ मुरगेके अंडेके ऊपरका वकल ५सहजनेके बीज ये पांच औषध समानभाग ले जलसे पीस बत्तीके समान गोली करके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला छर इत्यादिक रोग शस्त्रके काटनेके समान दूर हों ॥

लेखनी दंतवर्ती ।

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ॥
दंतवर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा ॥ ८० ॥

अर्थ–हाथी सूअर ऊंट बैल घोडा बकरा और गधा इनके दांत तथा शंख मो-ती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमें पीसके बत्तीके सदृश गोली बनावे । इस गोलीको दंतवर्त्ती कहते हैं । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला दूर होवे ॥

तंद्रा दूर होनेको लेखनी वर्त्ती ।

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ॥
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतितंद्रां विनाशयेत् ॥ ८१ ॥

अर्थ–नीला कमल सहजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो तंद्रा दूर हो ॥

रोपिणी कुसुमिका वर्ती ।

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्या कणाकणाः ॥ ८२ ॥ जा-तीकुसुमपंचाशन्मरिचानि च षोडश ॥ सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्चांजने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥८४॥

अर्थ–तिलके फूल ८० पीपलके भीतरके दाने ६० चमेलीके फूल ५० तथा काली मिरच १६ इन सबको एकत्र कर जलसे पीसके गोली बनावे । इसको कुसुमिका वर्ती कहते हैं । यह गोली रेणुकाके डेढ बीजके बराबर जलमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें ॥

रतौंध दूर करनेकी बत्ती ।

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालती निंबपल्लवाः ॥
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥ ८५ ॥

अर्थ–१ रसोत २ हलदी ३ दारुहलदी ४ चमेलीके पत्ते ५ नीमके पत्ते इन पांच औषधोंको समान भाग ले गौके गोबरके रसमें बारीक पीसके गोली बनावे । इसको जलमें घिसके लगावे तो रतौंध दूर होय ॥

नेत्रस्रावपर स्नेहनी वर्ती ।

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च ॥
पिष्ट्वा वर्ति जलैः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ॥
नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा ॥ ८६ ॥

अर्थ–आंवलेके भीतरका बीज १ भाग बहेडेके फलका भीतरका बीज २ भाग हरडके भीतरका बीज गोली ३ भाग इन सब बीजोंको एकत्र करके जलमें बारीक पीस लम्बी गोली करे । पश्चात् उस गोलीमेंसे दो रेणुकाके बीज समान जलमें घिसके नेत्रोंमें आंजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तसंबंधी पीडा दूर होय ॥

रसक्रिया ।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः ॥ गैरिकोदधिफेनौ च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ ८७ ॥ संयोज्य मधुना कुर्यादंजनार्थं रसक्रियाम् ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरां पराम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–१ लीलाथोथा २ स्वर्णमाक्षिक ३ सैंधानमक ४ मिश्री ५ शंख ६ मनसिल ७ गेरू ८ समुद्रफेन और ९ काली मिरच ये नौ औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोग अर्मरोग तिमिर काचबिंदु और फूला ये रोग दूर होवें ॥

फूला दूर करनेकी रसक्रिया ।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः ॥
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासिकम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—वडके दूधमें कपूरको घिस नेत्रोंमें अंजन करनेसे दो महिनेका फूला शीघ्र दूर होवे ॥

अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया ।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ॥
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९० ॥

अर्थ—सहत और घोडेकी लार इन दोनोंमें काली मिरच पीसके जिसको अत्यंत निद्रा आती हो उसके नेत्रोंमें लगावे तो जैसे सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार नष्ट होता है उसी प्रकार इस गोलीके अंजन करनेसे निद्रा तत्काल दूर होवे ॥

तन्द्रानाशक रसक्रिया ।

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा ॥
सैंधवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तंद्राघ्नमंजनम् ॥ ९१ ॥

अर्थ—चमेलीके फुल चमेलीके अंकुर काली मिरच कुटकी वच और सैंधानमक ये औषध समान भाग ले बकरेके मूत्रमें सबको बारीक पीस नेत्रोंमें अंजन करे तो तन्द्रा दूर होय ॥

सन्निपातपर रसक्रियां ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैंधवैः ॥
अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ९२ ॥

अर्थ—१ सिरसके बीज २ पीपल ३ काली मिरच ४ सैंधानमक ५ लहसन ६ मनसिल और ७ वच ये सात औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके जो मनुष्य सन्निपातमें बेहोश पडा हो उसके नेत्रोंमें आंजे तो उसको तत्काल होश हो जावे ॥

दाहादिकोंपर रसक्रिया ।

दार्वी पटोलं मधुकं सनिंबपद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥ सपौंडरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ विपाच्य पादशेषं तु शृतं नीत्वा पुनः पचेत् ॥ ९४ ॥ शीते तस्मिन्मधुसितां दद्यात्पादांशकां नरः ॥ रसक्रियैषा दाहाश्रुरक्तरोगरुजो हरेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—१ दारुहलदी २ पटोलपत्र ३ मुलहटी ४ नीमकी छाल ५ पद्माख ६ कमल ७ सपेद कमल ये सात पदार्थ समान भाग ले जौकूट कर उसमें सब औषधोंसे चौगुना जल डालके औटावे । जब चतुर्थांस शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छानके फिर औटावे । जब गाढा होनेपर आवे तो उस अवलेहसे चौथाई सहत और मिश्री मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे, तो दाह स्राव रुधिरके विकारसे नेत्रोंका लालरंग होना ये सर्व रोग दूर होवें ॥

नेत्रोंके पलकोंके बाल आनेको तथा खुजली आदिपर रोपणी रसक्रिया।

रसांजनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला॥ समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च॥ ९६॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि॥ अंजनं क्लेदकंडूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम्॥ ९७॥

अर्थ– १ रसोत २ रार ३ चमेलीके फूल ४ मनसिल ५ समुद्रफेन ६ सैंधानमक ७ गेरू और ८ काली मिरच इन आठ औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोगोंमें उक्लिष्ट वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रोंका मैलयुक्त होना एवं खुजली ये रोग दूर होवें तथा पलकोंके झडे हुए बाल फिर ऊग आवें॥

तिमिरपर रसक्रिया।

गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्॥ सैंधवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥९८॥ अंजयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्॥ काचं कंडूं लिंगनाशं शुक्लकृष्णगतान् गदान्॥९९॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस एक कर्ष निकालके उसमें सहत और सैंधानमक एक मासा मिलायके अच्छी रीतिसें खरल करे। फिर नेत्रोंमें अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, काचबिंदु, खुजली, लिंगनाश तथा नेत्रोंके सपेद भागमें और काले भागमें होनेवाले ये सब रोग दूर हों॥

अंजनमें पुनर्नवाका योग।

दुग्धेन कंडूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा॥
पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधताम्॥
पुनर्नवा जयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १००॥

अर्थ–पुनर्नवा (सांठ) को दूधमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रोंकी खुजली दूर होय। सहतमें घिसके लगावे तो नेत्रोंसे जलका बहना दूर हो। घीमें घिसके लगावे तो फूला दूर होवे। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर रोग नष्ट होय। कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय। इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे सूर्यनारायण अंधकारका तत्काल नाश करे उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपानके भेदकरके सर्व रोगोंको दूर करती है॥

नेत्रस्रावपर रोपणी रसक्रिया।

बबूलदलनिःक्वाथो लेहीभूतस्तदंजनात्॥
नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः॥ १०१॥

अर्थ-बबूरके पत्तोंके काढेको गाढा होनेपर्यंत औटावे। फिर इसमें थोडासा सहत डालके नेत्रोंमें अंजन करे तो यह नेत्रोंसे जलके वहनेको निश्चय दूर करे ॥

दूसरा प्रकार ।

हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम् ॥ १०२ ॥

अर्थ-हिज्जलके फलको पानीमें घिसके नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे जल गिरनेको दूर करे ॥

नेत्र स्वच्छ होनेको स्नेहनी रसक्रिया ।

कनकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ॥
ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ॥ १०३ ॥

अर्थ-निर्मलीके फलको सहतमें घिसके उसमें थोडासा कपूर मिलायके नेत्र प्रसन्न होनेके वास्ते अंजन करे ॥

शिरोत्पातरोगपर अंजन ।

सर्पिः क्षौद्रं चांजनं स्याच्छिरोत्पातस्य शातने ॥ १०४ ॥

अर्थ-घी और सहत दोनोंको एकत्र कर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्र रोगोंमें जो शिरोत्पातरोग है वह दूर होय ॥

अंधापन दूर होनेकी रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकाफलमंजनम् ॥
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

अर्थ-काले सर्प (काले सांप) की वसा कहिये मांसस्नेह शंख और निर्मलीके बीज इन तीनोंको एकत्र खरल कर नेत्रोंमें अंजन करे तो अंधे मनुष्यको बहुत जल्दी दीखने लगे ॥

लेखन चूर्णांजन ।

दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंखचंदनगैरिकैः ॥
द्रव्यैरंजनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥ १०६ ॥

अर्थ-१ मुरगेके अंडेकी सपेदी २ मनसिल ३ सपेद कांच ४ शंख ५ सपेद चंदन और ६ स्वर्णगैरिक अर्थात् नम्र जातका गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीसके चूर्ण करे। फिर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मांसार्मादिक रोग दूर हों ॥

रतौंध दूर होनेका लेखन चूर्ण ।

कणाच्छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ॥
अचिराद्धंति नक्तांध्यं तद्वत्सक्षौद्रभूषणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ-बकरेके कलेजेके मांसमें पीपल रखके अंगारोंपर पाक करे । पश्चात् उस मांसका रस तथा पीपल इन दोनोंको पीसके जिस प्राणीके रतौंध आती है उसके अंजन करे तो रतौंध जाती रहे ॥

खुजली आदिपर लेखन चूर्णांजन ।

शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ॥
शाणार्धं सैंधवं शाणा नवसौवीरकांजनात् ॥ १०८ ॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् ॥
कंडूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम् ॥ १०९ ॥

अर्थ-काली मिरच अर्धशाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले सैंधानमक अर्ध शांण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधोंको जिस दिन चित्रा नक्षत्र होय उस दिन अत्यंत बारीक पीस चूर्ण करे । फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली तथा कांचबिंदु ये दूर हों । कफकरके पीडित नेत्रोंका तथा मलोंका शोधन होय ॥

सर्व नेत्ररोगोंपर मृदु चूर्णांजन ।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ११० ॥ शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत् ॥ तच्चूर्ण्यं भावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ १११ ॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् ॥ अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हि तत् ॥ सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च ॥ ११२ ॥

अर्थ-खपरियाको पत्थरके खरलमें उत्तम रीतिसे खरल करके काजल समान बारीक चूर्ण करे । पश्चात् उस चूर्णको जलमें डालके मिलाय देवे । फिर उस जलको नितारके दूसरे पात्रमें निकाल लेवे और उस पात्रमें जो नीचे खपरियाके बडे २ टुकडे रह गये हों उनको दूर पटक देवे । फिर उस नितारे हुए पानीको दूसरे पात्रमें करके सुखाय ले । इस प्रकार करनेसे उस खपरियाके चूर्णकी पपडी जम जावेगी, उसको निकालके चूर्ण करे । उस चूर्णको त्रिफलेके काढेकी तीन भावना देवे । पश्चात् उस चूर्णका दशवां भाग भीमसेनीकपूर मिलायके नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्व

दोष तथा सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होय । खपरियाको वैद्य परीक्षा करके लेवे । यह मुम्बईमें मिलती है ॥

सर्व नेत्ररोगोंपर सौवीरांजन ।

अग्नितप्तं च सौवीरं निर्षिंचेत्त्रिफलारसैः ॥
सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् ॥ ११३ ॥
अंजयेन्नयने तेन प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् ॥
सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ॥ ११४ ॥

अर्थ–सुरमेको अग्निमें तपायके उसपर त्रिफलेकी काढेको छिरक देवे । जब शीतल हो जावे तब फिर अग्निमें तपावे और त्रिफलेका काढा छिडकके शीतल करे। इस प्रकार सात वार करे । तथा इसी प्रकार सात वार स्त्रीका दूध छिडकके शीतल करे । फिर इसको बहुत बारीक पीसके सलाईसे अंजन करे तो यह अंजन नेत्रोंको बहुत हितकारी होय इसमें संदेह नहीं है ॥

शीशेकी सलाई बनानेकी विधि ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ॥ ११५ ॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान् गदान् ॥ ११६ ॥

अर्थ–त्रिफलेका काढा, भांगरेका रस, सुंठीका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध, इन एक एकमें सात २ वार शीशेको बुझावे । फिर उस शीशेकी सलाई बनावे । इस सलाईको नेत्रोंमें फेरा करे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होवें ॥

प्रत्यंजन करनेकी विधि ।

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन्सम्यगंभसि ॥
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥ ११७ ॥

अर्थ–उस शीशेकी सलाईको नेत्रोंमें फेरनेसे दोष दूर हों नेत्रोंसे पानी निकल जानेके पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जलको देखे । फिर उसके नेत्र जलसे धोयके नेत्रोंमें प्रत्यंजन करे । वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रंथमें लिखा है ॥

सदोष नेत्र होनेसे निषेध ।

न वा निर्गतदोषेक्ष्णि धावनं संप्रयोजयेत् ॥
प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ॥ ११८ ॥

अर्थ—नेत्रोंसे जबतक दोष निःशेष न निकले तबतक नेत्रोंको जलसे नहीं धोवे तथा तीक्ष्ण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेसे प्रत्यंजन चूर्ण लगावे। वह आगेके श्लोकमें कहा है अथवा प्रसादनचूर्ण नेत्रोंमें लगावे ॥

प्रत्यंजनचूर्ण।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धं सूतं विक्षिपेत् ॥
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ११९ ॥
दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत् ॥
एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १२० ॥

अर्थ—शीशेको शुद्ध[1] करके अग्निपर पतला करे। तथा शीशेका समभाग शुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपे हुए शीशेमें मिलाय देवे। पश्चात् इन दोनोंका समान भाग सुरमा लेके दोनोंमें मिलाय दे। फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्णका दशवाँ हिस्सा भीमसेनीकपूर उस चूर्णमें मिलावे। इसको प्रत्यंजनचूर्ण कहते हैं। इस करके संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान गुण करता है ॥

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंबुकद्रवैः ॥
एकविंशतिवेलं तत्ततो वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयांजयेत् ॥
सर्पदष्टविषं जित्वा संजीवयति मानवम् ॥ १२२ ॥

अर्थ—जमालगोटेके भीतरकी मज्जा अर्थात् बीजोंके भीतरका बीज उसको नींबूके रसकी इक्कीस पुट देके बारीक पीस लंबी गोली बनावे। पश्चात् उस गोलीको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमें अंजन करे तो सर्पके काटनेसे जो विषबाधा होय वो दूर होकर मनुष्य सावधान होय ॥

हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोंछनेके गुण।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥
जाता रोगा विनश्यंति तिमिराणि तथैव च ॥ १२३ ॥

---

१ सुवर्णादि धातुओंका शोधन मध्य खंडमें लिखा है उसी जगह शीशेका शोधन है सो जानना अथवा शीशेकी सलाई बनानेमें जिस प्रकार शुद्धि लिखी है उस प्रकार करनी चाहिये।

अर्थ–भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धो गीले हाथोंकी दोनों हथेली आपसमें घिसके नेत्रोंको लगावे तो उत्पन्न हुए रोग तथा तिमिररोग ये दूर होवें॥

शीतांबुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन॥
आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षिरोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः॥ १२४॥

अर्थ–प्रति दिन दिनमें तीन वार शीतल जलसे मुखको भरके शीतल जलसे नेत्रोंको तीन वार छिडके, तो अति दुःख देनेवाली नेत्ररोगसंबंधी पीडा वह कभीभी नहीं होवे॥

ग्रंथको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमानका परिहार।

आयुर्वेदसमुद्रस्य गूढार्थमणिसंचयम्॥
ज्ञात्वा कैश्चिद् बुधैस्तैस्तु कृता विविधसंहिताः॥ १२५॥
किंचिदर्थं ततो नीत्वा कृतेयं संहिता मया॥
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यां कुर्वंतु साधवः॥ १२६॥

अर्थ–समुद्रके समान (दुरवगाहन) आयुर्वेद, तत्संबंधी जो मणिके समान गूढार्थ उनके समुदायोंको उत्तम प्रकार जानके अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरोंने अनेक प्रकारकी जो संहिता की हैं उन सब संहिताओंका कुछ २ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की है। इसपर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करो॥

ग्रंथ पढनेका फल।

विविधगदार्तिदरिद्रनाशनं या हरिरणीव करोति योगरत्नैः॥
विलसतु शार्ङ्गधरसंहिता सा कविहृदयेषु सरोजनिर्मलेषु॥१२७॥

अर्थ–योग कहिये काढे चूर्ण गुटिका अवलेह इत्यादिक येही हुए रत्न इनकरके अनेक प्रकारके ज्वरादिक जो रोग तत्संबंधी पीडारूप जो दरिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसंहिता कमलके समान निर्मल कवीके हृदयमें शोभित होवे। इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकारके रत्नोंकरके अपने आश्रित (भक्तजनों) के दरिद्रको दूर करती है तैसेही यह संहिताभी॥

अल्पायुषामल्पधियामिदानीं कृतं समस्तश्रुतिपाठशक्ति॥
तदत्र युक्तं प्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितं प्रयत्नात्॥ १२८॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः॥ १३॥

---

१ शर्यातिश्च सुकन्या च च्यवनं शक्रमश्विनौ। भोजनांते स्मरेन्नित्यं चक्षुस्तस्य न हीयते॥

अर्थ-इस कलियुगमें प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले हैं इसीसे लोग (प्राणी) सर्व आयुर्वेद पढनेमें समर्थ नहीं हैं अत एव इस युगमें आत्माकों हितकारी योग्य सारांशरूप ऐसा जो यह तंत्र उसका बडे प्रयत्नकरके अभ्यास करो ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायां माथुरीभाषाटीकायां उत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः॥१३॥

इति उत्तरखण्डं समाप्तम् ।

इति श्रीमाथुरपाठकज्ञातीयभारद्वाजकुलकैरवानंददायिराकेशश्रीकृष्णलाल-तत्पुत्रदत्तरामनिर्मिता माथुरी शार्ङ्गधरव्याख्या समाप्तिमगमत् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

वैद्यकग्रन्थाः ।

५४८ वैद्यकल्पद्रुम भा०टी० .... ५–० ०–१०
५४९ मदनपालनिघंटु भाषाटीका ग्लेज २–४ ०–४
५५० ,, रफ २–० ०–४
५५१ चिकित्सा चक्रवर्तीभाषा १–० ०–२
५५२ चिकित्सारत्नभाषा .... ०–३ ०–॥
५५३ नपुंसकसंजीवनी प्रथम भाग .... ०–६ ०–॥
५५४ ,, दुसरा भाग .... ०–६ ०–॥
५५५ शालिहोत्र सूर्यकृत (घोडोंके शुभाशुभ लक्षण और उनके रोगोंकी औषधी) वार्त्तिकमें ०–६ ०–१
५५६ रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत ५–० ०–१०
५५७ बृहन्निघंटु रत्नाकर–सप्तम अष्टम भाग अर्थात् "शालग्राम निघटुभूषण"(अनेक देशदेशांतरीय संस्कृत,हिन्दी,बंगला,महाराष्ट्री,गौर्जरी,द्राविड़ी तैलंगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन, फारसी, अरबी भाषाओंमें सर्व औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियोंके चित्रोंसमेत ८–० १–०
५५८ हंसराजनिदान भाषाटीका.... .... १–० ०–३
५५९ वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा०टी० (वैद्योपयोगी-औषधियोंकी योजनामें तौल,मान, और ला, तथा वर्ग,चूर्णआदिकोंकी योजनाका वर्णन) ०–१२ ०–१॥
५६० वैद्यरत्न भा०टी० (सर्वरोगोंकी चिकित्सा उत्तमप्रकारसे वर्णन किया है) ०–१४ ०–२

५६१ वैद्यवल्लभ भाषाटीका (चिकित्साउत्तम).... ०–६ ०–॥
५६२ पाकप्रदीप वाजीकरण भा०टी० .... ०–८ ०–१
५६३ आयुर्वेद सुषेण भा०टी० .... ०–१४ ०–२
५६४ कूटमुद्गर भा०टी० .... ०–३ ०–॥
५६५ वङ्गसेन (कलकत्ता) ४–० ०–८
५६६ सुश्रुतसंहिता–प्रथम सूत्रस्थान सान्वय स टिप्पणी सपरिशिष्ट भाषाटीका ३–८ ०–८
५६७ कुमारतंत्र रावणकृत भाषाटीका ०–८ ०–१
५६८ कुटुम्बचिकित्सा भाषा १–० ०–२
५६९ शालग्रामौषधशब्दसागर–अर्थात् आयुर्वेदीय औषधिकोष २–० ०–४
५७० बोपदेवशतकवैद्यक भाषाटीका समेत .... ०–५ ०–॥
५७१ अर्कप्रकाश भाषाटीका रावणकृत (इसमें सब औषधियोंके गुण व अर्क निकालनेकी क्रिया है) १–० ०–२
५७२ शिवनाथसागर (वैद्यक).... .... ४–० ०–८
५७३ व्यंजनप्रकाश (नैमित्तिक भोजनके समस्त पदार्थ अचारादि बनानेकी सुगमता और गुण) ०–८ ०–१
५७४ बालतंत्रभाषाटीका[इसमें बालकोंको डाकिनी शाकिनी छुड़ानेके यंत्रमंत्र तथा पोषण चिकित्सा वन्ध्या यत्न आदि विषय वर्णित है यह पुस्तक सभी गहस्थोंको रखना योग्य है] १–० ०–२